राजनीति में वाद

श्रीलाल औदीच्य एम ए
रीडर, राजनीति विभाग
जोधपुर विश्वविद्यालय
जोधपुर

प्रभुदत्त शर्मा एम ए (राज, इति),
एम पी ए (यू एस ए)
लैक्चरार, राजनीति विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर

प्रकाशक
पॉपुलर बुक डिपो
जयपुर

प्रकाशक
पॉपुलर बुक डिपो
चौड़ा रास्ता, जयपुर

मुख्य विक्रय केन्द्र
गयाप्रसाद एण्ड सन्स, आगरा
लॉयल बुक डिपो, ग्वालियर
कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल
ओरियण्टल पब्लिशिंग हाउस, कानपुर
श्री अलमोड़ा बुक डिपो, अलमोड़ा

मूल्य ७ रुपये]

[द्वितीय संस्करण १९६३

प्राक्कथन

राष्ट्रभाषा हिन्दी जब से विश्वविद्यालयों में विभिन्न विषयों के शिक्षण-माध्यम के रूप में स्वीकार की गई है, तभी से 'राजनीति' जैसे लोकप्रिय विषय पर हिन्दी में लिखी हुई पुस्तकों की मांग दिनों-दिन बढ़ती जा रही है। विद्यार्थी-समाज विशेषतः ऐसी पुस्तकों की खोज में है जो उन्हें सरल तथा सरस भाषा में राजनीति-शास्त्र की जटिलताओं से अवगत ही नहीं कराये वरन् उन्हें परीक्षोपयोगी सामग्री भी प्रदान कर सके। हिन्दी-माध्यम से लिखी गई आज तक की समस्त पुस्तकें या तो अक्षरशः अनुवाद मात्र हैं या उपयुक्त शब्दों की कठिनाई के कारण अंग्रेज़ी की पुस्तकों से भी अधिक क्लिष्ट प्रतीत होती हैं। प्रस्तुत पुस्तक की रचना इसी एक महान् अभाव की पूर्ति के लिये किया गया एक प्रयास है। राजनीति में 'वाद' जैसे जटिल विषय को बोधगम्य बनाने के लिये एक नूतन शैली अपनाई गई है और अंग्रेज़ी तथा हिन्दी शब्दावलियों द्वारा भाषा-सम्बन्धी दुरूहता को मिटाने का भी प्रयास किया गया है। आशा है विद्यार्थी-जगत् इसका स्वागत करेगा और अपने विषय पर यह पुस्तक उनके लिये परम उपयोगी सिद्ध होगी।

अन्त में उन सब महान देशी तथा विदेशी लेखकों का आभार स्वीकार करना यहाँ अनुचित न होगा, जिनके उद्धृत अवतरण प्रस्तुत पुस्तक को अलङ्कृत करते हैं।

श्रीलाल औदीच्य
प्रभुदत्त शर्मा

द्वितीय संस्करण की भूमिका

'राजनीति में वाद' के द्वितीय संस्करण का परिवर्द्धित रूप अपने पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते समय हमे अत्यन्त प्रसन्नता अनुभव हो रही है। प्रस्तुत संस्करण मे एक ओर जब कि देश के विश्वविद्यालयो मे कुछ समय से आरम्भ किये गये त्रिवर्षीय पाठ्यक्रम का ध्यान मे रखते हुए समुचित परिवर्तन किये गये हैं, तो दूसरी ओर विद्वान पाठको द्वारा निर्दिष्ट सुझावो को भी यथासम्भव समाविष्ट करने का प्रयास किया गया है।

पूर्व संस्करण के दो भागो को एक जिल्द में आकर्षक कलेवर के साथ प्रस्तुत करने के लिए हम अपने प्रकाशक के आभारी हैं। आशा है पाठक-जगत् पहले की अपेक्षा प्रस्तुत संस्करण को अधिक उपयोगी पायेगा तथा आवश्यक संशोधनो और परिवर्द्धनों के पश्चात् इसका अधिक उत्साह से स्वागत कर सकेगा।

जयपुर
२ अक्टूबर १९६१

श्रीलाल औदीच्य
प्रभुदत्त शर्मा

विषय-सूची

राजनीति मे याद

राजनीति शास्त्र : एक परिचय

राजनीति शास्त्र के इतिहास मे, किसी भी युग विशेष की सीमायें निर्धारित करना एक बडा कठिन कार्य है। उदाहरणार्थ यदि हम आधुनिक युग के आरम्भ का पता लगाना चाहें, तो हम यह निश्चित रूप से नही कह सकते कि मार्सीलियो, मैकेवली, बोदो अथवा हाब्स आदि राजनैतिक विचारो मे से किस महान राजनैतिक दार्शनिक से इसका प्रारम्भ हुआ। हमें केवल इतना ही कह कर सन्तोष करना पडता है कि वह अठारहवी शताब्दी की तीन महान क्रान्तियो से लेकर रूस की बोल्शेविक क्रान्ति तक फैला हुआ है। लगभग १४० वर्ष का यह समय राजनैतिक विचारो की उथल पुथल के कारण अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है और कितनी ही प्रभावशाली विचार-धाराओं का उत्कर्ष एवं अपकर्ष इस युग की अपनी विशेषता है। अमेरिका तथा फ्रांस की राज्य क्रान्तियों एवं वर्तमान औद्योगिक क्रान्ति (Industrial Revolution) ने योरपीय जन-जीवन की सामाजिक राजनैतिक एवं आर्थिक व्यवस्था मे एक कायापलट उपस्थित कर दी, जिसके कारण वहाँ की राजनैतिक विचारधारा भी एक नवीन चेतना का अनुभव करने लगी। सामाजिक समझौते का प्रतिपादन करने वाले रूसो के साथ-साथ अन्तर्धान हो गये। नवीन ढंग पर आधारित, उपयोगितावाद, जर्मन तथा इगलिश आदर्शवाद, दार्शनिक अराजकतावाद, विभिन्न मार्गी समाजवादी आदि कितनी ही नूतन राजनैतिक विचारधारायें पनपने लगी, जिसके कारण आधुनिक राजनैतिक विचार प्रवाह की दिशा ही परिवर्तित हो गई।

माण्टस्क्यू, वाइको, ह्यूम तथा बर्क आदि ऐतिहासिक विचारको ने अपनी युक्त तर्कशक्ति एवं निष्पक्ष विवेचना के द्वारा सामाजिक समझौते के सिद्धान्त को सदव के लिए समाप्त कर दिया। इन इतिहासवादी विचारको का कार्य यथार्थ मे राजनैतिक विचारधारा को सुव्यवस्थित करने की अपेक्षा, उसकी प्रणाली (Approach) विशेष पर बल देना था, जिसके कारण आगे चलकर कितने ही नये राजनैतिक विचार वर्गों (Schools of Political Thought) की उत्पत्ति हुई। इन सबमे अत्यधिक महत्वपूर्ण एवं प्रारम्भिक विचारवर्ग 'उपयोगितावाद' है, जो अठारहवी शताब्दी के यूरोप मे अत्यन्त प्रभावशाली विचारधारा थी। उपयोगितावाद, तर्कवादी युग के भावात्मक सिद्धान्तो का खण्डन करता है। यह प्रयोगवाद (Pragmaticism) एवं ऐतिहासिक विवेचना (Empiricism) मे विश्वास करता है। समाज से पृथक व्यक्ति तथा उसके जन्मजात अधिकारो पर विवेचना करना उसके क्षेत्र से परे है। वह व्यक्ति को जटिल समाज का एक अंग मानकर चलता है, जिसका प्रत्येक कार्य एक ही प्रेरणा से उत्प्रेरित होता है और वह है उसकी "उपयोगिता"। प्रत्येक व्यक्ति समाज का एक

अभिन्न अंग है और इस कारण वह समाज में अन्य अन्य व्यक्ति के सम्पर्क में आता है तो उसकी यही अभिलाषा होती है कि वह अधिक से अधिक सुख प्राप्त कर सके तथा दुख को अपने से दूर रखे। किन्तु चूँकि प्रत्येक व्यक्ति इस इच्छा से उत्प्रेरित होता है, अतः समाज के समस्त सदस्यों के बीच एक नियमित व्यवस्था तथा पारस्परिक सम्बन्धों को स्थिर रखने के लिए राज्य की आवश्यकता अनुभव होती है जिसका प्रमुख उद्देश्य अधिक से अधिक व्यक्तियों का अधिकतम हित (Greatest good of the greatest number) प्राप्त करवाना है। इस प्रकार राज्य जनसाधारण के कल्याण की एक संस्था है जो व्यावहारिक आचार (Practical ethics) पर आधारित है। अतः उपयोगितावाद राजनीति और नैतिकता में एक घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करता है।

उपयोगितावादी दर्शन की व्याख्या करने वालों में बेंथम प्रमुख है। वस्तुतः पहले ही ऐपीक्यूरियन विचारकों ने भी जीवन का वास्तविक उद्देश्य प्रसन्नता माना था और लोगों को यह शिक्षा दी थी कि प्रत्येक वस्तु का मूल्य उसके प्रसन्नतादायक गुणों के आधार पर ही करना चाहिये। आधुनिक युग में प्रसन्नता सिद्धान्त के समर्थकों में हाब्स का नाम भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। उसका विश्वास था कि मनुष्य सुख और भय की दो भावनाओं के वशीभूत होकर सारे कार्य करता है। सुख के कारण वह किसी वस्तु के निकट तथा भय के कारण उससे दूर भागता है। उपयोगिता का सिद्धान्त डेविड ह्यूम के दर्शन का भी केन्द्र बिन्दु है। उनका मत है कि औचित्य का नाम ही नैतिकता है (Morality is expediency) तथा मनुष्य के सारे कार्यकलापों के मूल में प्रसन्नता प्राप्त करने की कामना निहित है। उपयोगिता ही प्रत्येक राजनैतिक संस्था की श्रेष्ठता एवं निकृष्टता की मापक है। यथार्थ में राज्य का आधार कोई सामाजिक समझौता न होकर शासित व्यक्तियों के लिए उसकी उपयोगिता ही है और "अधिकतम व्यक्तियों के अधिकतम हित" का यह उपयोगितावादी सिद्धान्त हमें प्रीस्टले के राजनैतिक दर्शन में भी मिलता है।

बेंथम के मतावलम्बी उपयोगितावादियों की दृष्टि में प्रसन्नता और पीड़ा (Pleasure and Pain) मनुष्य मात्र के दो सार्वभौम स्वामी हैं तथा वस्तु की एकमात्र उपयोगिता ही उसकी श्रेष्ठता एवं निकृष्टता का निर्णय करती है। इसी कसौटी पर वे सरकार के समस्त कार्य, कानून तथा व्यक्ति एवं समाज के सम्बन्धों का परीक्षण करते हैं। बेंथम के समर्थकों पर यह आरोप लगाया जाता है कि वे मनुष्य की मूल प्रेरणा शक्तियों में पर्याप्त महत्व नहीं देते, क्योंकि प्रसन्नता और पीड़ा के अतिरिक्त अन्य कितनी ही भावनायें एवं इच्छायें हैं, जो मनुष्य को समाज में कार्य करने के लिये विवश करती हैं। दूसरे यदि प्रसन्नता देने वाला प्रत्येक वस्तु व्यक्ति का हित करती है, तो "हित" (Good) की कोई सर्व सम्मत परिभाषा नहीं हो सकती क्योंकि जो वस्तु एक व्यक्ति को प्रसन्नता देती है वह सभी के लिए प्रसन्नतादायक हो यह आवश्यक नहीं। यथार्थ में बेंथम प्रसन्नता को परिमाणात्मक (Quantitative) दृष्टि से

देखता है और यह मानता है कि वह गणित की तरह निश्चित मात्रा म मापी जा सकती है। बेंथम के शिष्य जे० एस० मिल ने बेंथम के उपयोगितावाद की कुछ अशुद्धियो को दूर करने का प्रयास किया। उसने विभिन्न प्रकार की प्रसन्नताओ के परिमाणात्मक अन्तर (Quantitative difference) को ही नही अपितु उनकी कोटियो म पाये जाने वाले गुणात्मक अन्तर (Qualitative difference) पर भी बल दिया और इस प्रकार व्यक्तिगत प्रसन्नता और सावजनिक प्रसन्नता के बीच एक साम्य स्थापित करना चाहा। अपने विचारो मे कुछ व्यक्तिवादी एव स्वतन्त्रता का समर्थक होने के नाते वह बेंथम के "अधिकतम व्यक्तियो के अधिकतम हित' के सिद्धान्त से पूर्णत सहमत नही है।

यथाथ मे उपयोगितावाद तकवादी युग की भावात्मकता (Abstraction) एव सामाजिक समझौते के सिद्धान्त के विरुद्ध क्रियात्मक अंग्रेज विचारको की एक प्रतिक्रिया थी। उसने जीवन की यथार्थताओ तथा उनकी राजनैतिक विचारधारा के मध्य एक सामञ्जस्य स्थापित करने की चेष्टा की। उसने बताया कि राज्य अथवा सरकार का आधार कोई कल्पित समझौता नही वरन् आज्ञाकारिता की आदत है, जो कि उसकी उपयोगिता स उत्पन्न होती है। उपयोगितावादियो ने व्यक्ति तथा उसकी प्रसन्नता पर जो इतना बल दिया उसका दूसरा कारण, जमन आदशवाद के विरुद्ध एक आवाज उठाना था, जिसने राज्य को सवशक्तिमान मान कर उसे निरकुश बना दिया था। अत यह कहा जा सकता है कि उपयोगितावादियो न तत्कालीन राजनतिक विचारधारा को आवश्यकता से अधिक सुनिश्चित एव सरल बनाने का काय किया। उनका मानव मनोविज्ञान का ज्ञान सवथा अपूर्ण था और समूह के मनोविज्ञान की तो उन्होंने पूर्णत अवहेलना की। इस प्रकार व्यक्तिगत प्रसन्नता पर बल देकर उपयोगितावाद न व्यक्तिवाद को ही महत्वपूर्ण नही बनाया वरन् 'अधिकतम व्यक्तियो के अधिकतम हित" के सिद्धान्त द्वारा सामूहिकतावाद (Collectivism) की नीव दृढ बनाई।

आधुनिक राजनतिक विचार प्रवाह का दूसरा छोर आदशवादी विचारवर्ग है जो १८वी शताब्दी के अन्त मे जमनी म जन्मा और पुन १९वी शताब्दी के उत्तराध मे इङ्गलैड मे कुछ सशोधित रूप म प्रचलित हुआ। जमनी म इसका जन्म भौतिकवादी तकशीलता (Materialistic rationalism) को प्रतिक्रिया के रूप मे हुआ जो समस्त मानव सस्थाओ को मानव तक (अथवा विचार) (Reason) का साकार रूप मानती है। रूसो ने इस भौतिकवादी तकशीलता के विरुद्ध अपना 'नतिक स्वतन्त्रता" का सिद्धान्त रखा जो कि कान्ट और हीगल (Hegel) के आदशवाद का प्रारम्भ बिन्दु है। कान्ट (Kant) व्यक्ति की 'नतिक स्वतन्त्रता" (Moral freedom) म विश्वास करता है और यह मानता है कि राज्य एक समझौते का परिणाम है जिसके द्वारा व्यक्ति सामाजिक सरक्षण के कारण अपने अदेय अधिकारों (Inalienable rights) को प्राप्त करता है। समाज की साधारण इच्छा (General will) ही कानून का मूल स्रोत है। कान्ट व्यक्ति की 'नतिक इच्छा की स्वाधीनता" (Autonomy of the

Moral will) में भी विश्वास करता है । यद्यपि यह व्यक्तिगत नैतिक स्वाधीनता, निरंकुश (Absolute) नहीं है और अन्य सदस्यों की समान स्वतन्त्रता उसे मर्यादित करती है । सच्ची स्वतन्त्रता का वास्तविक आधार अन्य सदस्यों की समान स्वतन्त्रता का सम्मान ही है जो कानून का पालन करने तथा इतर व्यक्तियों के अधिकार एवं स्वतन्त्रता के ठीक ठीक मूल्याङ्कन पर ही सम्भव है । कान्ट के इन्हीं स्वतन्त्रता सम्बन्धी विचारों को हीगल ने नकारात्मक स्वतन्त्रता (Negative freedom) के रूप में माना । अधिकार, सम्पत्ति, स्वतन्त्रता कानून तथा राज्य सम्बन्धी अन्य सभी समस्याओं को कान्ट एक आचारात्मक (ethical) एवं व्यक्तिवादी दृष्टिकोण में ही देखता है । वह राज्य को एक ऐसा माध्यम मानता है जिसके द्वारा व्यक्ति की स्वतन्त्रता एवं समाज की साधारण इच्छा (General will) के मध्य एक सामञ्जस्य स्थापित होता है । हीगल की स्वतन्त्रता का चित्र अधिक निश्चित एवं निश्चित है । उसके अनुसार स्वतन्त्रता ही राज्य के अन्तर्गत पाये जाने वाले कानून, नागरिक नैतिकता आदि उन सभी संस्थाओं एवं प्रभावों में जो मनुष्य को न्यायपूर्ण बनाते हैं, अभिव्यक्त होती है । वह मानता है कि एक व्यक्ति का अपना सच्चा व्यक्तित्व राज्य में ही विकसित हो सकता है और उसी में रह कर वह वास्तविक स्वतन्त्रता का उपयोग भी कर सकता है । स्वतन्त्रता किन्हीं अदेय प्राकृतिक अधिकारों (Inalienable natural Rights) से उत्पन्न नहीं होती बल्कि वह तो राज्य द्वारा व्यक्ति के लिए एक उपहार (gift) है । राज्य व्यक्ति को स्वतन्त्रता के उपभोग की अनुमति ही नहीं देता वरन् उसको उसके योग्य भी बनाता है और स्वतन्त्रता के क्षेत्र को भी बढ़ाता है । अतः राज्य स्वतन्त्रता का प्रत्यक्षीकरण (Actualisation of freedom) है । यह एक व्यक्त आचारात्मक विचार (Realised ethical idea) है तथा इसे हम उच्चतम विचार का साकार रूप (Embodiment of the highest reason) एवं स्वतन्त्रता का संरक्षक भी कह सकते हैं ।

हीगल का समस्त दर्शन तीन मूलभूत सिद्धान्तों पर आधारित है । (१) सारे जैविक विकास द्वन्द्वात्मक (Dialectical) हैं । (२) वास्तविकता एक जैविक क्रिया है (Reality is an organic process) । (३) वास्तविकता केवल आदर्श में ही निहित है । यही वास्तविकता सामाजिक जीवन का सार है, जो बाह्य रूप में राज्य तथा उसकी अनेकों संस्थाओं में मूर्तरूप में अभिव्यक्त होती है । हीगल राज्य को एक बहुत ही उच्च एवं आदर की दृष्टि से देखता है और मानता है कि उसकी उत्पत्ति पृथ्वी पर साक्षात् ईश्वर का आगमन है (March of God on earth) भविष्य में यही हीगलवाद (Hegalinism) राष्ट्रीयता एवं राज्यकीय निरंकुशता का जन्मदाता बना । वह यह मानता है कि राज्य अपना उद्देश्य स्वयं है (An end in itself) और राज्य ही नैतिकता एवं विचारशीलता की एकमात्र कसौटी है अतः वह सब प्रकार की नैतिक आलोचना (Moral criticism) से परे है । आदर्शवादी सिद्धान्त को अपनी इस चरम स्थिति (Extreme position) से मुक्त करने वाले कुछ अंग्रेज आदर्शवादी

विचारक हुए हैं, जिन पर जर्मन आदर्शवाद एव इगलिश उदारतावाद (Liberalism) का गहरा प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। व्यक्ति के अधिकार तथा राज्य सत्ता की मर्यादाओं के विषय मे अग्रेज आदर्शवादी लॉक (Locke) के वंशज थे और इसलिए वे हीगल की राज्य पूजा के सिद्धा त से सहमत नही हुए। -

इगलिश आदर्शवादी विचारवर्ग को, जिसके प्रमुख प्रतिनिधि टी० एच० ग्रीन हैं, प्रेरणा देने वालो मे रूसो, काट तथा हीगल की रचनायें एव प्लेटो तथा अरिस्टोटल का राज्य दर्शन बहुत महत्वपूर्ण है। राज्य को एक नैतिक जीव (Moral organism) तथा व्यक्ति को एक सामाजिक प्राणी मानने म अग्रेज आदर्शवादी, यूनानी दार्शनिकों से एकमत हैं। ग्रीक लोगो की भाँति वे भी राज्य तथा व्यक्ति के बीच एक परम महत्वपूर्ण सम्बन्ध स्वीकार करते हैं और मानते हैं कि राज्य मे रहकर ही व्यक्ति अपना पूर्ण विकास प्राप्त कर सकता है। अपने अधिकारो तथा स्वतन्त्रता के लिए वह राज्य की ओर देखता है। अग्रेज आदर्शवादी राज्य को एक साधन मानते हैं, साध्य नही क्योकि राज्य का असली उद्देश्य तो व्यक्ति एव समाज को पूर्णता (Perfection) दिलवाना है। अत ऐसी स्थिति मे व्यक्ति तथा राज्य के अधिकारों के बाच अथवा राजनीति एव आचारशास्त्र मे किसी प्रकार का कोई भी झगड़ा नहीं हो सकता। मनुष्य राज्य की आज्ञा का पालन इसलिए करते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि राज्य उनके आत्मानुभव (Self realisation) का एक मात्र माध्यम (Medium) है। इ गलिश आदर्शवाद यथार्थ मे व्यक्तिवाद तथा समूहवाद (Collectivism) के मध्य एक बहुत ही सुन्दर समझौता उपस्थित करता है। यह व्यक्ति की सामाजिक एव नतिक प्रकृति पर तथा राज्य की जविक प्रकृति (Organic nature) पर ठीक ठीक बल देता है।

इगलिश आदर्शवाद के प्रमुख प्रचारक (Apostle) टी० एच० ग्रीन को अपने सिद्धा त के प्रेरणा सूत्र अरिस्टोटल के व्यक्तिवाद, रूसो के साधारण इच्छा का सिद्धान्त तथा काट के वैयक्तिक इच्छा की स्वाधीनता (Autonomy of Individual will), नैतिक स्वतन्त्रता एव आन्तरिक आदेश (Internal imperatives) आदि विचारो से मिले थे। ग्रीन के अनुसार मनुष्य को पशु से श्रेष्ठतर बनाने वाला गुण उसकी आत्म-चेतना (Self Consciousness) है, जो मनुष्य को सार्वजनिक हित (Social good) में आत्म पूर्णता (Self perfection) का आभास करवाती है। "मानव की अन्तर चेतना स्वतन्त्रता चाहती है। स्वतन्त्रता अधिकारो से सम्बद्ध है और अधिकार राज्य की माग करते हैं।" (Human Consciousness postulates liberty, liberty involves rights and rights demand the state)। ग्रीन का मत है कि राज्य, समाज की साधारण इच्छा की एक संस्था रूप मे अभिव्यक्ति (Institutionalised expression) है जिसका आधार बल न होकर इच्छा (Will not force is the basis of the state) है। व्यक्ति का उद्देश्य आत्मानुभव (Self realisation) करना है, किन्तु वह 'आत्म' (Self) समाज-

का एक अविभाज्य अंग है। अत प्रत्येक व्यक्ति अपने कल्याण की ही कामना नहीं करता, बल्कि समस्त समाज के कल्याण की चाह रखता है। इसके कारण अधिकारों का जन्म होता है, जिनका निवास स्थान वैसे तो व्यक्ति ही है, किन्तु केवल वही व्यक्ति जो समाज का सदस्य है। राज्य इन्ही अधिकारों की रक्षा करने के लिए है। यह एक प्राकृतिक नैतिक जीव है। जिसका उद्देश्य व्यक्ति का हित करना है तथा जिसका कार्य भी व्यक्ति के सम्पन्न जीवन एवं पूर्ण आत्मानुभव के मार्ग की बाधाओं को दूर हटाना है। व्यक्ति का राज्य तथा उसके कानूनो का पालन करने का एक मात्र कारण यही है कि राज्य एक ऐसी संस्था है, जिसके द्वारा व्यक्ति अपना पूर्ण विकास अर्थात अधिकार, एवं अपनी स्वतन्त्रता की प्राप्ति करता है।

ग्रीन के मतानुसार "अधिकार कुछ ऐसी बाह्य परिस्थितियाँ हैं जो मनुष्य की आन्तरिक उन्नति के लिए परम आवश्यक हैं (Rights are certain outer conditions essential for the inner development of man)। इन बाह्य परिस्थितियों को उत्पन्न करने तथा बनाये रखने का कार्य राज्य को करना चाहिए अन्यथा कोई भी व्यक्ति आत्मानुभव प्राप्त करने मे सफल नही हो सकेगा। आत्मानुभव प्रत्येक व्यक्ति का प्रमुख अधिकार है और अन्य सब अधिकार इसी अधिकार से उत्पन्न होते हैं।' यथार्थ मे अधिकारो का मूल आधार कोई कानून स्वीकृति अथवा प्रचलन नही है, बल्कि समस्त समाज की नैतिक चेतना ही उनकी उत्पत्ति का कारण है। इस प्रकार अधिकारो का उद्गम राज्य से होता है और वे राज्य के हित के अतिरिक्त कभी भी राज्य के विरुद्ध नही हो सकते। यदि राज्य अत्याचारी है अथवा उसके कार्य सार्वजनिक हित के विरुद्ध हैं तो एक व्यक्ति राज्य के अत्याचार के खिलाफ आवाज उठा सकता है। ग्रीन नकारात्मक तथा सकारात्मक (Negative and Positive) स्वतन्त्रताओ मे भेद करता है। उसकी सकारात्मक स्वतन्त्रता का अर्थ उन कार्यों को करने अथवा उपभोग करने की शक्ति तथा क्षमता है, जो वास्तव म समाज मे करने योग्य हैं।' (A Power or capacity of doing or enjoying something worth doing) स्वतन्त्रता व्यक्ति को कानून की मर्यादाओ म रहते हुए आत्मानुभव प्राप्त करने का मार्ग बतलाती है। इस प्रकार केवल अच्छी इच्छा ही स्वतन्त्र इच्छा है (Good will alone is free will)।

ग्रीन की भाँति ब्रेडले भी राज्य को एक नैतिक जीव तथा व्यक्तियों को उसका अंग मानता है। उसके अनुसार नैतिकता का सही अर्थ यही है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने पद के कर्त्तव्यो का पूर्ण रूप से पालन करे। ब्रेडले का यह विचार प्लेटो के न्याय सबधी विचार से बहुत कुछ मिलता जुलता है। राज्य के विषय मे बोसान्क्वेट के विचार ग्रीन और ब्रेडले से न मिलकर हीगल के विचारों के अधिक समीप हैं। वह ग्रीन आदि की भाँति राज्य की सत्ता पर किसी भी प्रकार के प्रतिबन्ध अथवा नियन्त्रण लगाना नहीं चाहता। उसके मतानुसार राज्य व्यक्तियो को अधिकार प्रदान करता है अत वह स्वय किसी भी अधिकार के आधीन नहीं हो सकता।

वर्तमान युग की राजनैतिक विचारधारा के एक अन्य पक्ष का प्रतिनिधित्व समाजवाद करता है जिसकी उत्पत्ति का श्रेय फ्रांस की राज्य क्रान्ति एवं औद्योगिक क्रान्ति को है। अपने कल कारखानों की उत्पादन प्रणाली द्वारा औद्योगिक क्रान्ति ने सामाजिक व्यवस्था में कितनी ही आर्थिक विषमतायें उत्पन्न कर दी जिनके परिणाम स्वरूप पूंजी एवं श्रम (Capital and Labour) के मध्य की खाई और भी अधिक गहरी होगई। इंगलैंड में समाजवाद का आरम्भ सर्वप्रथम एक आदर्शवादी समाजवाद (Utopian Socialism) अथवा भावात्मक समाजवाद (Sentimental Socialism) जिसे कभी कभी ओवनिज्म (Owenism) भी कहते है, के रूप में हुआ। यह समाजवाद इङ्गलण्ड में श्रम कल्याणकारी कानून बनवाने तथा ट्रेड यूनियन आंदोलन को सबल बनाने में बहुत कुछ सफल हुआ। फ्रांस में भी सेंटसिमन तथा फोरियर (Forrier) आदि कुछ विचारकों ने समाजवादी दृष्टिकोण से लिखना आरम्भ किया। किन्तु ओवनवाद तथा सिमनवाद दोनों ही इतनी उदार व नरम विचार-धारायें थी कि वे श्रमिकवर्ग की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकी अत: लुई ब्लेक तथा प्रूधों (Proudhon) आदि कुछ उग्र समाजवादियों का उदय हुआ, जिन्होंने यह घोषणा की कि उत्पादन के समस्त साधनों का राष्ट्रीयकरण (Nationalisation) होना चाहिए और इसके लिए समाजवादियों को सरकार पर आधिपत्य स्थापित करने की आवश्यकता है। यह राजनैतिक समाजवाद था, जिसका उद्देश्य एक श्रमिक प्रजातन्त्र (Labour democracy) स्थापित करना था। अपने विचारों में अराजकतावादी होने के कारण प्रूधों सम्पत्ति एवं राज्य जैसी संस्थाओं के अस्तित्व में विश्वास नहीं रखता। सन् 1848 में कार्ल मार्क्स तथा एंजिल्स ने अपनी "कम्यूनिस्ट मेनीफेस्टो" (Communist Manifesto) नामक रचना प्रकाशित की, जिससे क्रान्तिकारी समाजवाद का आरम्भ होता है। इसके उपरान्त १९वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में विभिन्नमार्गी तथा बहुरंगी समाजवाद प्रकट होने लगते हैं, जिनमें संघवाद (Syndicalism) गिल्ड समाजवाद तथा फेबियनवाद (Fabianism) विशेष उल्लेखनीय हैं। व्यक्तिवादियों के बिल्कुल विपरीत समाजवादी समाज की महत्ता पर बल देते हैं, जिसका प्रत्येक व्यक्ति एक अविभाज्य अङ्ग है। समस्त समाज के हित के लिए समाजवादी लोग चाहते हैं कि राज्य के कार्य तथा कर्तव्य अधिक हों। व्यक्तिगत लाभ के स्थान पर समाजवाद सामाजिक सेवा का आदर्श मान कर चलता है। क्षेत्र की दृष्टि से यह एक अन्तर्राष्ट्रीय विचारधारा है।

समाजवादी विचार प्रवाह के प्रतिकूल व्यक्तिवाद का विकास होता रहा जो गोडविन तथा स्पेंसर के दार्शनिक अराजकतावाद से लेकर मिल (Mill) के व्यक्तिवाद तक अनेक विचार वर्गों में बँटा हुआ है। दार्शनिक अराजकतावादियों के मत में राज्य तथा सरकार दोनों एक अवगुण (Evil) हैं, जो मानव मस्तिष्क के जागरण के साथ शनैः शनैः समाप्त हो जायगा। सरकार व्यक्ति पर बल का प्रयोग करती है जो एक दुर्गुण है अतः राज्य का कार्यक्षेत्र न्यूनतम कार्यों तक परिमित होना चाहिए। मिल

का बुद्धिमत्तापूर्ण व्यक्तिवाद राज्य को एक अवगुण तो मानता है, किन्तु वह एक आवश्यक अवगुण है, अत राज्य के अस्तित्व में विश्वास रखते हुए भी वह चाहता है कि व्यक्ति के दैनिक कार्यों में राज्य कम से कम हस्तक्षेप करे। कुछ अन्य व्यक्तिवादियों ने अपने मत का समर्थन आचारात्मक, आर्थिक तथा जैविक तर्कों के आधार पर भी किया है। यथार्थ में व्यक्तिवाद व्यक्ति की पूर्ण एवं स्वतन्त्र उन्नति चाहता है और उसका यह सिद्धान्त है कि राज्यकीय हस्तक्षेप व्यक्ति की मौलिकता एवं नूतन सूझ को नष्ट कर व्यक्ति तथा समाज के स्वाभाविक विकास में बाधा पहुँचाता है और सर्वत्र एक नीरस एकता (Dull uniformity) उत्पन्न करता है।

राज्य के आदर्शवादी सिद्धान्त के विकास तथा राजनीति पर पड़ने वाले मनोविज्ञान (Psychology) एवं जीवविज्ञान (Biology) के प्रभावों ने उन्नीसवीं शताब्दी में, राज्य के जैविक सिद्धान्त (Organismic Theory) को जन्म दिया, जो ऐतिहासिक दृष्टि से प्राचीन यूनानी विचारधारा में भी खोजा जा सकता है। उन्नीसवीं शताब्दी में राज्य को एक सामाजिक जन्तु तथा एक जीवधारी प्राणी (Biological organism) आदि कितने ही दृष्टिकोणों से देखा गया। मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त (Psychological Theory) के समर्थक जोसफ वान गोर्स (Joseph Von Gorres) आदि ने मानव के मनोवैज्ञानिक मानसिक गुणों का राज्य में भी आरोप किया और इस प्रकार व्यक्ति के मानसिक विकास की राज्य के राजनैतिक विकास के साथ तुलना की। कार्ल जाचर्य (Karl Zacharia) आदि जैविक सिद्धान्त के समर्थकों ने राज्य की उत्पत्ति, विकास तथा कार्यों एवं एक साधारण जीवधारी की जीवन लीला में एक महत्वपूर्ण साम्य बतलाया। उनका मत है कि अन्य जीवधारियों की भाँति राज्य के भी अनेकों अवयव हैं तथा उसकी भी अपनी इच्छा है। अगस्त काम्टे (August Comte) आदि समाजशास्त्री भी राज्य को एक सामाजिक जीव मानते हैं। उनके अनुसार राज्य विशाल मानव समाज का एक अङ्ग मात्र है अथवा यों कहिये कि एक विशिष्ट दृष्टिकोण से देखे जाने पर समाज ही राज्य का रूप धारण कर लेता है।

मनोविज्ञान की भाँति राजनीति और आचारशास्त्र (Ethics) के बीच भी एक गहरी घनिष्ठता है। प्लेटो ने अपना दर्शन मानव प्रकृति के विश्लेषण एवं मनोवैज्ञानिक विवेचना के स्तम्भों पर ही आधारित किया था। उन्नीसवीं शताब्दी में राजनीति में मनोविज्ञान का अत्यधिक प्रयोग देखने को मिलता है क्योंकि ये दोनों ही मनुष्य के क्रियात्मक मस्तिष्क से सम्बन्ध रखते हैं। व्यक्ति एवं समूह से सम्बन्धित प्रयोगात्मक मनोविज्ञान इस शताब्दी में राजनैतिक विचारधारा के विकास को आच्छादित किये हुए है। वैयक्तिक एवं सामूहिक चेतना के सारे कानून जिन्हें मनोवैज्ञानिकों ने ज्ञात किया था, इस समय के राजनैतिक विचार के आधार बने। इच्छा तथा तर्क, भावना तथा प्रेरणा, रीति एवं प्रथायें आदि मनोविज्ञान की शब्दावली का राजनैतिक विचारकों ने खुल कर प्रयोग किया है। उन्नीसवीं शताब्दी के राष्ट्रीय एवं क्रान्तिकारी आन्दोलनों के परिणाम स्वरूप समूह मनोविज्ञान तथा सामूहिक

आचरण को राजनीति पर भी घटाया गया। अपनी अमर रचना "राजनीति में मानव प्रकृति" (Human Nature in Politics) मे ग्राहम वालास ने इसी तथ्य की विशद् विवेचना की है और बतलाया है कि हमारे अध चेतन कार्य जिन्हे हम आदत, भावना, सुझाव तथा अनुकरण आदि नामों से पुकारते है, व्यक्ति तथा समूह के राजनतिक आचरण मे अत्यन्त महत्व रखते है। मैक्डूगल (Mcdougal) का कथन है कि मनुष्य के सारे कायकलापो के मूल मे सदैव एक भावना निहित होती है। वह व्यक्ति तथा समाज के मस्तिष्कों मे भेद करता है और मानता है कि अधिक विकसित समाज अपने औसत सदस्यो से अधिक बुद्धिमान तथा नैतिक आचरण करने वाला होता है। ट्रोटर (Trotter) ने भी सामाजिक कार्यों म मनुष्य की सहचय वृत्ति (Gregarious instinct) को बहुत महत्वपूर्ण माना है। मकाइवर, जिसका अध्ययन समाज तथा सस्थाओ तक ही सीमित है, राज्य क अनेको मे से एक मानवीय सस्था मानता है। डरखिहीम (Durkeim), गस्टोव ली बोन (Gustav Le Bon) आदि की समूह मनोविज्ञान की गवेषणा ने भी आधुनिक राजनैतिक दशन को पर्याप्त रूप मे प्रभावित किया है।

आधुनिक राजनतिक दशन की एक अन्य महत्वपूर्ण नवीनता, राजनैतिक बहुलवाद (Political Pluralism) का उदय है जो राज्यसत्ता के निरकुशतावादी विचार का बडी क्रूरता से खण्डन करता है। यह विचारधारा एक व्यक्ति विशेष अथवा समूह विशेष द्वारा नियन्त्रित एकमात्र सुगठित एव सावभौम सत्ता मे विश्वास नहीं करता। अनेको अन्य सस्थाओ की भाँति यह राज्य को एक साधारण सस्था मानता है, जिसे कोई विशेष महत्व नही मिलना चाहिए। इस राजनतिक बहुलवाद की उत्पत्ति एव प्रचलन के अनेको कारण हैं। यथाथ मे राज्य के आदशवादी सिद्धान्त की प्रतिक्रिया, ससदीय प्रजातन्त्र की असफलता, अन्तर्राष्ट्रीय सस्थाओ का विकास तथा राज्य के अन्तगत काय करने वाले सामाजिक एव आर्थिक सघो के नित्यप्रति बढते हुए महत्व, कुछ ऐसे कारण हैं, जिन्होने बहुलवाद के प्रचार को वतमान युग म कुछ आवश्यक सा बना दिया। राजनैतिक बहुलवाद राज्य तथा अन्य मानवीय सस्थाओ एव सघो के मध्य सत्ता का विभाजन चाहता है। बहुलवादियों के मत के मे केन्द्रित राज्य सत्ता सदव हानिकारक, निरथक तथा भारस्वरूप होती हैं। वह स्वतन्त्रता तथा प्रजातन्त्र की आत्मा के प्रतिकूल है। बहुलवाद व्यवसायिक प्रजातन्त्र (Vocational democracy) के पक्ष मे है और वतमान चुनाव प्रणाली को दोषपूर्ण मानता है। लास्की, बाकर, लिंडसे, डिग्वे, क्रब आदि प्रसिद्ध बहुलवादियों ने राज्य की एकमात्र निरकुश सत्ता का विभिन्न दृष्टिकोणों से खण्डन किया है। उनका मत है कि राज्य अन्य सस्थाओ से, जो समान राज्य सत्ता की अधिकारिणी हैं, तथा जिनका विकास भी राज्य की भाँति सवथा स्वाभाविक है, किसी भी प्रकार महान नही कहा जा सकता। व्यक्ति की स्वामिभक्ति (Loyalty) प्राप्त करने के लिए राज्य को अन्य सस्थाओ के साथ प्रतियोगिता करनी होगी। अन्तर्राष्ट्रीय सघों की स्थापना

भी सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न राज्य सत्ता के विचार के प्रतिकूल है।[1] बहुलवादी कानून को राज्य का आदेश नहीं मानते, वरन् उनका मत है कि स्वयं राज्य कानून की सन्तान हैं। उनकी दृष्टि में कानून सामाजिक औचित्य (Social expediency) एवं आवश्यकताओं का परिणाम है और इसलिए उसके पीछे राजनैतिक बल न होकर सामाजिक बल छुपा हुआ है। किन्तु राज्य को निरंकुशता के अधिकार न देते हुए भी बहुलवादी यह स्वीकार करते हैं कि अन्य संस्थाओं को नियमित एवं व्यवस्थित रूप में बनाये रखने का कार्य राज्य को ही करना चाहिए।

रूस की बोल्शेविक क्रांति तथा उसकी अनुवर्ती फासिस्ट तथा नाजी क्रांतियों ने वास्तव में राजनैतिक विचार-प्रवाह में एक गहरी उथल पुथल उपस्थित कर दी है। आज एक ओर सर्वाधिकारवाद है तथा दूसरी ओर प्रजातन्त्र एवं व्यक्तिवाद। दोनों अपनी शक्ति का परीक्षण कर रहे हैं तथा आज का विश्व व्यक्तिवाद तथा समाजवाद एवं प्रजातन्त्र के समर्थक तथा सर्वाधिकारवाद के प्रचारकों के मध्य विभाजित सा प्रतीत होता है। इसी आपसी तनाव ने आधुनिक राजनैतिक विचारधारा को एक महत्व, विभिन्नता एवं सम्पन्नता प्रदान की है, जो निश्चय ही उल्लेखनीय है।

———

उपयोगितावाद

(Utilitarianism)

राजनीति मे उपयोगितावाद प्रधानत एक अंग्रेजी विचारधारा है। औद्योगिक क्रान्ति (Industrial Revolution) के कारण परिवर्तित हुए इगलण्ड के सामाजिक तथा आर्थिक ढाँचे को सुधार कर उस समय के अनुरूप बनाने म इस विचारधारा ने बहुत महत्वपूर्ण योग दिया था और इसी कारण बहुत से लेखक इसे राज्य के कार्य क्षेत्र सम्बन्धी सिद्धान्त न मानकर (Theory of Scope of the State) राज्यकीय कानून निर्माण का सिद्धान्त (Theory of State Legislation) कहकर सम्बोधित करते हैं। वास्तव म यह विचारधारा यह नही बतलाती कि राज्य को व्यक्ति के लिए क्या क्या करना चाहिए, बल्कि इसके स्थान पर यह राज्य को एक कसौटी (Touch stone) प्रदान करती है जिस पर अपने सारे कार्यों का परीक्षण करने के बाद ही राज्य को चाहिए कि वह जनकल्याण के लिए कोई कदम उठाये, और यह कसौटी है प्रत्येक वस्तु की उपयोगिता (Utility)। उपयोगितावाद मानता है कि राज्य का प्रत्येक कार्य, प्रत्येक नियम तथा प्रत्येक कानून इसी विचार को ध्यान मे रखकर बनाया जाना चाहिए कि वह समाज के लिए उपयोगी है या नहीं अथवा उसके द्वारा अधिक से अधिक व्यक्तियों को अधिकतम लाभ प्राप्त हो सकेगा अथवा नहीं। इस प्रकार आदर्शवादियों (Idealists) की राज्य के प्रति अन्धी भक्ति के विरुद्ध उपयोगितावाद उसकी एक प्रतिक्रिया है; जिस पर आने से हमे ऐसा अनुभव होता है कि मानो हम एक सर्वसत्तावादी (Totalitarian) दास समाज की पराधीनता से निकल कर एक शान्त, स्वस्थ एव स्वर्गिक ससार में आगये हों। राजनीति के एक प्रसिद्ध विद्वान के अनुसार "आदर्शवादी और उपयोगितावादी राज्यों मे ठीक ऐसा ही अन्तर है, जैसा कि एक उत्पीड़न केन्द्र तथा सार्वजनिक उद्यान में होता है।" (The difference between an Idealist Society and a Utilitarian State is just, the same what is found between a Concentration Camp and a Public park.) उन्नीसवी शताब्दी उदारतावाद (Liberalism) उपयोगितावाद का आधार स्तम्भ है और केवल शुष्क दार्शनिक आदर्शवाद के स्थान पर सामाजिक उपयोगिता का नियमकोष (Code of Social Utility) उपस्थित करने के कारण प्रो० हैलोवेल (Hallowell) के शब्दो मे हम इसे "नैतिक और राजनैतिक सिद्धान्तो को एक व्यापक वैज्ञानिक प्रयोगवाद के आधार पर प्रतिष्ठित करने वाला प्रशसनीय प्रयत्न" कह सकते हैं। (A laudable

attempt to establish moral and political precepts on the ground of an extensive scientific experimentation)

उपयोगितावाद के मूल आधार
(Fundamental Premises of Utilitarianism)

यदि सरसरी दृष्टि से देखने पर राज्य सम्बन्धी अपने विचारों में उपयोगितावाद, आदर्शवाद के बिल्कुल विपरीत (An antithesis of idealism) समाजवाद से कुछ दूर (Somewhat far from Socialism) तथा व्यक्तिवाद का गहरा मित्र है (A close ally of individualism)। सैद्धान्तिक दृष्टि से यह यद्यपि सामूहिक अथवा सामाजिक हित के लक्ष्य को ध्यान में रखकर चलता है किन्तु गहराई से देखने पर ज्ञात होता है कि सारे उपयोगितावादी दर्शन का केन्द्र बिन्दु व्यक्ति है समाज नहीं। सार रूप में वे आधारभूत मान्यतायें, जिन पर उपयोगितावादी अपने दर्शन रूपी विशाल महल का निर्माण करते हैं निम्नलिखित हैं —

१ राज्य व्यक्ति के लिए जीता है व्यक्ति राज्य के लिए नहीं (State exists for the individual not the vice versa)

२, मनुष्य स्वभाव से सुखवादी प्राणी है (Man is a hedonistic creature by nature)

३, आदर्श और तर्क केवल स्वप्न मात्र हैं। प्रत्येक राजनैतिक विचार धारा को यथार्थवादी होना चाहिए (Ideals and logic are mere visions Every Political School of thought must be realistic in its approach)

उपयोगितावाद का इतिहास
(History of Utilitarianism)

अपने आधुनिक रूप में यद्यपि उपयोगितावाद १८ वीं शताब्दी की उपज है, किन्तु मनुष्य की सुखवादी प्रवृत्तियों तथा राज्य के उपयोगितावादी अस्तित्व के लिए विचारक युग युग से चिन्तन करते आये हैं। ग्रीक लोगो ने राज्य को नैतिक संस्था मानते हुए भी, उसके उपयोगी रूप को अस्वीकार नहीं किया और स्वाभाविक होने के साथ साथ उसे मनुष्य की आवश्यकता पूर्तियों के लिए आवश्यक माना था। ग्रीक दार्शनिकों के बाद एपीक्यूरियन विचारक (Epicurean thinkers) भी मनुष्य को पूर्णतः ही सुखवादी प्राणी मानते हैं, जो प्रसन्नता की ओर दौड़ता है और पीड़ा से मुँह मोड़कर भागता है। सत्रहवीं शताब्दी में इस सिद्धान्त को दोहराने वाले सामाजिक समझौते के दार्शनिक (Social Contract Philosophers) हुए हैं। हाब्स अपने मनोवैज्ञानिक भौतिकवाद के सिद्धान्त द्वारा (The theory of Psychological materialism) मनुष्य को पशुवत आचरण करने वाला एक सुखवादी (Hendónistic) प्राणी मानते हैं, जिसमे कोई नैतिक भावना नहीं है। लॉक के राज्य का अस्तित्व भी हाब्स के राज्य की तरह उपयोगितावादी है और वह इसीलिए बनाया गया है कि

उसके बिना प्राकृतिक अवस्था की विपत्तियाँ नही मिट सकती । १८वीं शताब्दी का एक प्रमुख विचारक कम्बरलैण्ड (Comberland) भी इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है और राज्य की उपयोगिता (अथवा लाभ) के सामने उसके नैतिक अस्तित्व (Moral existence) तथा विवेकपूर्ण चेतना (Rational Consciousness) आदि सब सिद्धान्तों को गौण (Secondary) मानता है । १९वी शताब्दी की इगलैंड की आर्थिक तथा सामाजिक परिस्थितियों इस सिद्धान्त को एक निश्चित धारा के रूप मे बदलने मे बहुत सहायक सिद्ध हुई हैं और मिल, बैंथम, तथा आस्टिन आदि विचारकों के हाथ मे पड़कर यह १९वीं शताब्दी की एक बहुत महत्वपूर्ण विचारधारा बन गई है ।

उपयोगितावादी सिद्धान्त (Principles of Utilitarianism)

'उपयोगितावाद' जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, एक ऐसा दर्शन है जो किसी भी वस्तु के नैतिक अथवा भावात्मक पक्ष को न देखकर केवल उसके यथार्थवादी पक्ष (Real aspect) को ही देखता है । इस विचारधारा के प्रणेताओं का मत है कि राज्य तथा राज्य का कोई भी काम ऐसा नहीं है जो व्यक्ति के व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन को प्रभावित न करे । इस प्रभाव की दो प्रतिक्रियायें हो सकती हैं—पहली दुःख और दूसरी सुख, जिन्हें ये लोग "प्रसन्नता और पीड़ा" (Pleasure and Pain) कहते हैं । इनका मत है कि समाज मे केवल वही संस्था उपयोगी है और केवल उसी को जीने का अधिकार है जो समाज के अधिक से अधिक व्यक्तियों को प्रसन्नता प्राप्त करा सके । इसी का दूसरा नाम उपयोगिता सिद्धान्त है, जिसे दूसरे शब्दों में उपयोगितावाद का आरम्भ तथा अन्त दोनो ही कह सकते हैं ।

१ उपयोगितावाद सुखवाद के सिद्धान्त पर आधारित है (Utilitarianism is based on the principle of Hedonism)—सुखवादी सिद्धान्त (Hedonism) यह है कि मनुष्य की यह नैसर्गिक प्रवृत्ति है कि वह प्रसन्नता को लालायित होकर प्राप्त करना चाहता है । उससे उसे आनन्द मिलता है, जिसके कारण वह अपने आप को सदैव उससे चिपटाये रहना चाहता है, किन्तु इसके विपरीत पीड़ा (Pain) उसके सारे अस्तित्व को इस प्रकार झकझोर डालती है, कि उनसे दुःखी होकर वह एक क्षण भी उसके पास नही रहना चाहता । उपयोगितावादी मानते हैं कि मनुष्य के अन्तर मे चाहे घृणा, क्रोध, शोक, भय, सहानुभूति आदि कितनी ही वृत्तियाँ काम करती रहें, किन्तु उन सब मे प्रधान वृत्ति (Main motive) एक ही है और वह है प्रसन्नता V/s पीड़ा । इस द्वन्द्व में वह सब कुछ भूल जाता है और प्रसन्नता को पाने तथा पीड़ा से पिंड छुड़ाने में वह निरन्तर लगा रहता है । प्रसिद्ध उपयोगितावादी बैंथम के शब्दों में, "प्रकृति ने मनुष्य को दो प्रधान सत्तावान स्वामियों के अधिकार मे रखा है और वे है प्रसन्नता और पीड़ा । ये दोनों हमे, उन सब बातो मे जो भी हम कहते हैं अथवा

विचारते हैं, आदेश देते हैं। और उनकी दासता को हटाने के लिए जो भी प्रयत्न हम करते हैं वह हम अधिक दास बनाता है और हमारी आधीनता को सब प्रमाणित कर उसे स्थाई रूप देता है।" (Nature has placed man under two sovereign masters pain and pleasures They governs in all we say, in all we think Every effort we make to throw off our Subjection will serve but to demonstrate and confirm it) उपयोगितावाद इस सुखवादी सिद्धान्त को अक्षरशः सत्य मानता है।

२ उपयोगितावाद चाहता है कि राज्य अधिकतम व्यक्तियों के अधिकतम हित की सुविधायें प्रदान करे (Utilitarianism wants that state should provide the greatest good of the greatest number)—राज्य के अस्तित्व के विषय में उपयोगितावादी मानते हैं कि वह इसलिए जरूरी है कि उसके द्वारा व्यक्ति को बहुत सी सुविधायें मिलती हैं और उन लाभों के कारण अधिक से अधिक प्रसन्नता तथा कम से कम पीड़ा का अनुभव करता है। इसके अतिरिक्त राज्य का कोई नैतिक अथवा दैवी (Moral or Divine) उद्देश्य भी है इसकी वे खुले शब्दों में आलोचना करते हैं और उसे केवल शब्दों के साथ खिलवाड़ करना कहते हैं। उनकी दृष्टि में व्यवहारिक क्षेत्र में राज्य के होने तथा जीने का एक मात्र तथा सबसे मोटा कारण यही है कि वह एक कल्याणकारी संस्था है जिसका होना व्यक्ति की बहुमुखी उन्नति के लिए बहुत उपयोगी (Useful) है अतः इनका कहना है कि केवल उपयोगी संस्था होने के कारण राज्य का एकमात्र कर्तव्य यही है कि वह अपने कानूनों तथा कार्यों द्वारा ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करे जिससे व्यक्ति के दुःख घट जायें और सुख तथा प्रसन्नता में वृद्धि हो। समाज के प्रत्येक मनुष्य का उद्देश्य प्रसन्नता पाना है, अतः अधिक से अधिक सदस्यों का यह प्रसन्नता दिलवाना तथा उसके लिए सुविधायें देना राज्य जैसी उपयोगी संस्था का पवित्र उद्देश्य होना चाहिए। उपयोगितावादियों के अनुसार राज्य का जो कानून व्यक्ति को उस उद्देश्य तक पहुँचने के मार्ग की बाधाओं को दूर न करे वह पालन के योग्य नहीं है।

३ उपयोगितावादी राज्य और समाज में अन्तर करते हैं (Utilitarians distinguish between state and society)—उपयोगितावाद आदर्शवादियों की भाँति राज्य और समाज की सीमायें बतलाते समय उन दोनों को एक जगह मिला डालने की गल्ती नहीं करता। उपयोगितावाद का यह स्पष्ट मत है कि राज्य और समाज दो अलग अलग वस्तुएँ हैं और दोनों का कार्य क्षेत्र भी एक दूसरे से भिन्न है। यद्यपि उपयोगितावादी यह मानते हैं कि समाज राज्य के बिना नहीं रह सकता, किन्तु सामाजिक जीवन के विषय में उनका दृष्टिकोण अधिक विशाल और व्यापक (extensive) है। उनका मत है कि समाज एक अधिक स्वतन्त्र संस्था होती है और सामाजिक जीवन में व्यक्ति को राज्य के हस्तक्षेप से मुक्त होने के कारण, अधिक स्वाधीन तथा व्यक्तिगत जीवन बिताने का मौका मिलता है। इस प्रकार राज्य द्वारा

व्यक्ति के व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन को नियमित (Regulate) किये जाने के पक्ष में होने हुए भी उपयोगितावादी राज्य और समाज को एक (Identical) नही मानते ।

४ उपयोगितावाद व्यक्ति को एक सामाजिक प्राणी मानता है । (Utilitarianism regards individual as a social being—प्राचीन ग्रीक विचारकों की भांति उपयोगितावादी मानते हैं कि मनुष्य म एक सामाजिक भावना (Gregarious instinct) जन्म से ही होती है । वह अपने साथियो के बीच मे रहना चाहता है, और उनसे अलग कर दिये जाने पर दु ख का अनुभव करता है । अकेले रहने म उसे आनन्द नही मिलता और न समाज से अलग रह कर वह अपने व्यक्तित्व का पूरा पूरा विकास ही कर सकता है । समाज के बिना वह अपने को जेल अथवा नरक मे अनुभव करता । इस प्रकार उपयोगितावाद राज्य को मनुष्य के लिए उपयोगी तथा आवश्यक मानने के साथ-साथ स्वाभाविक भी मानता है । उसका सिद्धान्त है कि, "मनुष्य का स्वभाव तथा आवश्यकतायें उसे क्रमश उत्प्रेरित तथा विवश करती हैं कि वह समाज मे रहे । (Nature impels and necessity compels man to move in society)

५ उपयोगितावाद के अनुसार राज्य अपना अन्त स्वय नहीं है (According to utilitarianism State is not an end in itslef)—उपयोगितावादी किसी रहस्य अथवा अलौकिकता (Mystery or super naturality) म विश्वास नही करते । उनका उद्देश्य बिल्कुल स्पष्ट है कि राज्य व्यक्ति के लिए जीता है और अधिकतम व्यक्तियो का अधिकतम हित (Greatest good of the greatest number) ही उसका एकमात्र कर्त्तव्य है ? उनकी दृष्टि मे आदर्शवादियो की तरह राज्य कभी भी अपना अन्त खुद नही हो सकता । वह केवल एक साधन मात्र है, साध्य नही (State is a means not an end) साध्य तो व्यक्तियो का कल्याण है और इस सामूहिक कल्याण तथा व्यक्तिगत उन्नति के अन्त को पाने के लिए राज्य व्यक्ति के लिए एक साधन है जिसके माध्यम द्वारा वह अपनी उन्नति करता है । उपयोगितावादी राज्य को कोई ईश्वरीय देन नही मानते और इसलिए "राज्य का व्यक्तित्व" (Personality of the state) जसे विचारो की हँसी उडाते हैं।

६ उपयोगितावाद राज्य को सर्वशक्तिमान नहीं मानता (Utilitarian conception of the State is not that of a Majestic being)—उपयोगितावाद, आदर्शवादी इस मान्यता को कि राज्य एक सर्वशक्तिमान (Omnipotent) सर्वसत्ताधारी (Authoritarian) तथा निरंकुश (Absolute) संस्था है, जो कभी कोई गल्ती अथवा बुरा काम नही करती, बिल्कुल सफेद झूठ मानता है । उसके अनुसार समाज मे साधारण इच्छा जैसी न कोई चीज है और न राज्य हमेशा जो कुछ करता है वह ठीक ही करता है । राज्य तो एक व्यक्तियो की संस्था है और उसमे जसे व्यक्ति शासक होंगे, वह वैसा ही काम करेगी । उपयोगितावाद राज्य को कोई पवित्रता नही देता और न केवल तर्क अथवा कोरे आदर्श के नाम पर उसकी निरंकुशता का ही समर्थन करता

है। बल्कि अपने विचारो मे व्यक्तिगत स्वाधीनता का प्रेमी होने के कारण, वह राज्य के कम से कम हस्तक्षेप का पक्षपाती है और वह नही चाहता कि राज्य नैतिकता के विकास अथवा आत्मा की उन्नति के नाम पर एक निरकुश प्रचार संस्था (Absolute Missionary institution) बन जाये और व्यक्तिगत स्वाधीनता को कुचले।

७ उपयोगितावाद यथार्थवादी है (Utilitarianism is realistic)—उपयोगितावाद चिंतन (Speculation) को निरर्थक मानता है। उसका विश्वास है कि राज्य किसी चिंतन अथवा विचारशीलता से पैदा नही हुआ, बल्कि इसका जन्म इसलिए हुआ कि समाज मे इसका होना जरूरी था। इसी विश्वास के आधार पर उपयोगितावादी सामाजिक समझौते के सिद्धान्त तथा प्राकृतिक अधिकार सिद्धान्त (Theory of Natural Rights) को निरी मूर्खता कह कर अस्वीकार करते है। वे घोर यथार्थवादी हैं और मानते हैं कि राज्य की आज्ञा हम इसलिए नही मानते कि हमारे पूर्वजो ने ऐसा कोई समझौता नही किया था अथवा न हम पर कोई नैतिक बंधन है, बल्कि हम राज्य के आदेशों को इसलिए मानते हैं कि वे हमारे लिए लाभदायक हैं और उनसे हम भौतिक समृद्धि (Material prosperity) मिलती है। इस प्रकार उपयोगितावाद किन्ही काल्पनिक व्यक्तियों की बातें नही करता उसका विषय संसार के चलते फिरते मनुष्य है, जो हर चीज को उतनी ही अच्छी मानते हैं, जितनी कि वह उनके लिए लाभदायक होती है। अत कुछ लोग उपयोगितावाद को प्रयोगवादी (Experimental) भी बतलाते हैं।

८ उपयोगितावाद सामाजिक सुधारों का पक्षपाती है (Utilitarianism stands for social reforms)—उपयोगितावाद वस्तुत एक प्रगतिशील विचारधारा (Progressive movement) है जो १८वी शताब्दी म इंगलैण्ड की सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था को सुधारने के लिए उत्पन्न हुई थी। तत्कालीन इंगलैण्ड की न्याय, दण्ड तथा कानून आदि की व्यवस्थायें इतनी भ्रष्ट हो चुकी थी कि स्थिति बिल्कुल असह्य थी। इस तरह उपयोगितावादी विचारक समाज-सुधार का कार्यक्रम लेकर आये और बैंथम आदि ने उपयोगिता को मापदण्ड मानकर सामाजिक तथा आर्थिक व्यवसाय के लिए सुझाव दिये। इस प्रकार उपयोगितावाद किन्ही रूढ़िवादियों का धर्म नही था, बल्कि सामाजिक सुधारों के द्वारा एक प्रगतिशील तथा स्वस्थ एवं सुन्दर समाज का निर्माण इस विचारधारा का उद्देश्य था।

९ उपयोगितावाद एक वैधानिक आन्दोलन है (Utilitarianism is a constitutional movement)—समाज सुधार के लिए उपयोगितावाद किसी क्रान्ति का उपदेश नही देता। यह शान्तिपूर्ण आन्दोलन है जो रक्तपात तथा लूट मार को घृणित मानकर पूर्णत वैधानिक साधनों द्वारा ही अपने निश्चित उद्देश्य प्राप्त करना चाहता है। उदारतावादी (Liberal) होने के कारण यह प्रजातन्त्र (Democracy) म दृढ़ विश्वास रखता है और इसके समर्थको का मत है कि जनमत (Public opinion) को प्रकट करके ही समाज का मजदूर वर्ग सरकार को 'अधिकतम व्यक्तियों के

अधिकतम हित" के सिद्धान्त को मानने के लिए विवश कर सकता है। इस प्रकार शान्तिपूर्ण उपायों द्वारा इच्छित परिवर्तन लाने के पक्ष में होने के कारण यह अंग्रेजी परम्परा के सर्वथा अनुरूप है।

१० उपयोगितावाद व्यक्तिवादी सिद्धान्तों में विश्वास करता है (Utilitarianism has faith in individualistic dogmas)—उपयोगितावाद की मूल आधार शिला व्यक्तिवाद की भाँति व्यक्तिगत स्वाधीनता (Individual freedom) है। अपने सारे दर्शन में उपयोगितावादी अपनी सारी शक्ति इस एक ही बात को सिद्ध करने में खर्च करते हैं और वह यह कि "व्यक्ति ही सामाजिक चक्रव्यूह का सिंहद्वार है" (Individual is the keystone of the social arch)। वे चाहते हैं कि सारे दर्शन तथा सिद्धान्त उसकी स्वाधीनता तथा प्रसन्नता को लेकर ही चलें और राज्य को "व्यक्ति रूपी धुरी के चारों ओर घूमने वाले पहिये" से अधिक और कुछ न माना जाय। (Individual must be the pivot round which the machinery of the State should revolve) राज्य का उद्देश्य केवल यही हो कि व्यक्ति को अपने जीवन के विकास के अधिकतम अवसर मिलें। यदि व्यक्ति स्वाधीन नहीं है तो प्रजातन्त्र तथा मूल अधिकार आदि सारी वस्तुएँ मूल्यहीन हैं। उपयोगितावादी मनुष्य की प्रगति में विश्वास करते हैं और मानते हैं कि यह तभी हो सकती है जब राज्य व्यक्ति के स्वभाव, आवश्यकतायें तथा मनोविज्ञान को समझ कर उनके अनुकूल अपने नियम बनाये। वे इस बात की चिन्ता नहीं करते कि राज्य बहुलवादी है अथवा गणतन्त्रात्मक, किन्तु यदि उसमें व्यक्ति स्वतन्त्र तथा सुखी नहीं है तो उसका अस्तित्व निरर्थक है। इस प्रकार व्यक्तिगत स्वाधीनता के प्रश्न पर उपयोगितावाद बहुत कुछ व्यक्तिवाद का ही अनुयायी मालूम होता है।

उपयोगितावादी विचारक
(Utilitarian Thinkers)

जेरमी बन्थम (Jeremy Bentham) 1748 1832—यह उपयोगितावाद का पिता कहा जाता है। यह एक बहुत प्रसिद्ध अंग्रेज विचारक था, जो केवल विचारक ही न होकर अपने समय की इङ्गलिश राजनीति में बड़ा प्रमुख नेता भी रहा था। इङ्गलण्ड की औद्योगिक क्रान्ति में इसने बहुत प्रमुख भाग लिया था और अपनी एक दर्जन के लगभग प्रमुख रचनाओं द्वारा इसने अपने समय के इङ्गलिश शासन, न्याय, औद्योगिक तथा सामाजिक व्यवस्था के दुर्गुणों की कटु आलोचना की थी। इसकी रचनायें निम्नलिखित हैं —

(1) Introduction to the principles of morals and Legislation (1789)
(2) Principles of International Law
(3) Catechism of Political Reforms
(4) Emancipate your Colonies

बेंथम एक उदारतावादी (liberal) था, जिसे देश की प्राचीन रूढ़ियों के प्रति कोई विशेष श्रद्धा नहीं थी। वह मानता था कि यह दुष्ट दुनिया गणतन्त्रों द्वारा ढाक दिये जाने पर ठीक हो सकती है" (This wicked world can be improved by covering it over with Republics)। प्रजातन्त्र तथा संसदीय प्रणाली में उसका दृढ़ विश्वास था और अपने समय की परिस्थितियों को अच्छी बनाने के लिए कोई हिंसक क्रान्ति न चाह कर वैधानिक उपायों द्वारा सुधार करने का पक्षपाती था। बेंथम सुखवाद में विश्वास करता था और वह यह मानता है कि प्रसन्नता और पीड़ा मनुष्य के दो सार्वभौम शासक हैं (Pleasure and Pain are two Sovereign masters)। वह इन प्रसन्नता और पीड़ा में कोई गुणात्मक अन्तर (Qualitative difference) नहीं करता और मानता है कि एक "पीन के चुभने से भी उतनी ही पीड़ा होती है, जितनी कि एक बकवास कविता सुनने से" (There is no difference between a pin push and a piece of poetry)। किन्तु अवधि, तीव्रता तथा धीमेपन के आधार पर वह उनमें परिमाणात्मक अन्तर (Quantitative difference) अवश्य करता है।

हाअसिकन के "अधिकतम व्यक्तियों के अधिकतम हित" की बेंथम विस्तार से व्याख्या करता है और उसके अनुसार यह उपयोगिता सिद्धान्त ही राज्य के प्रत्येक कार्य की अच्छाई और बुराई मापने वाली छड़ी है। उसका विश्वास था कि यदि राज्य का कोई भी कानून इस सिद्धान्त के विरुद्ध है तो वह अवज्ञा (Disobedience) के योग्य है। इंगलैण्ड की शासन संस्थाओं में वह लार्ड सभा (House of Lords) का कटु आलोचक था और उनके स्थान पर एक लोकप्रिय भवन की स्थापना चाहता था। इंगलैण्ड की न्याय प्रणाली की व्यवस्था में उसने अनेकों दोष बतलाये हैं और उनके सुधार के लिए अनेकों सुझाव दिये हैं। अपने समय के जेलखानों की भ्रष्ट तथा घृणित हालत भी उसे प्रभावित किये बिना नहीं रह सकी और एक आदर्श जेल तथा आदर्श दण्ड व्यवस्था के लिए उसने अपनी स्वतन्त्र योजना रखी जो उसकी मृत्यु के बाद प्रयोग में लाई गई। दण्ड के विषय में वह निरोधात्मक सिद्धान्त (Deterrent Theory) का समर्थक था।

जेम्स मिल (James Mill) 1773-1839—यह बेंथम का एक शिष्य था, जो अपनी योग्यता तथा प्रतिभा के कारण अपने गुरु से भी कहीं आगे है। कानून, न्याय तथा दण्ड आदि के सुधारों के विषय में वह बेंथम की योजना का समर्थन करता है। यह भी बेंथम की भांति लार्ड सभा का आलोचक था और इसमें सुधार चाहता था। वह राजतन्त्र का भी इतना अधिक विरोधी नहीं था और कुछ वैधानिक अंकुशों के साथ उसे जीवित रखने के पक्ष में था। शिक्षा के विषय में उसका विचार था कि "यदि शिक्षा सब कुछ नहीं कर सकती, तो वह कुछ भी नहीं करती" (If education does not perform everything there is hardly anything which it does

perform)। अन्तर्राष्ट्रीय कानून को वह राष्ट्रों पर इसी प्रकार लागू मानता था जिस प्रकार नैतिकता एक सभ्य पुरुष पर लागू होती है।

जॉन स्टुअर्ट मिल (J S Mill 1806-73)—यह जेम्स मिल का पुत्र था और मुरे (Murrey) के शब्दों में "अपने पिता का प्रभाव इस पर इतना अधिक है, कि ऐसा मालूम होता है कि मानो यह कभी पैदा ही नहीं हुआ हो" (His father's force exercised so tremendous effect on him that it seems as if he never existed at all) ग्लैडस्टन (Gladstone) ने इसे एक सन्त तथा महापुरुष कहा है। इसकी प्रसिद्ध रचनायें अथवा निबन्ध निम्नाङ्कित हैं —

(1) On Liberty (1859)
(2) Utilitarianism (1863)
(3) Principles of Political Economy
(4) The Subjection of Women (1869)

मनुष्य जीवन की सफलता तथा सरसता के लिए मिल विभिन्नता को आवश्यक मानता है। इसका मत था कि विभिन्नता और मौलिकता (Diversity and originality) दोनों ही समाज में आवश्यक तथा वाञ्छनीय हैं, वह व्यक्तिगत स्वाधीनता का पुजारी था और मानता था कि "अपने स्वयं पर तथा अपने शरीर और मस्तिष्क पर प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार है।" अपने अकेले से सम्बन्ध रखने वाले सब क्षेत्रों में वह व्यक्ति को मनचाहा कार्य करने की स्वाधीनता देता है, किन्तु जहाँ व्यक्ति का कोई भी कार्य समाज के अन्य सदस्यों की समान स्वतन्त्रता से टकराये वहाँ उसका मत है कि उस पर प्रतिबन्ध होना चाहिए। वह व्यक्ति का स्वाभाविक विकास चाहता है और कहता है कि सरकार एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा व्यक्ति की बुद्धि तथा प्राकृतिक योग्यता बढ़ती तथा विकसित होती है। वह एक प्रतिनिधित्वपूर्ण सरकार (Representative Government) का प्रशंसक था, और सबसे उत्तम सरकार उसको मानता है जो शासित लोगों के सामूहिक तथा व्यक्तिगत हित को सुरक्षित रखती हुई उनके सद्गुणों को विकसित करे। सरकार में अल्पसंख्यकों (Minorities) के प्रतिनिधित्व के लिए वह आनुपातिक प्रतिनिधित्व की योजना (Proportional Representation) का सुझाव देता है। उसके अनुसार एक पूर्ण प्रजातन्त्र में सब वर्गों को समान रूप से प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए। मतदान के अधिकार को भी मिल सबको देना नहीं चाहता। उसकी यह दृढ़ मान्यता है कि सार्वदेशिक मतदान का अधिकार केवल धोखा-मात्र रहेगा और हो सकता है कि उसका दुरुपयोग हो। सम्पत्ति के विषय में उसके विचार व्यक्तिवादी थे, और वह मानता है कि सम्पत्ति वाले आदमी राजनैतिक समस्याओं के विषय में अधिक गम्भीरता के साथ निर्णय करते हैं। वोट देने के लिए मिल किसी प्रकार की गुप्त व्यवस्था नहीं चाहता था। वह यह मानता है कि प्रत्येक व्यक्ति की वोट का मूल्य समान नहीं होगा और इस कारण

of view)। एक वाक्य मे उपयोगितावादी अधिकतम व्यक्तियो के अधिकतम हित का सिद्धान्त न सत्य ही है और न इस हित को नापने का कोई यन्त्र ही आज तक आविष्कृत हुआ है, क्योंकि तर्क पूर्ण ढग से देखा जाय तो 'यह अधिकतम संख्या केवल एक है"—(Scotter)

३ उपयोगितावाद निम्नकोटि का भौतिकवाद है (*Utilitarianism is base materialism*)—उपयोगितावादी यह आदर्श भी सब को मान्य नहीं हो सकता कि मनुष्य जीवन का चरम लक्ष्य 'प्रसन्नता' प्राप्त करना है, और अधिकतम प्रसन्नता को सचित करने से ही मनुष्य का अधिकतम हित हो सकता है। आलोचको की मान्यता है कि व्यक्ति केवल इस भौतिक दुनिया के सुखो के लिए ही नही जीता क्योकि जीवन की पूर्णता नैतिक उन्नति म ही है सासारिक सुख साधनों मे नहीं। उपयोगितावाद इतना अधिक यथार्थवादी है कि वह मनुष्य म और एक शूकर (Pig) के सासारिक जीवन मे कोई अन्तर नहीं करता और उसे जङ्गली जानवरो की भाँति खाने पीने और सोने के अतिरिक्त और कुछ न करने वाला एक साधारण जीव मात्र मानता है। अत आलोचक लोग इस सिद्धान्त को एक शूकरो का सिद्धान्त' (Pig philosophy) कहते हैं, जिसमे भौतिकवाद इस नीचता की सीमा को पहुँच गया है कि व्यक्ति का नतिक तथा आत्मिक स्तर कुछ है ही नही। उपयोगितावादी यह भूल जाते हैं कि ससार मे एसे लोग भी हो सकते हैं जो दुख म भी सुख का अनुभव करें। फिर प्रो० सबाइन (Prof Sabine) के शब्दो म, "अधिकतम सख्या" और "अधिकतम प्रसन्नता" दोनों शब्दा म कोई, तक पूर्ण सम्बन्ध भी नहीं है (There is no logical connection between the greatest number and the greatest happiness)। किन्तु उपयोगितावाद उसे एसा मान कर सारी समस्या को और भी जटिल बना देता है।

४ विश्वव्यापी सुखवाद का सिद्धान्त एक आत्म-विरोध है (*Universalistic Hedonism is a contradiction in terms*)—आलोचको का कहना कि सुख अथवा प्रसन्नता एक ऐसी वस्तु है जिसे केवल एक व्यक्ति ही अनुभव कर सकता है। वह आत्ममूलक (Subjective) तथा व्यक्तिगत अनुभव मात्र है और इस कारण साधारण सुख तथा साधारण प्रसन्नता (General happiness) जिनकी उपयोगितावादी चर्चा करते हैं, बिल्कुल निरर्थक शब्द है। सुखवाद कभी विश्व व्यापी अथवा सार्वदेशिक (Universal) नहीं हो सकता, क्योंकि जो चीज सार्वदेशिक होती है वह कभी सुखवादी (Hedonistic) नही होगी। अत प्रसन्नता जैसी व्यक्तिगत (Personal) चीज को साधारण कहना एक आत्म विरोधी बात है। हो सकता है "ए" अपनी प्रसन्नता के साधनो को जानता हो और इसी प्रकार 'बी" उन चीजों के नाम गिना दे जो उसे प्रसन्नता तथा सन्तोष देती हैं। किन्तु वे दोनों यह नहीं बतला सकते कि सार्वजनिक सुख (General happiness) क्या वस्तु है। हम दूसरे के सुख दुख में सहानुभूति रख

सकते हैं किन्तु ठीक वैसी की वैसी ही भावानुभूति (Feeling) करना हमारे लिए असम्भव है। अत आलोचकों का मत है कि सुखवाद को सार्वदेशिक मानने में उपयोगितावादी, व्यक्तिगत उपयोगिता (Individual Utility) के सिद्धान्त को सामाजिक उपयोगिता के साथ एक समझ बैठने की भूल करते हैं, जो सैद्धान्तिक दृष्टि से अशुद्ध है।

५ उपयोगितावाद राज्य और सरकार को एक समझ बैठा है (Utilitarianism confuses between state and Government)—राज्य और समाज में अन्तर मानते हुए भी अपने दर्शन में सबसे बड़ी भूल उपयोगितावादी जो करते हैं वह यह है कि उन्हें सरकार और राज्य में कोई अन्तर नहीं दिखाई देता। यथार्थ में राज्य एक संस्था है और सरकार केवल उसका एक अंग। उपयोगितावादी दोनों को एक ही मानते हैं और इस कारण जो कुछ वे कहते हैं वह सब सरकार के विषय में सत्य होते हुए भी राज्य के विषय में सत्य नहीं माना जा सकता। सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक सभी क्षेत्रों में सुधार करने के लिए उपयोगितावाद जो सुझाव देता है वे सब सरकार के कर्तव्य हैं, राज्य के नहीं। इसी प्रकार अधिकतम व्यक्तियों के अधिकतम हित के सिद्धान्त के आधार पर अपने कर्तव्यों को आचना सरकार के लिए उचित तथा उपयोगी हो सकता है, किन्तु राज्य सिद्धान्तों के लिए वह इतना महत्वपूर्ण नहीं। अत आलोचकों का कहना है कि उपयोगितावाद एक राज्य का दर्शन (Philosophy of state) न होकर सरकार का कार्य सिद्धान्त (Theory of Governmental action) मात्र है।

६ राज्य व्यक्ति को प्रसन्न बनाने के लिए एक अयोग्य संस्था है (State is an incompetent institution to make man happy)—सुप्रसिद्ध राजनैतिक विचारक ब्लंटस्ली (Bluntschli) उपयोगितावाद की आलोचना में यह तर्क देता है कि साधारण प्रसन्नता जो उपयोगितावादी राज्य द्वारा अपने नागरिकों को कभी भी प्रदान नहीं की जा सकती, क्योंकि प्रसन्नता कहीं बाहर से पैदा नहीं होती। वह तो मनुष्य की मानसिक स्थिति से उत्पन्न होती है और जब तक व्यक्ति स्वयं प्रसन्न रहने की कोशिश नहीं करेंगे, तब तक राज्य चाहे कुछ भी और कितना ही क्यों न करे वह समाज के व्यक्तियों को प्रसन्न नहीं रख सकता।

७ उपयोगितावाद समाज को व्यक्तियों की एक भीड़ मात्र समझने की भूल करता है (Utilitarianism mistakes society as a Congregation of Individuals)—उपयोगितावादी समाज का दृष्टिकोण एक सुसंगठित राज्य का चित्र नहीं है। वह समाज को एक ऐसी ढीली व्यवस्था के रूप में देखता है, जिसके अन्तर्गत सब लोग अलग अलग अपनी प्रसन्नता को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। उपयोगितावाद, आदर्शवाद की भाँति समाज को जैविक इकाई (Organic Unity) नहीं मानता बल्कि व्यक्तियों की एक निरुद्देश्य भीड़ समझता है, जिसके कारण आलोचक लोग इसके मूल आधार को ही चुनौती देते हैं।

८ उपयोगितावाद में आदर्शवाद का अभाव है (Utilitarianism lacks idealism)—बैंथम तथा उसके शिष्यों पर सबसे बड़ा आरोप यह लगाया जाता है कि वे राजनीति को नीतिशास्त्र तथा आचारशास्त्र दोनों से पृथक मानते हैं और इसी कारण से उनके राजनैतिक दर्शन को नैतिकता छू तक नहीं गई है। वे केवल सीधी सीधी वास्तविक आवश्यकताओं की बातें करते हैं जिसके कारण उनके दर्शन में जनसाधारण की कल्पना को जागृत करने के लिए कुछ भी नहीं है। यह एक स्थिर सत्य है कि मनुष्य जाति वास्तविकताओं (Facts) की अपेक्षा आदर्शों (Ideals) से आगे बढ़ा करती है और इस कारण जो विचारधारा मनुष्य को भविष्य की उन्नति के रंगीन स्वप्न नहीं देती, वह विचारों के प्रवाह में अधिक दिन नहीं टिका करती। आदर्शवाद समाज के विकास के लिए अनिवार्य है और वास्तविकताओं से दूर होते हुए भी वह समाज को एक निश्चित स्थान पर पहुँचने के लिए प्रेरणा देता है। उपयोगितावादी इस दृष्टि से आवश्यकता से अधिक यथार्थवादी तथा व्यावहारिक हैं और आदर्शों के अभाव में उनका दर्शन स्थाई तथा स्वस्थ नहीं कहा जा सकता।

९ उपयोगितावाद एक अमानवीय दर्शन है (Utilitarianism is an inhuman philosophy)—व्यक्ति को पूर्णतः स्वार्थी मानने के कारण उपयोगितावाद, उसकी सारी नैतिक वृत्तियाँ (Moral impulses) को अस्वीकार करता है। वस्तुतः नैतिक प्रेरणा ही मानव जीवन के असली प्रेरणा स्रोत हैं और वे ही उसके सारे कार्यों में मानवीयता उत्पन्न करते हैं। राजनीति भी नैतिकता से अलग कर दी जाने पर राक्षसों की अथवा जानवरों की चीज बन जाती है। नैतिक भावना के कारण ही राज्य सारे कार्यों को मानवी दृष्टिकोण (Humanistic outlook) से विचारता है और यह बिलकुल सत्य है कि यदि नैतिकता के सब सिद्धान्तों को तिलांजलि देकर सारे कार्य उनकी उपयोगिता (Utility) के आधार पर ही किए जायें तो राज्य तथा मनुष्य दोनों ही जङ्गली तथा बर्बर बन जायेंगे। उदाहरण के लिए साधारण प्रसन्नता की प्राप्ति के लिए राज्य यह आवश्यक समझ सकता है कि युद्ध में कुछ हजार आदमी मरवा दिए जायें किन्तु नैतिकता उसे कभी ऐसा नहीं करने देगी और इसी में राज्य की श्रेष्ठता तथा गौरव है। अतः आलोचकों का विश्वास है कि व्यक्तिगत नैतिकता (Individual morality) के लिए चाहे कोई नियम न हो, किन्तु नैतिकता के मूलभूत सिद्धान्तों के बिना राजनीति बिलकुल खोखली तथा निस्सार है।

१० उपयोगितावाद सामाजिक प्रसन्नता के लिए व्यक्ति पर बन्धन चाहता है (Benthamism stands for sanctions upon the individual to attain happiness of the Society)—बैंथम का मत है कि मनुष्य स्वभाव से इतना अधिक स्वार्थी होता है कि सामाजिक प्रसन्नता का ध्यान वह तब तक नहीं रख सकता जब तक कि उस पर कोई बाहरी बन्धन न लगाया जाये। यह सिद्धान्त बिलकुल असत्य है। उपयोगितावादी मिल (J S Mill) ही इसे स्वीकार नहीं करते। आलोचक मानते हैं कि व्यक्ति की अपनी प्रसन्नता सामाजिक प्रसन्नता का ही एक

अग है और उसके साथ बहुत घनिष्टता से जुडी हुई है। जैसे बच्चे की प्रसन्नता अपने आप ही माता पिता की प्रसन्नता पर प्रभाव डालती है। अत व्यक्ति को स्वार्थी मानकर उसकी प्रसन्नता पर शारीरिक, नतिक अथवा राजनैतिक या धार्मिक दबाव (Physical, Moral, Political or religious sanctions) डालना, स्वय सामाजिक प्रसन्नता को ही कम करना है।

इस प्रकार राजनीति के प्रसिद्ध विद्वान् प्रो० होलोवेल के शब्दो मे, बन्थमवाद एक ऐसा उदारतावाद है, जो निरकुशता के लिए बहुत ही अनुरूप है" (Benthanism is such a sort of liberalism, which coincides with absolutism)

मूल्याकन (Evaluation)—कि तु इन सब आलोचना का अथ यह नही है कि उपयोगितावाद एक ऐसा दशन है, जिसमे प्रशसा के योग्य अथवा मूल्यवान कुछ है ही नही। ऐसा कहना सद्धान्तिक दृष्टि से अन्याय होगा और व्यावहारिक क्षेत्र म उन सब हत्या तथा सुधारों से आँख मीचना होगा, जो उपयोगितावादी बेन्थम तथा उसके अनुयायियो ने राजनतिक क्षेत्र मे इगलण्ड म किये थे। अगर निष्पक्षता से देखा जाय तो मानना होगा कि यह सिद्धान्त १६वीं शताब्दी म इगलण्ड की राजनीति पर इस प्रकार छाया हुआ है कि उस समय का एक औसत अग्रेज (Average Englishman) इसके प्रभाव से अछूता नही कहा जा सकता। उस समय की सरकार इस विचारधारा से इतनी अधिक प्रभावित हुई थी कि सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक क्षेत्रों मे जो भी सुधार बैन्थम तथा मिल आदि ने सुझाये थे वे अक्षरश स्वीकार कर लिए गये। इस सिद्धान्त की लोकप्रियता ने सरकार को विवश किया कि वह श्रमकल्याणकारी कानून (Labour welfare legislation) बनावे, न्याय को सस्ता तथा शीघ्र दिलाने की व्यवस्था करे तथा जेलों मे मानवीय अवस्थाओ (Humane conditions) के लिए उचित प्रबन्ध करे। श्री डेविडसन (Davidson) के शब्दों मे उपयोगितावाद का मूल्याङ्कन इस प्रकार है—"उपयोगितावादियो के कार्य के लिए ब्रिटेन उनका बहुत अधिक ऋणी है। उन्नीसवी शताब्दी पर छाय हुए उनके विचारो ने मनोवैज्ञानिक खोज, आचारात्मक वाद विवाद सक्रिय राजनीति, सामाजिक सुधार, तथा लाभकारी कानूनो आदि के विषय मे, इतनी अधिक रुचि को जाग्रत किया है कि इससे पहले कभी ऐसा सोचा भी नही गया था" (To the Utilitarians Britain owes an immense debt Their view held sway on the 19th century and the result has awakened interest in Psychological investigation in ethical discussions in active politics social reforms and beneficient legislation to an extent that has previously been un thought of)

उपयोगितावाद की कुछ मूल्यवान बातें निम्नलिखित हैं —

१ इसने लोगों को सरकार की कीमत आंकने का सबसे अच्छा मापदण्ड प्रदान किया (It provided a measuring rod)— उपयोगितावादी दर्शन "अधिकतम

व्यक्तियों के अधिकतम हित" के सिद्धान्त का प्रतिपादन कर जनसाधारण को एक सुगम तथा सरल प्रणाली बतलाना है जिसके द्वारा साधारण से साधारण मोटी अक्ल का आदमी भी यह निर्णय कर सकता है कि कौन सी सरकार तथा किस सरकार के कौन-से कार्य अच्छे हैं। एक औसत आदमी प्रजातन्त्र तथा मूल अधिकारों की कोई कीमत नहीं जानता, किन्तु यदि सरकार द्वारा बनाया गया कोई भी कानून उसको हानि पहुँचाता है, अथवा उसके साथियों का अहित करता है तो वह उसे बड़ी आसानी से पहिचान सकता है और सरकार के कार्य का ठीक-ठीक मूल्य आँक सकता है। इस प्रकार उपयोगितावादी सिद्धान्त राज्य के मूल्य तथा उसके कार्यों की श्रेष्ठता को आँकने वाली एक सुविधापूर्ण कसौटी (Convenient criterion) है, जो राजनीतिज्ञों तथा देश के शासकों के सामने एक निश्चित मापदण्ड रखता है, "जो किसी युग की राजनैतिक संस्थाओं की मूल्य-मापक छड़ी" (A measuring rod for existing institutions of the age) कही जा सकती है। ग्रीन (Green) जैसे आदर्शवादी के शब्दों में "उपयोगितावादियों के सुखवादी मनोविज्ञान से, चाहे कितनी ही त्रुटियाँ पैदा क्यों न हों, किन्तु राजनैतिक तथा सामाजिक सुधारों के लिये इतनी अधिक सत्य तथा इतनी शीघ्रता से प्रयोग में लाये जाने वाली और कोई विचारधारा नहीं हो सकती थी' (Whatever may be the evils arising from the Utilitarianism hedonistic psychology, no other theory has been available for the social and political reforms containing so much truth with such ready applicability)

२ उपयोगितावाद सामाजिक कल्याण को अपना ध्येय मानता है (Utilitarianism aims at social welfare)—उपयोगितावाद को आलोचक चाहे जितना भौतिक तथा यथार्थवादी बतलाये, किन्तु उसका ध्येय निश्चय ही प्रशंसनीय है, यह एक इतना व्यापक दर्शन है, जो व्यक्ति को प्रधानतः स्वार्थी मानते हुए भी, राज्य अथवा सरकार का चरम लक्ष्य सामाजिक कल्याण (Social welfare) मानता है। वास्तव में आजकल का प्रत्येक राज्य कल्याण राज्य (Welfare State) है और उनके लिए उपयोगितावाद बहुत अच्छा मार्गदर्शन करता है।

३ उपयोगितावाद मनुष्य को सामाजिक प्राणी मानता है (Utilitarianism regards individual is a social being)—उपयोगितावादी दर्शन के अनुसार व्यक्ति समाज का एक अभिन्न अंग है और समाज में रहना उसके लिए पूर्णतः स्वाभाविक है। यह बात एक शाश्वत सत्य है और इसके प्रतिपादन द्वारा उपयोगितावाद उसी सिद्धान्त का प्रचार करता है, जो प्लेटो तथा अरिस्टोटल के दर्शन का केन्द्र बिन्दु है।

४ उपयोगितावाद मानववाद है (Utilitarianism is humanism)—उपयोगितावाद का राजनीति में आरम्भ ही सार्वजनिक हित तथा कल्याण के सिद्धान्त से होता है। वह चाहता है कि व्यक्ति अधिक से अधिक स्वाधीन हो तथा उसे सब

प्रकार की सामाजिक, राजनैतिक तथा अन्य निरंकुशताओं से छुटकारा मिले। वह कुटिल स्वार्थों का विरोधी है तथा सुधारवाद के पक्ष में होने के कारण राजकीय नियमों तथा कानूनों के माध्यम द्वारा जन जीवन के स्तर को ऊँचा उठाना चाहता है। वह सब व्यक्तियों को समान मानता है और इस कारण उसे मानववाद का ही दूसरा नाम कह सकते हैं।

५ उपयोगितावाद भौतिकवादी नहीं है (Utilitarianism is not materialistic)—आलोचकों द्वारा उपयोगितावाद को भौतिकवाद का पर्याय (Synonym) कहना तथा इस कारण उसे एक "शूकर दर्शन" (Pig Philosophy) बतलाना एक वैमनस्यपूर्ण आरोप (Prejudical allegation) है। सच तो यह है कि उपयोगिता वादी, "उपयोगिता" शब्द का प्रयोग "सुख" भलाई तथा "कल्याण" आदि शब्दों के स्थान पर करते हैं। यह कुछ हद तक सच हो सकता है कि बैंथम अपने विचारों में भौतिकवादी थे, किन्तु मिल (Mill) के आदर्श उपयोगितावाद में ऐसी कोई चीज नही है। वह उसमें से सुखवाद (Hedonism) को निकाल कर बैंथमवाद की अशुद्धताओं (Crudities) का परिष्कार करता है जिसके कारण वह आदर्शवादी सिद्धान्तों के बहुत निकट पहुँच गया है। डी० जी० ऋषि (D G Ritchie) के अनुसार मिल का यह उपयोगितावाद ही ग्रीन की नैतिक व्यवस्था का आधार है, और इस बात का कोई कारण नही है कि आदर्शवादी उपयोगितावादियों से समझौता क्यों न कर लें (The Utilitarianism of Mill forms the basis of Green's moral order and there is no reason why the idealists do not join hands with the Utilitarians)

६ उपयोगितावाद एक व्यावहारिक दर्शन है (Utilitarianism is a philosophy)—उपयोगितावाद, आदर्शों का पुजारी नही और इस कारण उसमें आदर्शों की कमी ढूँढना उसके साथ अन्याय करना है। वह एक भरय त मानव और व्यावहारिक दर्शन है। डेविडसन ((Davidson) के अनुसार "यह राजनीति के क्षेत्र मे प्रवेश करके अपने आपको राज्य के व्यवस्थापन प्रतिभूत करना चाहता है (It enters the realm of Politics and aims at finding itself embodied in state legislation)। उपयोगितावाद यह नही मानता कि किसी एक स्वप्न तथा आदर्श को आगे रखने से समाज उत्साहित होकर आगे बढता है। वह एक व्यावहारिक विचारधारा है और समूची मानव जाति का हित अथवा कल्याण ही उसका एकमात्र आदर्श है।

७ उपयोगितावाद का आधार अनुभव है (Utilitarianism rests on experience)—वह अनुभव को ही एकमात्र सत्य की अंतिम कसौटी मानता है, जिसके द्वारा ज्ञान स्वत एव उद्गमित होता है। वह कल्पना अथवा भाव-सूक्ष्मता Abstractions) का विरोधी है।

इस प्रकार ब्रिटिश उपयोगितावाद एक सुधारवादी आन्दोलन है, जो विवेकशीलता के सिद्धान्तों में विश्वास करता है और सब प्रकार के पक्षपात, अत्याचार, तथा शोषण का कट्टर शत्रु है। व्यावहारिक राजनीति के क्षेत्र में इसने इंगलैंड के तत्कालीन भ्रष्ट समाज के नियम तथा विचारों के विरुद्ध मोर्चा लिया था, किन्तु सैद्धान्तिक दृष्टि से व्यक्ति तथा समाज दोनों का अविच्छिन्न हित चाहे जाना इससे बढ़कर और कोई सरल तथा स्पष्ट राजनैतिक दर्शन नहीं हो सकता है। अतः यह कहना कि उपयोगितावाद जीवन की यथार्थता से दूर है, अथवा एक मिथ्या आरोप है। प्रो० आशीर्वादम् के शब्दों में, 'एक उपयोगितावादी न कोई धर्मान्ध कट्टर व्यक्ति होता है और न कोई स्वप्नदर्शी, उसके पैर हमेशा कठोर भूमि पर रहते हैं और उसका आधार यथार्थ में रहता है। (He is neither a fanatic nor a dreamer. His feet stand on solid ground and his support lies in reality—Dr. Asirvatham)

व्यक्तिवाद

(Individualism)

राज्य के कार्य क्षेत्र सम्बन्धी अनेकों सिद्धान्तों में व्यक्तिवादी सिद्धान्त परम महत्वपूर्ण है। यह एक राजनैतिक दर्शन है जो अठारहवीं शताब्दी में यूरोप की राजनैतिक विचारधारा का केन्द्र बिन्दु था। आधुनिक युग में समाजवाद के जन्म से पहले, समस्त यूरोप में प्रचलित यह एक ऐसी विचारधारा थी, जिसने आदर्शवादियों द्वारा महत्वहीन बनाये गये व्यक्ति को फिर से सहारा प्रदान किया। "समाज अथवा राज्य व्यक्ति के लिए है न कि व्यक्ति राज्य के लिए" इस नारे को लेकर आगे बढ़ने वाले व्यक्तिवादियों ने राज्य की महत्ता का खण्डन किया और आदर्शवादियों के सर्वाधिकारवादी राज्य में एक कोने में पड़े हुए व्यक्ति के महत्व एवं मान की समाज में फिर से प्रतिष्ठा की।

ऐतिहासिक दृष्टि से व्यक्तिवाद का उदय अठारहवीं शताब्दि के उत्तरार्द्ध में हुआ है। ग्रीक लोग राज्य को एक 'नैतिक पुरुष' मानते थे अतः राज्य और व्यक्ति में किसी भी प्रकार से झगड़े की सम्भावना भी उनकी कल्पना के परे थी। उनकी दृष्टि में व्यक्ति राज्य का एक अविभाज्य अङ्ग था और राज्य जो भी कुछ करता था वह व्यक्ति के लिए कभी भी अहितकर नहीं हो सकता था। मध्य युग (Mediaeval Age) में होली रोमन एम्पायर के विस्तार के कारण यूरोप के सारे राज्य धर्म अथवा चर्च के आधीन हो जाते हैं और धार्मिक खींचातानी में राज्य के कार्यक्षेत्र के विषय में कोई भी निश्चित सीमा निर्धारित नहीं होती। सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दियाँ यूरोप के इतिहास में निरंकुश राजतन्त्र के लिए प्रसिद्ध हैं और ऐसे समय में राज्य जन साधारण के जीवन पर एक बहुत तीव्र नियन्त्रण लगाने लग जाता है। हाब्स तथा रूसो जैसे दार्शनिकों के सिद्धान्त राज्य की महत्ता का प्रतिपादन करते हैं और व्यक्ति के सारे अधिकारों को उससे छीन कर राज्य की छत्र छाया में रख देते हैं। जर्मनी के कुछ आदर्शवादी विचारक भी इसी समय राज्य की सर्व शक्तिमानता का उपदेश देते हैं, जिसके कारण राज्य के कार्य व्यक्ति के जीवन में अनावश्यक हस्तक्षेप की सीमा तक पहुँच जाते हैं। इस युग की कुछ सरकारें तो इतनी उच्छृङ्खल एवं अमर्यादित हो गई थीं कि आशीर्वादम् के शब्दों में उनके अर्थहीन कानून निश्चित दिनों के लिये विशिष्ट प्रकार के भोजन निर्धारित करते थे तथा मुर्दों को दफनाने के लिये खास प्रकार के

कपड़ो की व्यवस्था की आज्ञा देते थे।" व्यक्ति की व्यावसायिक स्वाधीनता पर भी कितने ही बन्धन थे, जिसके कारण लोग स्वतन्त्रता की श्वास नहीं ले सकते थे। १८वीं शताब्दी की व्यावसायिक क्रान्ति ने इस स्थिति को असह्य बना दिया और जो लोग बुद्धिमान, उद्यमी, प्रतिभा सम्पन्न एव साहसी थे, उन्होंने स्वतन्त्र कार्य करने तथा राज्य के अनुचित हस्तक्षेप को समाप्त करने के लिए, माँग करना शुरू किया। जान स्टुअर्ट मिल, एडम स्मिथ, रिकार्डो, तथा स्पेंसर आदि नेताओं तथा विचारकों का समर्थन पाकर यही माँग १८वीं शताब्दी की एक प्रसिद्ध राजनैतिक विचारधारा बन गई।

व्यक्तिवादी सिद्धान्त

व्यक्तिवादी लोगों का मत है कि राज्य एक आवश्यक दुर्गुण (Necessary evil) है। उनका विश्वास है कि एक पूर्ण तथा आदर्श समाज में राज्य जैसी दण्डधारी सस्था की कोई आवश्यकता नहीं हो सकती। राज्य का वास्तविक आधार बल (Force) है और व्यक्तिवादियों की दृष्टि में जो भी सस्था व्यक्ति पर बल का प्रयोग कर उसे दण्डित करती है वह उसके विकास (Spontaneous growth) को रोक कर उसके व्यक्तित्व को कुण्ठित करती है। इसीलिये राजकीय बल व्यक्ति की स्वाभाविक उन्नति के मार्ग में रोड़ा है जो उसकी मौलिकता (Initiative) का हनन करता है। समाजवादियों के विपरीत ये लोग मानते हैं कि राज्य व्यक्ति का कोई हित नहीं कर सकता बल्कि अपाहिज एव अशक्त लोगों की सहायता कर वह समर्थ एव स्वस्थ नागरिकों के साथ अन्याय करता है। उनके अनुसार एक व्यक्ति अपनी सहज उन्नति तभी कर सकता है जब उसे अपने अधिकतम विकास के लिए उन्मुक्त तथा निर्बाध अवसर दिये जायें, और चूँकि राज्य अपने बलपूर्वक हस्तक्षेप द्वारा व्यक्ति को इससे वंचित करता है तथा "उसे वह नहीं बनने देता जो वह बन सकता है अथवा उसे बनना चाहिए" इसलिए राज्य एक महान दुर्गुण है। किन्तु राज्य को दुर्गुण मानते हुये भी व्यक्तिवादी अराजकतावादियों (Anarchists) की भाँति उसका समूल लोप (Disappearance) नहीं चाहते। उनका कथन है कि राज्य दुर्गुण होते हुए भी, आधुनिक अपूर्ण समाज में आवश्यक है। मनुष्य स्वभाव से स्वार्थी होता है अत वह अपने अन्य साथियों के समान अधिकारों का प्रायः ध्यान नहीं रखता। मनुष्य की इन अपूर्णताओं की याद दिलाने तथा सुधारने के लिए दुर्गुणी होते हुए भी राज्य की आवश्यकता है। फ्रीमन के शब्दों में 'किसी भी भाँति की सरकार का अस्तित्व मनुष्य की अपूर्णता का चिन्ह है, क्योंकि आदर्श सरकार वह है जहाँ सरकार जैसी कोई चीज ही न हो। अत स्वार्थी एव पतित मानव की कुवृत्तियों को सयमित रखने के लिए राज्य जैसी हानिकारक सस्था का अस्तित्व आवश्यक है।

राज्य के कार्यक्षेत्र के विषय में व्यक्तिवादियों का मत है कि केवल निषेधात्मक कार्य (Negative functions) ही राज्य को सौंपे जायें। उनका कथन है कि जब

राज्य एक दुगण है और व्यक्ति का अहित अधिक करता है तो राज्य को केवल वे कार्य ही दिये जाने चाहिए जो अकेले व्यक्ति की सामर्थ्य के बाहर हो। अत वे चाहते हैं कि राज्य का वास्तविक रूप "पुलिस राज्य" होना चाहिए, अर्थात् राज्य को केवल वही काय करने चाहिए, जो आजकल के राज्यो मे राज्य के पुलिस तथा मिलिट्री विभाग करते हैं। राज्य को चाहिए कि वह व्यक्ति के उन्मुक्त जीवन म केवल वही पर दखल दे जहाँ वह कोई कठिनाई अनुभव कर रहा हो। इस प्रकार व्यक्ति के सरल एव सुखी जीवन के माग की बाधाओ को दूर करना (Hinder the hinderences) राज्य का कार्य होना चाहिए। व्यक्तिवादियों क मत मे राज्य के लिए यह उचित नही है कि वह व्यक्ति के तथा कथित कल्याण के लिए कोई काय करें। उनकी दृष्टि मे राज्य जनकल्याण के लिए स्कूल खोलकर तथा सडकें एव अस्पताल आदि बनवा कर, प्राकृतिक नियम क विरुद्ध काय करता है और व्यक्ति की स्वतन्त्रता को बाधित करता है। इस प्रकार व्यक्तिवादी विचारक मानते हैं कि राज्य का काय क्षेत्र कम से कम (Minimum) कार्यो तक सीमित होना चाहिए और व्यक्ति अपनी उन्नति के लिए अधिक से अधिक काय स्वय ही करे। राज्य को चाहिये कि वह केवल उसकी सहायता मात्र करे और वह भी वही जहाँ वह अशक्त तथा असमथ हो। वसे राज्य के उचित एव वैध कत्तव्य क्या है इस विषय मे सब व्यक्तिवादी एकमत नही है, किन्तु व्यक्तिवाद के एक प्रबल समथक स्पेन्सर (Spencer) राज्य का कार्यक्षेत्र निम्नलिखित कार्यो तक सीमित करना चाहते हैं —

(१) बाहरी आक्रमण से रक्षा।

(२) आन्तरिक व्यवस्था स्थापित रखना।

(३) वैध समझौतो को लागू करना।

गिलक्राइस्ट नामक एक अन्य व्यक्तिवादी इन कार्यो मे ये काय और जोडना चाहते हैं —

(४) चोरी-डकती आदि से सम्पत्ति की रक्षा करना।

(५) अयोग्य एव असमथ व्यक्तियो की सहायता करना।

(६) सक्रामक रोगो एव आपदाओ से व्यक्ति की रक्षा करना।

व्यक्तिवाद का दूसरा नाम लेसाजफेयर (Laissez Faire) भी है, जिसका अथ "उसे अकेला रहने दो" (Let him be alone) व्यक्तिवादी विचारक चाहते हैं कि राज्य व्यक्ति को अकेला रहने का अधिकतम अवसर दे। व्यक्ति की स्वतन्त्रता क विषय मे उनकी धारणा है कि एक व्यक्ति स्वतन्त्र तब हो सकता है जब राज्य उसे तब तक अकेला छोड दे जब तक वह समाज के और लोगो को नही छोडता (Leave him alone, so long he leaves other alone) अर्थात् जब तक एक व्यक्ति समाज के अन्य सदस्यो की स्वतन्त्रता को नहीं छीनता तब तक राज्य को उसकी स्वतन्त्रता का सम्मान करना चाहिए। व्यक्ति की स्वतन्त्रता पर केवल एक ही नियन्त्रण

होना चाहिए और वह है "अन्य सदस्यों को समान स्वतन्त्रता"। मिल के शब्दों मे 'Over himself over his own body and mind, the individual is sovereign" (अपने तथा अपने मस्तिष्क एव शरीर के ऊपर व्यक्ति सार्वभौम है) अन्य सदस्यो के समान अधिकारो के सम्मान पर आधारित इस अधिकतम स्वतन्त्रता को व्यक्तिवादी जीवन के आर्थिक, सामाजिक, एव राजनीतिक आदि सभी क्षेत्रों में चाहते है।

व्यक्तिवादियों की दृष्टि मे राज्य केवल एक साधन है साध्य नहीं (A means not an end)। वे मानते है कि राज्य अपना अन्त स्वय नही हो सकता, वह तो एक साधन मात्र है, जिसका उद्देश्य उसके सदस्यों को अपने विकास के अधिकतम अवसर प्रदान कर उनका अन्तिम हित करना है। आदर्शवादियों के विपरीत वे राज्य का कोई व्यक्तित्व नही मानते है बल्कि उनका विश्वास है कि राज्य व्यक्ति के लिए बना है, व्यक्ति राज्य के लिए नही। व इस मत को सर्वथा अस्वीकार करते है कि राज्य का उद्देश्य उसके सदस्यो के कल्याण अथवा उन्नति के अतिरिक्त कुछ और भी हो सकता है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का अन्तिम उद्देश्य अपनी आन्तरिक विशेषताओं को विकसित कर उनकी अभिव्यक्ति प्राप्त करना है और इस उद्देश्य की प्राप्ति मे राज्य उसकी यथास्थान सहायता करने के कारण एक साधन है।

व्यक्तिवादी विचारक—वसे तो राजनीति शास्त्र के इतिहास मे अनेकों ऐसे विचारक हुए है जो राज्य के कार्यक्षेत्र को न्यूनतम कर्तव्यों तक सीमित करना चाहते हैं, किन्तु १९वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे व्यक्ति को सामाजिक, राजनैतिक एव आर्थिक आदि सभी क्षेत्रों मे पूर्णत उन्मुक्त होकर अपनी इच्छानुसार कार्य करने की स्वतन्त्रता देने वालो मे केर्न्स (Cairnes), रिकार्डो (Ricardo), माल्थस (Malthus), डी टाकवेविले (De Toqueville), हम्बोल्ट (Humbölt) ब्रूस स्मिथ (Brüce'Smith), समनर (Sumner), स्पेन्सर (Spencer), तथा जान स्टुअर्ट मिल (J S Mill) आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। यद्यपि इन सभी विचारकों ने अपने अपने राजनैतिक दर्शन मे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का समर्थन तथा राजकीय हस्तक्षेप एव अवलम्बिता (Dependability) का खण्डन किया है किन्तु अपनी अपनी परिस्थितियो के प्रभाव के कारण प्रत्येक ने अपने विचारो के पक्ष मे भिन्न भिन्न प्रकार के तर्क उपस्थित किये हैं। इस सब व्यक्तिवादी विचारकों मे मिल तथा स्पेन्सर के विचार एव तर्क अधिक महत्वपूर्ण हैं।

जान स्टुअर्ट मिल (1806–73)—जान स्टुअर्ट मिल, जेम्स मिल का पुत्र था और अपने विचारों की सुनिश्चितता एव तर्कपूर्णता के कारण, यह अपने पिता से भी अधिक योग्य एव महत्वपूर्ण विचारक माना जाता है। इसका 'On Liberty' नामक एक निबन्ध बहुत प्रसिद्ध है, जिसमे मिल ने स्वतन्त्रता के दो पक्ष माने हैं—एक वैयक्तिक तथा दूसरा सार्वजनिक। पहले प्रकार की स्वतन्त्रता से तात्पर्य मनुष्य

व उन कार्यों की स्वतन्त्रता न है, जो केवल उसी से सम्बन्ध रखते हैं और समाज पर कोई प्रभाव नहीं डालते उदाहरणार्थ, खाना पीना, वस्त्र पहनना, किसी भी धर्म को मानना, मनचाही पुस्तकें पढ़ना आदि ऐसे कार्य हैं, जिनका सम्बन्ध व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन से है। अतः मिल का कथन है कि इन कार्यों के करने में व्यक्ति को पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए क्योंकि अपने पर तथा अपने मस्तिष्क एवं शरीर पर व्यक्ति को पूर्ण अधिकार है। (In the part which merely concerns himself his independence is right absolute over himself, over his own body and mind the individual is sovereign) स्वतन्त्रता का दूसरा पक्ष व्यक्ति के उन कार्यों से सम्बन्धित है जो वह समाज में रह कर करता है और जिनका असर समाज के अन्य सदस्यों पर पड़ता है। ऐसे कार्यों के लिए मिल का मत है कि व्यक्ति की स्वतन्त्रता वहीं तक सीमित होनी चाहिए जहाँ तक वह अन्य सदस्यों की समान स्वतन्त्रता से टकराती है। मिल के शब्दों में 'केवल एक मात्र उद्देश्य जिसके कारण किसी भी व्यक्ति पर उसकी इच्छा के विरुद्ध बल का प्रयोग हो सकता है, वह है अन्य व्यक्तियों की क्षति को रोकना।' (The only purpose for which force can be exercised over any member against his will is to prevent harm to others)। अर्थात् सार्वजनिक कार्यों को करते समय व्यक्ति को अपने हित एवं अधिकारों को अन्य लोगों के अधिकारों एवं महत्तर हित के साथ मिलाना होगा। यदि यहाँ पर वह अमर्यादित स्वतन्त्रता का प्रयोग करना चाहेगा, तो सारे समाज की स्वतन्त्रता नष्ट हो जायेगी जिसके परिणाम स्वरूप उसकी स्वयं की स्वतन्त्रता भी [illegible] हो जायगी। अतः यह स्पष्ट है कि सामाजिक स्वतन्त्रता का उपभोग, व्यक्ति समाज की अनुमति लेकर ही कर सकता है अन्यथा वैयक्तिक स्वतन्त्रता, (Individual liberty) सामाजिक अराजकता (Social anarchy) में बदल जायगी।

मिल वैयक्तिक स्वतन्त्रता का परम प्रेमी एवं कट्टर समर्थक था। उसकी यह दृढ़ धारणा थी कि विचारों के संघर्ष में सत्य सदैव विजयी होता है, अतः राज्य को किसी भी प्रकार की विचारधारा एवं भावाभिव्यक्ति पर कोई बन्धन नहीं लगाना चाहिए। वैयक्तिक स्वतन्त्रता का अधिकार मिल प्रत्येक व्यक्ति को देना चाहता था और यहाँ तक कि एक मूर्ख व्यक्ति को भी उसकी दृष्टि में विचार स्वातन्त्र्य का अधिकार होना चाहिए। उसका कथन है कि "दस मूर्ख व्यक्तियों में से नौ निरर्थक मूर्ख हो सकते हैं किन्तु दसवाँ व्यक्ति मनुष्य जाति के लिए इतना लाभदायक हो सकता है, जितना सब साधारण व्यक्ति मिल कर भी नहीं हो सकते।" (Nine out of ten cranks may be harmless idiots, but the tenth man may be useful to mankind than most of normal men put together) मिल का विश्वास था कि बहुमत सर्वथा ठीक नहीं हुआ करता तथा एक व्यक्ति अपने विचारों में एक औसत मूर्ख समुदाय की अपेक्षा अधिक सही हो सकता है। सुकरात तथा ईसामसीह को तत्कालीन बहुमत ने सदैव गलत बतलाया किन्तु आने वाली पीढ़ियों ने उनके

विचारों का ठीक ठीक मूल्यांकन किया। अतः मिल का मत है कि प्रत्येक व्यक्ति को विचार स्वातन्त्र्य का अधिकार होना चाहिए और एक उपयुक्त विचारक मानवता के सुख एव समृद्धि में अधिक महत्वपूर्ण योग दे सकता है।

व्यक्तिवादी होने के साथ साथ मिल के विचारों पर कुछ कुछ उपयोगितावाद का प्रभाव भी देखने को मिलता है। यद्यपि मिल बन्थम के "प्रसन्नता एव पीड़ा सिद्धान्त" (Pleasure and Pain Calculas) तथा अधिकतम व्यक्तियों के अधिकतम हित के सिद्धान्त से सहमत है किन्तु बन्थम की भांति वह सर्वथा भौतिकवादी नहीं है। वह प्रसन्नता मे भी एक गुणात्मक अन्तर (Qualitative difference) करता है। उसके अनुसार सारी प्रसन्नतायें अथवा पीड़ायें समान नहीं है। बन्थमवादियों के इस विचार को कि एक पिन के चुभने तथा एक करुण कविता के सुनने से बराबर पीड़ा होती है, वह अस्वीकार करता है (There is a difference between a pin push and a piece of poetry)। इस प्रकार प्रसन्नता की भी अनेकों कोटियां हैं और मिल के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को उच्च कोटि के आनन्द एव प्रसन्नता की प्राप्ति के लिए ही यत्न करने चाहिएँ। उसके ये शब्द प्रायः उद्धृत किये जाते हैं कि "एक सन्तुष्ट सूकर बनने की अपेक्षा एक असन्तुष्ट सुकरात बनना कहीं अधिक अच्छा है।" (It is better to be a Socrates dissatisfied rather than a pig satisfied)

बन्थम और मिल के विचारों में एक अन्तर यह भी है कि बन्थम व्यक्ति को सामाजिक सुख की उन्नति के लिए विवश करने में बाह्य प्रभावों अथवा दबावों (External sanctions) को ही स्वीकार करता है, किन्तु मिल बाह्य तथा आन्तरिक दोनों प्रभावों को मानता है। मिल का मत है कि स्वभाव से प्रत्येक व्यक्ति "मनुष्य जाति के सुख की भावना" रखता है और इसलिए उसे सार्वजनिक सुख की भावना रखनी चाहिए। उसका तर्क यह है कि 'जब 'अ' का सुख अच्छा अर्थात् कल्याणकारी है व और स का सुख भी अच्छा है तो इन अच्छाइयों का योग भी अच्छा ही होना चाहिए" (Since A's Pleasure is a good, B's a good, C's a good, etc, the sum of all these goods must also be a good)

अपने जीवन के अन्तिम दिनों में मिल कुछ समाजवाद की ओर झुका सा प्रतीत होता है। इसका कारण यूरोप की औद्योगिक क्रान्ति थी जिसने यूरोप का आर्थिक मानचित्र बदल दिया था। इसी कारण व्यक्तिवादी होते हुए भी अपने अन्तिम निबन्धों में मिल ने ससार के कच्चे पदार्थों को एक स्थान पर एकत्रित करने तथा उनके सम्मिलित उपभोग के लिए अपील की है।

मिल के आलोचक उसके विचारों में निम्नलिखित दोष देखते हैं —

१—मिल की स्वतन्त्रता की परिभाषा अनुचित है। मनुष्य के समस्त कार्यों को वैयक्तिक एव सार्वजनिक दो भागों में निश्चित रूप से नहीं बाँटा जा सकता। मनुष्य जो भी कुछ करता है वह किसी न किसी रूप में दूसरे लोगों पर प्रभाव डालता है अतः मानवीय कार्यों के बीच में ऐसी विभाजक रेखा खचना उचित नहीं।

२—दूसरे व्यक्ति की स्वतन्त्रता का समर्थन करने में मिल सीमायें लाँघ जाता है। यह ठीक है कि प्रत्येक व्यक्ति अधिकतम स्वतन्त्रता का उपभोग करे, किन्तु स्वतन्त्रता का यह अधिकार मूर्खों तथा पागलों को देना स्वयं पागलपन-सा लगता है। सबको उस बहुमूल्य अधिकार को देकर मिल ने इसे कुछ सस्ता बना दिया है और इसलिए स्टीफन की यह आलोचना ठीक प्रतीत होती है कि 'मिल मूर्खता से भरी हुई मौलिकता का प्रशंसक है।' (Mill Praises originality even when it implies absurdity")

३—तीसरे मिल के दर्शन में कुछ असम्बद्धतायें (Inconsistences) हैं। व्यक्तिवाद, उपयोगितावाद तथा समाजवाद तीनों का वह समर्थक प्रतीत होता है और इसलिए उसके दर्शन में एक सश्लिष्टता (Coherency) तथा क्रमबद्धता नहीं। एक ओर जब वह प्रत्येक को बहुमत के विरुद्ध भी अधिकार देता है तो दूसरी ओर अधिकतम व्यक्तियों के अधिकतम हित की बातें भी करता है। इस प्रकार व्यक्तिवाद और समाजवाद का भी अद्भुत मिश्रण उसके दर्शन में मिलता है।

४—चौथे बन्थम के प्रसन्नता एवं पीड़ा सिद्धान्त में गुणात्मक अन्तर जोड़ कर भी मिल ने प्रसन्नता एवं पीड़ा मापक छड़ी प्रदान नहीं की जिसके द्वारा अधिकतम व्यक्तियों के हित को तोला अथवा मापा जा सके।

स्पेन्सर (H Spencer) (1820-1903)—स्पेन्सर एक व्यक्तिवादी दार्शनिक था, जिसने अपने विचारों की पुष्टि के लिए विज्ञान का आश्रय लिया। बचपन से ही उसे आज्ञाकारिता शब्द से घृणा थी और यहाँ तक कि वह अपने माँ बाप का प्रभुत्व भी अपने ऊपर स्वीकार करना नहीं चाहता था। उनके चाचा थोम्स स्पेन्सर राज्य प्रभुत्व विरोधी विचारकों (Non conformist) में से थे, जिसका प्रभाव हर्बर्ट स्पेन्सर पर भी पड़ा। अपने भावी जीवन होजस्किन (Hodgskin) की उग्र विचारधारा शेलिंग (Schelling) के जर्मन आदर्शवाद तथा लैमार्क (Lamark) के जीव विज्ञान ने भी उसको प्रभावित किया और ये प्रभाव ही उसके राजनैतिक दर्शन के मूल स्रोत हैं। स्पेन्सर ने सत्रह पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें से Social Statics, Sins of Legislators Man v/s The State, The Social orgnism आदि प्रमुख हैं।

एक वैज्ञानिक होने के कारण स्पेन्सर विकासवाद में विश्वास करता है। उसका मत है कि विश्व में एक नियमित एवं निश्चित विकासवादी सिद्धान्त कार्य करता है, जिसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति अपनी मौलिकता का विकास कर एक पूर्ण वैयक्तिकता (Individuality) की प्राप्ति करता है। समाज के सभी सदस्य इस व्यक्तित्व अथवा वैयक्तिकता की प्राप्ति, विकासवाद के अनुसार करते हैं जिसके कारण समाज में एक सन्तुलन (Equilibrium) रहता है। स्पेन्सर के अनुसार जिस समाज में व्यक्ति, जितनी अधिक वैयक्तिकता प्राप्त कर लेते हैं उसमें उतना ही अधिक सन्तुलन रहता है और जिस समाज में जितना अधिक सन्तुलन है वह समाज उतना ही पूर्ण है। इस

सामाजिक सतुलन (Social equilibrium) समाज की पूर्णता मापक इकाई है। स्पेंसर का विश्वास है कि विकासवाद के अनुसार जब समाज म पूर्ण सतुलन आ जायगा तब राज्य निरर्थक हो जायगा। अत एव पूर्ण एव आदर्श समाज में राज्य की कोई आवश्यकता नहीं होगी।

स्पेंसर राज्य को एक आवश्यक दुर्गुण मानता है। उसके मतानुसार राज्य की जडें मनुष्य की दुर्बलतायें हैं। मनुष्य अपूर्ण है और स्वार्थ के वशीभूत होकर सामाजिक नियमों का उल्लघन करता है। अत राज्य को चाहिए कि वह उसे ऐसा करने से रोके तथा समाज म एक व्यवस्था स्थिर रखे। स्पेंसर के शब्दों म "राज्य एक संयुक्त सुरक्षा कम्पनी ह, जिसका उद्देश्य पारस्परिक हित व कल्याण करना है" (State is a joint stock protection company for mutual assurance) स्पेंसर की दृष्टि मे देश म शान्ति स्थापित करना तथा बाह्य आक्रमणों स देश की रक्षा करना तथा समझौते आदि लागू करने का काय राज्य को करना चाहिए। शेष काय व्यक्ति अपने आप करें।

विकासवाद का समर्थक होने के कारण डारविन की भांति स्पेंसर "अस्तित्व के लिए संघर्ष" (Struggle for existence) तथा "योग्यतम व्यक्तियों एव जीवों के जीने के अधिकार (Survival of the fittest) के सिद्धान्तों में विश्वास करता है"। उसकी यह मान्यता है कि केवल शक्तिशाली व्यक्ति का ही जो अस्तित्व के संघर्ष म जीत सकता है जीने का अधिकार है। प्रकृति का यह नियम है कि वह दुर्बल जीवो एव वस्तुओं को अपने विकासक्रम मे स्वत ही निकाल फेंकती है और इस प्रकार जो योग्य होते हैं वे अपने आप छट कर शेष रह जाते हैं। जिस प्रकार निम्न श्रेणी के जीव जन्तुओं म जो शक्तिशाली तथा बड़े जीव होते हैं, वे अपने से छोटों को निगल जाते ह इसी प्रकार स्पेंसर का मत है, कि मानव समाज म भी अस्तित्व के लिए संघर्ष चलता रहता है और जो दुर्बल एव अशक्त हैं वे शक्तिशालियों द्वारा कुचल दिए जाते है और इस प्रकार शक्तिशाली तथा योग्यतम व्यक्ति ही अन्त म बच जाते हैं। स्पेंसर की दृष्टि म समाज म होने वाले इस अनिवार्य एव सतत संघर्ष मे राज्य को कोई हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। अर्थात यह राज्य का कर्त्तव्य नहीं है कि वह दुर्बल एव असहायों की सहायता करें क्योंकि ऐसा करना प्राकृतिक नियम के प्रतिकूल होगा। यदि राज्य दीनों की सहायता करता है तो वह योग्य एव शक्तिशाली व्यक्तियों के साथ अन्याय करता है तथा दुर्बलताओं और अपूर्णताओं को चिरस्थाई बनाने की चेष्टा करता है। स्वयं स्पेंसर के शब्दों म "दीन एवं दुर्बलों की पीड़ा को कम करने का प्रत्येक प्रयत्न, उनके दुर्भाग्य को चिरस्थाई बनाता है" (Every attempt to mitigate the sufferings of the poor eventuates in the excerbation of it)।

स्पेंसर ने राज्य को एक जैविक प्राणी (Organism) माना ह और उसके विभिन्न अंगों की तुलना व्यक्ति के शरीर के विभिन्न अवयवों स की है। एक प्राणी

शास्त्री (Biologist) होने के कारण अपनी इस तुलना में वह बहुत आगे तक बढ़ गया है। राज्य एवं व्यक्ति के शरीर की समानतायें बतलाते हुए उसने अनेकों उपहासास्पद समानतायें बतलायी हैं जैसे राज्य की रेलें तथा तार आदि व्यक्ति के शरीर की नसें एवं शिरायें हैं तथा राज्य की मुद्रा व्यक्ति के रक्त में पाई जाने वाली लाल व सफेद टिकियाँ (Blood corpusles) आदि। इन समानताओं के द्वारा इसने राज्य के अंगागी (Organiomic theory) की नींव डाली जो पूर्णत असत्य न होने हुए भी बहुत महत्वपूर्ण है।

स्पेंसर की विचार धारा में कुछ अराजकतावादी तत्व भी मिलते हैं। वैज्ञानिक विकासवाद में विश्वास रखने के कारण वह मानता है कि एक समय अथवा युग ऐसा आयगा जब राज्य अनावश्यक तथा निस्सार हो जायगा (State will render herself superfluous)। इस युग में समाज में पूर्णता (Perfection) होगी और राज्य को जो कि दुर्गुणों की सन्तान है, छोड़कर व्यक्ति स्वेच्छा से अराजकतावादी समाज में प्रवेश करेगा, (State is an offspring of evil bearing on it the marks of its parentage)। अपनी पुस्तक 'Social Statics' में उसने लिखा है कि "राज्य का उदय तथा अस्तित्व तो आकस्मिक है और व्यक्ति को अधिकार है कि वह राज्य की अवहेलना करे, उससे अपने सम्बन्ध विच्छेद करले तथा उसके बोझ को फेंक कर स्वेच्छा से एक कानून हीन स्थिति को स्वीकार करलें" (State's existence is merely accidental and an individual has a right to ignore the state drop connections with it refuse its protection, throw off its burdens and adopt a condition of voluntary outlawry)।

स्वतन्त्रता के विषय में स्पेंसर के विचार अत्यन्त ही उदार थे। वह चाहता था कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी मानसिक शक्तियों के प्रकटीकरण का पूरा पूरा अवसर मिले। राज्य के कार्य केवल निषेधात्मक (Negative) हों। व्यक्ति के सार्वजनिक जीवन में भी राज्य अपने हस्तक्षेप द्वारा उसकी स्वतन्त्रता को नहीं छीन सकता क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी इच्छानुसार कुछ भी करने की स्वतन्त्रता है, यदि वह दूसरों को समान अधिकारों से वंचित नहीं करता" (Every one has a freedom to do whatever he wills, provided he infringes not the similar rights of others)।

स्पेंसर व्यक्ति के अधिकारों को अपनी प्रतिभा तथा प्रवृत्तियों के अभिव्यक्तिकरण के लिए आवश्यक साधारण अधिकार के कृत्रिम विभाजन मानता है (Rights are artificial divisions, of the general claim to exercise the faculties)। व्यक्ति के ये अधिकार प्राकसामाजिक (Pre-Social) तथा स्वाभाविक (Natural) हैं जो ईश्वर प्रदत्त गुणों की भाँति उसके व्यक्तित्व में निहित हैं (Inherent in his personality)। उसके अनुसार अधिकार में वैयक्तिक तथा सार्वजनिक दो पक्ष होते हैं और प्रथम पक्ष में वह व्यक्ति के सम्पत्ति तथा परिवार रखने के अधि-

धार को मानता है। सार्वजनिक अधिकार राज्य से सम्बन्धित हैं। स्पेन्सर व्यक्ति को वैयक्तिक भूमि स्वामित्व का अधिकार नहीं देता, किन्तु वह यह मानता है कि भूमि की उपज को व्यक्ति अधिकार पूर्ण अपनी कह सकता है क्योंकि "भूमि पर अपना श्रम व्यय करने से पूर्व उसने समाज की स्वीकृति ले ली थी।" परिवार के सम्बन्ध में स्पेन्सर ने "नारी दासत्व" (Subjugation of females) की कठोर भर्त्सना की है तथा उसका मत था कि परिवार में बच्चों के अधिकार माता पिता आदि के समान होने चाहिए और उन्हें बड़ों का बल पूर्ण नियन्त्रण स्वीकार नहीं करना चाहिए।

स्पेन्सर के दर्शन में दोष—सर्व प्रथम स्पेन्सर का राजनैतिक दर्शन (Political Philosophy) व्यवस्थित एवं सम्बिलष्ट नहीं है (Incoherent)। वह स्थान-स्थान पर ऐसी मान्यतायें रखता है जो परस्पर विरोधी हैं और एक विचार स्वयं उसके दूसरे विचार का खण्डन करता हुआ प्रतीत होता है। उदाहरणार्थ स्पेन्सर यह मानता है कि संसार में एक विकासवाद क्रम काम करता है, अतः इसके विचार के अनुसार समाज का कोई भी रूप अन्तिम नहीं हो सकता। यह निरन्तर विकसित होता रहेगा, किन्तु कुछ दूर आगे चलकर स्पेन्सर यह मानने लगता है कि एक आदर्श समाज में राज्य नहीं रहेगा और समाज एक पूर्ण व अन्तिम स्थिति को पहुँच जायगा। यथार्थ में दोनों विचार विरोधी हैं और स्पेन्सर इन्हें मिलाने के लिए कोई युक्ति सम्मत तर्क नहीं देता। डा० डनिंग्स (Dunnings) स्पेन्सर की इस असम्बद्धता (Inconsistency) की आलोचना करते हुए कहते हैं कि "स्पेन्सेरियन दर्शन में सामाजिक विकास के सिद्धान्त के साथ साथ समाज के एक अन्तिम तथा स्थाई रूप की कल्पना निहित है, जो एक समाधान रहित समस्या है" (*In Spencerian Philosophy, there is an implicit absolute end in social evolution—which is a problem without a solution*)।

२ दूसरे राज्य और व्यक्ति के अंग प्रत्यंग में समानता के आधार पर दोनों को एक मानना भी स्पेन्सर के दर्शन में एक दोष है। राज्य का ढाँचा व्यक्ति, शारीरिक ढाँचे जैसा हो सकता है किन्तु राज्य को शरीर ही मान बैठना सर्वथा अनुचित है (State may be like an organism but not an organism in itself)। राज्य और व्यक्ति के शरीर में यदि कुछ समानतायें हो सकती हैं तो असमानताओं की भी कमी नहीं है, किन्तु स्पेन्सर ने इस पक्ष को बिल्कुल छोड़ दिया है। राज्य और व्यक्ति की शारीरिक व्यवस्थाओं में साम्य बतलाने में स्पेन्सर ने अपने मस्तिष्क को आवश्यकता से अधिक कष्ट दिया है और समानतायें क्लिष्ट कल्पना सी लगती हैं (The anologies are far fetched) रक्त तथा तार विभाग की शिरा एवं धमनियों आदि से समानता दिखलाने समय स्पेन्सर पूर्णतः एक एकाङ्गी वैज्ञानिक रह जाता है।

३ तीसरे स्पेन्सर इस बात को बिल्कुल भूल गया है कि पदार्थ तथा मनुष्य की बनावट तथा व्यवहार में रात दिन का अन्तर है। भौतिक तथा रासायनिक शास्त्रों की भाँति समाजशास्त्र के नियम कभी स्थिर एवं सार्वदेशिक (*Universal*) नहीं हो

सकते । आक्सीजन तथा हाइड्रोजन, दुनियाँ के किसी भी कोने मे निश्चित मात्रा मे मिलने पर पानी ही बनायेंगे, किन्तु ससार के किसी भी कोने मे रहने वाले दो आदमियो का व्यवहार भी समान हो यह असम्भव है। एक आलोचक के शब्दो म "स्पेसर व्यक्ति को बोतल मे भरे पदार्थों की भाँति मानकर अपने अजीब विचार बनाता है' (Spencer forms his queer ideas by treating human beings like the compounds of a bottle) । इसे हम एक वैज्ञानिक की अनजानी भूल (Unconscious mistake) कह सकते है।

४ चौथे विकासवाद के साथ 'अस्तित्व के सघर्ष' तथा 'योग्यतम जीवों का जीवन' (Survival of the fittest) सिद्धान्तो को जोड कर, स्पेसर ने 'एक भयंकर' विचार का प्रतिपादन किया। निम्न श्रेणी के दुर्बल जीवो को अस्तित्व के सघर्ष मे मर जाने देना। सर्वथा अमानवीय एव निर्दयता पूर्ण विचार है, जो सभ्य समाज मे लोगो को स्वीकार नहीं हो सकता (आगे देखिये)।

५ पाँचवे स्पेसर व्यक्ति को एक असम्बद्ध प्राणी (Unrelated being) मान कर चलता है जो समाज का एक अविभाज्य अग नही है। क्योकि "समाज से पृथक मनुष्य स्वय अपने मे एक विरोध है" (Contradiction in itself) [समाज के अभाव मे अथवा उससे उसे असम्बद्ध मानकर चलना मानव स्वभाव के ज्ञान से अपरिचित होना है।

६ छठे स्पेसर एक निष्पक्ष राजनैतिक विचारक नहीं था। राज्य के कार्य तथा सत्ता के विरुद्ध उसके विचार पहले से ही विषाक्त (Poisonous) थे। वह यह मान कर चलता है कि राज्य व्यक्ति का कभी भी कोई भी हित नहीं कर सकता। इस कारण वह राज्य के वरदानो (Blessings) की तरफ आँख उठा कर भी नहीं देखता और केवल काले पक्ष की अतिरञ्जना Exaggeration) करता है।

इस प्रकार स्पेसर का दर्शन अपूर्ण, असगठित (Incoherent) रहस्यात्मक स्मृति तथा महान असफलता के रूप में आज भी जीवित है (It survives as a mystery monument and a splendid failure)।

व्यक्तिवाद का मूल्याङ्कन

१ नैतिक तर्क—व्यक्तिवाद के समर्थको का कहना है कि मनुष्य के चारित्रिक विकास के लिए पर्याप्त स्वाधीनता अनिवार्य है। न्याय तथा नैतिकता की यह माग है कि राज्य अनुचित हस्तक्षेप न करके व्यक्ति को अपनी इच्छाओ तथा रचनात्मक क्षमताओ को उन्मुक्त रूप से प्रकट होने का अवसर दे। उसे अपनी इच्छानुसार अपनी उन्नति करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए क्योकि निर्बाध प्रतियोगिता (Free compe tition) उसके व्यक्तित्व के श्रेष्ठतम अगों को प्रस्फुटित करने मे सहायक होगी। हम्बोल्ट के शब्दों म प्रत्येक व्यक्ति का 'अन्तिम उद्देश्य अपना तथा अपनी आन्तरिक योग्यताओ का उच्चतम एव निर्बाध विकास करना है। क्योकि इसके बिना वह एक

स्वचालित यंत्र मात्र (A self propelled machine) रह जाता है''—(आशीर्वादम्)। उसके जीवन की सार्थकता इसी में है कि वह अपने को अपने आदर्शों के अनुकूल बनाये तथा जीवन में आत्मनिर्भर (Self dependent) बनना सीखे। का ट, फिरते आदि आदर्शवादी भी इस तर्क की सत्यता को स्वीकार करते हैं। मिल के अनुसार ''अपने मनमाने मार्ग पर चलने से व्यक्ति का चरित्र समुन्नत बनता है तथा साथ साथ ही मानवता भी प्रगति की ओर बढ़ती है'' (Laissez faire develops and strengthens the individual and conduces to human Progress) जीवन संघर्ष में अपने पैरों पर खड़ा होने से ही व्यक्ति उद्योगी एवं अध्यवसायी बनता है तथा अन्य लोगों की प्रतियोगिता में आने से ही उसकी मौलिक कार्य शक्तियों को प्रोत्साहन मिलता है। नैतिक दृष्टि से व्यक्तिवादियों का यह विचार ठीक है कि ''प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वार्थ तथा हित भली भाँति जानता है'' (Every individual knows his interests best)। अतः उसे उनकी प्राप्ति के लिए भी अपने आप ही उद्यम करना चाहिए।

व्यक्तिवाद के समर्थक राज्य पर अति हस्तक्षेप का आरोप ठीक ही लगाते हैं और उनका यह तर्क कि राज्य पर अतिनिर्भरता व्यक्ति को पंगु एवं परावलम्बी बनाती है सर्वथा सत्य है। ''राजकीय सहायता यथार्थ में व्यक्ति के आत्म विश्वास के भाव को नष्ट करती है, उसके उत्तरदायित्व को निर्बल करती है तथा उसके चारित्रिक विकास को कुण्ठित करती है'' (State action tends to destory the sense of self reliance, weakens his responsibility and blunts his character)। यह स्वाभाविक है कि जब व्यक्ति प्रत्येक कार्य में राज्य की ओर आशाभरी दृष्टि से देखेगा तो वह आलसी तथा प्रमादी जीव हो जायगा। उसमें अकर्मण्यता आ जायगी और उसकी क्रियात्मक शक्ति निष्क्रिय हो जावेगी। ''राजकीय अतिशासन सर्वत्र एक शुष्क तथा नीरस एकता उत्पन्न करता है, जिसके कारण समाज एक मृतकों की संस्था की भाँति विभिन्नताओं से शून्य हो जाता है'' (Over government superinduces dull uniformity and tends society to a dead level)। व्यक्तिवादी इसी नैतिक तर्क के आधार पर अन्य विचारधाराओं को चुनौती देते हैं और कहते हैं कि ''मानवता के इतिहास में उच्चतम सभ्यता का विकास व्यक्तिवादी समाज में ही हुआ है।'' उनका यह दावा है कि राज्य व्यक्ति के स्वतन्त्र प्रोत्साहन को अनिवार्य रूप से कुचलता है और अपने कर्मचारियों एवं बहुत बड़ी सेना द्वारा व्यक्तित्व पर आक्रमण करता है। अतः नैतिकता की यह माँग है कि समाज में प्रत्येक व्यक्ति के सहज विकास तथा पूर्णता की प्राप्ति के लिए राज्य को अपने कार्य न्यूनतम सेवाओं तक ही सीमित रखने चाहिए।

२. वैज्ञानिक तर्क (Biological argument)—इस तर्क के प्रधान व्याख्याता हर्बर्ट स्पेन्सर हैं। वे व्यक्तिवाद का समर्थन इस आधार पर करते हैं कि ''व्यक्ति को अकेला रहने दो''। Laissez Faire की नीति विकासवाद के जैविक सिद्धान्त के सर्वथा अनुकूल है। मुक्त प्रतियोगिता (Free competition) में ही अस्तित्व के लिए

सच्चा संघर्ष हो सकता है, जिससे परिणाम स्वरूप सदा योग्यतम व्यक्ति की ही विजय (Survival of the fittest) होती है। व्यक्तिवादी वैज्ञानिक विचारक अपने मत की पुष्टि के लिए निम्न कोटि के जीवों में पाये जाने वाले अस्तित्व के संघर्ष (Struggle for existence) तथा योग्यतम की विजय (Survival of the fittest) के सिद्धान्तों को मानव समाज पर भी लागू करते हैं और यह तर्क देते हैं कि विकास और प्रगति का स्वाभाविक मार्ग यह है कि दीन दुर्बल, अयोग्य एवं अशक्त समाज से स्वतः विलीन होते जायें, क्योंकि बाह्य रूप से अन्याय पूर्ण होते हुए भी समाज का कल्याण इसी में है कि इसका प्रत्येक सदस्य अपनी योग्यता एवं शक्ति के आधार पर जीवित रहे तथा वे सबके सब सशक्त समर्थ एवं स्वस्थ हों। स्पेंसर के शब्दों में "सम्पूर्ण प्रकृति में हम एक दृढ़ अनुशासन को क्रियाशील पाते हैं। यह अनुशासन कुछ निर्दय है पर निर्दय इस लिए कि वह और भी अधिक दयापूर्ण हो सके। उदाहरणार्थ यह एक कठोरता सी लगती है कि हम विधवाओं तथा अनाथों को जीवन मरण के संघर्ष में अकेला तथा असहाय छोड़ दें, किन्तु सार्वदेशिक मानवता के महत्तर कल्याण की दृष्टि से देखने पर ये निर्दयतायें परम दयापूर्ण दिखाई देती हैं" (Pervading all nature we may see at work a stern discipline, which is a little cruel, that it may be very kind For instance it seems hard that widows and orphans should be left free to struggle for life and death Nevertheless when regarded in connection with the interest of universal humanity, these harsh fatalities are seen to be full of beneficience)। स्पेंसर के मतानुसार मनुष्य की शारीरिक व्यवस्था तथा सामाजिक व्यवस्था में बहुत कुछ समानता है और इसीलिए जिस प्रकार शरीर के विभिन्न अवयवों की पुष्टता सारे शरीर को सुदृढ़ बनाती है, इसी प्रकार व्यक्तिवाद के सिद्धान्त के अनुसार समाज के सदस्यों की व्यक्तिगत उन्नति सामाजिक विकास एवं कल्याण का मार्ग प्रशस्त करेगी। वैज्ञानिक तार्किक मानते हैं कि स्वस्थ उद्यमी एवं योग्य व्यक्तियों की संख्या आलसी, दरिद्र एवं अज्ञानी व्यक्तियों की तुलना में अनुपातिक रूप से कम बढ़ती है और चूँकि मूर्ख एवं निर्धन पैदा अधिक होते हैं तो उनकी मृत्यु संख्या भी अधिक ही होनी चाहिए। अतः यदि ऐसी स्थिति में राज्य दीन एवं दरिद्रों को सहायता देकर जीवित रखने का प्रयत्न करेगा तो थोड़े समय में ही ये लोग समाज में बहुमत हो जायेंगे और सारा समाज उन्नति के बदले अवनति के मार्ग पर चला जायगा। इसलिए एक वैज्ञानिक तथा जीवशास्त्री की दृष्टि से समाज का अध्ययन करता हुआ स्पेंसर मानता है कि "यदि हमें एक योग्य, सुदृढ़ एवं सशक्त मानवजाति का विकास करना है तो यह उचित है कि हम व्यक्तियों को उनके अपने ही भरोसे छोड़ दें जिसके कारण शक्तिशाली लोग ही जीवित रह सकें तथा अयोग्य स्वतः नष्ट हो जायें" (If we are to evolve a race of strong, able and virile human beings we should leave individuals to themselves so that the strong will survive and the unfit will be eliminated)।

३ आर्थिक तर्क (Economic Argument)—आर्थिक दृष्टिकोण से व्यक्तिवाद के समर्थकों की यह धारणा है कि प्रत्येक प्रौढ़ व्यक्ति अपने स्वार्थों को भली भाँति जानता है और इस कारण उसे यह भी ज्ञान रहता है कि किस कार्य विशेष पर अपना श्रम व्यय करने से उसे अधिकतम आर्थिक लाभ हो सकता है। इन लोगों का यह विश्वास है कि यदि समाज में मुक्त प्रतियोगिता (Free competition) हो तथा व्यापार के क्षेत्र में राजकीय बन्धन न हो, तो देश का उत्पादन निश्चित रूप से बढ़ेगा तथा एक दूसरे से अधिक कमाने की प्रतियोगिता में वस्तुओं का मूल्य भी कम से कम रहेगा। प्रतियोगिता के कारण उत्पादन की मात्रा के साथ साथ माल की कोटि भी सुन्दरतर होगी तथा अपने व्यक्तिगत हानि लाभ के कारण कार्य जल्दी व अच्छा होगा। केवल वे ही वस्तुएँ बनाई जावेंगी जिनकी समाज को आवश्यकता होगी और इस प्रकार गृह व्यापार तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार दिन दूने तथा रात चौगुने बढ़ेंगे। प्रत्येक उत्पादनकर्ता सदैव इस बात की कोशिश करेगा कि कम से कम मूल्य पर बढ़िया से बढ़िया वस्तु बने, जिसके द्वारा उसकी स्वयं की पूँजी तो बढ़ेगी ही पर वह मजदूरों को भी अधिक से अधिक मजदूरी दे सकेगा। इस प्रकार की व्यक्तिवादी अर्थ व्यवस्था में योग्य मजदूर को भी यह स्वतन्त्रता होगी कि वह अपना परिश्रम अधिकतम मजदूरी देने वाले को बेचे (To sell his labour to the highest bidder)। राजकीय नियन्त्रणों से स्वतन्त्र होने के कारण वह वस्तुओं के मूल्य, श्रम की अवधि, पारिश्रमिक सम्बन्धी सारी कठिनाइयों का स्वयं सामना करके अपने को तत्कालीन अर्थ व्यवस्था के अनुकूल बना लेगा। किन्तु यदि इसके विपरीत व्यक्ति की आर्थिक रुचि तथा व्यावसायिक आकांक्षा पर बन्धन लगाये गये तो देश की अर्थ व्यवस्था सड़ने लगेगी तथा शीघ्र ही विशृङ्खलित हो जायगी। अतः देश की आर्थिक समृद्धि (Economic prosperity) तथा अधिकतम व्यक्तियों की प्रसन्नता एवं कल्याण इसी में है कि राज्य व्यक्ति के आर्थिक जीवन में हस्तक्षेप न करे तथा उसे यथेच्छा कार्य करने दे। इतिहास साक्षी है कि राज्य द्वारा आर्थिक क्षेत्र में स्वतन्त्रता मिलने पर १८ वी तथा १९ वी शताब्दी में इंगलैण्ड ने औद्योगिक क्षेत्र में कितनी आशातीत उन्नति की थी। उन्मुक्त प्रतियोगिता के होने पर ही अनेकों वैज्ञानिक आविष्कारों का जन्म होता है तथा पारस्परिक स्पर्द्धा के कारण देश का व्यापार व अर्थ व्यवस्था शीघ्रता से उन्नति करता है। अपनी प्रसिद्ध रचना "Wealth of Nations" में (Adam Smith) ने भी इस तर्क के आधार पर व्यक्तिवाद का समर्थन किया है। उनका मत है कि राज्य को आर्थिक क्षेत्र में धोखेबाजी तथा जालसाजी आदि को रोकने के कार्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं करना चाहिए।

४ राज्य की अयोग्यता (Incompetency of the State)—व्यक्तिवादियों की यह दृढ़ मान्यता है कि राज्य एक ऐसी अयोग्य संस्था है जो व्यक्ति की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक आदि किसी भी प्रकार का हित करने में सर्वथा असमर्थ है। अतः उसको सर्व शक्तिमान तथा सर्वगुण सम्पन्न मानना एक बहुत बड़ी मूर्खता है। उनका

तर्क है कि राज्य एक भावात्मक वस्तु है (Abstract thing) उसके सारे कार्य उसके कुछ ऐसे पदाधिकारियों द्वारा किए जाते हैं जो राजकीय स्वार्थों को अपने व्यक्तिगत स्वार्थों से भिन्न मानते हैं, अतः यह कदापि सम्भव नहीं है कि वे लोग ऐसे कार्यों को योग्यता तथा शीघ्रता के साथ करें। एक व्यापारी की हानि की भाँति राज्य की हानि को वे अपनी व्यक्तिगत हानि नहीं समझते और इसीलिए राज्य द्वारा नियन्त्रित सारे उद्योगों में, अयोग्यता देरी तथा सबसे कम लाभ होता है। उदाहरण के लिए हम राजकीय उद्योग (State managed enterprize) रेल तथा तार-डाक आदि को ही लें, यदि इन दोनों विभागों का सञ्चालन किसी प्राइवेट संस्था के आधीन हो तो इनकी आमदनी दुगनी तिगुनी हो जाये। दूसरे अपने व्यक्तिगत लाभ की वृद्धि के लिए एक व्यापारी यात्रियों आदि के लिए नई नई सुविधायें देगा तथा स्वयं यदा-कदा उसका निरीक्षण करता रहेगा कि कहीं कोई शिथिलता तो नहीं है, किन्तु राजकीय कर्मचारी आत्म स्वार्थ के अभाव में राजकीय हानि लाभ तथा जनता की सुविधा, असुविधा की कोई चिन्ता नहीं करते। इन सबका कारण यही है कि व्यक्ति अपने स्वार्थ तथा हितों को सरकार की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह पहिचानता है और उनकी रक्षा ध्यान से करना चाहता है, जिसके परिणामस्वरूप राज्य द्वारा नियन्त्रित उत्पादन केन्द्रों में वस्तुओं का अपव्यय (Waste) होता है तथा मितव्ययिता (Economy) की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। प्राइवेट संस्था में कोई एक निश्चित व्यक्ति प्रत्येक कार्य के लिए जिम्मेदार होता है, किन्तु चूँकि राज्य का कार्य सब का कार्य है, इसलिए उसका उत्तरदायित्व किसी पर भी नहीं (Every body's business is no body's business)। इसके अतिरिक्त वैयक्तिक संस्थाओं में योग्य तथा परिश्रमी व्यक्ति को उन्नति के अवसर अधिक होते हैं और अपने परिश्रम के लिए उसे पारितोषिक भी मिलता रहता है, किन्तु राज्य में व्यक्ति के परिश्रम का मूल्यांकन करने वाला कोई भी नहीं होता इसीलिए वहाँ पर घूसखोरी (Bribery), भ्रष्टाचार (Corruption) तथा पक्षपात आदि को अधिक प्रश्रय मिलता है। इस कारण व्यक्तिवादियों का मत है कि यदि राज्य को अधिक कार्य सौंपे गये तो और भी अधिक अयोग्यता फैलेगी और रे (Rae) के शब्दों में "स्वामी की आँखों के आगे व्यक्ति को प्राप्त होने वाले 'परिश्रम के लिए प्रोत्साहन' तथा 'अपव्यय पर नियन्त्रण' सर्वथा लुप्त हो जायेंगे" (Disappearance of checks on waste and pushing incentive to exertion which a private individual enjoys in the eye of the master)।

५ व्यावहारिक कठिनाइयाँ (Practical Difficulties)—व्यक्तिवाद के समर्थन में जो अन्तिम तर्क दिया जाता है वह है "व्यावहारिक अनुभव"। अपने मत की पुष्टि के लिए व्यक्तिवादी इतिहास का आश्रय लेते हैं और कहते हैं कि यदि भूतकाल के इतिहास से हम कोई शिक्षा ले सकते हैं तो वह यही कि राज्य व्यक्ति के जीवन से अधिक खिलवाड़ न करे क्योंकि भूतकाल में जहाँ जहाँ भी उसने व्यापारिक कानून, दैनिक अनुशासन, उत्पादन, भोजन, वस्त्र आदि विषयों में हस्तक्षेप किया है

यहाँ-यहाँ ही उसे अपने उद्देश्य की प्राप्ति में गहरी असफलता मिली है। सभी देशों के अतीत के इतिहास इस बात के साक्षी हैं कि राजकीय हस्तक्षेप सदैव मूलतः पूर्ण सिद्ध हुआ है और सरकार को अन्त में हताश होकर उन व धनों को वापिस लेने पड़े हैं। बक्ल (Buckle) के मत में तो राजकीय हस्तक्षेप व नियन्त्रणों में व्यक्ति तथा समाज का विकास असम्भव है और वह आश्चर्य प्रकट करता है कि "सतत बाधाओं के सम्मुख होते हुए भी मानव सभ्यता इतनी आगे कैसे बढ़ गई" (How human civilization has advanced in face of repeated obstacles)।

व्यक्तिवाद की आलोचना

व्यक्तिवाद के समर्थकों द्वारा उपरोक्त तर्कों का उसके आलोचकों ने बड़ी निपुणता से खण्डन किया है। ये आलोचक प्रधानतः समाजवादी तथा साम्यवादी विचारक हैं, जिनका मत है कि "राज्य का व्यक्ति के जीवन पर प्रभुत्व होने में ही व्यक्ति का कल्याण है।" ऊपर दिये हुए समस्त तर्कों को व एकाङ्गी (One sided) मानते हैं और व्यक्तिवाद के विरुद्ध निम्नलिखित आरोप लगाते हैं —

१. राज्य एक आवश्यक दुर्गुण नहीं है (State is not a necessary evil)— व्यक्तिवादियों की यह धारणा कि राज्य एक आवश्यक दुर्गुण है, सर्वथा भ्रान्त तथा मिथ्या है। प्रथम तो राज्य दुर्गुण न होकर निश्चित रूप से एक कल्याणकारी संस्था (A positive good) है और दूसरे यदि हम उसे दुर्गुण मान भी लें तो वह किसी भी दृष्टि से समझौता मानव समाज के लिए आवश्यक नहीं हो सकती। व्यक्तिवाद के आलोचक इस विचार की खिल्ली उड़ाते हैं कि राज्य की जड़ें व्यक्ति की दुर्बलतायें हैं। उनका विश्वास है कि अरिस्टाटल (Aristotle) के ये शब्द कि "राज्य की उत्पत्ति जीवन सम्भव बनाने के लिए हुई किन्तु मनुष्य जीवन को अधिक सुन्दर एवं श्रेष्ठतर बनाने के लिए वह आज तक जीवित है", (State came into existence for the sake of life and continues for the sake of good life) अधिक सत्य है। कुछ असामाजिक तत्वों (Unsocial elements) पर बल का प्रयोग करने के आधार पर ही हम राज्य को दुर्गुण नहीं मान सकते, क्योंकि वह बल का प्रयोग अपने स्वार्थ साधन के लिए नहीं करता किन्तु उसके द्वारा व्यक्ति को दण्डित करने में भी सार्वजनिक हित का एवं वृहत्तर उद्देश्य निहित है। अतः राज्य का जन्म किसी बल (Force) अथवा पापों (Sins) के कारण नहीं हुआ उसको उत्पन्न करने वाली तो मनुष्य की सामाजिक भावनायें (Social instincts) तथा व्यावहारिक आवश्यकतायें (Practical needs) हैं (Nature impels and necessity compels men to move in the state)। यह सम्भव है कि बर्बर एवं अर्द्ध-नग्न समाज में राज्य उन व्यक्तियों के लिए एक दुर्गुण रहा हो, किन्तु आज के एक सुसंस्कृत एवं सभ्य समाज में वह निश्चय ही एक जनहितकारी संस्था है जो सामाजिक कल्याण (Social welfare) तथा सामूहिक हित (Collective good) के कार्य करती है। आज के

राज्य के पुलिस तथा स्वास्थ्य आदि विभाग व्यक्ति पर कुछ नियमों को लागू कर उसकी स्वतन्त्रता को सीमित करते है तो यह केवल इसलिए कि वह अधिक स्वतन्त्रता तथा आनन्द का उपभोग कर सके। स्कूल खोलना, रेलें चलाना, सड़कें बनवाना आदि कार्य किसी भी विवेकशील प्राणी द्वारा दुर्गुण नही कहे जा सकते। सत्य तो यह है कि मानव सभ्यता ने जो कुछ प्रगति की है उसका बहुत कुछ श्रेय राज्य द्वारा दिये गये संरक्षण को ही है।

२ स्वतन्त्रता का अर्थ अनियन्त्रित उच्छृङ्खलता नहीं है। व्यक्तिवादी विचारकों की स्वतन्त्रता की परिभाषा के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को जब तक कि उसकी स्वतन्त्रता अन्य व्यक्तियों की समान स्वतन्त्रता से नही टकराती, तब तक तथा उस सीमा तक पूर्ण रूप से अनियन्त्रित रहने का अधिकार है। स्वतन्त्रता की यह परिभाषा सर्वथा दोषपूर्ण है। वस्तुत राजकीय हस्तक्षेप द्वारा स्वतन्त्रता की मात्रा घटती नहीं बल्कि सच्चे अर्थों में उसके द्वारा उसकी वृद्धि होती है। स्वतन्त्रता तथा कानून (Law and Liberty) एक दूसरे के विरोधी नही अपितु परस्पर म पूरक (Supplementry) है। बिना कानून तथा बन्धनो के स्वतन्त्रता का अर्थ उच्छृङ्खलता हो जायगा जिसका उपभोग कोई भी समाज का सदस्य नही कर सकेगा। अत राजकीय बन्धन ध्यान से देखने पर व्यक्ति की स्वतन्त्रता का एक इच भी अपहरण नही करते बल्कि उसे सुनिश्चित एव सुसरक्षित बना कर अधिक स्वतन्त्र बनाते हैं और स्वतन्त्रता के उपभोग के मार्ग की सारी बाधाओं को दूर करते हैं। व्यक्तिवादी यह धारणा कि स्वतन्त्रता बन्धनो के अभाव (Absence of restraints) मे निवास करती है अत एक नकारात्मक वस्तु (Negative proposition) है, पूर्णत असत्य है। व्यावहारिक स्वतन्त्रता (Practical liberty) केवल सीमित स्वतन्त्रता (Limited freedom) ही हो सकती है और जैसा कि लास्की (Laski) का मत है "स्वतन्त्रता की उत्पत्ति तथा सुरक्षा की समस्या यथार्थ में अधिकतर उसे नियन्त्रित करने की समस्या है" (The whole problem of creating and guaranteeing liberty is largely a problem of organising restrictions)। इससे स्पष्ट है कि सभी नियन्त्रण दुर्गुण नहीं होते और यदि व्यक्ति के विकास के लिए स्वतन्त्रता की आवश्यकता है तो उसे उपभोग के योग्य बनाने के लिए नियन्त्रित करना भी उतना ही आवश्यक है। राजकीय हस्तक्षेप तो एक कड़वी दवा की भाँति है जो ऊपर से कुछ कष्टदायक होते हुए भी अन्तत रोगी का हित ही करती है। अत सत्य तो यह है कि व्यक्ति के सुखी, सफल एव सम्पन्न जीवन के लिए राजकीय नियन्त्रण आवश्यक ही नही, अनिवार्य है और जैसा कि रूचो (Ritchie) का मत है कि भूल से व्यक्तिवादी "स्वतन्त्रता तथा राजकीय हस्तक्षेप को एक रोकड़ बही के जमा तथा खर्च के दो पक्ष मान बठे है, जिसके कारण एक पक्ष की बढोतरी से है आवश्यक रूप से दूसरे पक्ष की घटोतरी लगती है" (Individualist treat liberty and state interference as the credit and debit sides of an account book so

that any increase in one to them, necessarily means a decrease with other) ।

३ 'व्यक्तिवादी समाज' का दृष्टिकोण दोषपूर्ण है (View of society is faulty)—व्यक्तिवादियों के अनुसार समाज एक ऐसे व्यक्तियों का समुदाय है, जिनका कोई समान उद्देश्य नहीं (No common aim) है अर्थात् उन सबके हित, स्वार्थ तथा उद्देश्य पृथक् पृथक् हैं और उनकी प्राप्ति के लिए वे अलग अलग, यथाशक्ति प्रयत्न करते हैं। कोई एक निश्चित एवं समान उद्देश्य उन्हें संयुक्त नहीं करता। इस प्रकार व्यक्तिवादी परिभाषा के अनुसार 'समाज कुछ एक व्यक्तियों का आकस्मिक एकत्रीकरण है जो परस्पर में असम्बद्ध है' (A chance aggregation of unrelated individuals)। व्यक्तिवाद के आलोचक मानते हैं कि समाज के विषय में यह दृष्टिकोण पूर्णत दोषपूर्ण एवं मिथ्या है। समाज यथार्थ में कोई चेतनाहीन ईंट तथा पत्थरों का समुदाय नहीं है। विवेकशील तथा चेतन्य मानव उसके सदस्य हैं अत यह सर्वथा असम्भव है कि वे बिना किसी समान उद्देश्य (Common aim) के एकसा सामाजिक जीवन बिताने के लिए इकट्ठे हुए हों। यह माना कि प्रत्येक व्यक्ति का एक मौलिक व्यक्तित्व तथा अपनी इच्छायें होती हैं किन्तु समाज के सदस्य होने के नाते उसे अपने को अन्य सदस्यों के साथ मिल कर (Accomodate) रहना होता है। अत उसका कोई भी कार्य केवल अपने तक सीमित नहीं हो सकता। किसी न किसी रूप में वह समाज पर प्रभाव डालता है और इसीलिए कोई भी सामाजिक प्राणी व्यक्तिवादी रोबिनसन क्रूसो (Robinson Crusoe) नहीं बन सकता। वस्तुत व्यक्ति समाज का अङ्ग ही नहीं है बल्कि 'सामाजिक सम्बन्धों का समूह' (A bundle of social relations) भी है। वह अनजाने ही ऐसे कितने ही कार्य कर डालता है जो वह करना नहीं चाहता, और मनुष्य की यह इच्छा, जिसे रूसो ने जनरल विल (General will) कहा है उसके सामाजिक प्राणी होने की परिचायिका है। जोड (Joad) के शब्दों में 'व्यक्ति के कार्यों से ऐसे अनेकों अनजाने परिणाम निकलते हैं, जिन्हें वह कभी भी नहीं चाहता" (Out of the activities of the individual there result certainly unforseen consequences which none of these individuals intended)। सिद्ध करता है कि व्यक्ति को असामाजिक तथा असम्बद्ध प्राणी मानना, अरस्तू (Aristotle) के उस महान और दर्शन को कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है (Man is a social animal) असत्य सिद्ध करता है। अत आलोचकों का मत है कि 'अपने वातावरण में तथा सम्बन्धों से पृथक् किये जाने पर व्यक्ति केवल एक भावात्मक, एक तार्किक प्रेत, एक रूपकीय पदार्थ तथा अस्तित्वहीन वस्तु बन जाती है' (Apart from his surroundings and relationships, the individual is a mere abstraction a logical ghost, a metaphysical spectre, a mere negation)। व्यक्तिवाद ने व्यक्ति को ऐसा मानकर एक बहुत बड़ी भूल की है।

४ व्यक्तिवादी व्यक्ति का चित्र मनोवैज्ञानिक नहीं है (Unpsychological picture of the Individual)—व्यक्तिवादियों का यह मत है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने हितों को भली भाँति जानता है, उनके मनोवैज्ञानिक अध्ययन की अपूर्णता का द्योतक है। प्रथम तो एक औसत व्यक्ति (An average individual) आज के जटिलतापूर्ण समाज में कभी भी यह दावा नहीं कर सकता है कि अमुक कार्य करने में ही उसका हित है। क्योंकि स्वार्थ की भावना के कारण यदि वह अपने वर्तमान हित को पहचान भी लेता है, तो यह निश्चित रूप से नहीं जानता कि ऐसा करने से उसे भविष्य में भी लाभ होगा या नहीं। दूसरे यदि यह मान भी लिया जाय कि वह अपने वर्तमान और भावी हितों को पहिचानता है तो यह नहीं माना जा सकता कि वह उन हितों को प्राप्त करने के साधन भी स्वयं ही पहिचानता है। माना यह सत्य है कि कुछ बातें ऐसी है, जिन्हें व्यक्ति ही अपने हित को सबसे अच्छी तरह समझता है किन्तु इतने पर भी अनेकों ऐसे प्रश्न बच जाते हैं जहाँ समाज तथा राज्य अपनी निष्पक्ष सम्मति से उसे अधिक लाभ पहुँचा सकता है। स्वार्थी होने के साथ साथ व्यक्ति में भावुकता (Sentimentalism) भी होती है और भावावेश में वह अपने तथा अन्य सभी के हितों को भूल जाता है। ऐसी स्थिति में राज्य के अतिरिक्त अन्य कोई संस्था उसे अपने हित का कार्य करने के लिए बाध्य नहीं कर सकती। उदाहरणार्थ जो व्यक्ति भावावेश में आकर आत्म हत्या करते हैं, वे अपना हित नहीं जानते, अतः राज्य का कर्तव्य है कि उन्हें ऐसा करने से रोके तथा उन्हें अपना हित बतलाये। इसी प्रकार व्यक्ति को सुयोग्य डाक्टरों द्वारा चिकित्सा करवाने, अच्छा भोजन खाने तथा स्वस्थ वातावरण रखने के लिए राज्य को अधिकार है। क्योंकि वह सामूहिक तथा व्यक्तिगत हितों को अधिक अच्छी तरह जानता है। इसलिए व्यक्तिवाद के आलोचक गार्नर आदि का मत है कि राज्य को चाहिए कि अज्ञानियों को खतरे से बचाए तथा स्वच्छ रहना सिखाये क्योंकि 'एक व्यक्ति के अपने पड़ोसी को पिस्तौल से मारने की धमकी देने तथा अपने मकान को अस्वस्थ स्थिति में रखने की माँग में कोई बहुत बड़ा अन्तर नहीं है" ('There is no very great difference between the claim of an individual to go about threatening the life of his neighbour with a pistol and his claim to keep his premises in an unsanitary condition—Huxley) आज का समाज ज्यों ज्यों जटिल बनता जा रहा है, व्यक्तिवादियों की यह विचारधारा कि व्यक्ति स्वयं अपने हितों का योग्यतम निर्णयकर्ता है, मिथ्या होती जा रही है। आशीर्वादम के शब्दों में 'अनुभव बतलाता है कि परस्पर विरोधी लक्ष्यों को सुलझाने के लिए तथा व्यक्तिगत दुर्बलता का लाभ कोई दूसरा न उठा पाय, हमें राज्य की शक्ति की आवश्यकता है।"

५ व्यक्ति तथा समाज में जैविक समानता बतलाना अनुचित है (Biological analogy between the Individual and the state is improper) —व्यक्तिवाद के समर्थकों का यह मत है कि व्यक्ति तथा समाज की बनावट तथा व्यवस्था में एक

साम्य है, पूर्ण सत्य नहीं है। बाह्य रूप से देखने पर चाहे दोनों कुछ-कुछ एक से प्रतीत हों, किन्तु इसी साम्य के आधार पर दोनों को पूर्णतः एक मान बैठना अनुचित है। वास्तव में व्यक्ति और समाज की बनावटों में कुछ ऐसे मूलभूत अन्तर (Fundamental differences) जिन्हें स्पेंसर आदि व्यक्तिवादी भूल गए मालूम होते हैं। उदाहरणार्थ यदि हम समाज में सरकार की व्यक्ति के शरीर में उसके मस्तिष्क से तुलना करते हैं तो इसका निश्चित परिणाम यह निकलता है कि जिस प्रकार मस्तिष्क शरीर पर निरंकुश रूप में शासन करता है इसी प्रकार सरकार को समाज पर अथवा राज्य पर अनियन्त्रित रूप से (Despot) शासन करना चाहिए। स्वयं बार्कर (Barker) जैसे विचारक का मत है कि "स्पेंसेरियन जीविक सिद्धान्त तथा व्यक्तिवाद दो अनमेल सहचर हैं" (Spencerian, biology and individualism are two unwilling yoke fellows)।

६ निम्नकोटि की जीव सृष्टि तथा मानव सृष्टि में अन्तर है (There is a difference between the human Creation and the lower animal world)—इन्सरवादी वैज्ञानिकों का यह मत है कि प्राकृतिक नियम निम्नकोटि की जीव सृष्टि के अनुसार जीव मनुष्यों पर भी लागू होता है, तर्क संगत नहीं है। यह सत्य है कि प्राकृतिक विकासवाद का सिद्धान्त जीव सृष्टि की भाँति मानव समाज में भी पाया जाता है, किन्तु अपनी बुद्धि तथा मानसिक प्रतिभा के कारण मनुष्य पर वह समान रूप में लागू नहीं होता। छोटे छोटे जीव अपनी परिस्थितियों के आधीन होते हैं और उसके अनुयायी होने के कारण अपना रूप बदलते रहते हैं। किन्तु मनुष्य में अपनी परिस्थिति बदलने की क्षमता है। वह अपने बुद्धिबल से प्रकृति को अपने अनुकूल ढाल कर उस पर शासन करता है। उसमें यह सामर्थ्य है कि वह स्वयं के जीवन के साथ साथ अन्य साथियों को भी अस्तित्व के संघर्ष में बचने तथा जीवित रहने का अवसर दे सके। इसलिए वह निम्नकोटि की जीव सृष्टि से भिन्न है और इस अन्तर को भूल जाने में व्यक्तिवादी वैज्ञानिक विचारकों ने एक भारी भूल की है।

७ व्यक्तिवादी दर्शन निर्दय तथा अमानवीय है (Individualist philosophy is cruel and inhuman)—कुछ आलोचकों का मत है कि व्यक्तिवादी दर्शन में "योग्यतम का जीवन" तथा "अस्तित्व के लिए संघर्ष दो बहुत भयकर विचार हैं जो किसी भी मानवीय नैतिकता के आधार पर स्वीकार नहीं किए जा सकते। स्पेंसर का यह कथन कि राज्य व्यक्ति को अपना जीवन जीने के लिए अकेला छोड़ दे और यदि वह अपनी दुर्बलता के कारण जीवित न रह सके तो उसे मर जाने दे, एक बहुत क्रूर निर्दयता लगती है। यदि राज्य ऐसा करता है तो वह अनाथ, असक्त तथा दीन हीनों के साथ एक बहुत बड़ा अन्याय करता है। कुछ बलवान तथा स्वार्थी लोग अपना स्वार्थ साधन करते रहें तथा दीन एवं अनाथ सहायता तथा आश्रय के अभाव में कुचल कर मार दिए जायें एक बहुत निर्मम हृदयहीनता है जिसे एक मानवीय

संस्था (Humanitarian institution) होने के नाते राज्य को कभी भी स्वीकार नहीं करना चाहिए।

८. अधिकतम बलशाली आवश्यक रूप सदैव श्रेष्ठतम अथवा योग्यतम नहीं होता (The strongest does not necessarily always mean the best or the fittest)—स्पेंसर का यह तर्क कि अस्तित्व के संघर्ष में जो अधिकतम शक्तिशाली होगा वही जीता बचेगा और इस कारण वह श्रेष्ठतम तथा योग्यतम व्यक्ति होगा परम आपत्तिपूर्ण है। कोई भी विचारपूर्ण व्यक्ति इस तर्क से सहमत नहीं हो सकता कि शक्तिशालिता और योग्यता एक ही वस्तु के दो नाम हैं। यथार्थ में "योग्यतम" (Fittest) शब्द एक आपेक्षिक शब्द (Relative term) है। जो वस्तु आज एक व्यक्ति के लिए योग्य या उपयुक्त है वह कल ही उसके लिए अथवा आज ही किसी अन्य व्यक्ति के लिए सर्वथा अयोग्य तथा अनुपयुक्त हो सकती है। फिर जिस प्रकार अधिकतम बलशाली (Strongest) योग्यतम नहीं हो सकता, इसी प्रकार यह भी आवश्यक नहीं कि योग्यतम (Fittest) व्यक्ति श्रेष्ठतम (Best) भी हो। स्पष्टतः यह एक अर्थहीन तर्क है क्योंकि, जैसा कि लीकॉक (Leacok) का कथन है, "यदि बचे रहने की योग्यता की एक मात्र कसौटी, बच रहना ही है और यह बचा हुआ व्यक्ति ही योग्यतम है, तो एक सम्पन्न चोर हमारी प्रशंसा का पात्र हो जायगा और एक भूखा शिल्पी हमारी निन्दा का विषय होगा" (If the sole test of fitness to survive is found in the fact of survival, then the prosperous burglar becomes an object of commendation and the starving artisan a target of contempt)। यथार्थ में देखा जाय तो आज के मानव समाज ने पारस्परिक सहानुभूति एवं सहायता के नैतिक सिद्धान्त को अपना कर 'अस्तित्व के निर्दयतापूर्ण संघर्ष को बन्द कर दिया है। स्वयं हक्सले (Huxley) के शब्दों में "राज्य एक मानवीय संस्था है, अतः उसे पाशविक सृष्टि के कानून को न मान कर "योग्यतम व्यक्ति के जीवन" की अपेक्षा जीवित व्यक्तियों को योग्यतम बनाने के उद्देश्य का अनुसरण करना चाहिए"। (State is a human institution and we should not be guided by laws of animal world. With us the aim should not be the survival of the fittest, but the fitting of as many as possible to survive)

९. व्यक्तिवादी आर्थिक स्वतन्त्रता वर्तमान युग में अव्यावहारिक है (Laissez faire, an impracticability in the modern age)—व्यक्तिवाद की वर्तमान युग में सबसे अधिक आलोचना इसी आर्थिक अथवा व्यवसायिक स्वतन्त्रता के विषय को लेकर हुई है। समाजवादी विचारक इसी विषय को लेकर व्यक्तिवाद को एक मृत सिद्धान्त घोषित करते हैं। उनकी मान्यता है कि आज के औद्योगिक युग में (Industrial age) जब कि वैज्ञानिक आविष्कारों द्वारा उत्पादन एवं वितरण आदि के साधनों में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन हो चुका है, यह सर्वथा एक अव्यावहारिक (Impossibility) है कि व्यक्ति को आर्थिक दौड़ में अपने पैरों की शक्ति पर ही छोड़

दिया जाय। १८वीं शताब्दी में यह सिद्धान्त चाहे कुछ हद तक लाभदायक सिद्ध हो सका हो, किन्तु आज यदि ऐसा प्रयोग किया जाय तो यह निश्चित है कि कुछ गिने चुने पूँजीपति सारे व्यापार पर एकाधिकार (Monopoly) कर लेंगे। श्रमिक जिन्हें आज की समाजवादी सरकारें भी अपने उचित स्वत्व (Due) नहीं दे सकी हैं, शोषण की अधिकता में भुखमरी की सीमा को पहुँच जायेंगे। आर्थिक प्रतियोगिता आज के युग में सरकारी नियन्त्रण चाहती है क्योंकि यदि उसे बिना किसी बन्धन के बढ़ने दिया जाय तो विज्ञापन (Advertisements) आदि में पैसों का इतना दुरुपयोग होगा, कि उपभोक्ता (Consumer) को वस्तुएँ बहुत अधिक मूल्य पर मिलेंगी तथा सारे व्यापारिक सम्बन्धों में एक गड़बड़ी फैल जायगी। अतः व्यक्तिवादियों का यह कहना कि पूँजीपति तथा श्रमिकों को स्वयं पर ही छोड़ दें और वे अपना सौदा अपने आप तय कर लेंगे सर्वथा अनुचित है। आज का श्रमिक इतनी दीन दशा में है कि वह मालिक को अपनी मजदूरी बढ़ाने के लिए विवश नहीं कर सकता किन्तु इसके विपरीत मालिक यदि चाहे तो मिल बन्द करके उसे कम मजदूरी पर काम करने के लिए विवश कर सकता है। आज का मजदूर इतना गरीब है कि मालिक उसे जो देता है, उससे भी यदि कम मजदूरी दे तो भी वह अपनी तथा अपने परिवार की मृत्यु की अपेक्षा उसे स्वीकार कर लेगा। इस प्रकार मजदूर की दरिद्रता से एक व्यक्तिवादी समाज में पूँजीपति अनुचित लाभ उठाता है और इसीलिए राज्य को चाहिए कि वह अशक्त एवं निर्धन मजदूर के हितों की रक्षा के लिए आर्थिक क्षेत्र में हस्तक्षेप करे तथा प्रत्येक को उतना उचित पारिश्रमिक दिलवाये, जितना कि उसे मिलना चाहिए।

१० व्यक्तिवादियों का इतिहास का अध्ययन एकाङ्गी है (Individualists have taken one-sided view of history)—इतिहास के आधार पर व्यक्तिवादियों की मान्यता है कि राज्य एक संस्था है और इसने भूतकाल में व्यक्ति की उन्नति के मार्ग में सदैव रोड़े अटकाये हैं। इस मत के खण्डन में आलोचकों का विचार है कि यह एक संकीर्ण (Narrow) मत है जो इतिहास के एकाङ्गी अध्ययन (One sided study) पर आधारित है। सच तो यह है कि राज्य ने व्यक्ति की सदैव सेवा की है और उसे उन्नति के मार्ग से पथ भ्रष्ट होने से बचाया है। अतः जो व्यक्तिवादी राज्य के गुणों की अपेक्षा उसके दुर्गुण अधिक ध्यान से देखते हैं वे उसका अतिरञ्जित चित्र (Exaggerated picture) उपस्थित करते हैं। मनुष्य का यह स्वभाव है कि वह दुर्गुणों तथा बुराइयों को अधिक देर तक याद रखता है जबकि वह सेवाओं तथा सफलताओं को उतनी ही शीघ्रता से भूल जाता है। यही बात सरकारी कार्यों के विषय में भी सत्य है। फिर यदि राज्य ने भूतकाल में कुछ गलतियाँ की हैं तो उनका सारा उत्तरदायित्व राज्य पर ही नहीं, व्यक्ति पर भी है। व्यक्तिवादी इस बात को भूल जाते हैं। हक्सले (Huxley) इसे बड़े सुन्दर ढंग से अभिव्यक्त करता है। वह कहता है कि "राज्य एक शीशे के मकान में रहता है और इसीलिए हम उसके समस्त प्रयासों एवं पूर्ण तथा अपूर्ण असफलताओं को भली भाँति देख लेते हैं, किन्तु वाणिज्य

उद्योग अपारदर्शी ईंटों के मकान में रहता है, जिसके कारण जन साधारण कभी कभी ही उसके प्रयासों का ज्ञान कर पाता है" (The state lives in a glass house, we see in it all its tries to do and all its failures total or partial but private enterprise is sheltered under a good opaque bricks and the public rarely knows what it tries)।

११ ऐतिहासिक दृष्टि से व्यक्तिवाद के परिणाम भयंकर हैं (Historically individualism had disasterous results)—उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में व्यक्तिवाद एक व्यावहारिक दर्शन (Practical philosophy) था। इस समय योरोप के अधिकतर देशों में आर्थिक स्वतन्त्रता का सिद्धान्त प्रचलित था, जिसके कारण हमें तत्कालीन यूरोप के इतिहास में एक ऐसे दीन हीन एवं निर्धन श्रमिक वर्ग का उदय पाते हैं जो अत्यन्त परिश्रम करने पर भी परम अस्वस्थ्यकारी एवं भयंकर परिस्थितियों में जीवन निर्वाह करता था। इस युग में समाज की सारी पूँजी गण्यमान पूँजीपतियों के हाथों में केन्द्रित हो गई थी और गोल्डस्मिथ की प्रसिद्ध उक्ति कि—'सम्पत्ति के एकत्रीकरण के साथ साथ मानव का पतन होता है" (Where wealth accumulates men decay) के अनुसार समस्त यूरोपीय समाज में भ्रष्टाचार एवं पतन की चरम सीमा दिखाई देती है। इसी कारण से १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में राज्य के लिए यह आवश्यक हो गया कि वह व्यापार तथा श्रम आदि के सम्बन्ध में कुछ कानून बना कर आर्थिक स्वतन्त्रता से उत्पन्न होने वाले दुर्गुणों को दूर करें। यहीं से (Socialist legislation) समाजवादी कानूनों का आरम्भ होता है जो व्यक्तिवाद को सदैव के लिए उस महाद्वीप से विदा दे देते हैं।

इन उपरोक्त पक्ष तथा विपक्ष के तर्कों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि आंशिक रूप से सत्य होते हुए भी यह विचार दर्शन आज के युग के समाज के लिए स्वीकार्य नहीं हो सकता। गिलक्राइस्ट (Gilchrist) के अनुसार व्यक्तिवाद ने (१) व्यक्ति की आत्मनिर्भरता (Self reliance), (२) अनावश्यक सरकारी हस्तक्षेप के विरोध, (३) व्यक्ति के महत्व, तथा (४) अनावश्यक कानूनों का रद्द कराने आदि के परम महत्वपूर्ण विषयों पर ठीक ठीक बल दिया और प्रतिष्ठाहीन व्यक्ति को समाज में पुनः सम्मानित पद पर आसीन किया। किन्तु यह सब होते हुए भी इस सिद्धान्त की जड़ें अधिक गहरी नहीं थीं। इसने व्यक्ति को समाज में आवश्यकता से अधिक महत्व दिया, जिसके परिणाम स्वरूप यह स्वयं एक महत्वहीन सिद्धान्त बन गया। आज के मानव के लिए राबिनसन क्रूसो (Robinson Crusoe) बनना नितान्त असम्भव है और इसीलिए आज के समाज में भी यह मत कि वह सरकार सर्वोत्तम है, जो न्यूनतम शासन करती है (That government is the best which governs the least) पूर्णतः पुरानी होने के कारण मान्य नहीं हो सकता। विश्व की समस्त सरकारें आज व्यक्तिवाद को छोड़ कर समाजवाद की ओर जा रही हैं जो इस बात का प्रमाण है कि व्यक्तिवाद एक मृत सिद्धान्त (Dead theory) है।

समाजवाद
(Socialism)

आज का युग समाजवाद का युग कहा जाता है। दुनियाँ के सभी देशों में समाजवादी सिद्धान्तों की धूम है और सभी लोग इस बात को निर्विवाद रूप से सत्य मानने लग गये हैं कि आज के युग के प्रत्येक राज्य का कल्याण राज्य (Welfare state) बनने के लिए समाजवाद के अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं है। वास्तव में समाजवाद आज के समाज की पुकार है, जिसकी सम्पूर्ण व्यवस्था में आज के वैज्ञानिक आविष्कारों तथा औद्योगिक क्रांति (Industrial Revolution) ने एक कायापलट उपस्थित कर दी है। प्रत्येक समाज के प्रत्येक युग में अपनी अपनी समस्यायें होती हैं और तत्कालीन राजनैतिक विचारधारायें उन्हीं से प्रभावित होकर, उनका एक समाधान (Solution) लेकर आगे आती हैं। एक समय था जब राज्य के हस्तक्षेप चरम सीमा का पहुँच गये थे और व्यक्ति का कल्याण इसी में सम्भव था कि वह राज्य को एक 'आवश्यक दुर्गुण (Necessary evil) मानकर, उसे कम से कम काम सौंपे। फलतः व्यक्तिवाद का जन्म हुआ। किन्तु १९ वीं शताब्दी समाप्त भी नहीं हुई थी कि व्यक्तिवादी व्यवस्था में दरारें दिखाई देने लगीं। दो-दो विरोधी वर्ग खड़े हो गये—एक शोषक और दूसरा शोषित। वैज्ञानिक आविष्कारों से उत्पादन बढ़ा वितरण के साधनों में भी उन्नति हुई। किन्तु यह उन्नति उन्हीं लोगों के लिए लाभदायक सिद्ध हुई जो बड़ी-बड़ी विशाल मिलों और कारखानों के स्वामी थे। गरीब अपनी दरिद्रता से और भी अधिक निस्सहाय हो गये। अतः यह माँग होना स्वाभाविक था कि व्यक्तिवादी इन प्रवृत्तियों पर राज्य का अंकुश हो और उत्पादन (Production) तथा वितरण (Distribution) के साधनों का राष्ट्रीयकरण (Nationalization) किया जाय। जनता की इसी माँग की अभिव्यक्ति आधुनिक समाजवाद में हुई, जो व्यक्तिवाद के विरुद्ध राज्य को एक धनात्मक गुण (Positive good) मानता हुआ उसे अधिक से अधिक काम सौंपना चाहता है, जिससे कि वर्तमान औद्योगिक युग (Industrial Age) की समस्याओं का समाधान हो सके।

एक अनिश्चित विचारधारा (A vague movement)—सैद्धान्तिक दृष्टि से समाजवाद क्या है इसकी परिभाषा देना बड़ा कठिन काम है। कठिनाई यह है कि इस विचारधारा का आज तक कोई निश्चित रूप नहीं बन सका है तथा अलग अलग परिस्थितियों और युगों में इसके रूप बदलते रहते हैं। यह एक बहुरूपी दशा है

(Manysided philosophy) जिसके क्षेत्र तथा सीमाओं को किसी निश्चित एक परिधि मे नही बाधा जा सकता। फिर यह केवल एक राजनीतिक दर्शन ही नहीं है, बल्कि मानव जीवन के लिए एक आदर्श, एक धर्म, एक चेतना तथा एक सुनिश्चित जीवन विधान भी प्रस्तुत करता है अत कोई भी दो समाजवादी विचारक अपनी परिभाषा में एकमत नही हो सकते। प्रत्येक विचारक समाजवाद के एक पक्ष विशेष पर बल देता है जिसके कारण समाजवाद की इतनी ही परिभाषायें हो गई है, जितने कि समाजवादी विचारक है। इन सब लोगो के हाथो मे पडकर समाजवाद एक "इतनी जटिल वस्तु बन गई है कि उसकी कोई व्यावहारिक परिभाषा नही हो सकती" (It is too amorphous to admit a workable definition —M'cCessy) और यह कहावत सच मालूम देती है कि 'परिभाषायें कभी परिभाषा नही दिया करती' (Definitions seldom define)।

अनिश्चितता के कारण (Causes of its Vagueness)—डा० शडवेल (Dr Shodwell) का कथन है कि "मनुष्य के मस्तिष्क को यदि सबसे अधिक किसी प्रश्न ने संत्रासित किया है, तो वह है अनेक रूपी जटिल तथा अस्पष्ट समाजवाद" (Socialism is the most complicated many sided and confused question that ever plagued the mind of man)। इसके प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—

१ अलग-अलग सामाजिक, राजनैतिक व्यवस्थाओं मे समाजवाद के रूप भिन्न भिन्न बन जाते हैं। उदाहरण के लिए इङ्गलैंड मे समाजवाद का जो रूप है वह वैसा का वैसा ही, जर्मनी, फ्रांस अथवा अन्य किसी देश मे नही मिल सकता। प्रत्येक रूप में अवश्य कुछ न कुछ भिन्नता है, जिसके कारण रेमजे म्यूर (Ramsay Muir) "इसे परिस्थितियों के अनुसार बदलने वाला एक गिरगिट का सा धर्म बतलाते हैं।" (Socialism is a Chameleon like creed, that changes its colour according to its environments)।

२ दूसरे समाजवाद एक बड़ी व्यापक तथा अनेक रूपी विचारधारा है। साधारण लाभ हानि को बाटने से लेकर, राज्य को अधिकतम कार्य सौंपना, सभी इस विशाल क्षेत्र मे अन्तर्गत आ जाते है। सचमुच इस विचारधारा के इतने अनेक रूप हैं कि एक रूप पूर्णत समझ मे भी नही आता है और उनमे से शाखायें तथा प्रशाखायें निकल पड़ती हैं। एक प्रसिद्ध लेखक इस पर व्यंग्य करता हुआ कहता है कि "समाजवाद एक हाइड्रा जन्तु की तरह है और इस कारण जितनी देर मे उसका एक सिर काटा जाता है, उतनी देर मे एक नया दूसरा सिर निकल पडता है"। (Socialism is a hydra headed monster and while you are engaged in cutting of its one head the another springs in its place)।

३ तीसरे समाजवाद एक कोरी राजनैतिक क्रान्ति ही नही है बल्कि यह एक आर्थिक क्रान्ति भी है। ध्यान से देखने पर आर्थिक और राजनैतिक दोनों ही विचार इस विचारधारा मे इस प्रकार गुथे हुए हैं, कि इसे पूरी तरह समझने के लिए दोनों

का ज्ञान होना आवश्यक है अपनी इसी आर्थिक विशेषता (Economic characteristic) के कारण प्रो॰ बार्कर (Barker) "इसे एक ऐसा सिद्धान्त मानते हैं जो अपने लक्ष्य तथा उद्देश्यों में बहुत अधिक अनिश्चित तथा भ्रमात्मक है।" (It is most elusive and bewildering in its doctrines its aims and purposes) ।

४ चौथे इस विचाराधारा की इतनी उपधाराएं निकल चुकी हैं तथा रोज निकलती रहती है, कि इसका एक निश्चित रूप निर्धारित करना लगभग असम्भव है। समाजवादी उपधारायें (By currents of socialism) अपने उद्देश्यों तथा प्रणालियों में एक दूसरे से इतनी भिन्न हैं कि इनका मूल रूप क्या है यह समझना दुलभ हो गया है। इसी कारण यह एक ऐसे हैट के समान है, जिसकी आकृति नष्ट हो गई है क्योंकि हर कोई उसको पहन लेता है।" (Socialism is like a hat which has lost its shape because every body wears it)।

५ पाचवे समाजवाद एक प्रगतिशील दर्शन (Progressive philosophy) है—समाजवादी सिद्धान्त कोई स्थिर व अपरिवर्तनशील नियम (Rigid dogmas) नहीं है बल्कि वे प्रगतिशील समाज की नित्यप्रति की आवश्यकताओं के अनुसार बदलते रहते हैं। और चूंकि आज का समाज रोजाना आगे बढता है, इसलिए उसके साथ कदम मिलाता हुआ समाजवाद भी रोज अपने सिद्धान्त बदलता रहता है, जिसके कारण दार्शनिक दृष्टि से वह अभी तक अनिश्चित है।

६ छठे समाजवाद जीवन और समाज का एक क्रियात्मक दर्शन (Practical philosophy of life and society) है जो केवल कल्पना और आदर्शों में विश्वास नहीं करता। उसका सारा कार्यक्रम व्यावहारिक (Practical) और रचनात्मक (Constructive) है। इस कारण से भी "समाजवाद कोई बनी बनाई योजना अथवा निश्चित पद्धति नहीं हो सकती'। (Socialism is living movement and full of tremendous possibilities not a ready made scheme of fixed system incapable of adoption to changing conditions —Asirvatham)।

समाजवाद की कुछ परिभाषायें (Some definitions of socialism)—आज के युग में समाजवाद की परिभाषायें देने वालों की कमी नहीं है। प्रो॰ इलाई (Ely) ने अपनी एक पुस्तक में लगभग चार सौ से भी अधिक समाजवाद की परिभाषाओं का संकलन किया है। वैसे वर्तमान समय में समाजवादी की उतनी ही परिभाषायें हैं, जितने कि समाजवादी किन्तु कुछ प्रमुख विचारकों द्वारा दी गई परिभाषायें यहाँ संकलित की गई हैं —

१ "समाजवाद का अर्थ है श्रमिकों की एक ऐसी व्यवस्था, जो पूँजीवादी सम्पत्ति को सामाजिक सम्पत्ति के रूप में बदलने के उद्देश्य से राजनैतिक सत्ता को प्राप्त करेगी'। (Socialism means an organisation of the workers for the

conquest of political power for the purpose of transforming capitalist property into social property) —Emile (A Belgian Socialist)

२ समाजवाद श्रमिक वर्ग द्वारा की जाने वाली एक ऐसी राजनैतिक क्रांति है, जिसका उद्देश्य उत्पादन तथा वितरण के साधनों की प्रजातन्त्रात्मक व्यवस्था तथा सामूहिक स्वामित्व द्वारा शोषण का उन्मूलन करना है"। (Socialism is a political movement of the working class which aims to abolish exploitation by means of the collective ownership and distribution) —Hughan

३ "समाजवाद एक ऐसी प्रजातन्त्रात्मक विचारधारा है, जिसका उद्देश्य समाज में एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था लाना है, जो एक ही समय में व्यक्ति को अधिकतम न्याय और स्वाधीनता प्रदान कर सके"।—सेलर्स (Socialism is a democratic movement whose purpose is the securing of an economic organisation of society which will give the maximum possible at any one time of justice and liberty—Sellers)

४ "साधारण रूप से समाजवाद की इससे अधिक अच्छी परिभाषा नहीं दी जा सकती कि वह समाज की भौतिक तथा आर्थिक शक्तियों की एक ऐसी व्यवस्था चाहता है जिस पर मानवीय शक्ति का नियन्त्रण हो"। (No better definition of socialism can be given in general terms than that it aims at the organisation of the material economic forces—R Macdonald)

५ "हमें एक बार इसे फिर दुहराना चाहिए कि समाजवादी दर्शन का क, ख, ग, वैयक्तिक तथा प्रतिद्वन्द्वी पूंजी को एक संयुक्त तथा सामूहिक पूंजी में बदलना है"। (Let us repeat once again that the alpha and omega of socialism is the transformation of private and competing capital into a united collective capital —Schaffle)

६ "समाजवादी कार्यक्रम में प्रधानतः एक माँग है और वह यह कि भूमि तथा उत्पादन के सभी साधन सार्वजनिक सम्पत्ति होंगे और उनका उपयोग तथा प्रबन्ध जनता द्वारा, जनता के हित में होगा"। (The programme of socialism consists essentially of one demand viz that the land and other instruments of production shall be the common property of the people and shall be used and governed by the people for the people —Robert)

७ "समाजवादी समाज एक ऐसा वर्गहीन समाज होगा, जिसमें सब श्रमजीवी होंगे। इस समाज में वैयक्तिक सम्पत्ति के हित के लिए मनुष्य के श्रम का शोषण नहीं होगा। इस समाज की सारी सम्पत्ति सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय अथवा सार्वजनिक सम्पत्ति होगी तथा अनार्जित आय और आय सम्बन्धी भीषण विषमतायें सदैव के लिए समाप्त हो जायेंगी। ऐसे समाज में मानव जीवन तथा उसकी प्रगति योजनाबद्ध होगी और सब लोग, सब के हित के लिए जीयेंगे"। (Socialist society

is a society in which all are workers—a classless society. It is a society in which human labour is not subject to exploitation with interest of private capital in which all wealth is truly national or common wealth in which there are no unearned incomes and no large income disparities, in which human life and progress are planned and where all live for all.)—Jai Prakash Narain.

इतिहास (History) —वैसे यदि समाजवाद का व्यापक अर्थ "मनुष्य की समानता" से लिया जाय, तो, यह विचार इतना ही पुराना है जितनी कि मानव सभ्यता। विचारक आदि काल से ही यह स्वप्न देखते आये हैं कि मनुष्य समाज की योजना इस प्रकार की होनी चाहिए कि उसमें प्रत्येक व्यक्ति का मूल्य तथा महत्व समान हो और वे प्रेम, सहानुभूति तथा भाईचारे के सिद्धान्तों पर चलते हुए एक सुखी व सम्पन्न जीवन बिता सकें। किन्तु यदि इस दार्शनिक दृष्टि से विचार कर हम समाजवाद को केवल एक राजनैतिक विचारधारा के रूप में देखें तो उसका इतिहास अधिक पुराना नहीं है। सच तो यह है कि वह आधुनिक युग की उपज है, तथा उसके आदर्शवादी और क्रान्तिकारी जो दो प्रकार के रूप दिखाई देते हैं, वे औद्योगिक वर्ग भेद तथा आर्थिक असमानताओं से ही प्रभावित होकर उत्पन्न हुए हैं। राजनैतिक दृष्टि से यूनानी लोग राज्य को सब कुछ करने का अधिकार देते हुए भी सुकरात तथा एक दास के व्यक्तिगत मूल्य में बहुत अन्तर मानते थे। वे समानता (Equality) के अधिक प्रेमी न होकर स्वाधीनता (Liberty) के पुजारी थे। मध्ययुग में न्याय का अस्तित्व नहीं के बराबर था। आगे आने वाले निरंकुश राजतन्त्र (Absolute Monarchy) के युग में भी मनुष्य मनुष्य की समानता का सिद्धान्त कभी स्वीकार नहीं किया गया। १८ वीं शताब्दी व्यक्तिवादी शताब्दी थी, जिसमें व्यक्ति की स्वाधीनता की इतने अधिक सम्मान के साथ उपासना की गई कि राज्य का कार्यक्षेत्र केवल एक पुलिस तथा सेना विभाग का रह गया। आर्थिक तथा सामाजिक दोनों क्षेत्रों में Laissez Faire के इस भयंकर विचार ने समाज को ऐसे दो शत्रु वर्गों में बाँट दिया कि उसकी प्रतिक्रिया होना पूर्णतः स्वाभाविक ही था। सैद्धान्तिक दृष्टि से इस व्यक्तिवाद के विरुद्ध लोहा लेने वाले थॉमस मूर (Thomas Moor) हैं जिन्होंने अपनी विश्वविख्यात रचना (Utopia) में एक आदर्श समाजवादी व्यवस्था का चित्र खींचा है। मूर के पश्चात् रोबर्ट ओवन, सिसमोंडी आदि कुछ ऐसे आदर्शवादी समाजवादी हुए हैं, जो समाजवाद के विकासवादी (Evolutionary) अहिंसात्मक (Pacific) तथा आदर्शवादी (Utopian) पक्ष पर अधिक बल देते हैं।

राजनीति में कार्ल मार्क्स के पदार्पण करने से यह समाजवादी शान्तिपूर्ण धारा एकदम भयंकर वेगवती तथा क्रान्तिकारी नदी बन जाती है। शान्तिप्रिय तथा वैधानिक (Constitutional) ओवनिज्म (Owenism) को एक कल्पना तथा स्वप्न बतलाकर मार्क्स ने उसके स्थान पर एक क्रान्तिकारी तथा हिंसात्मक प्रणाली का निर्देश किया। मार्क्स तथा उसके शिष्य ब्लैंक (Blanc), प्रूधों (Proudhon) आदि ने इतिहास

तथा समाज का अध्ययन एक नवीन ही दृष्टिकोण से किया और विकासवादी समाजवाद (Evolutionary Socialism) को सिद्धान्त रूप में अपना आदर्श मानकर उसकी प्रणाली (Method) में आमूल परिवर्तन किये। उन्होंने समाजवाद को स्वप्न लोक से निकाल कर एक वैज्ञानिक आधार प्रदान किया और उसे केवल एक भ्रान्ति ही न मानकर जनक्रान्ति के रूप में बदल दिया। अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संघ आदि के द्वारा उन्होंने समाजवाद को एक विश्वव्यापी शक्ति बनाने की भी चेष्टा की। आज के युग में समाजवाद के विकासवादी तथा क्रान्तिकारी ये दोनों ही रूप स्पष्ट रूप से वर्तमान राजनीति में ढूंढे जा सकते हैं। उदाहरण के लिए यह कहा जा सकता है कि इन दोनों वर्गों में से पहले का प्रतिनिधित्व यदि ब्रिटेन करता है तो दूसरे का सोवियट रूस।

समाजवादी सिद्धान्त (The Theory of Socialism)—समाजवादी सिद्धान्त, व्यक्तिवादी सिद्धान्त की ही एक प्रतिक्रिया (Reaction) है और अपनी सभी धारणाओं में उसका बिलकुल उल्टा है। समानता को वह अपना आदर्श मानकर चलता है और एक समाजवादी व्यवस्था के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति को राजनैतिक, आर्थिक, तथा सामाजिक सभी क्षेत्रों में कम से कम असमानता देखना चाहता है। सामूहिक हित की प्राप्ति इसका ध्येय है जिसके लिए वह चाहता है कि राज्य का कार्य क्षेत्र अधिक से अधिक सीमा तक फैला हुआ हो। समाजवादी राज्य को एक उपयोगी तथा लाभदायक संस्था मानते हैं जिसके माध्यम द्वारा उनके मत में एक समाजवादी व्यवस्था अधिक शीघ्रता तथा सुचारु रूप से स्थापित की जा सकती है। औद्योगिक क्षेत्र (Industrial sphere) में समाजवाद उत्पादन तथा वितरण (Production and Distribution) के समस्त साधनों का राष्ट्रीयकरण (Nationalization) करने के पक्ष में है और उसकी यह दृढ़ मान्यता है कि "आर्थिक समानता के अभाव में, राजनैतिक समानता, केवल एक प्रवंचना मात्र है" (Political equality in the absence of economic equality is a mere myth)।

१ **समाजवाद व्यक्ति की अपेक्षा समाज को प्राथमिकता देता है (Socialism regards community prior than the Individual)**—समाजवाद एक समष्टिमूलक दर्शन (Collectivist philosophy) है जिसका मत है कि समाज के सामूहिक हित, एक अकेले व्यक्ति के हितों से कहीं अधिक मूल्यवान हैं और इसलिए सारे समाज के कल्याण के लिए उनका बलिदान किया जा सकता है। समाजवादियों की धारणा है कि एक व्यक्ति चाहे कितना ही योग्य, बुद्धिमान तथा विद्वान क्यों न हो, उसके हित तथा स्वार्थ, समाज के सब व्यक्तियों के हितों तथा स्वार्थों की तुलना में उनसे अधिक उच्च, महान, तथा पवित्रतर नहीं हो सकते। रोसचर (Roscher) ने एक स्थान पर लिखा है कि "समाजवाद उन सब प्रवृत्तियों के पक्ष में है, जो मनुष्य की इच्छानुकूल बातों की अपेक्षा सार्वजनिक सुख के अधिक सम्मान की माँग करती हैं" (Socialism stands for those tendencies which demand a greater regard for the

common wealth than agrees with human nature) । समाजवादी समाज की प्राथमिकता देने के कारण ही यह चाहते हैं कि समाज में केवल उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन हो, जिनकी समाज को आवश्यकता हो तथा जिनसे किसी एक पूँजीपति को लाभ न पहुँचकर सारे समाज को लाभ हो। इसी कारण से ये उत्पादन तथा वितरण के सभी साधनों के राष्ट्रीयकरण (Nationalization) के पक्ष में हैं। फ्रेड ब्रैमले (Fred bramly) ने कहा है कि "वैयक्तिक स्वार्थों का सामाजिक स्वार्थों के अधीन मानना समाजवादी दर्शन में अहदय रूप से निहित है" (Socialism implies the subordination of the individual interests to the interests of the community)।

२ समाजवाद पूँजीवाद का नाश चाहता है (Socialism aims at the elimination of capitalism)—आर्थिक क्षेत्र में अधिक से अधिक तथा सम्भावित समानता समाजवाद का ध्येय है। यह आज की पूँजीवादी व्यवस्था को, जिसका आधार मुक्त प्रतिद्वंद्विता (Free competition) है, अत्यन्त दोषपूर्ण, जर्जर, अन्यायी व शोषक बतलाता है। समाजवादी इस सिद्धान्त में विश्वास करते हैं कि आज के समाज में स्पष्ट रूप से दो वर्ग हैं श्रमिक और धनिक, जिनमें से धनिक वर्ग अपनी पूँजी के बल पर सारे समाज पर छाया हुआ है। उनका मत है कि यह धनिक वर्ग, परिश्रम भोगी (Parasite class) है और बिना किसी प्रकार की मेहनत के बिना कमाई आय (Unearned income) का उपभोग करता है जो कि एक सम्पतापूर्ण धोखा है। इसलिए समाजवादी इस वर्ग को श्रमिक वर्ग का कट्टर शत्रु बतलाते हैं और चाहते हैं कि इन पूँजीपतियों का समूल नाश कर दिया जाय। राज्य को श्रमिकों का अभिभावक (Guardian) मानने के कारण वे राज्य का यह कर्तव्य मानते हैं कि वह इस पूँजीवादी व्यवस्था का अन्त कर और श्रमिकों के हितों की जो कुछ पूँजीपतियों के हितों से अधिक महत्वपूर्ण है रक्षा करे। सैद्धान्तिक दृष्टि से वैसे समाजवाद सम्पत्ति (Property) का विरोधी नहीं है उसका विरोध तो केवल भूमि और पूँजी सम्बन्धी उस वैयक्तिक सम्पत्ति से है जिसे वह सामूहिक (Collective) अथवा सामाजिक (Social) सम्पत्ति में बदलना चाहता है।

३ समाजवाद मानवीय अवस्था को समान करना चाहता है (Socialism tends to equalize human condition)—एक प्रसिद्ध समाजवादी का कथन है कि "यदि व्यक्तिवाद की प्रमुख पुकार स्वाधीनता है तो समाजवाद की समानता। (If the keynote of individualism is liberty, then equality, is the watchword of socialism)। समाजवादी अपने समाज को किन्हीं ऐसे सिद्धान्तों पर आयोजित करना चाहते हैं, कि उसमें वर्तमान समय में पाई जाने वाली रोमांचकारी असमानता यदि पूर्ण रूप से नष्ट न हो सके तो कम से कम इतनी अधिक न रहे। वैसे योग्यता के अन्तर को तो समाजवादी भी स्वीकार करते हैं और यह मानते हैं कि पूर्ण समानता (Absolute equality) न उचित है न आवश्यक और न सम्भव ही। किन्तु नैतिक दृष्टि से वे इसे अवश्य अमानवीय मानते हैं, कि एक आदमी विलासिता में मस्ता रहे

और दूसरे को दो समय का भोजन भी उपलब्ध न हो सके। इसका विरोध करते हुए समाजवादी चाहते हैं कि प्रत्येक को उन्नति के समान अवसर (Equal opportunities) दिये जायें और जहाँ तक सम्भव हो सके मनुष्य-मनुष्य के बीच एसी अवस्था ये न रह कि "कुछ लोग बिना काम किये ही जीवित रहें, और कुछ काम करते पर भी न जी सकें" (Some live without working, others work without living)। कुलजे के अनुसार समाजवादियो का यह सही और न्याय पूर्ण सिद्धान्त ही उसे श्रमिको का प्रिय सिद्धान्त बनाता है।

४ समाजवाद प्रतियोगिता का अन्त करना चाहता है (Socialism stands for the elimination of competition)—समाजवादियो का कहना है कि पूँजीवादी व्यवस्था का सबसे बडा दोष यह है कि उसमे आपसी हानि लाभ के लिए गला-होड प्रतियोगिता (Cut throat competition) रहती है। हर एक व्यवसायी अपनी चीजो को इतना सस्ती बेचना चाहता है कि उसकी श्रेष्ठता (Quality) बिलकुल नष्ट हो जाती है। इसी होड मे कुछ चीजें इतनी ज्यादा पदा हो जाती है कि देश को उनकी आवश्यकता ही नही रहती और आर्थिक दृष्टि से उन्हे देश की सामग्री का अपव्यय (Waste) कहा जा सकता है। फिर दूसरे आज के असमानता पूर्ण समाज म यह कभी भी सम्भव नहीं है कि प्रतियोगिता (Competition) न्याय पूर्ण और ईमानदारी से हो सके। आज का मजदूर इतना गरीब है कि वह यदि पूँजीपति के साथ प्रतियोगिता मे खडा हो, तो भूखा मर जाय। भूख का डर उसे बाध्य करता है कि वह पूँजीपति द्वारा जो भी कुछ उस अपने श्रम के लिए मिले उसे स्वीकार कर ले। अत पूँजीवाद के विरोधी होने के कारण समाजवादियो की यह मान्यता है कि "प्रतियोगिता (Competition) के स्थान पर सहयोग (Co operation) आज के समय मे ज्यादा अच्छी व न्यायपूर्ण व्यवस्था ला सकता है। प्रतियोगिता एक समाज विरोधी (Anti social) वस्तु है और इसलिए डा० हेडन गेस्ट का कहना है कि "उनके विचार से समाजवाद का अर्थ स्थानीय, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय सभी मामलो म प्रतियोगिता के स्थान पर सहयोग की स्थापना करना है" (Socialism to my mind is the substitution of co operation for competition in local, national and international affairs—Dr H Guest) वस्तुत प्रतियोगिता सभी क्षेत्रो मे प्रतियोगिता की दौड मे आगे निकलने के लिए मनुष्य को बेईमान बनना सिखलाती है और इस प्रकार उसका चरित्र भ्रष्ट कर, व्यापार के क्षेत्र म एकाधिकार (Monopoly) को जन्म देती है। अत यह कोई आश्चर्य की बात नही कि समाजवाद इसका अन्त करने की माँग करे।

५ समाजवाद वयक्तिक भूमि सम्पत्ति का उन्मूलन चाहता है (Socialism stands for the abolition of private property in land)—समाजवादियो की यह धारणा है कि भूमि, ईश्वर अथवा प्रकृति के द्वारा मनुष्य को मुफ्त मे दिया गया एक उपहार (Gift) है और इसलिए किसी भी एक व्यक्ति के लिए यह उचित नही है

कि वह उसको अपने व्यक्तिगत स्वार्थों के लिए काम में लाय । जिस वस्तु को बनाने वाला मनुष्य नहीं है, उस पर उसका अधिकार नहीं हो सकता । जैसा कि राबर्ट ब्लाचफोर्ड (Robert Blatchford) का कथन है कि "कोई भी व्यक्ति इस किसी भी चीज को अपनी नहीं कह सकता, जिसको बनाने वाला वह स्वयं नहीं है। (No man has a right to call anything his own but that which he himself has made—Blatchford) भूमि को बनाने वाला कोई व्यक्ति नहीं है और न वह परिश्रम से ही पैदा होती है इस कारण वह किसी एक व्यक्ति की न होकर सबकी है। अतः समाजवादियों का कहना है कि उनकी व्यवस्था में एक इञ्च भी भूमि ऐसी नहीं होगी, जिसे कोई नागरिक अपने अधिकार में रख सकेगा। उनके मत में वह जीवन के लिए जरूरी है और उसे किसी से छीनना जीवन को छीनना है। भूमि पर लगाने वाले किराये आदि को प्रसिद्ध समाजवादी हैण्डिसन एक लूट बतलाता है जो अब एक प्रणाली बन गई है। (Rent is a brigandage reduced to a system) । व्यक्ति पर आज के समाज में पाये जाने वाले अधिकार को समाजवादी कैसे उन्मूलित करें इस विषय में वे स्वयं एक मत नहीं है । मार्क्स आदि कुछ उग्र विचारक सारी भूमि को सरकार द्वारा एक दम छीन लिए जाने के पक्ष में हैं यद्यपि कुछ उदारतावादी (Liberals) रेमजे मैकडनल्ड (Ramsay Macdonald) आदि का मत है कि 'समाजवाद भूमि को हड़पने से नहीं आ सकता" (Socialism can not come by confiscation) ।

६ समाजवाद सामन्तशाही और वैयक्तिक उद्योगपतियों का विनाश चाहता है। (Socialism favours the extinction of landlords and private enterprizes)—पूँजीवादी व्यवस्था का घोर विरोधी होने के कारण यह स्वाभाविक है कि समाजवाद सामन्तशाही (Feudalism) तथा वैयक्तिक उद्योगपतियों के विनाश की माँग करे । इस माँग के साथ-साथ समाजवादी एक कार्यक्रम भी प्रस्तुत करते हैं। वे चाहते हैं कि वैयक्तिक उद्योग तथा उद्योगपतियों का नाश होते ही उत्पादन के सारे साधन राज्य द्वारा अपने अधिकार में ले लिए जायें, अथवा राजनीति की विशिष्ट शब्दावली में यों कहिए कि उत्पादन के सभी साधनों अथवा वस्तुओं का राष्ट्रीयकरण (Nationalization) या समाजीकरण (Socialization) कर दिया जाय । टाम जान्सन (Tom Johnson) के शब्दों में 'वैयक्तिक उद्योग एक वैयक्तिक लूटमार है" (Private enterprize is private robbery) । जबकि 'व्यावहारिक समाजवाद राज्य द्वारा प्रबन्धित एक सहयोग की एक राष्ट्रीय योजना है" (Practical socialism is a national scheme of co-operation managed by the state—Blatchford) । वास्तव में सारी वैयक्तिक वस्तुओं को सामाजिक अथवा सार्वजनिक वस्तुओं के रूप में बदलना समाजवाद का ध्येय है और जैसा कि यही लेखक आगे लिखता है कि "भूमि तथा उत्पादन के सभी साधनों को राष्ट्रीय सम्पत्ति बना दो सारे खेतों, खानों, जहाजों तथा रेलों को राष्ट्रीय नियन्त्रण में रख दो, और सब

व्यावहारिक समाजवाद पूरा हो जायगा" (Make the land and all instruments of production national property put all farms, mines, ships and railways under national control and practical socialism is accomplished)।

७ समाजवाद राज्य को एक धनात्मक अच्छाई मानता है (Socialism regards State as a Positive good)—समाजवाद व्यक्तिवाद की इस धारणा को बहुत बड़ी भूल और अतिरञ्जना (Exaggeration) मानता है कि राज्य एक आवश्यक दुर्गुण (Necessary evil) है। समाजवादियों की दृष्टि से राज्य के केवल दुर्गुणों और बुराइयों पर ही प्रकाश डालना पक्षपातपूर्ण (Prejudiced view) है। इसके विपरीत वे मानते हैं कि राज्य एक ऐसी संस्था है, जिसका जन्म नागरिकों के जीवन को सभ्य और सुखी बनाने के लिए हुआ है। वह एक कल्याणकारी संस्था (Welfare institution) है और मनुष्यों की सेवा करना ही उसका प्रथम तथा अन्तिम उद्देश्य है। इतिहास से उदाहरण देते हुए समाजवादी विचारक मानते हैं कि यह संस्था मनुष्य जाति की चिरकाल से सेवा करती चली आ रही है और यदि कहीं भी इसने बल का प्रयोग किया है, तो केवल सामूहिक हित के उद्देश्य को ध्यान में रखकर। अतः इतिहास से राज्य के विषय में सिर्फ काले वाले धब्बे चुनकर उसे दुर्गुण कह देना अपूर्ण व एकाङ्गी दृष्टिकोण (One sided view) है। सत्य तो यह है कि राज्य को एक जनहितकारी धनात्मक अच्छाई (Positive good) कहा जाय।

८ समाजवाद समाज की अंगगी एकता पर बल देता है (Socialism emphasises the organic unity of the society)—समाजवाद का आधारभूत विचार यह है कि व्यक्ति कोई अकेला प्राणी नहीं है। वह समाज के अन्य व्यक्तियों से इसी प्रकार बँधा हुआ है, जिस प्रकार से शरीर के अङ्ग प्रत्येक एक दूसरे से आपस में बँधे रहते हैं। उदाहरण के लिए यदि पैर में दर्द है तो उस भोगता केवल पैर का ही काम नहीं है बल्कि हाथ, हृदय, मस्तिष्क सब बेचैन हो उठते हैं। ठीक इसी प्रकार समाज के एक व्यक्ति की प्रसन्नता अथवा पीड़ा सारे समाज पर अपना प्रभाव डालती है। इसलिए समाजवाद का यह सिद्धान्त है कि एक व्यक्ति की पीड़ा सारे समाज की पीड़ा मानी जाय और सारा समाज एक भीड़ (Crowd) अथवा समूह मात्र न होकर एक एकता (Unity) माना जाय। व्यक्तिवादियों की भाँति समाजवादियों का उद्देश्य भी व्यक्ति को स्वाधीनता (Freedom) दिलवाना है, किन्तु उनका रास्ता भिन्न है। वे समानता (Equality) के द्वारा स्वतन्त्रता (Liberty) प्राप्त करवाना चाहते हैं। उनका मत है कि इन दोनों में से एक का न होना, दूसरी को कल्पना (Myth) मात्र बना देता है। अतः समाजवादी का कहना है कि जब तक व्यक्ति भूख की भूख तथा चिन्ता से दुखी रहेगा तब तक वह स्वतन्त्र नहीं हो सकता और ये दिक्कतें तभी मिट सकती हैं जब सारे समाज को एक इकाई समझ कर कार्य किए जाय।

६. समाजवाद राज्य को अधिक से अधिक कार्य सौंपना चाहता है—राज्य को एक धनात्मक अच्छाई (Positive good) तथा कल्याण संस्था (Welfare institution) मानने के कारण समाजवाद चाहता है कि राज्य का कार्यक्षेत्र अधिक से अधिक हो। समाजवादियों का कहना है कि २० वी शताब्दी के इस औद्योगिक युग (Industrial age) में कोई भी राज्य तब तक एक सफल राज्य नही बन सकता, जब तक कि वह अपने कर्तव्यों की सीमा का विस्तार न करे। केवल पुलिस राज्य (Police state) आज के समाज की पूरी पूरी भलाई नही कर सकते। आज के पूंजीवादी युग में यदि राज्य अपना काम सिर्फ आक्रमणों से देश की रक्षा करना अथवा आन्तरिक शांति स्थापित करना ही मान ले तो देश की ६० प्रतिशत जनता पूँजीवादी शोषण से पिस कर अपने प्राण दे दे। मजदूर और गरीबों के हित के लिए राज्य को उनका पक्ष लेना होगा और उनकी आवाज को बलवान बनाने के लिए उनकी वकालत करनी होगी। चूंकि समाजवाद का ध्येय समाज मे समानता लाना तथा पूंजीपतियों का विनाश करना है अतः यह तभी हो सकता है जब कि समाजवादी राज्य अधिक से अधिक कार्य करे और सबकी समान उन्नति का उद्देश्य अपना लक्ष्य बना कर चले।

इस प्रकार समाजवाद का जन्म हमारे औद्योगिक समाज की समस्याओं को सुलझाने के लिए हुआ है और सभी दृष्टियो मे वह व्यक्तिवाद के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया (Reaction) है। एक आधुनिक लेखक ने समाजवाद का निचोड़ इन शब्दों में प्रकट किया है "समाजवाद का उद्देश्य है उत्पादन के साधनों का राष्ट्रीयकरण, जिससे लोगों की आय में क्रमिक समानता स्थापित की जा सके। समाजवाद मानव जाति के कल्याण की अपेक्षा व्यक्तिगत लाभ को कम महत्व देता है। इसकी मान्यता है कि उत्पादन का उद्देश्य उपयोग होना चाहिए न कि लाभ अथवा शक्ति संचय। समाजवाद इस मत का समर्थन करता है कि आत्मविकास के साधन और अवसर सबके लिए समान रूप से प्राप्त हों"। (Socialism stands for progressive nationalization of the means of production with a view to a progressive equalisation of incomes Socialism believes in subordinating private profit to human welfare production for use and not for gain or power much less for ostentation is its motto It believes in the removal of unequal opportunities for self development)। अंग्रेजी विश्वकोष (Encyclopaedia Britannica) के अनुसार भी "समाजवाद का ध्येय प्रजातान्त्रिक अधिकार सत्ता के माध्यम द्वारा सम्पत्ति का आज से अधिक उत्पादन और न्यायपूर्ण वितरण लाना है" (Socialism aims at securing by the action of the central democratic authority a better distribution and a better production of wealth than now prevails)। इस समाजवादी व्यवस्था को समाज में स्थापित करने के अलग अलग समाजवादी अलग उपाय बतलाते हैं, किन्तु उदार समाजवादियों (Liberal Socialists) का कार्यक्रम निम्न प्रकार का है —

१ सारे बड़े-बड़े उद्योग धन्धों (Industries) तथा राजकीय सेवाओं

(Public services) को सार्वजनिक अधिकार और नियन्त्रण (Public ownership) मे लाया जाय ।

२. उद्योगो के संचालन मे व्यक्तिगत लाभ की परवाह न करके सामाजिक आवश्यकताओ का ही ध्यान रखा जाय ।

३. व्यक्तिगत लाभ के स्थान पर समाज सेवा (Social service) का उद्देश्य रखा जाय ।

समाज मे भाईचारा (Fraternity) और सहयोग तथा लाभ की जगह सेवा का उद्देश्य पैदा करने के लिए इगलैण्ड के मजदूर दल (Labour party) ने इस कार्यक्रम मे ये तीन प्रस्ताव और जोडे है —

४ सारे राज्य मे न्यूनतम राष्ट्रीय वेतन (National minimum wages) सब पर समान रूप से लागू किया जाय ।

५ उद्योगो मे प्रजातन्त्रात्मक व्यवस्था और अधिकार (Democratic authority in industry) ।

६ राष्ट्रीय अर्थ नीति (National Economic policy) को बदल कर बचत सम्पत्ति (Surplus wealth) को सार्वजनिक हित (Public good) के लिए उपयोग किया जाय ।

समाजवादी विचारक (Socialist Thinkers)—वैसे तो समाजवादी विचारको की कोई गिनती नहीं हो सकती और सैद्धान्तिक दृष्टि से न उन सब के विचारो का कोई इतना अधिक महत्व ही है । आजकल समाजवादी लेखको की संख्या दिन पर दिन बढती जा रही है, किन्तु समाजवाद के जन्मदाताओ मे से निम्नलिखित विचारक प्रमुख हैं —

सेंट सिमन (St Simon) 1760-1825—यह एक धनवान परिवार मे पैदा हुआ था, किन्तु इसने अपना सारा जीवन गरीब और दुखी लोगो की सेवा मे अर्पित कर दिया था । उसका विचार था कि दुनिया मे अपनी धुन और लगन के पक्के लूथर, डेसक्रेटस (Descrates), बेकन जैसे लोग ही समाज मे महान और उपयोगी वस्तुएँ पैदा कर सकते हैं । उसका विश्वास था कि यदि समाज की व्यवस्था अधिक अच्छे नैतिक ढङ्ग पर की जाये, तो मनुष्य अधिक पूर्ण बन सकता है । वह चाहता था कि समाज मे श्रम और पूजी के बीच एक सहयोग हो, जिससे समाज का अधिक लाभ हो सके । पूजीवाद सेंट सिमन के समय मे अधिक विकसित नही हुआ था इसलिए न वह वर्ग युद्ध (Class war) के सिद्धान्त का ही समर्थक है और न वह यही मानता है कि धनिक और श्रमिक वर्गों के बीच बहुत कट्टर शत्रुता है । वह वेतन की समानता का भी पक्षपाती नही है और उसका वितरण योग्यता अनुसार चाहता है । अपने समय की आरम्भिक पूजीवादी व्यवस्था का आलोचक होते हुए भी वह भूतकाल को अधिक अच्छा नहीं बतलाता है । उसकी मान्यता है कि विगत युग स्वर्णयुग न होकर लौ-

था। मनुष्यता का वास्तविक स्वर्णयुग हमारे पीछे न होकर आगे है"। (The past age was the iron rather than the golden age. The real golden age of the humanity is not behind but before us)। वह एक दार्शनिकों की सरकार न चाह कर वैज्ञानिकों की सरकार चाहता था। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी उसने एक 'विश्व संसद' (World Parliament) की कल्पना की थी। सम्पत्ति के विषय में सिमन की यह दृढ़ धारणा थी कि यह समाज की भावी रूप रेखा निर्धारित करती है। उसके स्वयं के शब्दों में "सामाजिक व्यवस्था में ऐसा कोई परिवर्तन नहीं हो सकता जो सम्पत्ति के परिवर्तन के बिना पैदा हो।" (There can be no change in social order without a change of property)। वह कार्यहीन सम्पत्ति (Functionless property) का विरोधी था। लोकप्रिय राजसत्ता (Popular sovereignty) तथा स्वाधीनता (Liberty) में भी उसका कोई विश्वास नहीं था इनके स्थान पर वह जनता की तानाशाही (Dictatorship of the people) के पक्ष में था। उत्पादन के सारे साधनों पर वह उनका उपयोग करने वालों का अधिकार चाहता था। एक वाक्य में उसी के शब्दों में उसका दर्शन इस प्रकार है, "समाज में एक ऐसी व्यवस्था हो, जिसमें समाज के सभी सदस्यों को अपनी शक्तियों के अधिकतम विकास के लिए पूरा-पूरा अवकाश मिले और प्रत्येक व्यक्ति वह ही काम करे, जिसकी योग्यता उसे ईश्वर से मिली है और उसका उसे उतना ही पारितोषिक मिले, जितनी कि वह मेहनत करता है।"

रॉबर्ट ओवन (Robert Owen) 1771-1858—आवन अंग्रेजी समाजवाद का पिता कहा जाता है। आरम्भ में एक साधारण मजदूर होते हुए भी, वह अपनी मेहनत से एक बड़ा पूंजीपति बना किन्तु श्रमिकवर्ग के साथ अपनी सहानुभूति होने के कारण, इसने अपनी सम्पत्ति श्रमिकों के कल्याण पर खर्च की। देश से बेरोजगारी दूर करने के लिए सन् १८१७ में एक कमेटी की रिपोर्ट प्रस्तुत करते समय उसने 'एक सहकारी ग्राम योजना' (A plan for co-operative villages) बनाई थी, किन्तु वह किन्हीं कारणों वश अस्वीकार कर दी गई। धार्मिक विषयों में वह बुद्धिवादी था और उसके चर्च विरोधी विचार बहुत ही उग्र (Militant) थे। श्रमिकों के भाग्य को ऊंचा उठाने के लिए इंगलैंड की व्यापार संघों की क्रान्ति (Trade union movements) आदि में भी सक्रिय भाग लिया और इसी कारण से आज भी इङ्गलैंड के सारे श्रम कल्याणकारी कानूनों तथा सामाजिक सुधारों के साथ उसका नाम अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। "अपनी पुस्तक" समाज पर नया दृष्टिकोण (New view of society) में आवन मानता है कि 'सरकार का उद्देश्य शासक तथा शासित दोनों को ही प्रसन्न रखना है।' समाज के उत्थान के लिए वह शिक्षा को बहुत उपयोगी तथा महत्त्वपूर्ण वस्तु मानता है। उसका मत है कि परिस्थितियां मनुष्य को बनाती हैं किन्तु मनुष्य चाहे तो उनको बदल भी सकता है। एक स्थान पर वह स्वयं लिखता है "मनुष्य प्रसन्नता की अभिलाषा लेकर पैदा होता है। झूठे विचार उसके लिए

दुनिया में दुःख और दुर्गुण उत्पन्न करते हैं और उनका प्रधान कारण मनुष्य की मनुष्य स्वभाव की अज्ञानता है। जन संख्या का अधिकतर भाग श्रमिक वर्ग का ही है अथवा उन्हीं से ऊँचा उठा है और उसी के द्वारा ऊँचे से ऊँचे लोगों की प्रसन्नता तथा आराम प्रभावित होते है।" (Man is born with a desire to obtain happiness—The false notions have produced evil and misery in the world—The sole cause of their existence is man s ignorance of human nature The greater part of population belongs to or have risen from the labouring classes and by them happiness and comforts of all the highests are influenced)। ओवेन के जीवन के सारे विचारों का केन्द्रबिन्दु "सहयोग" है।

चार्ल्स फोरियर (Charles Fourier) 1772 1837—यह एक फ्रेंच समाजवादी था। फ्रांस में "सहयोग आन्दोलन" (Cooperative movement) का चलाने का श्रेय इसी को है। यह अपने समय के समाज की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, तथा नैतिक सब प्रकार की अव्यवस्थाओं का एक बड़ा कटु आलोचक था। सम्पत्ति, दरिद्रता, सामाजिक असमानता, युद्ध, पारिवारिक जीवन की असफलता आदि इन सब समाजगत दुर्गुणों की उसने बड़े सम्पूर्ण शब्दों में भर्त्सना की और बतलाया कि समाज में सन्तोष, सुख और समृद्धि तभी आ सकती है जब लोग ऐसी इकाई में बाँट कर रहें, जो इतनी विशाल हो कि उनमें सब प्रकार की इच्छायें पूरी तरह तृप्त हो सकें। उसने Phalange नाम की १६२० व्यक्तियों की ऐसी एक स्वतन्त्र इकाइयों की योजना भी प्रस्तुत की थी। उसका मत था कि व्यक्ति को वही कार्य करना चाहिए जो उसकी रुचि के अनुकूल हो। वह एक सरकार हीन राज्य के पक्ष में था, जिसके कारण उसे कुछ-कुछ अराजकतावादी भी कहा जा सकता है। व्यक्तिगत सम्पत्ति के विषय में भी उनके विचार ओवन आदि के समान ही थे।

प्रूधो (Proudhon) 1809–65—प्रूधो की गणना प्रायः अराजकतावादियों में की जाती है। वह मार्क्स का सबसे बड़ा आलोचक था। समाजवादी होते हुए भी वह स्वाभिमान तथा मनुष्य की गरिमा (Dignity) पर काफी बल देता है। उसने साम्यवाद की अच्छी खासी आलोचना की है। सम्पत्ति के विषय में उसका मत है कि "वह दुर्बल आदमियों का शक्तिशाली व्यक्तियों द्वारा किया गया शोषण है।" (Property is an exploitation of the weak by the strong) प्रूधो साम्यवादी सिद्धान्त का ठीक उलटा मानता है और कहता है कि मार्क्सवादी व्यवस्था में कमजोर लोग शक्तिशालियों का शोषण करेंगे, अतः यह केवल एक कल्पना मात्र है। वह अपने आपको एक ऐसा समाजवादी बतलाता है जो म्यूचलिज्म से बाहर रहता है। उसकी दृष्टि में साम्यवाद परिवार के विरुद्ध है और एक विधान न होकर विधान की समाप्ति है। वह उसे बुद्धिहीन तथा दुख देने वाला धर्म कह कर उसकी निन्दा करता है। साम्यवाद पर वह यह आरोप लगाता है कि यह एक दूषण दमन है, जो

अपने विचार प्राचीन, रहस्यात्मक, तथा अनिश्चित परम्पराओ से ग्रहण करता है और उत्पादन तथा वितरण की व्यवस्था का एक स्पष्ट चित्र सामने नही रखता। प्रूधो व्यक्तिगत स्वाधीनता का प्रेमी था अत उसकी धारणा थी कि 'मनुष्य की मनुष्य पर सरकार, सिवा दमन के और कुछ भी नही हो सकती।" वह समूहवाद (Coollectivism) तथा तानाशाही (Dictatorship) का घोर विरोधी था। संसदीय प्रणाली पर भी उसका विश्वास नही था और केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति के विरुद्ध वह एक संघात्मक राज्य (Federal State) की कल्पना करता है। यथार्थ में प्रूधो का दर्शन वितरणवादी (Distributivist) है। वह सम्पत्ति का ऐसा बटवारा चाहता है कि कोई असमान न रहे। जब तक धनिक वर्ग का अन्त नही हो जायगा तब तक उसकी दृष्टि मे प्रजातन्त्र कभी सफल नही हो सकता। वह सामन्तशाही का विरोधी था और उसकी योजना कुछ इस प्रकार थी 'प्रत्येक व्यक्ति को अपने घर तथा बगीचे पर अपना अधिकार दे दो उसे तीन एकड भूमि, एक गाय, तथा सामूहिक निरंकुशता के विरुद्ध प्रतिभूत (Guarantee against collective despotism) दे दो, और बस यह काफी है।" इसके लिए व्यवसायिक आधार पर चुने गये संघो का भी प्रूधो पक्षपाती था। मार्क्स की भाँति क्रान्तिकारी न होकर वह एक विवशील विचारक था जो मानता था कि सामाजिक न्याय सामाजिक घृणाद्वारा पैदा नही हो सकता। इस प्रकार प्रूधो एक उदार समाजवादी था, जिसका उद्देश्य आर्थिक पुनर्वितरण तथा नियन्त्रण द्वारा एक वर्गहीन समाज स्थापित करना था।

समाजवाद की आलोचना (Criticism of socialism)—समाजवादी सिद्धान्त, यद्यपि आज के युग का सब प्रचलित सिद्धान्त है और दुनिया के अधिकतर देश किसी न किसी रास्ते से समाजवाद की तरफ बढ़े जा रहे हैं किन्तु शास्त्रीय दृष्टि से देखने पर कितनी ही ऐसी बुराइयाँ समाजवाद में ढूँढी जा सकती है जिनकी गम्भीरता को देख कर प्रो० हर्नशा (Prof Hearnshaw) जैसे विद्वान विचारक भी यह कहने लगते हैं कि 'समाजवाद की ओर आकृष्ट होने वाले केवल दो ही हैं—एक सनकी अथवा पागल वर्ग तथा दूसरा अपराधी वर्ग।" (The only two classes of people, who are really attracted to socialism are cranks and criminals) हर्नशा की भाँति कितने ही अन्य आधुनिक आलोचक जो समाजवादी दर्शन को स्वस्थ तथा व्यावहारिक दर्शन नही मानते, और कहते हैं कि समाजवाद के शास्त्रीय सिद्धान्तो (Theoritical principles of socialism) को कार्य रूप मे परिणत करना, उनको तिलाञ्जलि देकर उनसे दूर जाना है। ये आलोचक समाजवाद पर निम्नलिखित आरोप लगाते है —

१ **समाजवाद का अर्थ है सत्तावाद (Socialism means authoritanism)**—आलोचकों का कहना है कि समाजवादी व्यवस्था मे उत्पादन तथा वितरण के साधनों पर सरकार का पूरा-पूरा नियन्त्रण होगा। समाज मे केवल वही वस्तुएं पैदा की जायगी जिनकी समाज को आवश्यकता होगी और उनका वितरण ठीक उसी

प्रकार से किया जायगा जैसी कि सरकार की नीति होगी अथवा जैसा करने के लिए वह आदेश देगी। समाजवादी इस सिद्धान्त को व्यक्तिवादी स्वतन्त्रता का अन्त मानते हैं और यह कहते हैं कि राज्य का यह ढाँचा बिल्कुल एक सर्वाधिकारवाद राज्य का ढाँचा है, जिसमे, व्यक्ति, व्यक्तिगत योग्यता तथा व्यक्तिगत श्रम पूर्णत सारहीन हो जायेंगे। समाज की सारी व्यवस्था समाजवाद के अन्तगत राज्य के इशारो पर नाचेगी और उत्पादन तथा वितरण के लिए राज्य जैसे भी चाहेगा, वैसे कानून बना सकेगा। इस प्रकार समाज के आर्थिक ढाँचे पर अपना एक दृढ नियन्त्रण रखने के कारण समाजवादी राज्य सर्वथा सर्वसत्तावादी राज्य (Authoritarian state) होगा।

२ समाजवादी नौकरशाही को जन्म देगा (Bureaucracy will thrive under Socialism)—समाजवादी राज्य मे आज के पूँजीपतियों तथा उद्योगपतियो द्वारा किया जाने वाला सारा काय सरकार के द्वारा किया जायगा। सरकार ही प्रत्येक वस्तु को कैसी तथा कितनी पैदा की जाय इसका निर्णय करेगी और अपन कमचारियो द्वारा उन्हें तैयार करवायगी। तात्पय यह कि समाजवाद के अन्तगत सभी लोग राज्य के नौकर (State employees) होगे, और सारा काय सरकारी पदाधिकारियो के निर्देशो के अनुसार होगा। सब को अपने अपने काय के लिए वेतन अथवा पारिश्रमिक (Remuneration) सरकार द्वारा मिलेगा। ऐसी स्थिति मे स्पष्ट है कि प्रत्येक समाजवादी राज्य मे एक बहुत बडी आफिसरो तथा कमचारियो की सेना पैदा हो जायगी, जिसके कारण लाल फीताशाही (Red tapism) बढेगी और हर एक काय बहुत ही धीमा होने लगेगा।

३ समाजवादी राज्य मे उत्पादन कम होगा (Production will be less in a Socialist State)—आलोचको का कहना है कि समाजवादी व्यवस्था म उत्पादन की वृद्धि नही हो सकती। यह स्वाभाविक है कि एक उद्योगपति (Industrialist) अपने व्यक्तिगत मुनाफे के लिए बडी निगरानी के साथ अपनी मिल के उत्पादन का निरीक्षण करे, किन्तु समाजवाद मे उत्पादन से होने वाला मुनाफा किसी एक का न होकर सब का होगा और जैसी कि कहावत है कि "सब का काम किसी का काम नही होता", (Everybody's business is nobody's business) अत कोई भी मजदूर अथवा सरकारी नौकर उसम इतनी रुचि नही लेगा। व्यक्तिगत उद्योगो म जो जितना काम करता है उसे उसके अनुसार मजदूरी मिलती है और यदि कोई ज्यादा काम करता है तो उसे ज्यादा पैसे मिलते है, किन्तु समाजवाद म मजदूर को एक निश्चित वेतन मिलेगा, जिसके कारण उसको अधिक काय करने की प्रेरणा नहीं मिलेगी। अपनी निश्चित, आमदनी से सन्तुष्ट रहने के कारण, उस उत्पादन के घटने और बढने म कोई रुचि नही होगी, क्योंकि उसके, घटने बढने से उसकी मजदूरी पर एकदम प्रभाव नही पडता। अत यह माना कि सैद्धान्तिक रूप से समाज का हित एक व्यक्ति का हित भी है किन्तु व्यवहार मे एक मजदूर इसे सोच नही सकता, जिसके

कारण वह कठोर परिश्रम करना छोड देता है और देश की उत्पादन की मात्रा घट जाती है।

४ समाजवाद वर्ग का उपदेश देता है। (Socialism preaches Class War)—समाजवाद का मूल आधार दो वर्ग सिद्धान्त है। समाज में विलास का जीवन बिताने वाले, परिश्रमभोगी पूंजीपतियों (Parasite Capitalist) के विरुद्ध वह मेहनत कश मजदूरों का पक्ष लेता है, अथवा दूसरे शब्दों मे यो कहिए कि वह निधन तथा मजदूर वर्ग का धनिकवर्ग पर आक्रमण (Socialism is a raid of the havenots upon the haves) समाज का इस प्रकार से दो वर्ग मे बँटा हुआ मानने वाला समाजवादी सिद्धान्त सबको मान्य नही हो सकता। प्रथम तो यह अत्युक्ति (Exaggeration) अधिक है कि समाज में ऐसे केवल दो ही वर्ग हैं और फिर यदि वे हैं भी तो इस प्रकार के सिद्धान्तो का प्रचार आपस में भेदभाव तथा शत्रुता फैलाने के सिवाय और कुछ भी नही करता। अतः आलोचकों की धारणा है कि समाज मे धनिक और श्रमिक वर्गों की कल्पना करके समाजवाद ने लोगो को बरगलाया है और उन्हें एक दूसरे के दुश्मन बना कर सामाजिक शान्ति तथा व्यवस्था को एक सङ्कट में डाल दिया है। किन्तु समाजवाद की यह आलोचना मार्क्सवाद के विषय मे ही लागू होती है अन्य विकासवादी समाजवादो पर नही।

५ समाजवाद एक सकीर्ण विचारधारा है (Socialism is a narrow doctrine)—आलोचकों की मान्यता है कि समाजवाद एक ऐसी विचारधारा है जो समाज तथा समाज की समस्याओ को एक विशाल दृष्टिकोण से नही देखती। उसका प्रमुख ध्येय मजदूर वर्ग के शोषण का अन्त करना है और इसके लिए वह पूंजीवाद के विरुद्ध अपनी सारी शक्ति लगा देता है। समाजवादी यह भूल जाते हैं कि समाज या देशो में संख्या में ज्यादा होते हुए भी केवल मजदूर ही मजदूर नही रहते और फिर मजदूर भी खाने को अधिक चिन्ता करते हुए भी केवल खाने के लिए ही नहीं जीते। समाजवादी दर्शन इस विषय में बहुत सकीर्ण है। वह जीवन की कोई विस्तृत व्याख्या नही करता और न उसके लिए कोई दर्शन ही सामने रखता है। केवल श्रमिकवर्ग की उन्नति चाहने के कारण वह एक वर्ग विशेष का दर्शन कहा जा सकता है, और फिर उन्नति भी केवल आर्थिक होने के कारण यह निःसन्देह सत्य है कि वह एक व्यापक जीवन दर्शन (Broad Philosophy of life) नही है।

समाजवाद गरीबों की उन्नति की अपेक्षा धनवानों के अपमान पर बल देता है (Socialism emphasises more on the humiliation of the higher than the elevation of the lower)—यद्यपि सामाजिक तथा आर्थिक दोनों ही क्षेत्रों में समाजवाद का उद्देश्य समानता लाना है किन्तु व्यावहारिक क्षेत्र में (Practically) इस समानता को लाने के लिए वह गरीब और निधनों का ऊँचा उठाने के लिए इतना यत्न नहीं करता, जितना कि धनवानों को नीचे गिराकर गरीबों के बराबर लाने के लिए करता है। उचित तो यह है कि निर्धन लोग ऊँचे उठें और धनवानों के बराबर आयें

जिससे कि समाज मे समानता का आदश प्राप्त हो सके किन्तु धनवानो को लूटकर उन्हें निधन बनाने से समानता तो आ जायगी पर वह ऐसी समानता नहीं होगी जो एक सभ्य तथा आदर्श समाज म होनी चाहिए। धनवानो को अपने स्तर से गिराने से श्रमिको का वास्तविक जीवन स्तर ऊँचा नहीं होगा बल्कि सारा समाज एक दरिद्रो का समाज हो जायगा, जसम जीवन के मूल्य (Values of life) बहुत सस्ते हो जायेंगे। अत आलोचको का मत है समाजवाद एक द्वेषपूर्ण सिद्धान्त (Prejudiced Theory) है जो धनिक वग से ईर्ष्या रखने के कारण उसका अपमान करने की भावना से अधिक प्रेरित हुआ है और समाज मे समानता लाने के लिए उन्हे नीचे लाना चाहता है, नीचे वालो को ऊपर लाना नही। प्रो० बाकर के शब्दो म "समाजवाद का आकषण इसम है कि वह जनसाधारण को यह वचन देता है कि धनिको का नाश करके उनकी सम्पत्ति का साधारण विभाजन कर दिया जायगा"। The attraction of socialism to masses lie in its promise of the spoliation of the rich and general division of their wealth —E Barker

७ प्रतियोगिता के बिना उपभोक्ताओ का अहित होगा (Absence of competition will put the consumers at a disadvantage)—समाजवादी व्यवस्था म उत्पादन तथा वितरण के सब साधनो का राष्ट्रीयकरण हो जायगा, किन्तु उनका उपभोग (Consumption) व्यक्तिगत ही रहेगा। मतलब यह है कि चीजे सब सरकार द्वारा पैदा की जायेंगी और बाटी जायेंगी, किन्तु उनको खरीदने के लिए उपभोक्ता (Consumer) को अपनी तनख्वा वेतन म से उसका मूल्य देना होगा, जो उसे उसकी योग्यता अनुसार मिलेगी। चूंकि समाजवादी राज्य के सिवा और कोई कम्पनी अथवा मिल चीजे न बना सकेगी और न बेच सकेगी, अत सरकार जिस कीमत पर वस्तुएँ बेचेगी, उसी पर लोगों को वह विवश होकर खरीदना पड़ेगा। दूसरे व्यक्तिगत व्यवसाय मे प्रतियोगिता (Competition) रहती है और इसी होड म अच्छी चीजें सस्ती कीमत पर मिल सकती हैं। किन्तु समाजवादी राज्य मे कोई प्रतियोगिता नही होगी। केवल सरकारी दुकानों पर ही निश्चित भाव पर चीजे मिल सकेंगी, जिस कारण रद्दी से रद्दी वस्तु के लिए भी एक उपभोक्ता को वह कीमत देनी होगी जो सरकार मागेगी। अत उत्पादनकर्त्ता अथवा मजदूर के हितों के सामने समाजवाद उपभोक्ता के हितो की परवाह नही करता, जो निस्म देह आपत्तिजनक है।

७ समाजवादी व्यवस्था मे शासन सम्बधी कठिनाइया होगी (There will be administrative troubles under Socialist organisation)—समाजवाद राज्य को अधिक से अधिक काय सौपने के पक्ष म है। सारे उद्योग, कल कारखाने आदि समाजवादी सरकार द्वारा अपने अधिकार मे लिए जायेंगे और उत्पादन (Production) के उचित वितरण की व्यवस्था भी समाजवादी सरकार ही करेगी। ऐसी स्थिति मे राज्य का काय क्षेत्र इतना अधिक बढ जायगा कि सरकार उसे सँभाल नही सकेगी। प्रशासन सम्बधी अनेको कठिनाइयाँ पैदा होगी और सब प्रकार के भ्रष्टाचार तथा

आलसीपन की वृत्तियाँ समाज मे पनपेंगी। जब आज कल के राज्यो मे ही जहा द प्रतिशत मे अधिक उत्पादन तथा वितरण व्यक्तिगत सस्थाओ द्वारा नियन्त्रित किया जाता है, राज्य अपने थोडे से राष्ट्रीय उद्योगो को सँभालने मे ही असमर्थ है और वह बेइमानी का बोलबाला है तो आलोचको को सन्देह है कि समाजवादी राज्य सब राष्ट्रीय उद्योगो की शासन व्यवस्था ठीक-ठीक सँभाल सकेगा। उन्हे डर है कि सरकार का शासनयन्त्र कहीं अपने ही बोझे से दबकर न टूट जाये।

६ समाजवादी व्यवस्था मे अपव्यय अधिक होगा। (Socialism will no be economic)—समाजवाद के विरोधियो का यह दावा है कि समाजवाद के अन्तर्गत वस्तुओ तथा धन का अपव्यय पूँजीवाद से भी अधिक होगा। इस व्यवस्था में व्यक्तिगत स्वार्थों के न होने से सब लोग आलसी तथा अकर्मण्य होंगे और जो काम एक पूँजीपति १०० आदमियो से करवा सकता है, उसे करने के लिए ५०० आदमियो की जरूरत पडेगी। उदाहरण के लिए वे रेल और डाक विभाग का उदाहरण देते हैं। उनका कथन है कि सरकार के आधीन काय करने वाले ये विभाग यद्यपि ठीक चल रहे हैं, किन्तु इन पर सरकार को इतना खर्च करना पडता है कि एक व्यक्तिगत कम्पनी रेलवे बजट के आधे पैसे से ही रेलो की अधिक अच्छी व्यवस्था कर सकती है। यदि रेल और टार विभाग अलग अलग कम्पनियो के आधीन हो तो उनमे एक प्रतियोगिता रहे, जिसके कारण उन पर अधिक व्यय न हो और एक व्यक्ति को उनकी सेवाओ के लिए कम पैसे देने पड़ें।

१० व्यक्तिगत सम्पत्ति का विनाश मनुष्य के स्वभाव के प्रतिकूल है (Elimination of Private Capital is against human nature)—समाजवाद मनुष्य के स्वभाव का मनोवैज्ञानिक अध्ययन नही करता। मनुष्य म चीजो को बटोरने तथा उन पर अपना अधिकार जमाने की प्रवृत्ति जन्मजात है। प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि उसके पास अधिक से अधिक सम्पत्ति हो और उसे अपनी कहने तथा कहलाने मे उसे जो आनन्द आता है वह राष्ट्रीय सम्पत्ति से कभी नही मिल सकता। अतः समाजवाद व्यक्तिगत सम्पत्ति को सामाजिक सम्पत्ति मे बदल कर मनुष्य के स्वभाव से अनभिज्ञ होने का परिचय देता है।

११ समाजवाद मे स्वाधीनता गायब हो जायेगी (Liberty will disappear under Socialism)—समानता और स्वाधीनता (Equality and liberty) दोनो आपस मे एक दूसरे मे जुडी हुई है। किसी भी समाज मे ये दोनो पूर्ण रूप से नही मिल सकती। ये एक दूसरे की विरोधिनी है और जहा स्वाधीनता होती है वहा से समानता गायब हो जाती है तथा जहाँ समानता होती है वहा पर स्वाधीनता नही फटकती। इन दोनो का एक साथ कोई भी वणन नही कर सकता और इनका सौतिया डाह प्रत्येक समाज मे चलता रहता हैं। समाजवाद इनमे से समानता को चुनता है अतः इसमे स्वाधीनता नहीं हो सकती। क्योंकि स्वाधीनता का अर्थ है अपनी-अपनी अलग उन्नति करना, जिसका स्वाभाविक परिणाम होगा असमानता। समाजवाद मे

स्वाधीनता के विषय में प्रो० लीकोक (Prof Leacock) लिखते हैं, "समाजवाद के अन्तर्गत स्वाधीनता की क्षति हो जायगी। एक चुने हुए स्वामी के शासन के अलावा वहाँ और कुछ नहीं होगा। श्रमिक को अपना कार्य करने के लिए आदेश मिलेगा और वह उसका पालन करेगा।" (Under socialism freedom is gone, there is nothing but the rule of an elected boss the worker is Commanded to his task and obey) समाजवाद प्रेस तथा अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता (Freedom of press and expression) को भी स्वीकार नहीं करता।

१२ समाजवाद परिवार का विरोधी है (Socialism is a menace to family life)—यद्यपि खुले रूप से समाजवाद, विवाह, परिवार तथा पारिवारिक जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं रखता, फिर भी कुछ समाजवादी लेखकों ने पारिवारिक जीवन के बन्धनों की खूब खिल्ली उड़ाई है। हेरे क्वेलच कहते हैं कि, "मैं विवाह का उन्मूलन चाहता हूँ। हम कोई विवाह बन्धन नहीं चाहते। हम कोई भी बन्धन नहीं चाहते। हम केवल उन्मुक्त प्रेम चाहते हैं।" (I want to abolish marriage We want no marriage bonds We want no bonds at all We do want free love—H Quelch) इसी प्रकार जी० डेविल (G Deville) का भी मत है कि "विवाह सम्पत्ति को नियमित करना है। वह स्त्री पुरुष के सम्मिलन से अधिक एक व्यापारिक समझौता है।" (Marriage is a regulation of property,—a business Contract rather than a union of persons) पारिवारिक जीवन सम्बन्धी समाजवादियों के ये विचार निश्चय ही उपहास के योग्य हैं।

१३ समाजवाद में औद्योगिक शांति नहीं रह सकती (Socialism is an enemy of industrial peace)—समाजवाद का पहला उपदेश ही मजदूरों को पूँजीपतियों के विरुद्ध घृणा का उपदेश देना है। इसका परिणाम यह होगा कि मजदूर लोग झगड़ालू हो जायेंगे तथा अपनी शक्ति का दुरुपयोग करने लगेंगे। पूँजीवाद के विनाश के बाद भी ये लोग चैन से नहीं बैठेंगे और फिर राष्ट्रीय सरकार से लड़ना शुरू कर देंगे। इस सब का नतीजा यह निकलेगा कि आर्थिक व्यवस्था हमेशा के लिए खराब हो जायगी और औद्योगिक शांति केवल एक स्वप्न मात्र रह जायगी।

१४ समाजवाद भी अन्यायपूर्ण है (Socialism too is unjust)—समाजवादी व्यक्तिवाद को अन्यायपूर्ण सिद्ध करने का दावा करते हैं, क्योंकि, उसमें सबको समान स्वतन्त्रता तथा उन्नति के अवसर नहीं मिलते। यदि ध्यान से देखा जाय तो समाजवाद में भी समानता केवल नाम की ही रहेगी। इस व्यवस्था में श्रमिक लोग सरकार के सर्वेसर्वा बन जायेंगे और पूँजीपतियों के अन्याय व शोषण के स्थान पर श्रमिकों द्वारा शोषण व अन्याय शुरू हो जायगा। यह माना कि मजदूर लोग संख्या में अधिक हैं, किन्तु जो भी कुछ अल्प संख्यक (Minorities) बचेंगे उनके साथ तो अन्याय होगा ही।

१५ समाजवाद राज्य का अन्धा भक्त है—राज्य की योग्यता तथा कार्य कुशलता के विषय में समाजवादी इतिहास का ठीक ठीक अध्ययन नहीं करते। राज्य का पिछला भूत काल का इतिहास इतना उज्ज्वल नहीं है और इस कारण उस पर इतनी अधिक महत्वपूर्ण जिम्मेदारियाँ डालना कोई बुद्धिमत्ता का कार्य नहीं कहा जा सकता। यथार्थ में बात यह है कि व्यक्तिवाद की बुराइयों को मिटाने के लिए समाजवादी राज्य का पल्ला पकड़ते हैं किन्तु उसके अन्धे भक्त होने के कारण यह भूल जाते हैं कि जिस संस्था को वे इतना महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व सौंप रहे हैं, वह इसके लिए अयोग्य है।

१६ समाजवाद धर्म का शत्रु है (Socialism is hostile to religion)—समाजवादी कुछ उग्र विचारक धर्म को पूँजीपतियों का दोस्त बतला कर उसकी भर्त्सना करते हैं। मार्क्स ने तो उसे जनता की अफीम तक कह डाला है। धर्म विरोधी अथवा धर्म हीन होने के कारण कुछ आलोचक समाजवाद को एक निरा भौतिकवादी दर्शन बतलाते हैं जो मनुष्य के आध्यात्मिक विकास (Spiritual development) तथा आचारात्मक शिक्षा (Ethical instructions) के लिए कोई कार्यक्रम प्रस्तुत नहीं करता।

१७ समाजवाद में व्यापार की उन्नति नहीं होती (Socialist attitude is not conductive to the growth of Commerce)—समाजवादियों का कहना कि "व्यापार एक धोखा धड़ी है" (Business is blackmail)। वे प्रतियोगिता, विज्ञापन, सजावट, तथा व्यापारिक यात्राओं आदि की खुले आम भर्त्सना करते हैं। वे चाहते हैं कि समाज आत्मनिर्भर (Self Sufficient) हो और इस कारण विनिमय के सारे आधुनिक तरीके (Modern methods of Exchange) की भी निंदा करते हैं। तात्पर्य यह कि वे विदेशी व्यापार की उन्नति नहीं चाहते।

१८ समाजवाद से मनुष्य का नैतिक पतन होगा (Socialism will lead to moral degradation)—आलोचकों का विश्वास है कि समाजवाद व्यक्ति की उन्नति के अवसर न देने के कारण उसके विकास को कुण्ठित कर देगा। व्यक्ति की स्वाधीनता रुक जायेगी और सम्भवत उसके चरित्र का भी पतन हो जायगा। मनुष्य के नैतिक गुण तब विकसित होते हैं जब उन्हें चमकने के लिए कोई क्षेत्र मिलता है। समाजवाद इन सब को नष्ट करके उसे समूचे समाज का दास मात्र बना देगा। उसकी प्रतिभा सड़न लगेगी। और वह महा आलसी और निकम्मा बन जायगा। उसकी कोई जिम्मेदारियाँ नहीं रहेंगी और वह स्वावलम्बी न होकर राज्य के मुँह की ओर सहायता के लिए देखेगा। नौकरशाही (Bureaucracy) उसे हृदयहीन तथा यन्त्रवत् बना देगी। तात्पर्य यह कि उसके स्वाभाविक नैतिक गुणों का अन्त हो जायगा और वह आलसी धोखेबाज झूठा तथा चरित्र भ्रष्ट बन जायगा।

१९ समाजवाद प्रचारात्मक अधिक है (Socialism is away from reality)—कुछ आलोचक ऐसा भी मानते हैं कि समाज में श्रमिक और धनिक वर्ग

या जो चित्र समाजवाद खींचता है वह प्रचारात्मक अधिक है। उनका मत है कि न आज का मजदूर इतना गरीब अथवा दीन है जितना उसे बताया जाता है और न पूंजीवाद इतना हृदयहीन तथा दानव है जितना लोग उसे समझते है। इन दोनो ही वर्गों के चित्र अतिरञ्जित (Exaggerated) है और सचाई कुछ और ही है। आपसी मतभेद होने हुए भी इनमे इतनी चौड़ी कट्टर शत्रुता नही है, बल्कि कुछ लोगो ने अपने निश्चित उद्देश्यो के साधन के लिये जनता को झूठ द्वारा भ्रम मे डालना चाहा है। अत समाज मे प्रचार के तत्व (Elements of Propagandas) अधिक है।

समाजवाद का मूल्याङ्कन (Evaluation of Socialism)—समाजवादी सिद्धान्त पर उपरोक्त लाञ्छन लगाने पर भी यह मानना एक बड़ी भूल होगी कि वह एक सारहीन दर्शन है। पश्चिमी देशो मे जिस शीघ्रता के साथ समाजवादी सिद्धान्तों का प्रचलन हुआ है और जितनी दृढ़ता के साथ वे यूरोपीय समाज मे अपनी जडे जमा चुके है वह यह सिद्ध करता है कि भविष्य मे आने वाले औद्योगिक विश्व को अपनी समस्याओ के लिए समाजवाद के अतिरिक्त और कहीं शरण नही मिल सकती है। यूरोप की समाजवादी क्रान्ति ने आज वहाँ के समाज का चित्र ही बदल दिया है और वहाँ के श्रमिक वर्ग को भी एक सूत्र मे बाँध कर इतना शक्तिशाली बना दिया है कि आज उसे हम केवल दास अथवा 'जिन्दा औजार' (Living tool) मान नही सकते। यदि हम समाजवाद का उसकी घटनाओ के साथ अध्ययन करे तो हमे ज्ञात होगा कि समाजवाद से समाज का निम्नलिखित लाभ हो सकता है—

१ समाजवाद आज की आर्थिक अव्यवस्था का बड़ा सुन्दर उत्तर है (Socialism holds a good answer to the present day economic ills)—आज के समाज मे जो भी कुछ अन्याय तथा भीषण असमानता दिखाई देती है उन सबका मूल कारण पूंजी का असमान वितरण है। यदि समाज की सम्पत्ति किसी व्यक्ति की अपनी न होकर सबकी रहे और सबका उपभोग के लिए बराबर मिले तो वर्तमान काल की सारी आर्थिक अवस्थाओ का अन्त हो जाय। पूंजी तथा सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण के द्वारा समाजवाद इसके लिए एक निश्चित कार्यक्रम तथा सुझाव रखता है जो प्रचलित आर्थिक अव्यवस्था (Economic disorders) दूर कर सकता है।

२ समाजवादी व्यवस्था मे सम्पत्ति का अपव्यय नहीं होगा (There shall be no waste of property under Socialist plan)—व्यक्तिगत उद्योगो (Private Enterprizes) मे आपसी प्रतियोगिता के कारण विज्ञापन (Advertisements) आदि पर बहुत कुछ खर्च करना पड़ता है। उत्पादन से लेकर एक उपभोक्ता (Consumer) के हाथ तक पहुंचने से पहले तक चीज कितने ही दलालो (Brokers) के हाथ से गुजरती है और बहुत कुछ रास्ते मे ही खराब हो जाती है। समाजवादी व्यवस्था मे ऐसा नही हो सकता। वहाँ केवल वे ही वस्तुएँ पैदा जिनकी जरूरत होगी और बिना किसी प्रतियोगिता के बिकने के कारण उनके

पन आदि पर कुछ भी बर्बाद करने की जरूरत नहीं होगी। अत यह कहा जा सकता कि यह व्यवस्था अधिक मितव्ययी (Economic) तथा अधिक लाभदायक है।

३ समाजवाद देश की दरिद्रता को मिटा सकता है (Socialism is a panacea to end poverty)—किसी भी देश की दरिद्रता तब तक नहीं मिट सकती जब तक वहाँ औद्योगीकरण (Industrialisation) के माध्यम द्वारा वहाँ के उत्पादन को बढ़ाया न जाय। यह उत्पादन तभी बढ़ सकता है और अच्छे प्रकार का हो सकता है जब कि देश के सारे उद्योगों का राष्ट्रीयकरण (Nationalisation) कर दिया जाय। समाजवाद इसी की माग लेकर आगे बढ़ता है और व्यवसायिक शिक्षा (Technical education) सामाजिक सुरक्षा (Social security) आदि योजनाओं के द्वारा देश से बेरोजगारी मिटा कर, वहाँ के प्रत्येक नवयुवक को रचनात्मक कार्य (Constructive work) दे सकता है और इस प्रकार उत्पादन की दृष्टि तथा व्यापार की उन्नति द्वारा देश की दरिद्रता का जड़ से नाश कर सकता है।

४ समाजवाद सबको उन्नति के समान अवसर देता है (Socialism provides equal opportunities to all for their development)—समाजवाद का ध्येय 'समानता' लाना होने के कारण वह समाज के प्रत्येक सदस्य को अपने विकास के लिये पूरे पूरे तथा बराबर अवसर देने का वचन देता है, जो सर्वथा न्याय सगत है। प्रत्येक व्यक्ति एक काम को तभी रुचि लगा कर तथा कुशलता के साथ कर सकता है, जब वह उसको उसकी इच्छानुसार दिया जाय। मनचाहा काय मिलने पर मनुष्य की सुप्त शक्ति तथा सामर्थ्य (Latent faculties and capacities) एकमत जाग्रत हो जाती है और वह उस काम को बहुत जल्दी तथा अधिक सुन्दरता के साथ कर सकता है। समाजवादी व्यवस्था म प्रत्येक व्यक्ति को चूंकि उसकी इच्छा के अनुसार काय मिलेगा और उन्नति के समान अवसर प्राप्त हो सकेंगे अत यह निश्चय ही न्यायपूर्ण व उपयुक्त व्यवस्था है।

५ समाजवादी व्यवस्था के अन्तर्गत एक मजदूर को अधिकतम नहीं करना पड़ेगा (A labourer shall not have to work too hard under socialism)—समाजवाद के अन्तगत सब काय सार्वजनिक हित को दृष्टि मे रखकर किये जायेंगे। अत इस समाज मे भी यद्यपि मजदूर को काय तो करना पड़ेगा, किन्तु उसका काय काल (Working time) निश्चित होगा। वह सब के साथ केवल उतनी ही देर मेहनत करेगा जितनी कि आवश्यक उत्पादन के लिए जरूरी है। यदि निश्चित समय म वह आवश्यकता से अधिक पैदा कर लेगा, तो उसके काम करने के घण्टे कम कर दिये जायगे। तात्पर्य यह कि समाजवाद एक मजदूर से मेहनत तो चाहता है पर आवश्यकता से अधिक नहीं। अत हम कह सकते हैं कि आज के मजदूर की भांति जो दिन रात मिलों म (Overtime) काय करता है समाजवाद का मजदूर अधिक विश्राम पा सकता।

६ समाजवाद हरामखोर या परिश्रमजीवी वर्ग का अन्त कर देगा (Socialism shall eliminate the parasite class)—समाजवादी इस सिद्धान्त में विश्वास करते हैं कि "जो काम नहीं करेगा वह खाना नहीं खायेगा।" (He who shall not work, shall not eat)—इससे स्पष्ट है कि समाजवादी व्यवस्था में केवल उन्हीं लोगों को जीने का अधिकार होगा, जो परिश्रमी होंगे और अपनी मेहनत द्वारा रोजी कमायेंगे। आज के समाज में विलास करने वाला पूँजीपति वर्ग जो कुछ नहीं करता है और हरामखोरी से दूसरे गरीब मजदूरों की मेहनत पर जीता है समाप्त कर दिया जायगा और समाज समान रूप से मेहनत कशों का समाज होगा। समाजवादी सिद्धान्त को कोई भी विवेकशील प्राणी आपत्तिजनक नहीं मान सकता कि समाज से इन परिश्रमभोगियों को या तो मिटा दिया जाय, या उन सबों को भी मेहनतकश मजदूरों का सा जीवन बिताने के लिए बाध्य किया जाये। इस वर्ग के अन्त होने पर ही समाज में असली समानता आ सकती है। अतः समाजवादी इस वर्ग की समाप्ति पर बल देते समय एक सही बात पर बल देते हैं।

७ समाजवाद शारीरिक तथा मानसिक दृष्टि से एक स्वस्थ समाज की स्थापना करता है। (Socialism envisages a healthy society physically as mentally)—समाजवाद का अन्तिम उद्देश्य समाज का सामूहिक विकास कर उसे एक स्वस्थ एवं सुन्दर समाज बनाना है। यह एक पवित्र लक्ष्य है, जो तर्कसंगत होने के साथ साथ सर्वमान्य भी है। समाजवाद चाहता है कि प्रत्येक व्यक्ति परिश्रमी हो और उसे उन्नति के समान अवसर मिलें। अपनी इस इच्छा को कार्य रूप में बदलने के लिए वह एक ठोस कार्यक्रम रखता है, जिसका पालन करने से व्यक्तियों का व्यक्तिगत रूप से शारीरिक तथा मानसिक विकास तो होगा ही, किन्तु समाज का भी सामूहिक हित (Collective good) होगा।

८ समाजवाद भाईचारा तथा सेवाभाव बढ़ाता है (Socialism fosters fraternity and social service)—समाजवादी राज्य का स्वरूप एक इकाई (One unity) का है। उसमें रहने वाले सब सदस्य अपने को एक परिवार के सदस्यों की तरह अनुभव करते है और एक के हानि अथवा लाभ को सब की हानि अथवा लाभ मानते हैं। उन सब में परस्पर प्रेम रहता है तथा एक के दुखों को दूर करने के लिए दूसरा अपने हितों तक का बलिदान करने को तैयार रहता है। कहने का तात्पर्य यह है कि समाजवाद मनुष्य मनुष्य अथवा नागरिक-नागरिक के मध्य कोई भेद नहीं करता, बल्कि उन्हें एक दूसरे को अपना ही कुटुम्बी अथवा भाई समझने का उपदेश देता है। समाजवाद व्यक्तिगत क्षुद्र स्वार्थों को तुच्छ एवं घृणित वस्तु मानता है और नागरिकों से यह आशा करता है कि वे व्यक्तिगत स्वार्थों से ऊपर उठ कर एक दूसरे की सेवा को अपना आदर्श मान कर चलें। आज के पश्चिमी राष्ट्र में जो जाग्रत सामाजिक भावना दिखाई देती है वह इसी समाजवादी आन्दोलन का परिणाम है।

९. समाजवाद बतलाता है कि समानता के बिना राजनैतिक प्रजातन्त्र अपूर्ण है (Socialism discloses that political democracy without equality is incomplete)—राजनैतिक प्रजातन्त्र के विषय में भी समाजवाद एक बहुत महत्वपूर्ण तथ्य की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता है। अपने समानता सिद्धांत की विवेचना से उसने यह सिद्ध कर दिया है, असली प्रजातन्त्र यदि कभी हो सकता है तो केवल तभी जब सब समान हों और बन्धुत्व की भावना द्वारा उत्प्रेरित हों। आर्थिक समानता के बिना राजनैतिक प्रजातन्त्र केवल एक दिखावा मात्र है और पूर्णत खोखला है, क्योंकि मताधिकार से ज्यादा जरूरी चीज रोज की रोटी और रोजी की समस्या है।

१०. समाजवाद एक न्यायपूर्ण तथा जनतांत्रिक विचारधारा है। (Socialism is a just and democratic movement)—राजनैतिक क्षेत्र में सरकार की रूप रेखा बतलाते समय समाजवादी जनतन्त्र (Democracy) में अपना विश्वास प्रकट करते हैं। उनकी सरकार को समाजवाद के आलोचक चाहे सर्वसत्तावादी (Authoritarian) बतलायें किन्तु सिद्धान्त रूप में वह जनतांत्रिक अवश्य है। समाजवादी सरकार किसी एक राजा अथवा कुछ चुने हुए कुलीन लोगों की सरकार नहीं हो सकती, क्योंकि इस प्रकार का कोई भी भेदभाव समाजवाद को मान्य नहीं है। वह उत्पादन पर सामूहिक स्वामित्व (Collective ownership) और उसकी सामूहिक व्यवस्था (Collective management) चाहता है, जो पूर्णत प्रजातन्त्रीय पद्धति है और आज के युग के लिए पूरी तरह से उपयुक्त है।

११. समाजवाद पूंजीवाद की बुराइयों पर प्रकाश डालता है। (Socialism brings to light the evils of Capitalism)—समाजवाद का आधुनिक युग में जन्म ही पूंजीवाद की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप हुआ है। पूंजीवाद आज के युग की नितान्त घृणित व परम दोषपूर्ण व्यवस्था है जिसका जन्म व्यक्तिवाद के विकास के कारण हुआ है। इस व्यवस्था के कारण समाज में दुख, शोषण तथा पीड़ा इतनी अधिक बढ़ गई है कि इस व्यवस्था को और अधिक समय के लिए सहन नहीं किया जा सकता। व्यक्तिवाद के पूंजीवाद में बदलने का प्रमुख कारण आज की औद्योगिक परिस्थितियाँ हैं जिनके परिणाम स्वरूप कुछ धनवान लोग सारे समाज के सर्वेसर्वा बन बैठे हैं। समाजवादियों की दृष्टि में पूंजीवाद एक ऐसी व्यवस्था है, जिसके अन्तर्गत समाज के कुछ धनिक लोग अपनी पूंजी के बल पर कुछ गरीब मजदूरों को थोड़े पैसे में नौकर रख लेते हैं। वे बेचारे दिन भर पसीना बहाकर जीतोड़ श्रम द्वारा वस्तुएं उत्पन्न करते हैं किन्तु उन वस्तुओं के मूल्य से होने वाली आमदनी का उचित अंश (Due share) उनको नहीं मिलता, बल्कि हृदयहीन मिल मालिक उनको कुछ पैसे देकर, बाकी सब पैसा को बिना कुछ किये ही हड़प जाते हैं। ये धनिक लोग कोई परिश्रम नहीं करते बल्कि दूसरे के श्रम पर जीवित रहते हैं। दरिद्रता के कारण मजदूर विवश होकर अपने को इनके हाथों में बेच देता है और चूँकि उत्पादन के सभी साधन

के स्वामी ये पूँजीपति ही है, अतः मजदूर को वही मजदूरी ही स्वीकार करनी पडती है, जो पूँजीपति दे। इस प्रकार मजदूर गरीब का गरीब ही बना रहता है और कभी भी उसकी स्थिति जीवित रहने की सीमा से आगे नही बढती। किन्तु दूसरी ओर पूँजीपति की बिना कमाई पूँजी दिन दूनी और रात चौगुनी बढती रहती है, जिसका फल यह होता है कि वह समाज के सब साधारण मजदूरी से पेट पालने वाली जनता की जेबों से निकल कर एक ही पूँजीपति की जेबों में केन्द्रित हो जाती है और वह धनवान से अधिक धनवान बन जाता है। समाजवादी इस व्यवस्था को महान् अन्यायपूर्ण मानते हैं और उसे आज के युग की सब क्रान्तियो का जन्मदाता कहकर इसमें निम्नलिखित बतलाते हैं —

१ पूँजीवाद द्वारा पूँजी का केन्द्रीकरण हो जाता है, अर्थात् देश की सम्पत्ति सब लोगो के पास समान रूप से न रह कर कुछ लोगो के पास जमा हो जाती है।

२ पूँजीवाद द्वारा निर्धन श्रमिक लोग और भी अधिक निर्धन तथा धनवान धनवान बन जाते है।

३ अपने धन अथवा पूँजी के बल पर पूँजीपति लोग सरकार में भी पहुँच जाते हैं और वहा अपने प्रभाव द्वारा अपने हित के कार्य करते तथा करवाते हैं, किन्तु दूसरी ओर गरीब मजदूर प्रजातन्त्रात्मक प्रणालियो द्वारा न सरकार तक ही पहुँचता है और न उसकी कोई सुनता ही है।

४ पूँजीवाद में दरिद्रता अधिक बढती है, जिसके कारण जन साधारण में असन्तोष तथा विद्रोह की भावनाये भभकने लगती है और एक न एक दिन एक भयंकर क्रान्ति होती है।

५ व्यापार के क्षेत्र में पूँजीवाद सबको उन्नति और विकास के समान अवसर नही देता। पूँजीपति लोगो में भी जो बडे पूँजीपति हैं वे सारे बाजार पर छा जाते हैं और सारे व्यापार पर एकाधिकार स्थापित कर लेते हैं, जिसके कारण छोटी पूँजी वाले लोग नष्ट हो जाते है।

६ पूँजीवादी व्यवस्था मे वस्तुओं का अपव्यय तथा दुरुपयोग सबसे अधिक होता है। प्रतियोगिता के कारण विज्ञापन (Advertisement) आदि पर बहुत कुछ खर्च करना पडता है और कई बार आवश्यकता से अधिक उत्पादन हो जाने पर चीज बेकार जाती है। उदाहरण के लिए कहते हैं कि यू० एस० ए० मे प्रतिवर्ष ७००० गाँठे कागज बाजार मे आता है किन्तु उसमे से आधे से अधिक यों ही पड़ा रहता है, क्योंकि उत्पादन की मात्रा जरूरत से ज्यादा है।

७ पूँजीवाद मे पूँजीपति अपनी आय से सन्तुष्ट न होकर अधिक से अधिक कमाने के लिए सारे भ्रष्ट और बेईमानी के रास्ता को अपनाते हैं। अतः पूँजीवाद व्यक्तियों को धोखा, बेईमानी, तथा धूर्तता सिखलाकर चरित्रहीन बनना सिखलाता है।

पूँजीवाद का मूलभूत सिद्धान्त असमानता होने के कारण यह नैतिक दृष्टि से भी एक परम अन्यायपूर्ण तथा अमानवीय सिद्धान्त है।

पूँजीवादी व्यवस्था के इन उपरोक्त अवगुणों को प्रकाश में लाकर समाजवाद ने राजनीति शास्त्र को एक बहुत बड़ा योग दान दिया है। निश्चय ही यह व्यवस्था बहुत अन्यायपूर्ण है और समाजवाद इसकी आन्तरिक दुर्बलताओं तथा दोषों का भण्डाफोड़ कर एक सर्व सम्मत सत्य का उद्घाटन करता है।

वैसे समाजवाद को लोग चाहे एक स्वप्न बतलायें, किन्तु यह स्वप्न वास्तविकताओं से अधिक दूर नहीं है। समाजवाद एक आन्दोलन है, जो आज के प्रत्येक औद्योगिक समाज में अत्यन्त आवश्यक है। यह आज के युग की विशेष प्रकार की समस्याओं का समाधान लेकर आया है और जिस शीघ्रता से यह यूरोप के देशों में फैला है वह इस बात की पुष्टि करते हैं कि यह एक लोकप्रिय विचारधारा है, जो सैद्धान्तिक रूप से बहुत दृढ़ तथा व्यावहारिक रूप से पूर्णतः रचनात्मक है। विलियम हारकोर्ट के शब्दों में 'आज का युग समाजवाद का युग है और कोई भी राज्य अथवा समाज तब तक सन्तोषजनक तथा स्थायी रूप से सहनीय नहीं कहा जा सकता, जब तक वहाँ दुःख और दरिद्रता का निवास है।" (This is an age of socialism. No state or society can be considered satisfactory or permanently tolerable in which poverty and misery exist) अतः दुःखी और दरिद्र देशों के लिए आज एक ही रास्ता है—सीधा तथा स्पष्ट और वह है—समाजवाद।

शिल्पी समाजवाद
(Guild Socialism)

शिल्पी समाजवाद, समाजवाद का अंग्रेजी संस्करण है। इंगलैण्ड की परम्पराओं के अनुसार यह एक मध्यमार्गी विचारधारा (Middle way current) है जो न अंग्रेजी फेबियनवाद की तरह जरूरत से ज्यादा उदार है और न फ्रेंच संघवाद की तरह (Syndicalism) आवश्यकता से अधिक क्रान्तिकारी अथवा उग्र। वास्तव मे इस विचारधारा का इंगलैण्ड में उदय फेबियन समाजवाद तथा समूहवाद (Collectivism) दोनों ही के विरुद्ध एक क्रान्ति पर उग्र तथा उदार की शैली के मध्य एक संधि स्थापित करना था। अपने मूल रूप मे शिल्पी समाजवाद संघवाद (Syndicalism) तथा फेबियनवाद (Fabianism) दोनों ही के न्यायपूर्ण तथा उचित सिद्धान्तों को स्वीकार कर उनका समर्थन करता है, किन्तु इतना होते हुए भी यह फेबियनवाद के इतने ही अधिक समीप है जितना कि संघवाद मार्क्सवाद के। तात्पर्य यह है कि यह एक अधिक उग्र विचारधारा (Radical thought) नहीं है। इसके प्रवर्तक कुछ बुद्धिवादी अंग्रेज थे जो, अधिकतर 'फेबियन सोसाइटी' (Fabian Society) के सदस्य रह चुके थे। समाजवादी अन्य विचारधाराओं की तरह यह भी आधुनिक औद्योगिक समाज की समस्याओं का समाधान कर इंगलैण्ड में प्रकट हुई थी। इस विचारधारा का प्रमुख उद्देश्य मध्ययुगीन शिल्पी संघों की व्यवस्था (Mediaeval guild system) का आधुनिक समाज में फिर से जीवित करना है। शिल्पी समाजवादी मानते हैं कि आधुनिक औद्योगिक व्यवस्था (Industrial Organisation) इतनी जटिल हो चुकी है कि उसे सुलझाना अथवा सुचारु रूप से नियन्त्रित रखना किसी भी राज्य की सामर्थ्य के बाहर है। अतः वे चाहते हैं कि वर्तमान औद्योगिक समाज का कुछ स्वाधीन संघों (Autonomous guilds) मे बाँट दिया जाये और ये संघ ही उत्पादन तथा वितरण के सारे साधनों पर अपना अधिकार रखें। अथवा दूसरे शब्दों में यों कहिए कि शिल्पी समाजवाद यह चाहता है कि बडे-बडे उद्योग अथवा उत्पादन और वितरण न किसी पूँजीपति के हाथों में हों और न राज्य के बल्कि, उद्योगों की अपनी स्वतन्त्र सरकार हो (Self government in industry) और स्वाधीन संघ (Autonomous guilds) उत्पादन आदि की व्यवस्था का प्रबन्ध करें। सैद्धान्तिक दृष्टि से यह एक बहुत सबल तथा महत्त्वपूर्ण विचारधारा है जो वर्तमान औद्योगिक व्यवस्था के साथ कोई नया प्रयोग (New experiment) नहीं,

करती, वरन मध्ययुग म सफलता पूर्वक कार्य करते वाले स्वाधीन संघों का पुनर्जीवन मात्र चाहती है।

शिल्पी समाजवादी विचारक—शिल्पी समाजवादी आन्दोलन का इंगलैण्ड में जन्म देने वाले श्री ए० जी० पेंटी (A G Penty) हैं। सन् १९०६ में सर्वप्रथम इन्हीं के नेतृत्व में यह शिल्पी आन्दोलन आरम्भ हुआ था और अपनी प्रसिद्ध रचना 'The res oration of guild system" में इन्होंने पहली बार शिल्पी समाजवाद के सिद्धान्तों की एक विस्तृत विवेचना की। पेन्टी की इस विचारधारा का समर्थन करने वाले उनके और भी बहुत से समाजवादी विचारक थे, जिनमें, एस० जी० हाब्सन, (S G Hobson) ए० आर० आर्ज (A R Orge) तथा जी० डी० एच० कोल (G D H Cole) प्रमुख हैं। आर्ज (Orge) न्यू एज (New Age) नामक एक समाचार पत्र का सम्पादक था और इसके द्वारा शिल्पी समाजवादी क्रांति को इंगलैण्ड में फैलाने का इसने बहुत कुछ प्रयत्न किया। पेन्टी की भांति इसका भी यह विश्वास था कि समाजवाद के अन्तर्गत बड़े पैमाने पर उत्पादन होने के कारण उद्योगों में सुन्दरता, श्रेष्ठता तथा योग्यता के लिए कोई स्थान नहीं रहता। व्यक्ति यन्त्रों पर काम करता केवल एक यन्त्र मात्र रह जाता है। अतः य सब ऐसी व्यवस्था का समर्थन करते हैं जिससे व्यक्ति की मौलिकता (Originality) नष्ट न हो। कोल (Cole) ने भी शिल्पी समाजवाद का अपनी प्रसिद्ध रचनायें Self government in industry" 'Guild socialism restated' तथा Social theory' आदि में बड़े विस्तार के साथ समर्थन किया है और बतलाया है कि वर्तमान वेतन प्रणाली (Wage system) को मिटा कर जब तक उद्योगों में में स्वायत्त शासन (Local government) नहीं होता तब तक उद्योगों की अशान्ति तथा समस्यायें बढ़ती रहेंगी। उसके स्वयं के शब्दों में "शिल्पी समाजवाद उद्योगों पर नियन्त्रण करने के लिए राज्य तथा उत्पादकों की साझेदारी के विचार पर आधारित है—औद्योगिक स्वाधीनता के बिना, समाज के ढाँचे में सारा परिवर्तन केवल धोखा मात्र होगा—असली तथा प्रभावशाली शक्ति मजदूरों के हाथ में ही होनी चाहिए।" (Guild socialism is based on the idea of partnership between the producers and the state in the control of the industry—without industrial freedom every change in the structure of society will be a Sham—The real and effective power ought to be in the hands of the workers) शिल्पी समाजवादी यह विचार ब्रिटेन के मजदूर आन्दोलन (British labour movement) के साथ और भी अधिक जोर पकड़ने लगा और आधुनिक युग के व्यापार संघ (Trade union) आदि में रूप में इसकी बहुत कुछ अभिव्यक्ति भी हुई है। श्री बट्रेन्ड रसल (Bertrand Russell) इस विचारधारा के जीवित समर्थकों में से एक हैं।

शिल्पी समाजवादी सिद्धान्त (The theory of guild socialism)—शिल्पी समाजवाद का उद्देश्य एक नई प्रकार की औद्योगिक तथा आर्थिक व्यवस्था लाना है। राष्ट्रीय शिल्पी संघ (National guilds league) द्वारा दी गई एक परिभाषा के अनुसार यह व्यवस्था एक ऐसी व्यवस्था होगी "जिसमे वेतन प्रणाली का उन्मूलन कर उद्योगो म मजदूरो की स्वायत्त सरकार की स्थापना की जायगी, जो राष्ट्रीय शिल्पी संघो द्वारा एक प्रजातन्त्रात्मक प्रणाली पर चलती हुई, समाज के अन्य व्यावसायिक संघो के साथ मिलकर कार्य करेगी" (In which there shall be an abolition of wage system and the establishment by the workers of self govern ment in industry through a *democratic system of national guilds* working in conjunction with other functional organisations in the community)। सरल शब्दो मे शिल्पी समाजवादी व्यवस्था मे समाज म बहुत से संघ होंगे। ये सब संघ व्यवसाय के आधार पर चुने जायगे। उद्योगो का प्रबन्ध करने के लिए मजदूरो की चुनी हुई अपनी सरकार होगी, जो प्रजातन्त्रात्मक तरीकों से चुनी जायगी। मजदूरो की यह सरकार केवल अपने उद्योग (Industry) का ही प्रबन्ध करेगी तथा समाज के अन्य व्यावसायिक संघो (Vocational associations) के साथ मिलकर कार्य करेगी।

१ शिल्पी समाजवाद एक मध्यमार्गी विचारधारा है (Guild Socialism follows a middle course)—शिल्पी समाजवाद कोई चरमतावादी दर्शन (Absolute philosophy) नहीं है। यह एक एकागी विचार नही रखता, बल्कि सत्य तो यह है कि समूहवाद तथा संघवाद जैसे एकाङ्गी तथा चरमतावादी विचारो (Extremist views) की प्रतिक्रिया के स्वरूप ही इसका जन्म हुआ है। शिल्पी समाजवाद समूहवाद (Collectivism) तथा संघवाद (Syndicalism) दोनो से बहुत कुछ मिलता हुआ भी उनकी बहुत-सी बातो को नही मानता। समूहवादियो की भाति वह राज्य द्वारा सब कुछ नहीं करवाना चाहता। इसी प्रकार वह संघवादियो के क्रान्तिकारी तथा हिंसक तरीको की भी निन्दा करता है। यह न पूर्णत विकासवादी है और न क्रान्तिकारी ही। दोनो विचारधाराओ के मूल्यवान तत्व इसमे मिला दिये गये हैं, जिसके कारण इसमे दोनो के गुण तो है किन्तु अवगुण एक भी नही। इस प्रकार मध्यमार्गी होने के कारण यह अँग्रेजी परम्पराओ मे पूरी तरह मेल खाती है और एक व्यावहारिक दर्शन (Practical philosophy) है।

२ यह उत्पादन की पूँजीवादी व्यवस्था का विरोधी है (It attacks the capitalist system of production)—समाजवादियो की भाति शिल्पी समाजवादी मानते हैं कि वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था म उत्पादन ठीक प्रकार म नहीं होता और न मजदूरो को ही अपनी कमाई का उचित भाग मिलता है। व्यक्ति की स्वाधीनता तथा वैयक्तिकता नष्ट हो जाती है और वह यन्त्र के एक पुर्जे (Cog in the machine) की भांति यन्त्रवत कार्य करता है। पूँजीपति लोग अन्याय व शोषण करते हैं और

मनुष्य चरित्रहीन तथा भ्रष्ट हो जाते है। अतः शिल्पी समाजवाद चाहता है कि इस अन्यायपूर्ण तथा अमानवीय व्यवस्था को तुरन्त ही समाप्त कर देना चाहिए।

३ यह वर्तमान प्रादेशिक प्रतिनिधित्व को दिखावा मात्र मानता है (It believes that territorial representation is a facade)—शिल्पी समाजवादियो का मत है कि कोई भी व्यक्ति किसी भौगोलिक प्रदेश मे रहने वाले बहुत से आदमियो के सारे हितो का सच्चा प्रतिनिधि नही हो सकता। वे इस बात को केवल ऊपरी दिखावा तथा धोखा मात्र मानते हैं कि एक स्थान का रहने वाला व्यक्ति अपने प्रदेश के रहने वाले सब व्यक्तियो के सब प्रकार के हितो को पहिचान सकता है और ससद मे उनकी रक्षा कर सकता है। उनकी यह दृढ धारणा है कि अगर प्रतिनिधित्व कभी सच्चा हो सकता है तो केवल तभी जब वह व्यवसाय (*Profession*) के आधार पर हो। अत वे आज के प्रादेशिक प्रतिनिधित्व पर आधारित प्रजातन्त्र की आलोचना करते हैं।

४ यह समाज का शिल्पी सघो में सगठन चाहता है (*It aims at organising society in various guilds*)—उपरोक्त पूजीवादी व्यवस्था तथा प्रादेशिक प्रतिनिधित्व का विरोधी होने के कारण शिल्पी समाजवाद इनका विनाश कर इनके स्थान पर अपना कार्यक्रम रखता है। पूंजीवाद के स्थान पर वह चाहता है कि औद्योगिक समाज मे उत्पादकों के कुछ सघ हो। ये सघ सख्या मे इतने ही होने चाहिए जितने कि समाज मे होने वाले कार्य। मतलब यह कि एक व्यवसाय के व्यक्तियो का अपना एक सघ होना चाहिए। उदाहरण के लिए एक समाज मे मानलो चालीस प्रकार के कार्य करने वाले लोग है, कोई जूते बनाता है, कोई कपडा बुनता है, कोई साबुन तयार करता है, इन सब चालीस प्रकार के व्यवसायो के चालीस सघ होने चाहिए और इन सघो के सदस्यो द्वारा चुन गये व्यक्तियो को ही उन कारखानो तथा उद्योगो का प्रबन्ध करना चाहिए। सघ की परिभाषा शिल्पी समाजवादी इस प्रकार देते हैं "शिल्पी सघ एक इस प्रकार की स्वशासित सस्था है, जिसमे सगठित परस्पर मे अन्तर्निभर व्यक्ति, समाज के किसी विशेष कार्य को करने की जिम्मेदारी लेते हैं" (A Guild is a self governing association of mutually dependent people organised for the responsible discharge of a particular function of society) शिल्पी समाजवादी व्यवस्था मे हाथ से काम करने वाले, बुद्धिजीवी कुशल तथा व्यवसायिक कार्य करने वाले सभी प्रकार के व्यक्तियो के अपने-अपने सघ होंगे, जिनको अपने-अपने क्षेत्र मे पूरी स्वाधीनता तथा शासन करने की पूरी-पूरी छूट होगी। किस व्यक्ति का कहाँ कितना और किस प्रकार का काम करना है इसका निर्णय सघ के चुने हुए पदाधिकारी ही करेंगे और इस प्रकार समाज मे सत्ता का विकेन्द्रीकरण (Decentralization) होगा।

५ ये शिल्पी सघ राष्ट्रीय आधार पर सगठित किये जायेंगे (*These guilds shall be organised on a national basis*)—समाज मे शिल्पी सघो की स्थापना

करके ही शिल्पी समाजवादियो का उद्देश्य पूरा नहीं हो जाता है। वे इन संघो को प्रत्येक मुहल्ले तथा नगर-नगर में स्थानीय आधार (Local basis) पर तो स्थापित करना चाहते ही हैं, किन्तु उन संघो का एक राष्ट्रीय संघ स्थापित करना भी उनके कार्यक्रम का प्रमुख भाग है। उदाहरण के लिए जुलाहों का एक संघ है, यह हर नगर तथा हर स्थान पर तो होगा ही किन्तु इसका एक अखिलदेशीय अथवा राष्ट्रीय संघ भी होगा। यद्यपि राष्ट्रीय आधार पर यह संगठन केन्द्रीयकरण (Centralisation) को जन्म देगा, किन्तु सारे देश में फैले अनेकों संघो को एक सूत्र में बांधे रखने के लिए शिल्पी समाजवादी यह चाहते हैं कि उनका एक उच्च राष्ट्रीय संघ (National Guild) भी हो। इनमें से अधिकतर विचारकों की यह मान्यता है कि राष्ट्रीय स्वाधीनता (National autonomy) स्थानीय स्वाधीनता की विरोधी नहीं है और एक संघ राष्ट्रीय संघ के आधीन रहता हुआ भी स्थानीय स्वाधीनता (Local autonomy) का उपभोग कर सकता है।

६ शिल्पी समाजवाद मे व्यवस्था (Organisation under Guild Socialism)—इस व्यवस्था मे समाज में अनेकों शिल्पी संघ होंगे। इन संघो को स्थानीय कार्य करने की काफी स्वाधीनता होगी किन्तु इन संघो के विरुद्ध राष्ट्रीय संघो में अपील (Appeal) हो सकेगी। प्रो० जी० डी० एच० कोल की योजना इस प्रकार है कि इन राष्ट्रीय संघो की एक राष्ट्रीय सब संघ कांग्रेस (An all National guilds Congress) की स्थापना की जाये। इस प्रकार कांग्रेस मे सारे राष्ट्रीय संघ अपने-अपने प्रतिनिधि भेजें और यह संस्था गिल्ड व्यवस्था के नियम बनाये और आवश्यकता पड़े तो उनकी व्याख्या (Interpretation) भी करे। इस कांग्रेस का काम एक प्रकार से गिल्ड धारा सभा तथा गिल्ड न्यायालय का काम होगा, जो अपने बनाये हुए नियमो की अन्तिम निर्णायिका होगी। समाज में कार्य करने वाले अनेकों स्थानीय तथा राष्ट्रीय संघो के आपसी झगड़े इसके द्वारा सुलझाये जायेंगे और उनके बाह्य सम्बन्धो (External Relations) के विषय में भी यही राष्ट्रीय सब संघ कांग्रेस नीति निर्धारित करेगी। यह कांग्रेस गिल्ड व्यवस्था के लिए साधारण नियम बनाने के साथ साथ संघो पर कर (Tax) भी लगायगी और जहां कहीं भी उत्पादकों का हित (Interests of the Producers) संकट में होगा यह उसकी रक्षा करेगी और उपभोक्ताओं के संघ से उसके विरुद्ध लड़ेगी। इससे यह स्पष्ट है कि शिल्पी समाजवाद में दो प्रकार के संघ होंगे—एक उत्पादकों (Producers) के और दूसरे उपभोक्ताओं (Consumers) के। उत्पादकों के अनेकों प्रकार के संघ होंगे और इनमें से प्रत्येक प्रकार के संघ का एक राष्ट्रीय संघ होगा। इस प्रकार कपड़े बनाने वाले, जूते बनाने वाले, मशीन बनाने वाले सब के अलग-अलग राष्ट्रीय संघ होंगे और फिर इन सब राष्ट्रीय संघो के प्रतिनिधियों की एक कांग्रेस होगी जो सब प्रकार के उत्पादकों के हितों की रक्षा करेगी।

७ शिल्पी समाजवाद व्यवसायात्मक प्रजातन्त्र चाहता है (Guild Socialism stands for functional democracy)—शिल्पी समाजवाद का विश्वास है कि,

प्रादेशिक आधार पर प्रतिनिधित्व सच्चा नही हो सकता, अत वह व्यवसाय के आधार पर होना चाहिए क्योकि ऐसा करने पर वह अधिक सत्य तथा साथक बन सकेगा। इन समाजवादियो का मत है कि एक व्यक्ति अपने व्यवसाय के हितो को ज्यादा अच्छी तरह समझता है और उसी का वह सच्चा प्रतिनिधित्व भी कर सकता है। राजनैतिक प्रजातन्त्र को शिल्पी समाजवादी आर्थिक क्षेत्र मे सफल हुए बिना असफल ही मानते हैं। अत व्यवसायात्मक प्रजातन्त्र का उनका चित्र कुछ इस प्रकार है—समाज के भिन्न भिन्न व्यवसायी अपने-अपने प्रतिनिधि चुनें और वे प्रतिनिधि ही देश की सरकार में जाकर अपने अपने व्यवसाय के लोगो की ओर से बोलें और कानून बनायें। उदाहरण के लिए एक नगर है, जिसमे से देश की ससद (Parliament) के लिए १० आदमी चुने जाते हैं तो उस नगर मे रहने वाले सारे व्यक्ति किन्हीं भी दस आदमियो के लिए वोट न दें, बल्कि ऐसा हो कि वकील लोग अपना, अध्यापक लोग अपना, व्यापारी लोग अपना, राज्यकीय कर्मचारी अपना, इस प्रकार समाज के जितने भी प्रमुख व्यवसाय हो उन सभी के लोग अपना अपना आपस म चुन कर एक एक प्रतिनिधि भेज दें और ससद के सदस्य किसी देश अथवा राज्य के न कहला कर अपने व्यवसाय के प्रतिनिधि कहलायें। ऐसा होने पर प्रजातन्त्र तथा पूँजीवाद दोनों के अवगुण मिट जायेंगे।

८ शिल्पी समाजवाद राज्य का विनाश नहीं चाहता (Guild Socialism does not abolish State)—अपने उद्देश्यो मे शिल्पी समाजवाद प्रधानत एक ऐसी विचारधारा है जो औद्योगिक व्यवस्था से अधिक सम्बद्ध है। इसम सन्देह नहीं कि वह उद्योगो को राज्य के आधिपत्य से मुक्त करवाना चाहती है, किन्तु वह राज्य की विरोधी नही है। वह यह अवश्य मानती है कि राजकीय हस्तक्षेप शरारतपूर्ण (Mischievous) होता है और इस कारण सघो को समाज म अधिक महत्व मिलना चाहिए, किन्तु साथ ही साथ सघवाद (Syndicalism) की भाति वह न राज्य पर भयकर आक्रमण ही करती है और न उसका अस्तित्व ही मिटाना चाहती है। शिल्पी समाजवाद के अन्तगत राज्य एक प्रादेशिक सस्था (Regional Association) के रूप में जीवित रहगा और उत्पादक सघों द्वारा न किये जाने वाले राजनतिक काय इसके द्वारा किय जायेंगे। यह राज्य को इतना अधिक महत्वपूर्ण नही मानता, किन्तु शिल्पी समाजवाद मे राज्य किस रूप म जीवित रहगा तथा इसके कतव्य क्या-क्या होगे इस विषय म विचारक स्वय एकमत नही हैं। कुछ लोगो का मत है कि शिल्पी समाजवाद की आर्थिक व्यवस्था के साथ-साथ राज्य राजनैतिक सस्था के रूप में काय करे और इसके काय केवल निम्नलिखित क्षेत्रो तक ही सीमित कर दिये जायें —

१ राज्य केवल उन्ही विषयो पर अपना अधिकार रखे जो आर्थिक नहीं (Non economic matters) हैं जसे आन्तरिक नीति, विदेशी नीति आदि।

२ राज्य उपभोक्ताओ क हितो की रक्षा करे (To protect Consumers interests)।

३ राज्य कहीं कहीं थोड़ा बहुत उत्पादक सघों (Producer s guilds) के अनियन्त्रित कार्यों को भी रोके।

दूसरे प्रसिद्ध विचारक हाब्सन का मत है कि शिल्पी समाजवाद से राज्य को सारे समाज के प्रतिनिधि के रूप में (A representative of the community as a whole) जीवित रहना चाहिए। इसकी सत्ता कुछ सघो को बाँट कर कम अवश्य कर दी जाय, किन्तु फिर भी अन्तिम सत्ता (Final Power) इसी के पास रहे। उत्पादन के सारे यन्त्र और औजार तथा मशीनें राज्य की ही रहे और वह उन्हे अनेको शिल्पी सघो को उधार दे। यदि सघों मे आपस मे झगडा हो जाय तो इसका निर्णय भी राज्य द्वारा ही किया जाय। राज्य चाहे तो सघो पर भी कर (Tax) लगाये तथा उचित समझे तो किन्ही भी सघो को अपनी अच्छी सेवाओ के परिणाम स्वरूप आर्थिक सहायता भी दे। इतना ही नही बल्कि व्यक्तियो की आन्तरिक तथा बाह्य दोनों प्रकार की सुरक्षा के लिए राज्य अपनी सेना तथा पुलिस रखे और न्यायालयों की भी व्यवस्था करे। हाब्सन एक उदार विचारक होने के कारण यहाँ तक आगे बढ जाते हैं कि राज्य चाहे तो शिल्पी सघो की नीति भी निर्धारित करें और इस प्रकार उनका शिल्पी समाजवाद का चित्र बहुत कुछ बहुलवाद (Pluralism) का सा है।

कोल (Cole) कुछ अधिक उग्र विचारक हैं। वे राज्य को इतना अधिक महत्वपूर्ण स्थान नही देना चाहते जितना कि हाब्सन देते हैं। उनकी दृष्टि मे राज्य भी अन्य सघो तथा सस्थाओ की भाँति एक साधारण सस्था है, जिसे औरो के समान मानना चाहिए, उनसे बडी नही। वे चाहते हैं कि शिल्पी समाजवादी व्यवस्था में राज्य का कार्यक्षेत्र अधिक व्यापक न हो बल्कि उसके अधिकार और कर्तव्य बराबर के अनुपात मे हों। उत्पादन का कार्य सघो का हो और राज्य केवल उपभोक्ताओं की सस्था (An association of consumers) मात्र रहे जो वस्तुओ की कीमत तथा वितरण पर अपना नियन्त्रण रखे। कोल इसे भी स्वीकार करते हैं कि सास्कृतिक कार्य (Cultural activities) भी राज्य के ही आधीन रहे और वह विवाह, शिक्षा, न्याय, अपराध, सुरक्षा आदि के लिए कानून बनाय। सघो के आपसी झगडों को वे राज्य द्वारा सुलझवाना ही नही चाहते बल्कि उसके लिए 'Supreme Court of Functional Equity' नाम की सस्था की स्थापना चाहते है। कोल अपने विचारों में कुछ अराजकतावाद की ओर भी झुके हुए थे और राज्य को बिलकुल एक महत्व हीन सस्था सिद्ध करने के लिए वे मानते हैं कि राज्य धीरे धीरे लुप्त हो जायगा (wither away)। सघो को व कम्यून्स (Communes) में सगठित होने की योजना प्रस्तुत करते हैं जो कि आर्थिक क्षेत्र मे अन्तिम सत्ताधारी होंग।

६ शिल्पी समाजवाद एक अहिंसक तथा वैधानिक आन्दोलन है (Guild socialism is a non violent and constitutional movement)—इगलैण्ड में उत्पन्न होने के कारण शिल्पी समाजवाद विकासवादी समाजवाद की एक शाखा है जो कभी क्रान्तिकारी नही हो सकती। समूहवाद (Collectivism) की तरह वह

शान्तिपूर्ण तथा अहिंसक उपायो द्वारा सामाजिक व्यवस्था को बदल डालने म विश्वास करता है और संघवादियो (Syndicalists) की रक्तरंजित क्रान्ति तथा हड़तालो (Strikes) की प्रणाली को राष्ट्र के लिए हानिकारक मानता है। शिल्पी समाजवाद वैधानिक उपायो (Constitutional methods) म विश्वास करता है और चाहता है कि शिल्पी समाजवादी लोकप्रिय बनकर सरकार तक पहुचे और अपना योजना को कार्य रूप मे परिणत करे। वह यह मानता है कि पूंजीपतियो से धीरे धीरे सत्ता पूरी तरह छीनी जा सकती है। यह विकासवादी समाजवाद श्रमिको का कल्याण चाहता है और ऐसी कोई भी चीज नही करना चाहता जो उनके लिए अन्त मे हानिकारक सिद्ध हो। शिल्पी समाजवादी तरीके के विषय म प्रो० कोल लिखते हैं, "शीघ्रता से क्रान्ति लाना हमारा उद्देश्य नही है। हमारा उद्देश्य है विकासवाद के मार्ग द्वारा उन सब शक्तियो को दृढ करना, जिससे आने वाली क्रान्ति एक वर्ग-युद्ध न होकर समाज मे क्रियाशील वृत्तियो का एक अन्तिम परिणाम व प्राप्त तथ्य-सी मालूम हो" (Our aim is not early revolution, but the consolidation of all forces on the lines of evolutionary development with a view to making the revolution as little as possible a civil war and as much as possible a registration of accomplished facts and a culmination of tendencies already in operation)।

१० शिल्पी समाजवाद सत्ता के विकेन्द्रीकरण का पक्षपाती है (Guild socialism favours decentralization of power)—औद्योगिक तथा राजनैतिक दोनो ही क्षेत्रो म शिल्पी समाजवादी प्रजातन्त्र को नीचे से संगठित करने के पक्ष म हैं। वे चाहते हैं कि असली सत्ता किसी भी एक स्थान पर केन्द्रित न होकर समाज की विभिन्न इकाई, संघो मे समान रूप से बाट दी जाय जिससे कि उसका दुरुपयोग न हो। उनका मत है कि सत्ता के विकेन्द्रित होने पर ही प्रजातन्त्र सफलतापूर्वक चल सकता है, और इसीलिए वे जितना बल स्थानीय संस्थाओ (Local institution) के विकास तथा व्यवस्था पर देते हैं उतना राष्ट्रीय संस्थाओ पर नहीं। वे आज के पूंजीवादी समाज की नौकरशाही का अंत करना चाहते हैं, इस कारण सत्ता का विकेन्द्रीकरण (Decentralization) उनका प्रधान नारा है।

ट्रेड यूनियन और गिल्डस (Trade Union and Guilds)—वर्तमान समाज मे ट्रेड यूनियन तथा गिल्डस यद्यपि आपस मे बहुत कुछ मिलते जुलते से लगते हैं और दोनो काम भी मिलकर एक-दूसरे के सहयोग से करते हैं, किन्तु ये दोनों एक चीज नहीं हैं। उद्देश्य की दृष्टि से ट्रेड यूनियन तथा गिल्ड्स दोनो ही मजदूर वर्ग का कल्याण चाहते हैं और अपनी-अपनी व्यवस्थाओं तथा प्रयत्नो द्वारा उनकी स्थिति को अच्छी बनाने के लिए कोशिश भी करते हैं परन्तु इन दोनो म निम्नलिखित अन्तर हैं जो इनकी भिन्नता को स्पष्ट करते हैं —

१ ट्रेड यूनियन केवल हाथ से काम करने वाले मेहनतकश मजदूरो का ही

संघ है, किन्तु गिल्डस की व्यवस्था मे बुद्धिजीवी तथा श्रमजीवी सभी प्रकार के श्रमिक लोग आ जाते हैं।

२ ट्रेड यूनियन का प्रमुख उद्देश्य अपने मालिको से (Employers) अपने हितो (Interests) के लिए लडना है और उनसे काम करने के घटो म कमी करवानी है, किन्तु गिल्ड्स की व्यवस्था एक ऐसी व्यवस्था थी, जो उत्पादन के सभी साधनो पर श्रमिको का अपना स्वामित्व चाहती थी।

३ ट्रेड यूनियन आज के समाज की बडी उग्र तथा क्रान्तिकारी संस्था है जो पूंजीवाद को जड से पकड कर उखाड फेंकना चाहती है, किन्तु इसके विपरीत गिल्ड्स समाजवाद एक शान्तिपूर्ण तथा धीमा आन्दोलन है जो बिना किसी हिंसा के उद्योगो को अपने अधिकार मे लेना चाहता है।

इस प्रकार गिल्ड व्यवस्था एक विशाल तथा ऊँची वस्तु है, जिसका आधार ट्रेड यूनियन ही है और अगर समाज मे गिल्ड समाजवाद आया तो ये ट्रेड यूनियन ही गिल्ड्स के रूप म बदल जायेगी।

राष्ट्रीय गिल्ड संघ (National Guild League)—इंगलैण्ड मे शिल्पी संघवाद आन्दोलन के शुरू होने के कुछ ही वर्ष पश्चात् सन् १९१५ मे प्रथम बार 'राष्ट्रीय गिल्ड संघ' की स्थापना हुई थी और सन् १९२० मे इसकी परिषद् (Council) भी बनी थी। आरम्भ मे निर्माता संघ (Builders Guild) आदि के द्वारा कुशलतापूर्वक काय करने के कारण, यह अपने उद्देश्य म बहुत कुछ सफल भी हुई, किन्तु बाद मे इस संघ म प्रवेश पाने वाले अयोग्यता अनुशासनहीनता, झगडालूपन तथा सुस्ती (Incompetence, Indiscipline Quarellsomeness and Laziness) इन चारो दुर्गुणो न इसकी असफलता को अवश्यम्भावी बना दिया। सरकार का सहयोग न मिलने पर तथा बेरोजगारी के निरन्तर बढते रहने के कारण सन् १९२५ मे इस संघ को भंग कर दिया गया। तब से आज तक यद्यपि गिल्ड समाजवाद जैसा कोई आन्दोलन, किसी समाज मे दिखाई नही देता, किन्तु अंग्रेजी विचारधारा पर इस संघ की स्थापना का इतना गहरा प्रभाव पडा है कि आज के ब्रिटिश समाजवादी ट्रेड यूनियन के रूप मे इसे फिर से जीवित करना चाहते हैं, जिससे स्वायत्त शासन मे पूर्ण संस्थाओ का विकास हो। इस प्रकार व्यावहारिक दृष्टि से अधिक मजदूरों को प्रभावित न करने पर भी गिल्ड समाजवाद श्रमिक आन्दोलन के बहुत से समर्थकों को अपने पथ म बदल चुका है।

गिल्ड समाजवाद की आलोचना (Criticism of Guild Socialism)—राष्ट्रीय गिल्ड संघ (National Guild league) की असफलता इस बात का सबसे बडा प्रमाण है कि सैद्धान्तिक दृष्टि से बहुत कुछ उपयोगी तथा स्वस्थ दर्शन होते हुए भी, गिल्ड समाजवाद एक अव्यावहारिक (Impracticable) विचारधारा है, जिसकी दुर्बलता इतिहास द्वारा सिद्ध हो चुकी है। फिर भी ऐसे आलोचको की कमी

नही है जो इस विकासवादी तथा मध्यमार्गी समाजवाद पर सैद्धांतिक दृष्टि से भी अनेक आरोप लगाते हैं —

१ प्रथम तो आलोचकों का कहना है कि समाज मे राजनैतिक प्रश्नों तथा आर्थिक प्रश्नो जैसा एक स्पष्ट तथा निश्चित बँटवारा नहीं हो सकता। वास्तव मे व्यावहारिक दृष्टि से ये दोनो प्रश्न आपस मे एक दूसरे से इतनी घनिष्ठता से चिपके रहते है कि कोई भी गिल्ड समाजवादी यह नही कह सकता कि कौन कौन से काय गिल्डम को सौंप दिये जावें और कौन-कौन से राज्य के लिए छोड़े जायें। सभी प्रश्नो मे इस प्रकार का भेद अथवा बँटवारा असम्भव है और गिल्ड समाजवादी एसा मानकर एक भूल करते हैं।

२ गिल्ड समाजवाद के अनुसार दो ससद (Parliaments) होगा, एक राजनैतिक ससद तथा दूसरी आर्थिक समद। इनमे से पहली राज्य का अङ्ग होगी और प्रादेशिक आधार पर चुनी जावेगी, किन्तु दूसरी गिल्ड व्यवस्था का एक अङ्ग होगी और उसमे प्रतिनिधित्व का आधार भी व्यवसाय होगा। ऐसी स्थिति मे इन दोनों ससदों के आपसी विवादों (Conflict) को निपटाने के लिए कोई उच्च सस्था नहीं होगी, और अन्त मे राज्य को अन्तिम सत्ता दिये बिना काम नहीं चलेगा, जिसका परिणाम यह होगा कि सघ की स्वाधीनता नष्ट हो जायेगी।

३ तीसरे हाब्सन का मत है कि "दो राज्यों का विचार, एक एक गिल्डस का सघ जो सारी आर्थिक व्यवस्था मे व्याप्त होगा और दूसरा राजनतिक राज्य जो आन्तरिक तथा वाह्य शान्ति स्थापना के साथ साथ कहीं-कहीं आर्थिक व्यवस्था मे भी हस्तक्षेप करेगा, आलोचना के सामने नही ठहर सकता" (The nation of two states one a federation of guilds running through the whole body of Economic arrangement for the nation and the other a political state running the services relating to internal and external order and only concerned to intervene in Economic matters at a few reserved point will not bear criticism)। तात्पर्य यह कि गिल्ड समाजवादी व्यवस्था आत्मविरोधी (Self-contradictory) है। एक ओर वह आर्थिक स्वायत्त शासन चाहती है और दूसरी ओर राजकीय हस्तक्षेप भी। ये दो विरोधी बातें हैं। गिल्ड समाजवादी इनम सामञ्जस्य (Compromise) स्थापित करना चाहते हैं, किन्तु मध्य के रास्ते पर चलने के कारण वे किसी भी निश्चित स्थान पर नही पहुचते।

४ आलोचकों का कहना है कि औद्योगिक क्षेत्र मे गिल्ड व्यवस्था लाभ की अपेक्षा हानि अधिक करेगी। मजदूरों के सङ्घ का उत्पादन पर पूरा अधिकार होने पर वे लाग सुस्त हो जायेंगे और कुशलता से काम नही करेंगे। उद्योगो मे चारो ओर अनुशासनहीनता तथा बेईमानियाँ व आरामतलबियाँ फैलेंगी, जिसके कारण उद्योगो मे एक गतिहीनता (Stagnation) आ जायेगी। मजदूर लोग समाज-सेवा के आदर्श को

भूल जायेंगे और जिसके कारण उत्पादक तथा उपभोक्ता (Producer as well as consumer) दोनों का अहित होगा।

५ आलोचक मानते हैं कि मनुष्य आखिर मनुष्य है चाहे वह मजदूर हो या पूंजीपति और जैसा कि मनुष्य का स्वभाव है कि वह स्वार्थी अधिक होता है और व्यक्तिगत लाभ न होने पर परिश्रम करना छोड़ देता है, इसलिए गिल्ड समाजवादी व्यवस्था मे काम करने के लिए कोई प्रेरक शक्ति (Incentive) न होने के कारण मजदूर लोग कठोर परिश्रम करना छोड़ देंगे, जिसका नतीजा यह निकलेगा कि उत्पादन शक्ति घट जायेगी और कीमतें बढ़ जायगी।

६ गिल्ड समाजवाद म प्रत्येक वस्तु के उत्पादन पर उसके गिल्ड का एकाधिकार (Monopoly) होगा अर्थात् उस गिल्ड के सदस्या के अलावा और कोई उसे पैदा नही कर सकेगा। इस कारण उस वस्तु के भाव तथा वितरण आदि उसी गिल्ड की मन इच्छा पर निर्भर रहेंगे। वस्तुओ के उत्पादन पर गिल्डो का ऐसा निरकुश नियन्त्रण देश को दिवालियेपन (Bankruptcy) की तरफ ले जायगा और सारा ढाँचा एकदम जमीन पर गिर जायगा।

७ आलोचको का मत है कि यथार्थवादी (Realist) होने के बदले गिल्ड समाजवाद एक काल्पनिक विचारधारा (Visionary) अधिक है। इसके प्रवर्तक सब बुद्धिवादी अंग्रेज (Intellectuals) थे, जिन्हें समाज की असली स्थिति का ज्ञान कम था, अत वे व्यावहारिक दृष्टि से इसको कार्य रूप म परिणत करने की कठिनाइयो को नही सोच सके।

८ समाज मे सुख और शान्ति के लिए यह आवश्यक है कि उसमे अधिक सस्थायें न हों क्योंकि ये सस्थायें सख्या म जितनी अधिक होंगी, उतनी ही समस्यायें बढ़ेंगी और झगड़े अधिक होंगे। गिल्ड समाजवाद इन सस्थाओ की अधिकता को स्वीकार कर, समाज म प्रतिद्वंद्विता तथा शत्रुता की भावनाओं को बलवती बनाता है। अत आलोचकों का मत है कि इस व्यवस्था मे दुर्गुण स्वत एवं अन्तर्निहित (Inherent) हैं। क्योंकि यह राष्ट्रीय हितों को अनेकों सघो के आधीन बना देती हैं।

९ इन सबके अतिरिक्त गिल्ड समाजवादी समाज का वास्तविक स्वरूप कैसा होना चाहिए इस पर य विचारक आपस म ही एकमत नही है। हाब्सन तथा कोल दोनो गिल्ड समाजवादी समाज के दो अलग-अलग प्रकार के चित्र उपस्थित करते हैं। इस मत की विभिन्नता के कारण भी गिल्ड समाजवाद एक निश्चित विचारधारा नहीं बन सकता। राष्ट्रीय गिल्ड लीग के रूप मे इसे पहली बार व्यावहारिक बनाने का जो प्रयास किया गया वह आर्थिक गिराव (Economic depression) तथा बेरोजगारी के कारण आरम्भ होने से पहले ही असफल हो गया।

१० गिल्ड समाजवादी अपने सिद्धान्तों को अधिक विस्तार के साथ नहीं समझते। इस कारण आलोचको का मत है कि सिद्धान्त रूप मे गिल्ड समाजवाद को यदि स्वीकार कर भी लिया जाव तो भी उसके विस्तृत रूप (Details) से सहमत होना असम्भव नही तो कठिन अवश्य है।

गिल्ड समाजवाद का मूल्यांकन (Evaluation of Guild Socialism)—उपरोक्त आलोचना के कारण विश्वव्यापी समाजवादी क्रांति मे गिल्ड समाजवाद का स्थान ढूंढने पर आज यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि सक्रिय राजनीति (Active politics) मे गिल्ड समाजवादी जैसी विचारधारा मर चुकी है किन्तु इससे इन्कार करना सत्य से आँख मीचना होगा कि २०वी शताब्दी के आरम्भ मे इस विचारधारा ने ब्रिटेन तथा यू० एस० ए० के सामाजिक तथा औद्योगिक जीवन मे एक बड़ी भारी क्रांति उपस्थित की थी। इस विचारधारा के उदय से इन दोनो देशो के राष्ट्रीय उद्योगो के प्रशासन मे काफी परिवर्तन हुए और मालिक तथा मजदूर दोनो के मिले-जुले प्रतिनिधियो को इन पर पर्याप्त अधिकार मिले। राजनीतिक दृष्टि से भी समाज मे अनेक संघो की आवश्यकता तथा महत्ता पर बल देकर गिल्ड समाजवाद ने राजसत्ता के आस्ट्रीनियन विचार को हमेशा के लिए समाप्त कर बहुलवादी (Pluralistic thought) सिद्धान्त को जन्म दिया। व्यावहारिक राजनीति मे अपने इन प्रभावो के अतिरिक्त सिद्धान्त रूप मे भी गिल्ड समाजवाद निम्नलिखित तथ्यो पर प्रकाश डालता है तथा बल देता है जो निश्चय ही प्रशसनीय है —

१ आज का समाज संघो मे बँटकर ही सुचारु रूप से चल सकता है और विशेषत आज के औद्योगिक अथवा आर्थिक जीवन के लिये तो सघ व्यवस्था अनिवार्य ही है।

२ प्रादेशिक प्रजातन्त्र दोषपूर्ण है और यदि सच्चे अर्थों मे प्रजातन्त्र कभी हो सकता है तो केवल तभी जब प्रतिनिधित्व का आधार प्रादेशिक सीमायें न होकर व्यवसाय हो।

३ राज्य समाज के लिए आवश्यक ही नही अनिवार्य है और समाज मे अनेकों सघो के रहते हुए भी उसका स्थान और कोई पूरा नही कर सकता।

४ सघो को आवश्यकता से अधिक स्वाधीनता मिलने पर वे भी भ्रष्ट हो सकते हैं, अत उनकी निरकुशता पर भी राज्य का अकुश रहना चाहिए।

५ क्रान्तियां अथवा परिवर्तन सफल तथा उपयोगी तभी हो सकते हैं जब वे अहिंसक रीति से हो और व्यय का रक्तपात न किया जाय।

६ परिवर्तन सदैव धीरे धीरे होना चाहिए। आकस्मिक परिवर्तन समाज की सारी स्थिति को खतरे मे डाल सकता है किन्तु धीरे धीरे क्रांति करने पर वह क्रान्ति स्थायी तथा लाभदायक होती है।

७ सामाजिक व्यवस्था विकेन्द्रित (Decentralized) होकर ही अधिक सुन्दर व सुचारु रूप से चल सकती है।

८ राजनैतिक विचारधारायें कभी भी एकाङ्गी अथवा चरमतावादी (Absolute) नहीं होनी चाहिए। व्यावहारिक दृष्टि से सफल होने के लिए प्रत्येक राजनतिक सिद्धान्त को समन्वयवादी अथवा मध्य मार्गी (Mid way traveller) रहना आवश्यक है।

९ समाज मे उत्पादन तथा वितरण विनिमय (Exchange) तथा उपभोग (Consumption) से ज्यादा महत्वपूर्ण है।

संघवाद

(Syndicalism)

संघवाद एक फ्रेंच विचारधारा है। औद्योगिक क्षेत्र में समूहवाद (Collectivism) की असफलता के कारण इसका जन्म हुआ। यह एक क्रान्तिकारी विचारधारा है जो शान्ति तथा विकासवाद दोनों सिद्धान्तों को अस्वीकार कर मजदूरों को तुरन्त सब प्रकार के बन्धनों से मुक्त करना चाहती है। मजदूरों का स्वाधीनता प्रेम ही इस शीघ्रता से पनपने तथा प्रचलित होने का प्रधान कारण है जो इस सीमा तक पहुंच गया है कि यह आन्दोलन औद्योगिक क्षेत्र में उद्योगपतियों के अधिकार के विरुद्ध ही नहीं बल्कि राजनीति क्षेत्र में राज्य के हस्तक्षेप के विरुद्ध भी विद्रोह करता है। इस प्रकार अपने सारे सिद्धान्तों में यह समूहवादी व्यवस्था तथा समूहवादी राज्य दोनों का बिलकुल उल्टा है।

'संघवाद' (Syndicalism) शब्द की व्युत्पत्ति सिन्डेकेट (Syndicate) शब्द से हुई है जो अंग्रेजी ट्रेड यूनियन शब्द का ही फ्रेंच अनुवाद है। प्रायः फ्रांस में आज भी (Syndicalism) शब्द साधारण ट्रेड यूनियन आन्दोलन के लिए प्रयोग में आता है, किन्तु एक क्रान्तिकारी ट्रेड यूनियन आन्दोलन को 'संघवाद' कहना अधिक सत्य तथा उपयुक्त होगा। सिद्धान्त रूप में इसे प्रेरणा देने वाले प्रूधां तथा कार्ल मार्क्स हैं और अराजकतावादी दर्शन के भी कुछ कुछ निकट होने के कारण इसे (Anarcho Syndicalism) भी कहते हैं। वस्तुतः इस विचारधारा का जन्म कुछ ऐसी परिस्थितियों में हुआ है, जो फ्रांस के इतिहास में भ्रष्टाचार, अन्याय, शोषण तथा उत्पीड़न का युग कहा जाता है। भ्रष्ट प्रजातन्त्र के विरुद्ध अपनी आवाज उठाने के कारण कुछ लोग इसे पतित प्रजातन्त्र का प्रतिशोध पूर्ण न्याय (Anemisis of corrupt democracy) भी कहते हैं। संघवाद आदि से लेकर अन्त तक उग्र तथा क्रान्तिकारी है और अपने आरम्भ से ही एक राजनीति विरोधी (An antipolitical movement) आन्दोलन होने के कारण यह राजनीति के सब रूप तथा सब प्रकारों की खुले शब्दों में आलोचना करता है।

इतिहास (History)—संघवादी आन्दोलन फ्रांस में सर्वप्रथम सन् १८८७ में शुरू हुआ और प्रथम विश्व युद्ध के पहुंचते-पहुंचते ही फ्रांस की आधी से अधिक ट्रेड यूनियनें इस आन्दोलन के अधिकार में आ चुकी थीं। विशाल यूरोप के अन्य सब देशों को छोड़कर यह आन्दोलन फ्रांस में ही क्यों उत्पन्न हुआ इसके कुछ विशिष्ट

गिल्ड समाजवाद का मूल्यांकन (Evaluation of Guild Socialism)—उपरोक्त आलोचना के कारण विश्वव्यापी समाजवादी क्रांति में गिल्ड समाजवाद का स्थान ढूंढने पर आज यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि सक्रिय राजनीति (Active politics) में गिल्ड समाजवादी जैसी विचारधारा मर चुकी है, किन्तु इससे इन्कार करना सत्य से आंख मीचना होगा कि २०वीं शताब्दी के आरम्भ में इस विचारधारा ने ब्रिटेन तथा यू० एस० ए० के सामाजिक तथा औद्योगिक जीवन में एक बड़ी भारी क्रांति उपस्थित की थी। इस विचारधारा के उदय से इन दोनों देशों के राष्ट्रीय उद्योगों के प्रशासन में काफी परिवर्तन हुए और मालिक तथा मजदूर दोनों को मिले-जुले प्रतिनिधियों को इन पर पर्याप्त अधिकार मिले। राजनैतिक दृष्टि से भी समाज में अनेक संघों की आवश्यकता तथा महत्ता पर बल देकर गिल्ड समाजवाद ने राजसत्ता के आस्टीनियन विचार को हमेशा के लिए समाप्त कर बहुलवादी (Pluralistic thought) सिद्धान्त को जन्म दिया। व्यावहारिक राजनीति में अपने इन प्रभावों के अतिरिक्त सिद्धान्त रूप में भी गिल्ड समाजवाद निम्नलिखित तथ्यों पर प्रकाश डालता है तथा बल देता है जो निश्चय ही प्रशंसनीय है —

१ आज का समाज संघों में बँटकर ही सुचारु रूप से चल सकता है और विशेषतः आज के औद्योगिक अथवा आर्थिक जीवन के लिये तो संघ व्यवस्था अनिवार्य ही है।

२ प्रान्तिक प्रजातन्त्र दोषपूर्ण है, और यदि सच्चे अर्थों में प्रजातन्त्र कभी आ सकता है तो केवल तभी जब प्रतिनिधित्व का आधार प्रादेशिक सीमायें न होकर व्यवसाय हो।

३ राज्य समाज के लिए आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है और समाज में अनेकों संघों के रहते हुए भी उसका स्थान और कोई पूरा नहीं कर सकता।

४ संघों को आवश्यकता से अधिक स्वाधीनता मिलने पर वे भी भ्रष्ट हो सकते हैं, अतः उनकी निरंकुशता पर भी राज्य का अंकुश रहना चाहिए।

५ क्रांतियां अथवा परिवर्तन सफल तथा उपयोगी तभी हो सकते हैं जब वे अहिंसक रीति से हों और व्यर्थ का रक्तपात न किया जाय।

६ परिवर्तन सदैव धीरे धीरे होना चाहिए। आकस्मिक परिवर्तन समाज की सारी स्थिति को खतरे में डाल सकता है, किन्तु धीरे धीरे क्रांति करने पर वह क्रांति स्थायी तथा लाभदायक होती है।

७ सामाजिक व्यवस्था विकेन्द्रित (Decentralized) होकर ही अधिक सुन्दर व सुचारु रूप से चल सकती है।

८ राजनैतिक विचारधारायें कभी भी एकाङ्गी अथवा चरमवादी (Absolute) नहीं होनी चाहिए। व्यावहारिक दृष्टि से सफल होने के लिए प्रत्येक राजनैतिक सिद्धांत का समन्वयवादी अथवा मध्य मार्गी (Mid way traveller) रहना आवश्यक है।

९ समाज में उत्पादन तथा वितरण विनिमय (Exchange) तथा उपभोग (Consumption) से ज्यादा महत्वपूर्ण हैं।

संघवाद

(Syndicalism)

संघवाद एक फ्रेंच विचारधारा है। औद्योगिक क्षेत्र में समूहवाद (Collectivism) की असफलता के कारण इसका जन्म हुआ। यह एक क्रांतिकारी विचारधारा है जो शान्ति तथा विकासवाद दोनों सिद्धान्तों को अस्वीकार कर मजदूरों को तुरन्त सब प्रकार के बन्धनों से मुक्त करना चाहती है। मजदूरों का स्वाधीनता प्रेम ही इस शीघ्रता से पनपने तथा प्रचलित होने का प्रधान कारण है, जो इस सीमा तक पहुंच गया है कि यह आन्दोलन औद्योगिक क्षेत्र में उद्योगपतियों के अधिकार के विरुद्ध ही नहीं बल्कि राजनीति क्षेत्र में राज्य के हस्तक्षेप के विरुद्ध भी विद्रोह करता है। इस प्रकार अपने सारे सिद्धान्तों में यह समूहवादी व्यवस्था तथा समूहवादी राज्य दोनों का बिलकुल उल्टा है।

'संघवाद' (Syndicalism) शब्द की व्युत्पत्ति सिन्डीकेट (Syndicate) शब्द से हुई है जो अंग्रेजी ट्रेड यूनियन शब्द का ही फ्रेंच अनुवाद है। प्राय फ्रांस में आज भी (Syndicalism) शब्द साधारण ट्रेड यूनियन आन्दोलन के लिए प्रयोग में आता है, किन्तु एक क्रान्तिकारी ट्रेड यूनियन आन्दोलन को 'संघवाद' कहना अधिक सत्य तथा उपयुक्त होगा। सिद्धान्त रूप में इसे प्रेरणा देने वाले प्रूधो तथा कार्ल मार्क्स हैं और अराजकतावादी दर्शन के भी कुछ-कुछ निकट होने के कारण इसे (Anarcho Syndicalism) भी कहते हैं। वस्तुतः इस विचारधारा का जन्म कुछ ऐसी परिस्थितियों में हुआ है, जो फ्रांस के इतिहास में भ्रष्टाचार, अन्याय, शोषण तथा उत्पीड़न का युग कहा जाता है। भ्रष्ट प्रजातन्त्र के विरुद्ध अपनी आवाज उठाने के कारण कुछ लोग इसे पतित प्रजातन्त्र का प्रतिशोध पूर्ण न्याय (Anemisis of corrupt democracy) भी कहते हैं। संघवाद आदि से लेकर अन्त तक उग्र तथा क्रान्तिकारी है और अपने आरम्भ से ही एक राजनीति विरोधी (An antipolitical movement) आन्दोलन होने के कारण यह राजनीति के सब रूप तथा सब प्रकारों की खुले शब्दों में आलोचना करता है।

इतिहास (History)—संघवादी आन्दोलन फ्रांस में सर्वप्रथम सन् १८८७ में शुरू हुआ और प्रथम विश्व युद्ध के पहले पहुंचते ही फ्रांस की आधी से अधिक ट्रेड यूनियनें इस आन्दोलन के अधिकार में आ चुकी थीं। निपाल यूरोप के अन्य सब देशों को छोड़कर यह आन्दोलन फ्रांस में ही क्यों उत्पन्न हुआ इसके कुछ विशिष्ट

कारण थ। उन्नीसवीं शताब्दी का फ्रांस का इतिहास इस बात का प्रमाण है, कि यूरोप मे फ्रांस ही उस समय एक ऐसा देश था जिसकी राजनतिक भूमि तथा औद्योगिक जलवायु इस सघवाद रूपी पौधे के उगने के लिए सर्वथा अनुकूल थी और उससे कम कोई भी राजनैतिक अथवा औद्योगिक विचार क्रांति फलोत्पादक पास को ठीक रास्ते पर लाने म असमर्थ थी। सन् १८८० से १९०२ तक तीन वाला फ्राम गणतत्र (French Republic) एक ऐसी भ्रष्ट सरकार का शासन काल था, जिसका प्रत्येक क्षण आपसी झगडे, बदमाशी, पारस्परिक वैमनस्य, मरणासन्न प्रजातन्त्र, तथा अनेको प्रकार के कलङ्को के लिए कुख्यात (Notorious) है। इस समय मे फ्रांस मे शासन सत्ता इतनी निरकुश थी कि मजदूरा को अपन को सघा म सगठित करने की स्वतन्त्रता नही थी और उनके अधिकार तथा हित अत्याचार की चक्की मे पीसे जाते थे। सन् १८६४ से पूर्व जो छोटे छोटे मजदूर सघ देश मे काम कर रहे थे, उन्हे सरकारी कानूनो द्वारा मान्यता प्राप्त नहीं थी और अपने कानून विरोधी अस्तित्व (Illegal existence) के कारण उनका जीवन सदैव सकट तथा मृत्यु के मुँह मे रहता था। धीरे धीरे जन आन्दोलन के कारण जब सन् १८६४, १८६८ तथा १८८४ आदि के कानूनो द्वारा इन मजदूर सघो को खुले रूप म सगठित होने की आज्ञा मिली तो उनका दीर्घ समय मे सचित विद्रोह एव विस्फोट (Explosion) के साथ फूट पडा और इन्होने कितने ही क्रान्तिकारी सघो की स्थापना कर डाली। सन् १८८७ तक कुछ अराजकतावादी तत्व इन सघो मे प्रधानता प्राप्त कर गया और इसके छ वर्ष बाद (Federation do Bourses du Travail de France) नामक सस्था की स्थापना की गई। बहुत शीघ्र ही यह सस्था फ्रास म मजदूर आन्दोलन का केन्द्र बन गई, जिसके कारण इसके दो वष के कार्यकाल के बाद ही केन्द्रीय श्रम सघ (Confederation Generale du Travail) अथवा (C G T) सी० जी० टी० नाम की नई सस्था की आवश्यकता पडी जो सघवादी विचारधारा को सारे देश मे बडे ओज के साथ फैलाने के लिए जिम्मेदार है।

केन्द्रीय श्रम सघ (Confederation Generale du Travail or C G T)—इस सस्था की स्थापना पिलाटयर (Pelloutier) नामक एक सघवादी ने की थी और सघवादी कार्यक्रम तथा योजना को कार्य रूप मे परिणत करना ही इसका एक मात्र उद्देश्य था। सघवादी सिद्धान्तों (Syndicalist principles) के आधार पर, इस सस्था ने एक सघवादी नीति निर्धारित की थी, जिस पर चलते हुए सघवादी व्यवस्था का निर्माण करना सघवादियों का ध्येय था। यह सघ दो प्रकार की सस्थाओ का एक सम्मिलित रूप था जो सन् १९०२ में मिलकर एक बन गई थी। प्रथम प्रकार की सस्था मजदूरों के अलग-अलग श्रम सघ (Labour Syndicates) थे जिनकी सख्या फ्रांस में १०० के लगभग थी तथा दूसरी सस्था (Bourse De Travail) थी जो सन् १८६३ मे मजदूरो के सार्वजनिक हितो की रक्षा करने के लिए अनेको प्रकार के मजदूरों ने मिलकर स्थापित की थी। इस प्रकार

सघवादी सिद्धान्त की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता समाज को छोटी से छोटी औद्योगिक इकाईयों (Smallest industrial units) मे बाटना था जिसमे कि सत्ता विकेन्द्रित (Decentralized) हो सके। इस केन्द्रीय श्रम सघ ने फ्रास के मजदूरो का नेतृत्व किया और उन्हे यह ठोस कार्यक्रम दिया कि वे साधारण हड़ताल (General Strike) द्वारा समूहवादी वैधानिक उपायों (Collectivist Constitutional methods) को छोड कर राज्य को दूर उठा फेकने के लिए एक भीषण क्रान्ति करें। यह सघ सारे फ्रांस की एक राष्ट्रीय सस्था (National organisation) थी।

सघवादी विचारक (Syndicalist Thinkers)—वैसे तो सघवादी सिद्धान्तो तथा योजनाओ के विषय म लिखने वाले अनेको विचारक हुए है और अनको लोगो ने ही व्यावहारिक क्षेत्र (Practical field) म इस आन्दोलन का नतृत्व किया है, किन्तु इनमे वे लोग, जिन्हे इसकी सफलता का पूरा श्रेय है, सोरेल (Sorel) और पिलोटयर (Pelloutier) है। फ्रांस के बाहर भी सघवाद का प्रचार हुआ था और प्रसिद्ध विचारक लैगरडेल (Lagarddle) तथा बर्थ (Berth) के अतिरिक्त इटली मे मालतस्ता (Malatasta) यू० एस० ए० मे डेलियोन (DeLeon) स्पेन म डुरुत्ती (Durutti) तथा आयरलैण्ड मे कोनोल्ली (Conolly) आदि कुछ एसे विदेशी विचारक भी हैं, जिन्होंने सघवादी सिद्धान्त तथा आन्दोलन दोनो मे सक्रिय योग दिया है।

पिलोटेयर (Pelloutier)—यह सघवादी आन्दोलन के जन्मदाताओ मे से एक था और सघवादी सिद्धान्त के विषय म अधिक लिखने की अपेक्षा इसने सघवादी आन्दोलन को फ्रास तथा यूरोप म सबल बनाने के लिए सर तोड कोशिश की थी। केन्द्रीय श्रम सघ (C G T) की स्थापना केवल इसी के प्रयासो से हुई थी। पिलाटेयर किसी भी ससदीय प्रणाली (Parliamentary Method) म विश्वास नही करता था और उसकी यह दृढ धारणा थी कि मजदूर लोग अपना भाग्य अपने सयुक्त परिश्रम तथा प्रयत्नों द्वारा ही ऊँचा उठा सकते हैं। इसके लिए वह मानता है कि उन्हे राष्ट्र के अन्य लोगो से मिलकर काम करने की आवश्यकता नही, क्योकि देश की राजनीति म भाग लेना उनके अपने ही हित मे अच्छा नही होगा। अत उन्हे चाहिए कि वे आपस मे मिलकर मजदूर सघ स्थापित करें और अपनी स्थिति को उन्नत बनाने के लिए सहयोग से काम लें।

सोरेल (Sorel)—यह श्रमिक वर्ग का सदस्य होते हुए भी स्वय एक श्रमिक नहीं था। यह विचारक अधिक था और अपने ३५ वर्ष के लम्बे इन्जीनियर के जीवन मे तथाकथित उच्च वर्ग (socalled Bourgeoisie) के लोगो के सम्पर्क मे आने से इस उनसे घृणा हो गई थी। इसे मार्क्सवाद म बडी रुचि थी किन्तु 1899 म यह समाजवादी से एकदम सघवादी बन गया। इसकी प्रसिद्ध रचना 'Reflections on Violence' एक एसी पुस्तक है जिसमे यह प्रजातन्त्र तथा मध्यमवर्ग क लोगो के प्रति

अपनी उदासीनता प्रकट करता है। एक विचारक के रूप में वह बुद्धिवाद (Intellectualism) तथा विचारशीलता (Rationalism) दोनों का विरोधी था और इसी कारण मुसोलिनी ने उसे 'फासिज्म का उत्प्रेरक" (Inspirer of Fascism) कहा है उस पर प्रधो तथा वैरूनिन का भी बहुत अधिक प्रभाव पडा था, जिसके फलस्वरूप वह प्रगति का एक आशावादी चित्र न रख कर जीवन का एक वीरता पूर्ण चित्र उपस्थित करता है। हिंसा का रहस्यमय सिद्धान्त (A mystical theory of violence) तथा पूँजीवाद को उन्मूलित करने के लिए साधारण हड़ताल (General Strike) सोरेल की शिक्षा के दो महत्वपूर्ण तत्व है। उसका विश्वास था कि 'समाजवाद का सारा भविष्य मजदूर संघों के स्वाधीन विकास पर निर्भर करता है।' (The whole future of Socialism resides in the autonomous development of workingman's syndicates ') वह चाहता है कि सारी सत्ता मजदूरों के हाथों में हो किन्तु संघवादी समाज की सारी व्यवस्था कैसी होगी और इस सत्ता को पाने के बाद वे उसका उपयोग किस प्रकार करेंगे इन सब प्रश्नों का उत्तर सोरेल जान बूझ कर नहीं देता। वह कहता है कि समाज के इस आने वाले रूप को अंधकार में रखना ही अच्छा है। उसकी मान्यता है कि संघवादी समाज की व्यवस्था, तथा रूप की कल्पना किन्ही तर्कों अथवा सिद्धान्तों के आधार पर नहीं की जा सकती, बल्कि वह एक ऐसा समाज होगा जिसकी स्थापना मजदूर लोग बिना सोचे विचारे अपने आप ठीक ठीक कर लेंगे। (By intution) सोरेल यह भी मानता है कि संघवादी समाज की परिभाषा न देने से मजदूर लोग बडे उत्साह तथा जिज्ञासा के साथ उसकी राह देखेंगे और वह उद्देश्य जल्दी प्राप्त किया जा सकेगा। उसकी दृष्टि में जब मजदूर लोग अपनी हड़ताल द्वारा राज्य का विनाश करेंगे तब समाज की अंतिम रूप रेखा खींचने का अधिकार भी उन्हीं का होना चाहिए। इस काम के लिए वह श्रमिकों में अधिक बुद्धि तथा विचारशीलता का होना आवश्यक नहीं समझता बल्कि उनके नैसर्गिक विवेक (Intution) पर अधिक बल देता है। सोरेल का यह नैसर्गिक विवेक सिद्धान्त (Theory of intution) बर्गसन (Bergson) से प्रभावित है और इस प्रकार मार्क्सवाद फासिज्म तथा यथार्थानियनिज्म आदि अनेक विचारक जो 'उत्पादकों के साम्राज्यवाद" (Imperialism of the Producers) के पक्षपाती हैं, सोरेल संघवादी सिद्धान्त में आ मिले हैं।

संघवादी सिद्धान्त (Theory of Syndicalism)—संघवादी एक बहुत बड़े लेखक के अनुसार संघवाद की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है कि 'वह सामाजिक सिद्धान्त का एक वह प्रकार है जो ट्रेड यूनियन संस्थाओं को नूतन समाज की नींव तथा उसको स्थापित करने वाला एक शस्त्र मानता है।" (Syndicalism is that form of social theory which regards the Trade Union Organisations as at once the foundation of the new Society and the instrument whereby it is to be brought into being) यथार्थ में संघवाद एक अधिक

आन्दोलन है जिसको राजनीति मे सक्रिय बनाने वाले भी श्रमिक ही हैं। यह विचारधारा राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा औद्योगिक सभी क्षेत्रों मे मजदूरों का पक्ष लेकर चलती है और उनके हाथ मे सारी सत्ता सौंप कर उन्हें समाज का असली निर्माता तथा सर्वेसर्वा बनाना चाहती है। इस दृष्टि से यह एक जन आन्दोलन (Rank and file movement) है जो मध्यमवर्गीय नेतृत्व तथा मध्यमवर्गीय समाजवाद दोनो को अस्वीकार करता है। यह किसी कल्पना अथवा नैतिक आदर्शों मे विश्वास नही करता और न यही सम्भव मानता है कि धीरे-धीरे विकासवादी वैधानिक सिद्धान्तो द्वारा मजदूर का कल्याण हो सकता है। सघवाद के अनुसार मजदूरों का मोक्ष केवल इसी मे है कि अन्यायपूर्ण पूंजीवादी व्यवस्था तथा उसके साथ साथ उसके हिमायती राज्य दोनो का समूल नाश करके उनके स्थान पर मजदूरों का आधिपत्य स्थापित किया जाय। इस प्रकार "स्वाधीन समाज मे स्वाधीनता पूर्वक कार्य" मिलना अथवा देना सघवाद का लोकप्रिय आदर्श है।

सघवाद राज्य विरोधी है (Syndicalism is Anti state)—सघवादी राज्य को एक अमीरो की सस्था (A Bourgeois institution) मानते है और इसलिए मजदूरो के नेता होने के कारण राज्य के प्रति उनका रुख स्पष्ट रूप से घृणा तथा विद्रोह का है। उनका मत है कि राज्य एक दुर्गुण है जो अन्याय, शोषण तथा अनाचारो पर टिका हुआ ही नही है, बल्कि उनको समाज मे चिरस्थाई बनाने के लिए सदैव कोशिश करता है। यह सबल, शक्तिशाली तथा रियायती वर्ग (Privileged class) के हाथो मे एक खिलौना मात्र है, जिसके द्वारा वे कमजोर, शोषित तथा पीडित वर्ग पर अपने जुल्म ढहाते है। व्यक्तिवादियो (Individualists) की भांति ये भी राज्य को एक शरारती सस्था मानते हैं जो व्यक्ति की मौलिकता को कुचलने के साथ-साथ मजदूरो के हितो के प्रति भी सर्वथा उदासीन (Indifferent) है। पूंजीपतियो के साथ गठबन्धन करने के कारण यह धनिको को मिली हुई रियायतो की रक्षा करती है "और समाज मे एकता, नीरसता, कल्पना तथा मौलिकता का अभाव व विकास तथा उद्योगो के प्रति अविश्वास उत्पन्न करती है"—(जोड)। दूसरे सघवादी बहुलवाद (Pluralism) मे विश्वास करते हैं, और एक सत्तावादी (Authoritarian) केन्द्रीकृत (Centralised) राज्य उनके सिद्धान्तो मे फिट नही बठ सकता। समाज मे अनेक सघो का होना तथा उन्हें असली सत्ता सौंपना स्वय राज्य के अस्तित्व का इन्कार करना है। अत सघवाद एक राज्य विरोधी (Anti state) विचारधारा है जो राज्य का विनाश तथा उन्मूलन (Abolition) चाहती है।

१ सघवाद बनाम अराजकता—अपने उद्देश्य मे अराजकतावादी होते हुए भी सघवाद का ध्येय अराजकतावाद (Anarchism) लाना नही है। अराजकतावाद व्यक्तियो को राज्य तथा राजनैतिक कार्य से पूर्णत असहयोग करने के लिए कहता है किन्तु सघवाद राज्य का आलोचक होते हुए भी मजदूरो को राजनैतिक दलों (Political Parties) तथा प्रजातन्त्रात्मक सस्थाओ मे भाग लेने की अनुमति देता है। इस दृष्टि मे

यह अधिक उदार तथा कम सत्तावाद विरोधी (Less anti authoritarian) है। उद्देश्य की दृष्टि से भी अराजकतावाद में केवल ऐच्छिक संघ होंगे किन्तु संघवादी समाज राज्य के स्थान पर श्रम संघों द्वारा श्रमिकों का शासन स्थापित करना चाहता है।

२ संघवाद एकमात्र श्रमिक आन्दोलन होने का दावा करता है (**Syndicalism claims to be the only workers movement**)—संघवादियों का दावा है कि समाजवादी अन्य सिद्धान्त मध्यमवर्गीय विचारकों के मस्तिष्क से पैदा हुए हैं और उन्हीं के नेतृत्व में उन्हें कायरूप में बदला गया है। किन्तु संघवाद एक ऐसी व्यावहारिक विचारधारा है जो किसी मध्यमवर्गीय समाजवाद अथवा नेतृत्व में विश्वास नहीं करती। संघवादियों का कहना है कि मध्यमवर्गीय नेता लोग जनसाधारण से दूर रहते हैं और अपने कमरे में बैठे-बैठे अपने दर्शन गढ़ा करते हैं। अतः उनका दर्शन न तो विश्वास योग्य ही हो सकता है और न साधारण मजदूरों को जो समाज में संख्या में अधिक हैं कोई फायदा पहुँचा सकता है। संघवाद किसी एक विचारक का दर्शन नहीं है, बल्कि यह एक सामूहिक मजदूर आन्दोलन है, जो किन्हीं नेताओं के उपदेशों में विश्वास नहीं करता। मध्यमवर्गीय दर्शन की आलोचना करते हुए संघवादी मार्क्स तक की आलोचना करते हैं और यह मानते हैं कि समस्त मध्यवर्गीय राजनतिक विचारधाराओं में संघवाद ही एकमात्र ऐसी विचारधारा है, जो मजदूरों की, मजदूरों के लिए तथा मजदूरों द्वारा शासित सामाजिक व्यवस्था (A social organisation of the workers, for the workers and by the workers) की योजना लेकर आगे आती है।

३ संघवाद उत्पादकों को शासन बनाने के पक्ष में है (**Syndicalism favours the Producers Control**)—समाजवाद का यह मूलभूत सिद्धान्त है कि राज्य में उत्पादक (Producer) को महत्वहीन न समझा जाय और राष्ट्र की समस्त वस्तुओं के उत्पादन तथा वितरण की व्यवस्था उसके हित में हो। समूहवादी (Collectivist) उत्पादन तथा वितरण पर नियन्त्रण करने का काय मजदूर हितैषी राज्य को देना चाहते हैं। किन्तु इस विषय में संघवादी उनसे कई कदम आगे दिखाई देते हैं। वे चाहते हैं कि आर्थिक तथा औद्योगिक क्षेत्र में तो मजदूर सर्वेसर्वा हों ही, किन्तु राजनतिक क्षेत्र में भी सत्ता उन्हीं के हाथ में रहनी चाहिये। राज्य का नाश हो जाने पर राजनैतिक काय मजदूर संघों द्वारा किये जायें जिससे समाज तथा उद्योग (Industry) दोनों में मजदूरों को स्वाधीनता रह सके और सारे काय सुगमता से हो सकें। संघवाद राज्य को एक उपभोक्ताओं का संघ (Consumers association) मानता है, अतः संघवादी समाज में, जहाँ उत्पादक लोग सभी क्षेत्रों में असली शासक होंगे, राज्य का अस्तित्व सहन नहीं किया जा सकता। संघवादी लोग आज के प्रजातन्त्र की भर्त्सना करते हैं और मानते हैं कि उसमें केवल कुछ पूँजीपतियों के नाम के आगे × निशान मात्र लगाने की स्वाधीनता है, इसलिए वास्तविक प्रजातन्त्र

का विकास तभी होगा जब समाज की वस्तुओ के स्वामी वे लोग होगे जो अपने परिश्रम द्वारा उनको मूल्यवान बनाते है। अत सामाजिक आर्थिक, औद्योगिक तथा राजनैतिक सभी क्षेत्रो म सघवाद उत्पादको को शासक बनाने का समर्थन करता है।

४ सघवाद तुरन्त कार्यवाही करने का उपदेश देता है। (Syndicalism preaches direct action)—समूहवादियो की भाति सघवादियो का शान्तिपूर्ण तथा वैधानिक उपायो मे विश्वास नही हैं। वे चाहते हैं कि मजदूर लोग सगठित होकर आज की अन्याय पूर्ण व्यवस्था के विरुद्ध एक भीषण, व हिंसात्मक क्रान्ति कर दे और तुरन्त कार्यवाही (Direct Action) के द्वारा इस दोषपूर्ण व्यवस्था के स्थान पर अपनी आदर्श व्यवस्था की स्थापना करें। व्यावहारिकता की दृष्टि से सघवाद पूँजीवाद को उन्मूलित करने के लिए चार उपाय बतलाता है जो (१) हडताल (Strike), (२) तोड फोड (Sabotage), (३) बहिष्कार (Boycott), तथा (४) निन्दा (Label) हैं। किन्तु इन चारों उपायो मे से उनका सबसे अधिक बल हडताल (Strike) पर है, जिसे वे एक ऐसा अमोघ अस्त्र मानते हैं कि जिसके द्वारा मजदूर जब चाहे पूँजीपतियो की कब्र खोद सकते हैं। अत सघवादियो का कहना है कि अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए एक न एक दिन मजदूरो को देश व्यापी साधारण हडताल (General strike) करनी पडेगी और इसके लिए प्रयोग के रूप म (As rehersal) उन्हें सदा सदा अपने उद्योगो म हडताल करते रहना चाहिए। साधारण हडताल द्वारा, वे मानते हैं कि आज का सारा आर्थिक तथा औद्योगिक ढाचा चकनाचूर हो जायगा और पूँजीपति सत्ता छोडने के लिए विवश हो जायेंगे जो उनके हाथो से अपने आप मजदूरो के चरणो मे आ गिरेगी।

५ सघवाद हिंसक क्रान्ति को लाभदायक मानता है (Syndicalism regards violent revolution useful to the workers)—समूहवाद के बिलकुल विपरीत सघवाद की यह मान्यता है कि हिंसा तथा क्रान्ति द्वारा जो परिवर्तन होते हैं वे निश्चय ही उपयोगी तथा स्थाई हुआ करते है। वह वैधानिक उपायों द्वारा परिवर्तनो की सफलता को सफलता नही मानता। सघवादियो का विश्वास है कि शान्तिपूर्ण तथा अहिंसक तरीके श्रमिक वर्ग की वर्ग चेतना का नाश कर देते हैं और उनकी क्रान्तिकारी आत्म चेतना (Self Consciousness) भी धीरे-धीरे पूर्णत सो जाती है। इसके विपरीत उनका मत है कि क्रान्तिकारी उपाय मजदूरों का हमेशा जिन्दा तथा जागत रखते हैं और, कठोर से कठोर सकट की स्थिति मे भी वीरता पूर्वक डटे रहना सिखलाते है। हिंसक क्रान्ति म साथी होने के कारण उनमे एक दूसरे की प्रति प्रेम रहता है और सारा मजदूर समाज एक सूत्र मे बंधा रहता है। सघवाद यह भी मानता है कि हडताल आदि करते समय अपने सघ की आज्ञा मानने से आज्ञा पालन, अनुशासन आदि गुणो का भी मजदूर समाज में विकास होता है।

६ सघवादियों का प्रधान शस्त्र साधारण हडताल है (General strike is the principal weapon of the Syndicalists)—प्राय सभी सघवादी मानते

है कि मजदूर चाहे तो पूँजीवाद की जडे हिला सकते हैं। उनके अनुसार हडताल एक एक एसा अस्त्र है, जिसे मजदूर जब चाहे तब प्रयाग मे ला सकते हैं और वह कभी खाली नहीं जा सकता। साधारण हडताल का यह विचार सघवाद को ब्लाकी (Blanqui) नामक एक फ्रेंच समाजवादी से मिला है। साधारण हडताल क लिए सघवादी यह जरूरी नही मानत कि सारे मजदूर हडताल करें, किन्तु वे तो केवल इतना आवश्यक मानते ह कि मजदूरो की एक इतनी बडी सख्या जो देश के प्रधान उद्योगो मे काम करती ह, अपना काय करना छोड द कि जिससे पूँजीवाद को अपने आप सकता मार जाय। प्रत्येक दश क आधुनिक उद्योग आजकल इस प्रकार अन्तर निभर (Inter dependent) है कि मजदूरो की एक साधारण सी सख्या ही सारे औद्योगिक ढाचे को पदे बैठा सकती ह। सघवादी चाहते हैं कि यह साधारण हडताल उस समय की जाय जब कि मजदूरो म इतनी वग चेतना आ जाय और व उसक लिए पूरी तरह तयार हो। हडताल क विषय म सघवादी आवश्यकता से अधिक आशावादी हैं और मानते हैं कि मजदूरो की राय भिन्न-भिन्न होते हुए भी उनके स्वाथ एक ही हैं अत चाहे वे वोट साथ-साथ न दे सकें, किन्तु सब मिलकर हडताल अवश्य कर सकते हैं। उनका विश्वास है कि इस साधारण हडताल के कारण मुसीबतें उठाने-से मजदूरो में पूँजीवाद के विरुद्ध घृणा तथा आपसी भ्रातृ-भाव बढेगा।

७, हिंसा के साथ साथ सघवाद कुछ अहिंसात्मक तरीकों से भी पूँजीवाद का विनाश चाहता है। (The non-violent tactics of the Sydicalists)—अपने 'तुरन्त कायवाही' करने के कायक्रम म (Plan of direct action) सघवाद साधारण हडताल के अतिरिक्त और कुछ शांतिपूण उपाय भी बतलाता है। सघवादी मानते हैं कि बिना हडताल किये भी एक मजदूर अगर चाहे तो अपने मालिक का अनेकों प्रकार से हानि पहुचा सकता है। उदाहरण के लिए जैसे किसी ग्राहक को वस्तुएँ पुरानी और गन्दी बतलाकर वह अपने मालिक के लाभ को क्षति पहुँचा सकता है। इसी प्रकार काम को सुस्ती से करके, अथवा ऐसा न करके जैसे उसे करना चाहिए अथवा मशीनों के औजारो वगैरा को तोडफोड कर वह अपने मालिक की आज्ञा मानता हुआ भी उसे अनेक प्रकार स हानि पहुचा सकता है। अपने काम तत्परता तथा योग्यता म न करने से उद्योग का उत्पादन कम हो जायगा जिसका सीधा प्रभाव, मजदूर पर नहीं मालिक के होने वाले मुनाफे पर पडेगा। इस प्रकार सघवाद के अनुसार मजदूर लोग उत्पादन को घटाकर, जानबूझ कर लापरवाही द्वारा, झूठी अफवाह फलाकर तथा औद्योगिक नीति सम्बन्धी गुप्त भेदो का सबको बतलाकर पूँजीवाद की चिता चुन सकते हैं और सघवादी वह एसा करने की सलाह देते हैं।

८ सघवादी भावी समाज का चित्र स्पष्ट शब्दों में नहीं देते (Syndicalists do not paint a clear picture of the future Society)—साधारण हडताल के बाद, तथा पूँजीवाद और उसके हिमायती राज्य के नष्ट हो जाने पर, सघवादी समाज की रूप रेखा क्या होगी, इस प्रश्न का उत्तर सघवाद जान बूझ कर नहीं

देता। वह मानता है कि क्रान्ति आने से पहले मजदूरों को इस व्यवस्था का चित्र नहीं बतलाना चाहिए नहीं तो वे अपने उद्देश्य तक पहुँचने के लिए इतने उत्साह से काम नहीं करेंगे। संघवाद मानता है कि चीजों को अन्धकार में रखने से उनमें एक आकर्षण होता है और इसलिए मजदूरों का आकर्षण तथा उत्साह बनाये रखने के लिए, इस व्यवस्था को अन्धकार में रखना ही अधिक लाभदायक है। सोरेल (Sorel) का मत है कि यह व्यवस्था किन्हीं निश्चित आदर्शों पर न होकर नैसर्गिक विचारों (Intuitions) के आधार पर ढाली जायेगी। किन्तु इस सब आवरण तथा अस्पष्टता के होते हुए भी संघवादी सिद्धान्तों से इतना स्पष्ट अवश्य है कि यह व्यवस्था केन्द्रीय श्रम संघ (C G T) के स्वरूप से बहुत कुछ मिलती-जुलती सी होगी, जिसमें उत्पादक लोग (Producers) सत्ता तथा मुख्त लोग सजा के अधिकारी होंगे। न्यायालय तथा जेलों की कोई आवश्यकता नहीं होगी और वे समाप्त कर दिये जायेंगे। सेना जैसी संस्था भी अनावश्यक होगी और सत्ता किसी एक राजा अथवा जनता में न होकर मजदूरों के संघों में निवास करेगी, जो उसका प्रयोग करते समय आपसी हितों का ध्यान रखेंगे। उत्पादन की सीमायें भी केन्द्रीय संघ निश्चित करेगा और उसमें प्रतिनिधित्व भौगोलिक आधार पर न होकर संघों के प्रतिनिधियों के रूप में होगा।

९. संघवाद युद्ध का विरोध करता है (Syndicalism is antimilitarist)—क्रान्तिकारी तथा हिंसक उपायों का समर्थक होते हुए भी संघवाद युद्ध का उपदेश नहीं देता। इसके अनुसार मजदूर वर्ग का युद्ध में कोई स्वार्थ अथवा हित नहीं है क्योंकि वह पूँजीपतियों के आपस में टकराने वाले स्वार्थों से उत्पन्न होता है। युद्ध के जन्मदाता केवल पूँजीपति ही हैं अतः मजदूरों को उससे अलग रहना चाहिए। संघवादियों की मान्यता है कि संसार के सारे श्रमिक एक समान उद्देश्य रखते हैं, अतः व्यर्थ में अपना तथा अपने भाइयों का खून बहाना उनके लिए उचित नहीं। इसी विश्वास के कारण फ्रांस के संघवादियों ने प्रथम विश्व युद्ध में अपनी सरकार का साथ नहीं दिया था।

१० संघवाद प्रजातन्त्र में विश्वास नहीं करता (Syndicalism does not believe in democracy)—अपने विचारों में उग्र होने के कारण प्रजातन्त्र जैसी उदार वस्तु संघवादियों द्वारा स्वीकार नहीं की जा सकती। वे मानते हैं कि संसदीय प्रणाली (Parliamentary Method) केवल एक धोखा मात्र है जो अमीरों के दिमाग की उपज है और मजदूरों के लिए कभी लाभदायक नहीं हो सकती। दूसरे उनका यह भी मत है कि यह एक ऐसी वैधानिक प्रणाली है, जिसमें मजदूरों की वर्ग चेतना मन्द पड़ जाती है और वे संसद सदस्य अथवा मन्त्री बनने के बाद अपना सारा उत्साह खो बैठते हैं और उद्देश्यों को भूल जाते हैं। इस प्रकार यह मजदूरों में भी पूँजीवादी मनोवृत्ति पैदा कर देती है और बहुत से समाजवादी मन्त्री बनने पर, समाजवादी नहीं रहते। मिलरेंड (Millerand) आदि अनेकों समाजवादी लोग इनके प्रमाण हैं। अतः संघवाद इसकी कटु आलोचना करता है।

संघवाद और साम्यवाद (Syndicalism and Communism)—अपने उद्देश्य तथा प्रणालियों में ये दोनों विचारधारायें एक दूसरे के बहुत निकट हैं और आर्थिक कार्यक्रम की दृष्टि से भी इन दोनों में पर्याप्त साम्य है। इन दोनों का एक तुलनात्मक विवेचन इस प्रकार है —

समानतायें—

१ दोनों ही विचारधारायें समाजवादी दर्शन के मूलभूत सिद्धान्तों में विश्वास करती हैं और उसी के दो अलग-अलग रूपान्तर मात्र हैं।

२ दोनों वर्गयुद्ध (Class war) के सिद्धान्त को स्वीकार करती हैं और पूँजीवाद के प्रति अपनी इसी घृणा के आधार पर हिंसा का उपदेश देती हैं।

३ दोनों विचारधारायें क्रान्तिकारी हैं और हिंसा को एक उचित उपाय बतलाती हैं।

४ इन दोनों की ही दृष्टि में पूँजी एक चोरी है, अत वह व्यक्तिगत नहीं होनी चाहिए।

५ ये दोनों ही पूँजीवाद, सामन्तवाद, शोषण तथा अपने अन्तिम रूप में राज्य तक का पूर्ण विनाश तथा अन्त चाहते हैं।

६ दोनों ही प्रतियोगिता के स्थान पर सहयोग की आवश्यकता पर बल देते हैं।

७ संघवादी मार्क्स के "अतिरिक्त मूल्य सिद्धान्त" (Theory of surplus value) को अक्षरश स्वीकार करते हैं और उसके द्वारा मजदूरों को पूँजीवाद के विरुद्ध भड़काते हैं।

अन्तर—

१ संघवाद केवल उत्पादक वर्ग की सत्ता को ही स्वीकार करता है, जबकि मार्क्स के अनुसार "प्रोलिटेरियट" शब्द एक बड़ा व्यापक शब्द है।

२ मार्क्सवाद एक राजनैतिक आन्दोलन है जबकि संघवाद एक विशुद्ध औद्योगिक क्रान्ति।

३ मार्क्सवाद के अनुसार राज्य धीरे-धीरे लुप्त होगा, किन्तु संघवादी उसे साधारण हड़ताल के द्वारा एकदम समाप्त करना चाहते हैं।

संघवाद की आलोचना (Criticism of Syndicalism)—

संघवादी यह उपरोक्त सिद्धान्त फ्रांस की औद्योगिक क्रान्ति से प्रभावित होने के कारण इतना अधिक क्रान्तिकारी और उग्र है कि यह व्यावहारिक (Practical) नहीं हो सकता और इस कारण से ही फ्रांस में पैदा होने के कुछ समय बाद ही इसकी मृत्यु हो गई। आलोचकगण इस पर आवश्यकता से अधिक सिद्धान्तवादी (Doctrinaire) चरमतावादी (Extremist) तथा अति तर्कपूर्ण (Too logical) होने का आरोप लगाते हैं और उनका कहना है कि इन दुर्बलताओं के कारण ही यह एक लोकप्रिय विचारधारा नहीं बन सकी।

१ संघवाद चित्र का केवल एक पक्ष देखता है (Syndicalism represents one side of the picture)—संघवाद की इस आधार पर आलोचना की जाती है कि यह एक बहुत ही संकुचित दर्शन (A narrow philosophy) है। यह केवल उत्पादकों के हित तथा स्वार्थों की ही चिंता करती है किन्तु समान रूप से महत्वपूर्ण उपभोक्ताओं (Consumer's interests) को भूल जाती है। यह अन्यायपूर्ण तथा पक्षपातपूर्ण है। आखिर उपभोक्ता लोग भी समाज के उतने ही महत्वपूर्ण अंग हैं, जितने कि उत्पादक लोग। अत उनके हितों की रक्षा होना भी समान रूप से ही आवश्यक है। किन्तु संघवाद के अन्तर्गत मजदूर लोग सबैव कुछ अपने हितों की दृष्टि से करेंगे, जिसका परिणाम यह होगा कि उपभोक्ता लोग उनकी इसी प्रकार की कटु आलोचना करेंगे, जैसी कि वे अब पूंजीपतियों की करते हैं।

२ संघवादी हिंसात्मक उपायों को भी आलोचक लोग सामाजिक हितों के लिए उपयोगी नहीं मानते। उनका यह दृढ़-निर्णय है कि एक हिंसक तथा आकस्मिक क्रान्ति बिना धन, जन तथा सम्पत्ति की एक भारी हानि हुए, नहीं हो सकती। ऐसी स्थिति में यदि मजदूर लोग जीत भी गये तो उनकी यह विजय उन्हें बड़ी महंगी पड़ेगी। फिर समाज की वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए यह मुश्किल नहीं है कि मजदूर लोग वैधानिक उपायों द्वारा सत्ता तक न पहुँच सकें। हिंसा द्वारा पाये जाने वाले इन्हीं उद्देश्यों को वे वैधानिक आन्दोलन द्वारा भी पा सकते हैं। अत "एक साधारण चुनाव के कभी भी अधिक दूर न रहने पर साधारण हड़ताल की सोचना बिलकुल अनावश्यक है।" (A General strike is unnecessary because a general election is never far off)

३ यह आवश्यक नहीं कि हड़ताल निश्चित रूप से सफल ही हो (There is no guarantee that the general strike will certainly succeed)—संघवादी साधारण हड़ताल का तरीका बड़ा अनिश्चित है। यह माना कि हड़ताल द्वारा मजदूर पूंजीवादी व्यवस्था की जड़ें हिला सकते हैं किन्तु उनकी यह हड़ताल आवश्यक रूप से सफल ही हो, यह आवश्यक नहीं। हो सकता है उनमें आपस में ही फूट पड़ जाय, या हड़ताल के समय अपनी आर्थिक स्थिति बिगड़ जाने पर उन्हें हड़ताल तोड़ने के लिए बाध्य होना पड़े। फिर राज्य के पास सेना और पुलिस जैसी शक्तियाँ हैं जो किसी भी बड़े से बड़े आन्दोलन को कुचल सकती हैं। अतः संघवादियों द्वारा यह मान बैठना कि साधारण हड़ताल द्वारा उनकी जीत निश्चित है, जरूरत से ज्यादा आशावादी बनना है।

४ असफल हड़ताल मजदूरों को पतन की ओर ले जायेगी (Unsuccessful strike shall demoralize the workers)—आलोचकों का कहना है कि यदि संघवादियों की साधारण हड़ताल सफल नहीं होती है, तो इसका परिणाम बड़ा भयंकर होगा। अपनी हार के बाद मजदूर वर्ग में इतनी भीषण निराशा आ जायेगी कि वे हमेशा के लिए हार मान लेंगे और पूंजीपति के सामने आत्मसमर्पण कर देंगे।

दूसरी ओर विजयी पूंजीवादी वर्ग, उनकी धृष्टता से झल्ला उठेगा और उनसे कठोरता पूर्वक बदला लेगा, जिसके कारण मजदूरों की हालत और भी अधिक दयनीय बन जायेगी।

५ संघवादी अन्य उपाय राष्ट्र के लिए घातक हैं (The other syndicalist methods are fatal to the nation)—हड़ताल के अतिरिक्त संघवादियों के पूंजीवाद को समाप्त करने के ऐसे उपाय जैसे काम ठीक तरह से न करना, काम धीरे धीरे करना, मशीन तोड़-फोड़ देना आदि ऐसे उपाय हैं, जिनका प्रभाव सीधा देश के उत्पादन पर पड़ेगा और पूंजीपति से ज्यादा उन मजदूरों का ही अहित होगा, जिन्हें चीजों की कीमत बढ़ जाने पर अपनी बनाई हुई चीजों के ज्यादा पैसे देने पड़ेंगे।

६ संघवादी समाज का चित्र न देना संघवाद की दुर्बलता है (The absence of a clear picture of a Syndicalist Society is a flaw)—सैद्धान्तिक दृष्टि से कोई भी विचारधारा एक पूर्ण तथा सफल विचारधारा नहीं कही जा सकती, जब तक कि उसके उद्देश्य स्पष्ट न हों। संघवादी अपने समाज की व्यवस्था के विषय में स्वयं स्पष्ट नहीं हैं और केवल मजदूरों की भावनाओं के साथ खिलवाड़ करके उन्हें एक उद्देश्यहीन स्थान पर ले जाना चाहते हैं। आखिर किसी भी स्थान तक पहुँचने के लिए उसका एक काल्पनिक चित्र होना जरूरी है। आलोचक मानते हैं कि यह चित्र ही मजदूरों में उत्साह तथा प्रेरणा फूंक सकता है, क्योंकि इसके बिना तो वे अन्धकार में भटकते रहेंगे और अपने धुंधले स्वप्न का मार्ग भूल बैठेंगे।

७ राज्य के अभाव में संघवाद सफल नहीं हो सकता (Syndicalism cannot be a success without the State)—संघवाद का उद्देश्य समाज को छोटे छोटे संघ में संगठित करके उत्पादक वर्ग को शासन सत्ता दिलाना है। यह कार्य राज्य की सहायता से ही सरलता पूर्वक सम्पन्न किया जा सकता है। किन्तु संघवाद के अन्तर्गत राज्य को कोई स्थान ही नहीं है, अतः हम एक शान्त तथा सुव्यवस्थित समाज की कल्पना नहीं कर सकते। इस समाज में कदम कदम पर संघों में आपसी झगड़े होंगे जिसका परिणाम अराजकता (Anarchy) हो जायगा।

८ संघवाद का प्रभाव (Influence of Syndicalism)—सन् १८९५ में केन्द्रीय श्रम संघ (C G T) की स्थापना के बाद संघवादी आन्दोलन यूरोप के अन्य देशों तथा अमेरिका में जोरों से फैलने लगा। सन् १९०५ में यू० एस० ए० में विलियम हेवुड (W Haywood) के नेतृत्व में "अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संघ" (International workers world) अथवा (I W W) नामक संस्था की स्थापना हुई इस (I W W) संस्था ने अमरिका के सारे मजदूरों को विशेषतः कृषकों तथा खानों में काम करने वालों को अपने झण्डे के नीचे संगठित किया। यह एक सुदृढ़ संगठन था, जिसने अपने सफल नेतृत्व द्वारा श्रमिकों का संकटकाल में बिखरने नहीं दिया। किन्तु फिर भी यह अमेरिकन मजदूर आन्दोलन फ्रेंच संघवाद की भाँति उग्र तथा हिंसापूर्ण नहीं था। अमेरिकन संघवाद काम न करने, गुस्सी आदि घृणित उपायों में विश्वास नहीं

करता और हडताल तक को बडी शान्ति के साथ समाप्त करना चाहता है। [illegible]
इसी नम्र नीति के कारण सन् १६०७ मे (Western Federation of Miners) ने इससे अपनी सदस्यता हटा ली और तत्पश्चात् यह पूणत एक युद्ध [illegible] सस्था रह गयी। १६१७ मे अमरिका द्वारा विश्व युद्ध मे भाग लेने से इस [illegible] भारी धक्का लगा, क्योकि इस समय सरकार हडताल जैसी चीज [illegible] सकती थी। इसी समय विश्व युद्ध सरकार को सहयोग देना चाहिए [illegible] प्रश्न को लेकर (I W W) के सदस्यो म एक मतभेद शुरू हो [illegible] विश्व युद्ध के पश्चात् यह सगठन सक्रिय न होने के कारण [illegible]

स्पेन मे विश्व युद्ध के पश्चात् भी सघवादी आन्दोलन [illegible] सन् १६३७ मे फ्रैंको विद्रोह के बाद जब स्पेन सरकार [illegible] लगी तो यह आदोलन पूणत कुचल दिया गया।

इटली मे फासिज्म के आने से पूव सघवाद [illegible] विचारधारा थी, किन्तु फासिस्ट तानाशाह मुसोलिनी ने [illegible] अन्त कर दिया।

ब्रिटेन अपनी परम्पराओ के अनुसार [illegible] प्रभाव से अछूता नही रहा और २० वीं [illegible] विश्व युद्ध से पूव इस आन्दोलन का एक [illegible] आर्थिक जीवन पर सुगमता से ढूढा जा सकता है।

इस प्रकार सघवाद कोई [illegible] सक्षेप म इन चार सिद्धान्तो पर आधारित है—

१ राज्य एक अमीरो की [illegible]

२ समाज म मजदूर लोग [illegible]

३ मतदान द्वारा सामाजिक [illegible] हिंसक क्रांति करनी चाहिए।

४ समाज की सारी [illegible]

समूहवाद

(Collectivism)

समूहवाद का दूसरा नाम राज्यकीय समाजवाद भी है। (State Socialism) यह समाजवाद की ही एक शाखा है जो समाजवादी उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए शान्तिपूर्ण उपायों पर बल देती है। इस प्रकार के समाजवादियों का उद्देश्य प्रत्येक राज्य मे समाजवादी क्रान्ति को बिना किसी रक्तपात तथा हिंसा के धीरे धीरे लाना है और इसी लिए यूरोप के कुछ देशों में इसे एक वैधानिक आन्दोलन (Constitutional movement) भी कहते हैं। समूहवादी इस सिद्धान्त परिवर्तन की क्रमिकता में विश्वास करता है। यह कोई उग्र क्रान्ति (*Radical Revolution*) या आकस्मिक परिवर्तन नही चाहता, बल्कि अपने दृष्टिकोण म यह पूर्णत विकासवादी है (Evolutionary)। इस विचारधारा के मूलभूत आधार जर्मन समाजवाद (German Socialism) तथा अंग्रेजी फेबियनिज्म है और इनसे अति अधिक प्रभावित होने के कारण यह मार्क्स के समाजवादी दर्शन से उद्देश्यों में मिलता हुआ होते हुए भी प्रणाली की दृष्टि से उसका बिलकुल उल्टा है।

समूहवाद क्यों? (Why Collectivism)—आधुनिक युग में समूहवादी विचार धारा के यूरोप मे पनपने के अनेकों कारण हैं। प्रमुख रूप से यह विचारधारा आज की २०वीं शताब्दी की ही उपज है और वर्तमान युग की सामाजिक औद्योगिक तथा राजनैतिक समस्याओं का ही समाधान लेकर उपस्थित हुई है।

१ यूरोप में समूहवादी सिद्धान्त के जन्म लेने का सबसे बड़ा कारण यह है कि १६ वी शताब्दी मे यूरोप व्यक्तिवाद का युग रहा था और इस शताब्दी के अन्त तक व्यक्तिवाद व्यवस्था के दोष अपनी चरम सीमा तक पहुँच चुके थे। व्यक्तिवाद द्वारा दी गई निस्सीम स्वतन्त्रता सभी क्षेत्रों मे सामाजिक जीवन के लिए एक समस्या बन गई थी। पूंजीवाद तथा साम्राज्यवाद दिन रात बढ़ रहे थे और चारों ओर शोषण, पतन, अपव्यय तथा स्वार्थ का बोलबाला था। अन्याय तथा अनाचारों से भरी हुई भ्रष्ट व्यवस्था के विरुद्ध प्रतिक्रिया होनी स्वाभाविक थी। पूंजीवाद के बोझ से दबा हुआ पाश्चात्य समाज राज्य की सहायता तथा हस्तक्षेप के लिए पुकारने लगा, जिसके फलस्वरूप राजनीति शास्त्र के इतिहास मे भी युग की पुकार के साथ साथ राज्यकीय समाजवाद अथवा समूहवाद की कल्पना की गई। अत यह कहना कोई अत्युक्ति नहीं है कि समूहवाद का जन्म व्यक्तिवाद की प्रतिक्रिया (Reaction) के फलस्वरूप हुआ।

२ समूहवाद को जन्म देने वाला दूसरा कारण था। साम्यवाद अथवा मार्क्सवाद की आधुनिक समाज मे अनुपयुक्तता। यद्यपि मार्क्सवाद भी समाजवाद का ही एक अङ्ग है और उद्देश्यों की दृष्टि से एक बहुत ही सबल तथा पुष्ट विचार धारा है, किन्तु अपने पवित्र उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जो मार्ग अथवा प्रणाली (method) मार्क्स ने चुनी है, वह बहुत ही आपत्तिजनक है। हिंसा और रक्तपात सदैव विनाश के मार्ग हुआ करते है, और इसी कारण से 'मार्क्स का दर्शन उसके अन्धे से अन्धे प्रशंसक द्वारा आचारात्मक दृष्टि से दृढ तथा वैज्ञानिक दृष्टि से न्यायपूर्ण होते हुए भी, बौद्धिक दृष्टि से बिलकुल खोखला व भावनाओं पर जीने वाला माना गया" (Marxism though ethically sound and scientifically just, was intellectually bankrupt and thrived upon sentimental appeals) मार्क्सवाद के आकस्मिक परिवर्तनों का सिद्धान्त अव्यावहारिक (Impracticable) माने जाने लगा है और लोग यह अनुभव करने लगे कि वर्तमान समय मे मार्क्सवाद एकदम समाज मे नही लाया जा सकता क्योंकि" विकास और पतन दो धीमी क्रियायें है। वे मनुष्य की बुद्धि द्वारा चाहे धीमी कर दी जायें किन्तु वह उल्टा नही जा सकता और न रोका ही जा सकता है और न यही सम्भव है कि आकस्मिक तथा भीषण परिवर्तनों के द्वारा उनकी गति को तेज किया जाय।" Growth and decay are slow processes They may be detected by human intelligence and even assisted or accelerated by human efforts but they can not be reversed or brought to a stand still nor can they be speeded up in abrupt and cata trophic change—Joad) अतः साम्यवाद को दुहराने की आवश्यकता पडी। साम्यवादी भविष्यवाणियां को झूठी सिद्ध होते देखकर उसके स्थान पर एक विकासवादी (Evolutionary) तथा वैज्ञानिक उपायों द्वारा समाजवाद लाने वाली विचारधारा की आवश्यकता अनुभव की गई और फलतः साम्यवाद के संशोधनवाद (Revisionism) के रूप मे समूहवाद का जन्म हुआ।

३ समूहवाद के जन्म लेने का तीसरा कारण पूँजीवादी व्यवस्था की बीमारियों का इलाज करना था। २० वी शताब्दी मे आकर व्यक्तिवाद के कीटाणु ने समाज के शरीर मे पूँजीवाद रूपी रोग का रूप धारण कर लिया था, जिसके कारण शोषण और अन्याय से दुर्बल होता जा रहा था। यह रोग भयंकरता की इस सीमा तक पहुँच गया था कि गरीब मजदूर के पास अपनी दरिद्रता के लिए ... के अतिरिक्त और कोई चारा ही न था। उत्पादन तथा वितरण पर कुछ ... पूँजीपतियों का अधिकार हो गया था और इसलिए यह चारों ओर ... जान लगा कि उत्पादन तथा वितरण के ये साधन पूँजीपतियों के हाथ ... किसी और सार्वजनिक संस्था को मिले और इसके लिए समूहवाद ... लेकर तथा उसके द्वारा वर्तमान पूँजीवाद के दोषों का अन्त करने ... आगे आया।

समूहवादी सिद्धान्त (Collectivist's Philosophy)—अपने सकुचित रूप म (narrowly conceived) समूहवाद, समाजवाद का ही एक रूपान्तर (Variant) है, किन्तु यह समाजवाद का केवल दूसरा नाम मात्र नही है। अपने विशाल उद्देश्यो मे यह समाजवाद के इन तीनो सिद्धान्तो को स्वीकार करता है कि समाज मे से पूजीवाद व्यक्तिगत उद्योग तथा प्रतियोगिता (Capitalism, Private enterprize and Competition) को जड से उन्मूलित कर दिया जाय। वह समाजवाद के साथ यहाँ पर भी एक मत है कि समाज व्यक्ति से अधिक महत्वपूर्ण है तथा राज्य का कार्य क्षेत्र बहुत विस्तृत होना चाहिए, किन्तु इससे आगे वह नही जाता और समाजवाद के सारे आर्थिक सिद्धान्तों को अक्षरश मानने के लिए प्रस्तुत नही है। समूहवाद की प्रमुख विशेषता उसके सिद्धान्तो अथवा उद्देश्यो मे नही है। वह एक नई प्रणाली का जन्मदाता है और इस सत्य मे विश्वास करता है कि, "आधुनिक प्रतियोगिता पूर्ण व्यवस्था, अनेको के दुख की कीमत पर कुछ लोगो को प्रसन्नता तथा आराम प्रदान करती है, अत समाज का पुनर्गठन इस प्रकार किया जाना चाहिए कि सार्वजनिक कल्याण तथा प्रसन्नता की प्राप्ति हो सके।" (The modern competitive system assures the happiness and comfort of the few at the expense of the sufferings of many and that the society must be reconstituted in such a manner as to secure the general welfare and happiness)

१ समूहवाद राज्य को आवश्यक तथा एक धनात्मक अच्छाई मानता है (Collectivism regards State as essential and a positive good)—"राजकीय समाजवाद" के नाम से ही स्पष्ट है कि यह विचारधारा राज्य की प्रबल समर्थक है। समूहवाद राज्य को समाजवादी व्यवस्था का एक अनिवार्य अग मानता है, अथवा यो कहिए कि समूहवादी राज्य मे राज्य ही वह प्रमुखतम तथा एक मात्र संस्था होगी, जिस पर सारी समूहवादी व्यवस्था निर्भर होगी। समूहवादी लोग राज्य के परम प्रशसक हैं और यह मानते है कि "राज्य केवल अपनी सत्ता के लिए ही नही जीता बल्कि इसलिए जीता है कि उसके सदस्य करने योग्य कार्य कर सकें।" (The state exists not for its own Power but to ensure that its members may all be able to do those things which are worth doing) वे राज्य को दुर्गुण न मानकर एक धनात्मक अच्छाई (Positive good) मानते हैं जो व्यक्ति की स्वाधीनता को कुचलती नही है कि मनुष्य के सामाजिक, आर्थिक, तथा बौद्धिक हितो के विकास के लिए राज्य को अधिक से अधिक कार्य सौंपे जायें, जिससे सामूहिक कल्याण प्राप्त हो सके। इन लोगो के मत मे न्याय, ईमानदारी, तथा आराम सब राज्य के अन्तर्गत रहने पर ही हो सकते हैं। समूहवाद की मान्यता है कि राज्य एक कल्याणकारी संस्था है अत इसके माध्यम द्वारा व्यक्ति का कभी अहित नही होता, बल्कि वह अपने हस्तक्षेप द्वारा उसे अपने सर्वाङ्गीण विकास के लिए समान अवसर दिलवाता है।

२ समूहवादी उत्पादन तथा वितरण के सब साधनों का राष्ट्रीयकरण चाहते

हैं (Collectivists stand for the nationalisation of all the factors of production and distribution)—समूहवाद चाहता है कि उत्पादन तथा वितरण का सारा प्रबन्ध राज्य के अधिकार मे हो, क्योंकि इसके बिना सामाजिक समानता का उद्देश्य कभी प्राप्त नही हो सकता। वह शिल्पी समाजवाद (Guild socialism अथवा (Syndicalism) की तरह यह नही मानता कि उत्पादन श्रमिकों की वस्तु है और उनका परिश्रम ही उसको मूल्यवान बनाता है अत केवल वे ही लोग उसका प्रबन्ध करें। समूहवादियों के मत मे वस्तु को मूल्य प्रदान करने वाला समाज है और समाज के सभी वर्गों का हित तभी हो सकता है जब उत्पादन तथा वितरण किसी निष्पक्ष तथा योग्य संस्था के हाथो मे हो। समूहवादी इस कार्य के लिए राज्य को पूरी तरह योग्य देखते हैं और इस कारण उत्पादन तथा वितरण के सभी साधनो को समाज की सामूहिक सम्पत्ति बनाने के लिए उनका राष्ट्रीयकरण चाहते है, जिससे सम्पत्ति का समान वितरण हो सके।

३ समूहवादी व्यक्तिगत उद्योगों को राज्यकीय उद्योगों मे बदलना चाहते हैं (Collectivists stand for the transfer of all industries from the private hands into those of the state)—समूहवाद उत्पादन तथा वितरण के केवल राष्ट्रीयकरण से ही सन्तुष्ट नही होता, क्योंकि उत्पादन तथा वितरण के साधन राष्ट्रीय अधिकार मे होते हुए भी पूंजीवादी व्यवस्था जमा की तैसी रह सकती है। उदाहरण के लिए मानलो कच्चे लोहे तथा कोयले की सारी खाने राष्ट्रीय सम्पत्ति हैं तथा उन्हें एक जगह से दूसरी जगह वितरित करने के सारे साधन भी राज्य के अधिकार म है किन्तु यह आवश्यक नही कि लोहे के सारे कल कारखाने सरकारी कल कारखाने ही हो। समूहवाद इसका विरोध करता है। वह चाहता है कि साधनो के राष्ट्रीयकरण के साथ-साथ बडे-बडे उद्योग धन्धो तथा मिलों को भी राष्ट्रीय सम्पत्ति बनाया जाय और उनका प्रबन्ध भी सरकार व्यक्तिगत मिल-मालिकों से छीन कर अपने हाथ म ले ले। ऐसा होने से उत्पादन व्यक्तिगत लाभ से न होकर सामाजिक उपयोग (Social use) के लिए होगा और मुनाफा कमाने की भावना समाज की सेवा की भावना मे बदल जायगी। कोई भी एक मिल-मालिक मजदूरो की मेहनत से अपनी जेब नहीं भरेगा बल्कि सारी आय एक राष्ट्रीय सरकार को मिलेगी जो उसे जनकल्याण के लिए खर्च करेगी। आज के युग मे पाया जाने वाला चीजो का अपव्यय तथा प्रतियोगिता का अन्त हो जायगा और सब राज्यकीय कर्मचारी होंगे। इस प्रकार समूहवादी व्यवस्था मे राज्य उद्योगो का स्वामी होगा और सब की आय को समान बनाकर समाज के जीवनस्तर में समानता के लिए यत्न करेगा।

४ समूहवाद विकासवादी विचारधारा है (Collectivism belongs to the evolutionary school of thought)—समूहवाद मार्क्सवाद के इस सिद्धान्त को नही मानता कि समाजवाद की स्थापना क्रान्ति द्वारा एकदम की जा सकती है। यह एक बहुत शान्तिपूर्ण आन्दोलन है जिसका यह विश्वास है कि समाज मे परिवर्तन

सदैव धीरे-धीरे हुआ करते हैं और इस प्रकार धीरे धीरे तथा शान्तिपूर्ण वैधानिक तरीकों से होने वाले परिवर्तन ही स्थाई परिवर्तन हो सकते हैं। अतः समूहवाद यह ध्येय तो बना कर चलता है कि पूंजीवाद समाज को समाजवादी व्यवस्था में बदलना है, किन्तु यह परिवर्तन अहिंसात्मक होने पर ही अधिक उपयोगी तथा सफल हो सकता है। इसके लिए समूहवादी एक योजनाबद्ध कार्यक्रम रखते हैं। वे चाहते हैं कि उन्हें पहले प्रजातन्त्रात्मक प्रणाली से जनता में लोकप्रिय बन कर चुनाव जीतना चाहिए। इस प्रकार संसद में पहुंच कर अपनी सरकार बनानी चाहिए और फिर अपनी नीति के अनुसार सामाजिक तथा औद्योगिक व्यवस्था में कोई परिवर्तन करना चाहिए। एक वाक्य में समूहवादी प्रणाली यह है कि "समाजवाद की स्थापना शांति से, धीरे-धीरे वैधानिक उपायों द्वारा की जानी चाहिए, आकस्मिक तथा रक्तरंजित क्रान्तियों के द्वारा नहीं।" वैधानिक तथा शान्तिपूर्ण उपायों में विश्वास करने के कारण समूहवादी यह मांग करते हैं कि मत देने का अधिकार देश के प्रत्येक व्यस्क स्त्री पुरुष को मिलना चाहिए।

५. समूहवादी राज्य एक कल्याण राज्य होगा (The Collectivist state will be a welfare state)—वैधानिक उपायों द्वारा सरकार पर अपना आधिपत्य स्थापित करने के बाद, समूहवाद अपने अनुसरणकर्ताओं (Followers) के लिए एक निश्चित कल्याण राज्य (Welfare state) का आदर्श रूप रखता है। समूहवाद अपने समूहवादी शासकों से यह चाहता है कि वे राष्ट्रीय वेतन व्यवस्था (National wage system) को सब पर समान रूप से तथा सारे देश में लागू करें। जहाँ तक सम्भव हो प्रत्येक को समान मजदूरी मिले और आज के दुखी और दीन मजदूरों का भाग्य ऊँचा उठे। समूहवाद चाहता है कि राष्ट्रीय सरकार प्रत्येक श्रमिक को इतना वेतन अवश्य दे कि वह अपना स्वस्थ शारीरिक तथा मानसिक विकास कर सके। सरकार यह भी ध्यान रखे कि कोई बेरोजगार (Unemployed) तो नहीं है और जो काम करते हैं उन्हें आवश्यकता से अधिक तथा अपने स्वास्थ्य की कीमत पर तो काम नहीं करना पड़ता है।

६. समूहवाद उद्योगों पर भी प्रजातन्त्रात्मक अधिकार चाहता है (Collectivism favours democratic control of Industry)—समूहवाद एक उदार तथा प्रजातन्त्रात्मक विचारधारा है, और इसलिए जिस प्रकार वह राज्य की व्यवस्था चुने हुए लोकप्रिय व्यक्तियों को सौंपना चाहती है उसी प्रकार उसका मत है कि उद्योगों में भी एक पूंजीपति का शासन न हो। मजदूर लोग अपनी मिल की व्यवस्था अपने आप करें और सभी मजदूर समान रूप से उन्नति के अवसर, आराम तथा आमदनी पाते रहें। राज्य का कार्य केवल उसका निरीक्षण करना रहे।

७. समूहवाद राष्ट्रीय आय-व्यवस्था में भी क्रांति चाहता है (Collectivism advocates a revolution in National finance)—समूहवादियों का उद्देश्य मजदूरों की स्थिति को ऊँचा उठाना है, अतः वे चाहते हैं कि राष्ट्रीय सरकार श्रमिकों

पर लगने वाले कर (Tax) को कम कर दे और आय कर की व्यवस्था (System of Income tax) को अधिक प्रगतिशील बनाय, जिससे आर्थिक भेदभाव की खाई कुछ सकड़ी बने और वर्तमान समय की-सी आर्थिक विषमतायें नष्ट हो जायें।

८ समूहवाद चाहता है कि अतिरिक्त पूँजी सार्वजनिक हित पर खर्च हो (Collectivism wants the employment of surplus wealth for the common good)—आज क पूँजीवाद समाज म भी मजदूर लोग आवश्यकता से अधिक पैदा करके अतिरिक्त पूँजी (Surplus capital) पैदा करते हैं, किन्तु इस अतिरिक्त श्रम द्वारा उत्पन्न होने वाली अतिरिक्त पूँजी का लाभ उनको नहीं मिलता। पूँजीपति इसे बीच म हड़प जाता है। इसके विरोध मे समूहवादी चाहते हैं कि यह अतिरिक्त पूँजी, जिसे मजदूर अपने पसीने से पैदा करें, किसी एक हरामखोर पूँजीपति को न मिलकर सरकार के राष्ट्रीय कोष म जमा हो और उसमें से उसका व्यय जनसाधारण का जीवन स्तर (Standard of living) ऊँचा करने के लिए किया जाय।

६ समूहवाद स्वाधीनता को सहयोग द्वारा ही सम्भव मानता है (Liberty to collectivists lies in Cooperation)—स्वाधीनता का समूहवादी यह अर्थ मानते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को समाज मे अपना पूर्ण तथा उन्मुक्त जीवन बिताने का अधिकार हो। उनका मत है कि यह अधिकार उपभोग के योग्य तभी हो सकता है जब सब लोग मिलकर सहयोग से जीवन बितायें, क्योंकि एकान्त मे किसी प्रकार की स्वाधीनता की कल्पना नहीं की जा सकती।

समूहवाद की उत्तर सहित आलोचना (Criticism of State Socialism)—आज के युग मे समूहवाद के आलोचक दो प्रकार के हैं, एक तो वे जो समस्त समाजवाद के ही विरोधी हैं और उसे किसी भी रूप म स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं, तथा दूसरे प्रकार के आलोचक कुछ उग्र समाजवादी लेखक हैं जो समूहवाद के आदर्शों से सहमत होते हुए भी उनकी प्रणालियों की कटु आलोचना करते हैं। इस दूसरे प्रकार के आलोचकों की मान्यता है कि यदि समाजवाद समाज मे स्थापित हो सकता है तो केवल एक रक्तपूर्ण हिंसक क्रांति से अन्यथा सब स्वप्न तथा कल्पना मात्र है।

१ समूहवादी राज्य स्वसत्तावादी राज्य होगा (The Collectivist State will be authoritarian)—समूहवाद राज्य को अधिक से अधिक कार्य सौंपना चाहता है तथा ऐसी व्यवस्था के अन्तर्गत उत्पादन तथा वितरण के सारे साधन राज्य के कठोर नियन्त्रण मे रहेंगे। उसका परिणाम यह होगा कि राज्य की सत्ता बहुत अधिक बढ जायेगी और उत्पादन तथा वितरण आर्थिक जीवन के महत्वपूर्ण अंग होने के कारण, राज्य के अधिकार म जाकर व्यक्ति के सारे जीवन को राज्य के आधीन बना देंगे। समूहवादी राज्य मे व्यक्ति का आर्थिक जीवन और इस कारण से सारा जीवन राज्य के कठोर नियन्त्रण में रहेगा और इसीलिए आलोचक लोग

समूहवादी राज्य पर सर्वसत्तावादी राज्य (Authoritarian state) होने का आरोप लगाते हैं।

२ समूहवाद में नौकरशाही फलेगी (Collectivism will lead to inefficient bureaucratic Control)—राज्य को सारे कार्य सौंपने तथा बड़े बड़े उद्योगों का प्रबन्ध देने का मतलब है, राज्य के कर्मचारी अथवा पदाधिकारियों को शासन सौंपना। समूहवादी राज्य में ऐसे राज्य कर्मचारियों की संख्या सबसे अधिक होगी। जिसके कारण नौकरशाही (Bureaucracy) पनपेगी और सारा शासन बिल्कुल भ्रष्ट, धीमा तथा कार्य-कुशलता से हीन हो जायगा। चारों ओर लाल फीताशाही (Red tapism) फैलेगी और जैसा कि हम आजकल के राज्यों में देखते हैं सर्वत्र सिफारिश, पक्षपात, तथा घूसखोरी का बाजार गर्म होगा। राज्य, अथवा सरकार अपने कार्य को न ठीक तरह सभाल सकेगी और न अपने कर्तव्यों का पालन कर सकेगी और हो सकता है कि अपनी शक्ति से अधिक कार्य भार मिलने पर राज्य का प्रशासनिक यन्त्र (Administrative machinery of the state) उसके नीचे दबकर टूट जाय।

इस आलोचना के प्रत्युत्तर में यह कहा जा सकता है कि यह समूहवादी राज्य का अतिरंजित चित्र (An exaggerated picture) है और, राजकीय व्यवस्था के ये सब दुर्गुण ठीक प्रकार से प्रबन्ध किए जाने पर मिट सकते हैं। जनमत के कठोर प्रहार के सामने नौकरशाही के सारे दुर्गुण भी अधिक दिन नहीं चल सकते और सावधानी से कार्य करने पर कम से कम किए जा सकते हैं। अतः केवल इसी कारण से उद्योगों का राष्ट्रीयकरण न करना उचित नहीं।

३ समूहवाद के अन्तर्गत कार्य करने की प्रेरणा नहीं रहेगी (Collectivism will destroy or seriously impair the incentive to work)—आलोचकों का मत है कि व्यक्ति स्वभाव से आत्मकेन्द्रित (Self Centred) होता है। वह कोई भी कार्य तब जी लगाकर तथा परिश्रम से करता है जब उसे उसका तत्काल लाभ मिले। अतः समूहवाद में जब सब सरकारी नौकर हो जायेंगे और सब को समान वेतन मिलेगा तो किसी को क्या आवश्यकता पड़ी है कि वह अधिक अथवा ज्यादा अच्छा काम करे। यथार्थ में आदमी काम तभी ठीक करता है, जब कोई प्रतियोगिता हो या कोई उसे उसकी मौलिकता अथवा साधना के लिए अच्छा इनाम दे। ये दोनों ही बातें समूहवाद में नहीं होंगी, अतः मजदूर भी नित्य प्रति के काम को बेगार समझ कर किया करेंगे और उनके काम में कोई श्रेष्ठता नहीं होगी।

आलोचकों की इस आलोचना के उत्तर में समूहवादियों का कहना है कि यह तथ्य कि मनुष्य स्वार्थी है और आर्थिक लाभ की ओर अथवा किसी प्रकार के लाभ की अपनी जल्दी दौड़ता है अमत्य तथा मनोविज्ञान के विरुद्ध है। मनुष्य दूसरों का भलाई के लिए भी बहुत कुछ करता है तथा करना चाहता है। अतः यदि वह प्रधान रूप से स्वार्थी है तो भी हम चाहिए कि हम समाज में परोपकारी वृत्तियों को मजबूत

बनायें। समाज-सेवा की वृत्ति हर एक व्यक्ति में क्रियाशील रहती है और जैसा कि प्रो० जोड का मत है "यह मनुष्य जीवन का अत्यन्त शक्तिशाली तत्व है" (It is the most powerful factor in man's life)। राज्य को उसके विकास के लिए अवसर देना चाहिए क्योंकि "मनुष्य की यह रचनात्मक वृत्ति, किसी न किसी प्रकार की योग्य अथवा उपयुक्त सार्वजनिक सेवा के बिना सन्तुष्ट नहीं हो सकती" (The Creative impulse is to be satisfied by rendering public service in any form —Russell)

४ समूहवाद व्यक्तिगत स्वाधीनता का शत्रु है (Collectivism is Inimical to Individual liberty)—समूहवाद में राज्य का कार्यक्षेत्र बहुत बढ़ जायगा और राज्य द्वारा जीवन के प्रत्येक कदम पर किये जाने वाले हस्तक्षेप के कारण व्यक्ति के जीवन मे एक जड़ता (Regimentation) आ जायेगी। उसकी सारी प्रतिभा तथा विकास कुण्ठित हो जायगा और सदैव एकसा नीरस जीवन बिताने के कारण वह अपने सूखे जीवन से ऊब जायगा। राज्य का कठोर नियन्त्रण व्यक्ति की सारी व्यक्तिगत स्वाधीनता को उससे लूट लेगा और हिलारे बैलोक (Hailare Belloc) के शब्दों में, "व्यक्ति राज्य का दास बन जायगा और समूहवाद एक गुलाम राज्य की नींव डालेगा" (Individuals shall become slaves of the State and Collectivism would introduce the Servile State)। इसी प्रकार इर्स्काईन मे (E May) का मत है कि "समाजवाद के सारे सिद्धान्त मनुष्य की शक्तियों का दमन करते हैं और मनुष्य के लिए ऊंचे उद्देश्य निर्धारित करते हैं" (All the theories of Socialism repress the energies of mankind and prescribe elevated aims for Individual)।

इस आलोचना का उत्तर इस प्रकार दिया जा सकता है कि प्रथम तो राजकीय हस्तक्षेप मनुष्य की स्वाधीनता का कोई नाश ही नहीं करता और यह एक गलत परिभाषा है जो स्वाधीनता को एक चरम वस्तु (Absolute thing) मानती है। दूसरे समूहवाद के अन्तर्गत राज्य कोई अन्याय करेगा तो यह एक प्रजातन्त्रात्मक पद्धति का समर्थक है और जनता अथवा जनमत किन्हीं संस्थाओं में संगठित होकर राज्य को ऐसा करने से रोक सकता है। यथार्थ में समूहवादी स्वाधीनता की [illegible] धनात्मक व्याख्या (Positive interpretation) करते हैं और उसे अधिक [illegible] के लिए सुलभ बनाना चाहते हैं। अतः स्वाधीनता की सामाजिक दृष्टि [illegible] कारण ही हम समूहवाद को स्वाधीनता का शत्रु नहीं कह सकते।

५ समूहवाद मे उत्पादन कम हो जायगा (Production will go down under Socialism)—आलोचकों का मत है कि उत्पादन की [illegible] स्वस्थ प्रतियोगिता (Healthy Competition) तथा व्यक्तिगत [illegible] (Motive force) होनी चाहिए। समूहवाद में य दोनो ही नहीं [illegible] कोई भी व्यक्ति इच्छा तथा लगन से कार्य नहीं करेगा और [illegible]

व्यक्तिगत उद्योगों के न रहने से उद्योगों के प्रबन्ध में शिथिलता आ जायगी और उद्योगों में सुलझन से ज्यादा नई समस्यायें पैदा हो जायगी।

विरोधियों की इस आपत्ति के उत्तर में समूहवादी कहते हैं कि आज के युग का अधिक महत्वपूर्ण सवाल उत्पादन नहीं, बल्कि वितरण है। इसलिए यदि यह शंका सत्य मान भी ली जाय तो भी चिन्तित होने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं। दूसरे रूस तथा चीन आदि देशों का अनुभव तथा इतिहास यह सिद्ध करता है कि राजकीय समाजवाद में उत्पादन घटता नहीं है, बल्कि सार्वजनिक हित के लिए लोग अधिक रुचि तथा मन लगा कर काम करते हैं। अतः, आलोचकों की यह शंका सर्वथा निर्मूल है।

६ समूहवाद समाज में एकरूपता उत्पन्न कर देगा (Collectivism will result in dull uniformity)—आलोचक मानते हैं कि व्यक्तिवादी समाज में जीवन की विभिन्नतायें (Varieties of life) मिलती हैं जिसके कारण समाज रंगीन तथा आकर्षक लगता है। किन्तु समूहवाद व्यक्ति की इस मौलिकता को कुचल देगा और सब को एक सा जीवन बिताने के लिए बाध्य करेगा, जिसके कारण समाज में एक नीरस एकता छा जायगी। हो सकता है कि क्रमिक दरिद्रता की सीमा पर पहुंच जायें और समाज एक स्थिर (Static) तथा दुःखी समाज होकर सड़ने (Stagnate) लगे इस आरोप का उत्तर यही है कि समूहवाद एक आशावादी दर्शन (Optimistic Philosophy) है, जो हमारी योग्यता तथा शक्तियों को व्यक्तिगत लाभ की अपेक्षा ऊँचे उद्देश्यों के लिए लगाना चाहता है।

७ राजकीय समाजवाद पूँजीवाद का ही रूपान्तर होगा (State Socialism will be Capitalism in disguise)—समूहवाद के विरोधियों का मत है कि समूहवाद घूमकर वहीं आ जाता है जहां से आरम्भ होता है और अपने अन्तिम रूप में वह उन्हीं दुर्गुणों को जन्म देता है जिनको मिटाने के लिए उसका जन्म हुआ था। समूहवाद का उद्देश्य यद्यपि पूँजीवाद का नाश करना है, किन्तु राजकीय तथा प्रजातन्त्रात्मक व्यवस्था में सारे पूँजीपति लोग राज्यसत्ता ग्रहण कर लेंगे और उद्योगों पर अपना अधिकार बनाये रहेंगे और गरीब मजदूर, मजदूर का मजदूर ही रहेगा। अन्तर केवल इतना होगा कि पूँजीवाद का नाम पूँजीवाद न रह कर राजकीय समाजवाद हो जायगा।

८ समूहवादी औद्योगिक व्यवस्था में अधिक झगड़े होंगे (There shall be *more troubles in Collectivist Industrial organisatisation*)—उत्पादन तथा वितरण के सारे साधन राज्य के आधीन होने के कारण राज्य का महत्व अधिक होगा। इस कारण राजसत्ता को प्राप्त करने के लिए एक बहुत तीव्र प्रतिद्वंद्विता होगी। हर एक वर्ग तथा दल राज्य-यन्त्र (Machinery of the state) पर अपना अधिकार करने के लिए अपनी सारी शक्ति लगा देगा, जिसके कारण आपस में झगड़े चलते रहेंगे, और औद्योगिक शांति (*Industrial peace*) हमेशा के लिए नष्ट हो जायगी।

समूहवाद की यह आलोचना भी अतियुक्ति पूर्ण (Exaggerated) है। झगड़ों की सम्भावना होने हुए भी हम अपना विश्वास प्रजातन्त्रात्मक सिद्धान्त से नहीं हटा सकते, क्योंकि कुछ दोषों के होते हुए भी वह आज तक की शासन प्रणालियों में सर्वोत्तम प्रणाली है।

९ समूहवाद व्यक्तियों को चरित्रहीन बना देगा (Collectivism tends to corrupt individuals)—समूहवादी व्यवस्था को चलाने के लिए बहुत उच्च कोटि के नैतिक व्यक्तियों की आवश्यकता है क्योंकि औसत आदमी द्वारा इसके उच्च आदर्श, यथार्थ में बदले नहीं जा सकते। अत समाज के इस आधुनिक वातावरण में राज्य के औसत कर्मचारियों के हाथ में सारी व्यवस्था सौंपना अयोग्यता, अपव्यय, भ्रष्टाचार तथा प्रबन्धहीनता की कहानी को दुहराना है। अपने पतन के लिए अधिक अवसर पाने के कारण समूहवादी समाज में व्यक्ति अधिक चरित्रहीन भ्रष्ट होगा।

राजकीय समाजवाद का यह चित्र भी सत्य से दूर है। यथार्थता तो यह है कि स्वार्थी मनुष्य को चरित्रवान बनाने के लिए ही समूहवादी राज्य सारी जिम्मेदारियां अपने सिर पर लेगा और उसे पतित होने के लिए कम से कम अवसर प्रदान करेगा।

१० समूहवाद में आवश्यकता से अधिक केन्द्रीकरण होगा जिसका परिणाम निश्चय ही मनुष्य के विकास के मार्ग को बाधित करेगा।

समूहवाद का मूल्याङ्कन (Evaluation of Collectivism)—उपरोक्त लम्बी चौड़ी आलोचना के होते हुए भी समूहवाद को एक प्रभावहीन विचारधारा नहीं कहा जा सकता। वैसे आलोचना के लिए दोष तो सभी दर्शनों में होते हैं, किन्तु तुलनात्मक रूप से देखने पर इस विचारधारा में महत्वपूर्ण तथा मूल्यवान विचार भी कम नहीं मिलते, जिसके कारण यह आज के युग में चारों ओर बड़ी शीघ्रता से फैलती हुई दिखाई दे रही है।

१ सार्वजनिक हितों की रक्षा के लिए उद्योगों का समाजीकरण आवश्यक है (Socialisation of Industries is essential to public interests)—आज औद्योगिक व्यवस्था पूरी तरह से भ्रष्ट तथा दोषपूर्ण है। यह अर्द्ध अराजकतावादी (Semi anarchic) सी लगती है। अत उसे एक सुनिश्चित तथा नियमित क्रम में लाने का केवल एक ही चारा हो सकता है कि उसे व्यक्तिगत अधिकार से निकाल कर राजकीय अधिकार में ले लिया जाय। सरकार एक मोध संस्था है, जो अपने उपयुक्त अधिकार और नियन्त्रण द्वारा हानिकारक प्रतियोगिता तथा अपव्यय को रोकेगी। सरकार के आधीन रहने पर वस्तुयें आवश्यकता से अधिक पैदा नहीं होंगी और उनका दोहरा पैदा होना (Duplication) भी बन्द हो जाएगा। अत आज की दोषपूर्ण औद्योगिक व्यवस्था के लिए समूहवाद के अतिरिक्त और कोई रामबाण दवा नहीं मिल सकती।

२ समूहवाद में प्राकृतिक साधन मानवता के कल्याण के लिए खर्च किए जायेंगे (Under Collectivism natural resources will be spent for the

conservation of human happiness)—समूहवाद किसी व्यक्ति अथवा पूँजीपति का व्यक्तिगत लाभ नहीं चाहता। वह चाहता है कि कुछ लोगों के लाभ अथवा उपयोग के लिए व्यय किए जाने वाले सारे प्राकृतिक साधन सारे समाज के मानवीय हित अथवा कल्याण के लिए खर्च किए जायें। समूहवादी यह सिद्धान्त अधिक न्यायपूर्ण तथा नैतिक दृष्टि से भी बहुत अधिक प्रशंसनीय हैं, क्योंकि यह पूँजीवादी शोषण तथा व्यक्तिवादी अपव्यय (Waste) दोनों का अन्त करता है।

३ यह स्वार्थ के स्थान पर सेवा का आदर्श रखता है (Collectivism substitutes the ideal of service for self interest)—समूहवादी सिद्धान्त की उदारता तथा उच्चता का एक प्रमाण यह भी है कि यह क्षुद्र स्वार्थी भावनाओं का तिरस्कार कर समाज सेवा के महान् उद्देश्य को अपना आदर्श बना कर चलता है।

४ यह समाज में नैतिक गुणों का विकास करेगा (Collectivism shall develop moral and spiritual societies)—समूहवाद के आलोचक उस पर यह मिथ्या आरोप लगाते हैं कि इस व्यवस्था में आदमी भ्रष्ट तथा चरित्रहीन बन जायगा। अधिक सत्य तो यह है कि स्वार्थ तथा प्रतियोगिता की भावना व्यक्ति को घृणित तथा अनुचित साधन अपनाने के लिए बाध्य करते हैं। जब समूहवाद में ये दोनों ही न रहेंगे और इनके स्थान पर प्रेम तथा परोपकार की भावनाओं को जगाने के लिए वातावरण होगा तो समाज नैतिक तथा आध्यात्मिक दोनों प्रकार की उन्नति करेगा।

५ समूहवाद प्रजातन्त्र का ही एक व्यापक रूप है (Collectivism is an extension of democracy)—समूहवाद का ध्येय समानता न्याय तथा एक न्यायपूर्ण सामाजिक तथा औद्योगिक व्यवस्था की स्थापना करना है। ये दोनों ही उद्देश्य प्रजातन्त्र के मूलभूत आधार है। स्वस्थ समाज के निर्माण द्वारा यह व्यक्ति को उच्चतर जीवन व्यतीत करने के लिए विकास के अधिकतम अवसर देता है और उसे स्वाधीन बनाता है जो प्रजातन्त्र के लिए भी बहुत मूल्यवान है। चुनाव आदि का विस्तृत कार्यक्रम उपस्थित करने के कारण भी हम कह सकते है कि समूहवाद एक पूर्ण प्रजातन्त्रात्मक विचार धारा है।

६ समूहवाद एक अहिंसात्मक आन्दोलन है (Collectivism is non violent and gradual) समूहवाद की सबसे अधिक आकृष्ट करने वाली तथा महत्वपूर्ण गुण है उसकी विकासवादी विशेषता (Evolutionary character)। अपनी प्रणाली में क्रान्तिकारी तथा तत्काल परिवर्तन चाहने वाला न होकर यह विचारधारा एक अहिंसक व शान्तिपूर्ण आन्दोलन चाहती है जिससे समाज का चित्र धीरे धीरे बदल सके। अत यह क्रान्तिकारियों को छोड़कर और सभी की एक प्रिय विचारधारा है।

इस प्रकार समूहवाद आलोचना और प्रत्यालोचना के मध्य आगे बढ़ रहा है। सैद्धान्तिक दृष्टि से कुछ आपत्तिपूर्ण होने पर भी आज के समाज के सामने इसके अतिरिक्त और कोई चारा नहीं है और इसीलिए यह एक सार्वभौमिक तथा लोकप्रिय आन्दोलन (Universal and popular movement) बनता जा रहा है।

आदर्शवाद
(Idealism)

राजनीति के इतिहास में आदर्शवादी सिद्धान्त अनेक नामों से विख्यात है। चरमतावादी सिद्धान्त (Absolutist Theory) दार्शनिक सिद्धान्त (Philosophical Theory) तात्विक सिद्धान्त (Metaphysical Theory) और मकाइवर के शब्दों में "रहस्यवादी सिद्धान्त" (Mystical Theory) आदि एक ही आदर्शवादी सिद्धान्त के विभिन्न नाम हैं। यथार्थ में ये अनेक नाम आदर्शवादी विचार के धरातल के नीचे बहने वाली उन धाराओं की ओर संकेत करते हैं, जो जर्मन तथा अंग्रेजी विचारक, हीगल, काण्ट, ग्रीन, बोसांक्वेट आदि के राजनैतिक दर्शनों से प्रवाहित होकर आदर्शवाद रूपी नदी को जन्म देती है। राज्य का आदर्शवादी सिद्धान्त राज्य तथा समाज का एक आदर्श चित्र प्रस्तुत करता है, जो व्यावहारिक दृष्टि से कुछ कठिनाइयों से पूर्ण होते हुए भी दार्शनिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह सिद्धान्त अत्यन्त भावात्मक (Abstract) तथा तर्कपूर्ण (Logical) है। राज्य को एक वास्तविक तथ्य (Actual fact) न मानकर यह उसे एक आदर्श (Ideal) अथवा पूर्ण (Perfect) वस्तु मानकर आगे बढ़ता है जिसके कारण इसके परिणामों का आधार अनुभव तथा निरीक्षण न होकर शुष्क तर्क तथा आध्यात्मिकता है। आदर्शवादियों को इस बात की चिन्ता नहीं कि वर्तमान राज्य का रूप क्या है। वे उसे उसकी यथार्थताओं (Realities) से अलग कर केवल इस बात पर विचार करते हैं कि एक आदर्श राज्य को कैसा होना चाहिए। इसी कारण उनके दर्शन में राज्य का स्थान दैविक महत्ता तक पहुँच गया है और व्यक्ति तथा उसकी स्वतन्त्रता बड़ी निर्दयतापूर्वक कुचल दी गई है।

इतिहास (History of Idealism)—राजनीति में आदर्शवादी परम्परा का इतिहास बहुत प्राचीन तथा लम्बा इतिहास है, जो यूनानियों (Greeks) से लेकर आज तक शृङ्खलाबद्ध रूप में ढूढ़ा जा सकता है। राजनीति शास्त्र के लम्बे इतिहास में प्लेटो तथा अरिस्टोटल पहले यूनानी विचारक हैं जिन्होंने राज्य के एक आदर्शवादी रूप की कल्पना की थी और सर्व प्रथम इस बात की घोषणा की थी कि "मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है" (Man is a Social animal)। इन विचारकों ने राज्य को सर्व प्रथम मनुष्य जीवन के लिए स्वाभाविक तथा आवश्यक माना है। उनकी दृष्टि में राज्य ही सब कुछ था और व्यक्ति का जो कुछ मूल्य अथवा महत्व है वह भी उसके राज्य में रहने के कारण ही है क्योंकि उससे पृथक किये जाने पर तो वह एक

आचारहीन भावात्मकता (Unethical abstraction) मात्र रह जायगा। अरिस्टोटल के शब्दों में "पहले राज्य का उदय मनुष्य के जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हुआ था, पर उसका अस्तित्व नैतिक जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए बना रहा" (The state comes into being for the sake of mere life it continues to exist for the sake of good life)। यूनानी विचारकों के मत में राज्य अपने चरम रूप में एक नैतिक संस्था (Moral institution) है, जिसे सद्गुण सम्पन्न जीवन की साझेदारी" भी कहा जा सकता है। (A partnership is a life of virtue) वे सामाजिक तथा नागरिक जीवन में कोई अन्तर नहीं करते थे, बल्कि दोनों को एक मानकर, नागरिक जीवन में ही जीवन की पूर्णता (Perfection of life) समझते थे। प्लेटो के शब्दों में "राज्य अन्य कुछ न होकर मानव मस्तिष्क का ही एक विशालतर रूप है" (State is nothing but human writ large)। अरिस्टोटल ने भी राज्य को एक आत्मनिर्भर तथा स्वाभाविक वस्तु (Self sufficing and natural entity) माना है, जिसमें रहकर ही मनुष्य अपने सद्गुणों का अधिकतम विकास कर वह बन सकता है जो उसे बनना चाहिए। (He can become what he is capable of becoming)। राजनीति के अध्ययन के लिए प्लेटो तथा अरिस्टोटल का यह आदर्शवादी ढङ्ग एक नैतिक प्रणाली (Moral approach) थी, जिसका एक बहुत गहरा प्रभाव राजनैतिक विचारकों की आने वाली भावी पीढ़ियों पर स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

प्लेटो और अरिस्टोटल का नैतिक दर्शन अपनी किन्हीं संकीर्णताओं (Narrowness) के कारण सार्वभौमिक रूप से (Universally) स्वीकृत न होकर उनके साथ ही साथ कुछ समय के लिए मर गया। विश्व बन्धुत्व (Universal brotherhood) तथा व्यक्तिवाद (Individualism) की पुकार को लेकर चलने वाले स्टोइक तथा एपीक्यूरियन (Stoids and Epicurean) विचारकों ने "नगर राज्य के दर्शन" (Philosophy of City State) को आगे नहीं पनपने दिया। मध्य युग में (Mediaeval Age) में आकर धर्म तथा चर्च राज्य के अस्तित्व पर छा जाते हैं और धार्मिक तथा राजकीय कार्यक्षेत्र की सीमाओं के विषय में विवाद चलते रहने के कारण यूनानी चिन्तन के सर्वोत्तम तत्व विकास तथा सफलता के लिए अनुकूल वातावरण नहीं पाते जिसके कारण हजारों वर्षों तक यूनानी राजनैतिक दर्शन सुप्त तथा निर्जीव पड़ा रहता है।

पन्द्रहवीं शताब्दी में पुनर्जागरण (Renaissance) तथा धार्मिक सुधार (Religious Reformation) की क्रांतियों के आरम्भ होने पर यूरोप की जनता में यूनानी दर्शन के ज्ञान के प्रति फिर से एक अभिरुचि उत्पन्न हुई। प्लेटो के आदर्शवाद तथा साम्यवाद से प्रभावित होकर (Thomes More) थामस मूर ने अपना 'यूटोपिया" (Utopia) नामक रचना लिखी जो आज तक भी एक उच्चकोटि का आदर्शवादी ग्रन्थ माना जाता है। धार्मिक सुधारों के होने के कारण इसी युग में

व्यक्ति को एक नूतन स्वाधीनता की प्राप्ति हुई, जिसके कारण व्यक्तित्व के सिद्धान्त (Doctrine of Personality) का प्रतिपादन हुआ जो आज के आदर्शवादी दर्शन की आधार शिला है। किंतु राष्ट्रीयता, प्रतियोगिता और व्यापारवाद (Commercialism) के साथ साथ इस युग में पूंजीवाद ने भी अपना सिर ऊंचा करना शुरू किया, जिसके अंतिम परिणाम स्वरूप व्यक्तिवाद अथवा (Laissez Faire) की नीति का जन्म हुआ, और आदर्शवादी परम्परा आगे बढने के बदले पीछे धकेल दी गई। पन्द्रहवीं सोलहवीं शताब्दी का दैवी अधिकार सिद्धान्त (Divine Right Theory) ही इस युग में भी सर्वमान्य सिद्धान्त रहा।

आधुनिक राजनैतिक विचारना में यूनानी दर्शन से स्पष्ट रूप से प्रभावित होने वालों में रूसो (Rousseau) का नाम निश्चय ही उल्लेखनीय है। अपने दार्शनिक अथवा राजनैतिक विचारों के आधारभूत तत्व उसने यूनानी राजदर्शन से ही लिए हैं और उन्हीं की सहायता से लाक (Locke) के व्यक्तिवादी सिद्धान्त का खण्डन कर अपने सामाजिक समझौते के सिद्धान्त में प्रतिष्ठित समष्टिवादी सिद्धान्त (Collectivist Theory) का प्रतिपादन किया है। अपनी युगान्तरकारी रचना "सामाजिक समझौता" (Social Contract) में रूसो ने राज्य की अवतारणा एक नैतिक संघटन (moral entity) के रूप में की है और सार्वजनिक इच्छा (General will) के सिद्धान्त द्वारा यह माना है कि राज्यव्यक्ति के हितों का सच्चा प्रतिनिधि है और वह उसका कभी कोई अहित नहीं करता। प्लेटो की भांति रूसो के मत में भी राज्य के सामान्य जीवन माध्यम द्वारा ही मनुष्य अपनी नैतिकता की परिणति (Absolute perfection of morality) प्राप्त कर सकता है। राज्य से पृथक वह एक बुद्धि पशु है। राज्य उसकी कुवृत्तियों का परिष्कार कर उसे वांछित नैतिकता से सम्पन्न करता है। वह उसकी सहज प्रवृत्ति (Instincts) के स्थान पर न्याय और भूख के स्थान पर विधान की प्रतिष्ठा करता है और वह इस प्रकार उसे रक्त मांस के भौतिक बन्धनों से मुक्त कर नैतिक रूप से स्वाधीन बनाता है। आज से हजारों वर्ष पूर्व यूनानियों द्वारा खोजे गये इस महान तथा शाश्वत (Constant) सत्य को हमारे सामने सुन्दर ढङ्ग से रखने का श्रेय निश्चय ही रूसो के दर्शन को है और इसीलिए वह आधुनिक आदर्शवादियों में सर्व प्रथम गिना जाता है।

अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दियों में रूसो के सामान्य इच्छा सिद्धान्त तथा दर्शन से प्रभावित होने वालों में कान्ट हीगल, ग्रीन, ब्रेडले तथा बोसांक्वेट प्रमुख हैं। रूसो के समकालीन कान्ट तथा हीगल दोनों जर्मन विचारक थे और "जर्मनी के एकीकरण" तथा राष्ट्रीयतावाद आदि कितनी ही अन्य समस्याओं तथा विचारधाराओं से प्रभावित होने से उनका आदर्शवादी सिद्धान्त एक चरमतावादी दर्शन (Absolute Philosophy) बन गया है। राज्य को एक दैवी अवतार (Embodiment of God) मानने वाले इन जर्मन आदर्शवादियों के दर्शन में आदर्शवादी सिद्धान्त की चरम परिणति (Climax) दिखाई देती है। जर्मनी के पश्चात्, इसी आदर्शवादी भाव का

प्रभाव इगलैंड मे भी पहुँचता है। कारलायल (Carlyle), कालरिज (Colridge) आदि साहित्यकारो के अतिरिक्त सुप्रसिद्ध राजनैतिक विचारक ग्रीन, बोसांक्वट (Bosanquet) आदि के हाथो मे पड़कर जर्मन आदर्शवाद बहुत कुछ संशोधित होता है। तत्कालीन इङ्गलैंड की परिस्थितियो तथा चिरकालीन इगलिश परम्पराओ को ध्यान मे रखते हुए ये अग्रेज आदर्शवादी जर्मनी के उग्र आदर्शवाद को एक नम्र तथा उदार (Liberal) विचारधारा म बदल देते हैं जो आदर्शवाद का अग्रेजी रूपान्तर (English Variant) कहा जा सकता है।

राज्य का आदर्शवादी सिद्धान्त (Idealist Philosophy of State)—

१ राज्य एक नैतिक सस्था है (State is a moral organisation)—आदर्शवादी विचारक राज्य को भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाला एक साधन न मानकर उसे एक नैतिक सस्था मानते हैं। अग्रेज विचारक बोसांक्वट (Bosanquet) का कथन है कि "राज्य एक नैतिक विचार का मूर्त रूप है" (State is an embodiment of ethical idea)। जिस प्रकार समाज मे परिवार, मन्दिर आदि कितनी ही अन्य सस्थाय व्यक्ति को नैतिक दृष्टि से पूर्ण बनाने के लिए यत्न करती है, उसी प्रकार राज्य का भी कर्तव्य है कि वह व्यक्ति को सामाजिक जीवन तथा काय व्यापार म एक उपयुक्त स्थान प्रदान करे और उसको इस योग्य बनाये कि वह अपने पद अथवा स्थान के कर्तव्यो को सुचारु रूप से सम्पन्न कर सके। इस बात पर सारे आदर्शवादी अरिस्टोटल के साथ एक मत हैं कि "राज्य सभ्य जीवन की प्रथम आवश्यकता है और केवल देवता अथवा जानवरो को ही राज्य की आवश्यकता नहीं है" (State is the first condition of civilized life—and it is only Gods and animals that do not require state)। उनका मत है कि राज्य की सदस्यता अनैतिक एव मूढ मानव को नैतिक योग्य तथा विवेकशील बनाती है। राज्य का जन्म कहीं बाहर से नहीं हुआ बल्कि 'वह हमारे नैतिक विचार का ही प्रत्यक्षीकरण है (Realisation of moral idea) जो हमारे पूर्ण विकास के लिए परमावश्यक है। बोसांक्वट के शब्दो म "राज्य विश्वव्यापी नैतिक सगठन का एक अश न होकर समस्त नैतिक ससार का अभिभावक है" (State is the guardian of whole moral world and not a factor within an organised moral world)।

२ राज्य एक अनिवार्य सस्था है (State is an indispensible organisation)—आदर्शवादियो की मान्यता है कि नैतिक सस्था होने के कारण राज्य का समाज मे अस्तित्व आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है। अरस्तू के इस सिद्धान्त म उनका दृढ विश्वास है कि "मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है (Man is a social animal)। इसलिए वह समाज अथवा राज्य म पृथक रहकर कभी भी शान्ति प्राप्त नहीं कर सकता। समाज के वातावरण तथा नैतिक जलवायु मे रह कर ही उसकी समस्त वृत्तियो का सहज विकास हो सकता है। हाब्स, लॉक आदि की भाँति आदर्शवादी

विचारक यह नहीं मानते कि समाज के विकास में एक ऐसा राज्यविहीन समय भी रहा होगा, जिसे वे प्राकृतिक दशा (State of Nature) का नाम देते हैं। उनके मतानुसार तो राज्य सभ्य जीवन की पहली अनिवार्यता है और उससे अलग रहने वाला मनुष्य स्वयं अपने में एक विरोध है (Contradiction in himself) राज्य के अभाव में समाज अव्यवस्थित तथा कानूनहीन तो होगा ही, किन्तु इसके साथ-साथ राज्यहीन समुदाय के लोग अत्यन्त चरित्रहीन, जंगली तथा पशुवत आचरण करने वाले भी मिलेंगे, जिनका जीवन के सौन्दर्यात्मक मूल्य (Asthetical values) का कुछ भी ज्ञान नहीं होगा। अतः आदर्शवादियों की यह दृढ़ धारणा है कि एक सभ्य, सुसंस्कृत, नैतिक तथा परिपूर्ण रूप से विकसित समाज की सद्भावना बिना राज्य के एक विचारशून्य कल्पना है।

३ राज्य का अपना उद्देश्य तथा व्यक्तित्व है (State has an end and a personality of its own)—व्यक्तिवाद के विपरीत आदर्शवाद राज्य को अपना एक पृथक तथा स्वतन्त्र व्यक्तित्व तथा अस्तित्व देता है। वह यह मानता है कि राज्य के सदस्यों से पृथक राज्य की अपनी एक इच्छा होती है जो नागरिकों की सामूहिक इच्छा से स्वतन्त्र होते हुए भी, उनसे भिन्न नहीं होती। केवल व्यक्तियों की एकत्रित भीड़ का नाम ही राज्य नहीं है वह उनके हित के लिए होते हुए भी "कुछ अर्थों में उन व्यक्तियों से भिन्न है, जिनको मिला कर उसकी स्थिति बनती है। आदर्शवादियों के मत में राज्य का अपना अतीत इतिहास तथा वर्तमान जीवन है और भावी सम्भावनायें भी स्पष्ट हैं। राज्य का अपना उद्देश्य निश्चित और स्थिर है जिसकी प्राप्ति के लिए वह निरन्तर प्रयत्नशील रहता है। सुप्रसिद्ध आदर्शवादी हीगल के शब्दों में "राज्य एक आत्मचेतनायुक्त नैतिक तत्व तथा आत्मबोधक एवं आत्माभिव्यक्तिकारक व्यक्ति है" (State is a Self Conscious ethical substance and a self knowing and self actualizing individual) जिसका अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व है।

४ व्यक्ति ही समाज की नैतिक इकाई है (Individual is the moral unit of Society)—राज्य का अपना एवं स्वतन्त्र व्यक्तित्व मानते हुए भी, आदर्शवादी दर्शन यह मानता है कि राज्य का अस्तित्व, किसी अलौकिक उद्देश्य की पूर्ति न होकर व्यक्तियों की भलाई करना है। व्यक्ति ही समाज की एक मात्र मूल इकाई (Basic unit) है और राज्य का अस्तित्व इसी व्यक्ति के लिए है। तात्पर्य यह कि राज्य व्यक्ति के लिए जीता है व्यक्ति राज्य के लिए नहीं। राज्य व्यक्ति के नैतिक जीवन का माध्यम है और इसीलिए उसे चाहिए कि वह व्यक्ति को उसके विकास के अधिकतम अवसर प्रदान करें।

५ राज्य मनुष्य की सामान्य इच्छा का प्रतिनिधित्व करता है (State represents the general will of the individual)—रूसो का सामान्य इच्छा का सिद्धान्त, आदर्शवादी दर्शन का केन्द्र बिन्दु है। आदर्शवाद के अनुसार रूसो की सामान्य इच्छा (General will) जो सदैव निःस्वार्थ, स्थायी तथा सोद्देश्यपूर्ण है

राज्य के रूप में साकार अथवा मूर्त रूप ग्रहण करती है। राज्य हमारी अन्तर चेतना अथवा वास्तविक इच्छा की अभिव्यक्ति (Expression of inner consciousness and substantial will) होने के कारण इसी सामान्य इच्छा का प्रतिनिधित्व करता है। दूसरे शब्दों में राज्य केवल वे ही कार्य करता है जो हमारा पवित्र एवं निस्स्वार्थ अन्तःकरण चाहता है अथवा हम सामाजिक प्राणी होने के नाते करने चाहिए। आदर्शवादियों के मत में राज्य कोई बाहरी दबाव का परिणाम नहीं है, वरन् यह तो पूर्ण विवेकशीलता (Perfect rationality) अथवा 'निस्वार्थ' एवं निष्पक्ष तर्कशीलता (Objective reason) का ही पर्यायीकरण है। इस प्रकार आदर्शवाद मानता है कि वैयक्तिक विकास की परिपक्वता तथा परिपूर्णता का ही दूसरा नाम राज्य है।

६ राज्य व्यक्ति का सच्चा मित्र है (State is the true friend of the individual—उपरोक्त मान्यता से यह स्वाभाविक परिणाम निकलता है कि राज्य और व्यक्ति के मध्य कभी किसी प्रकार का विरोध नहीं हो सकता। "राज्य बनाम व्यक्ति" (State versus the Individual) जैसे किसी भी सम्भावित झगड़े को आदर्शवाद एक नितान्त ही भ्रान्त धारणा मानता है। आदर्शवादियों का मत है कि जब राज्य और व्यक्ति दोनों का उद्देश्य "व्यक्ति की पूर्णता" (Perfection of the Individual) है अतः समान है तो अपने आप ही ऐसी आशंकाओं की सम्भावनायें नहीं होनी चाहिए। क्योंकि ऐसी स्थिति में राज्य और व्यक्ति में यदि कोई मतभेद भी होगा, तो वह अस्थाई होगा जो व्यक्ति द्वारा महत्तर हित (Bigger interest) का ध्यान करने पर अपने आप दूर हो जायगा। राज्य की सच्ची जड़ें व्यक्ति के हृदय में हैं और एक असभ्य, बर्बर एवं मूक पशुवत आचरण करने वाले मनुष्य को सुसंस्कृत, मानव एवं दिव्य बनाने वाली यह संस्था, निश्चय ही व्यक्ति की सच्ची मित्र है।

७ राज्य सर्वशक्तिमान है (State is omnipotent)—आदर्शवादी विचारक जिस मूल बिन्दु से अपना दर्शन आरम्भ करते हैं उसका निश्चित तार्किक परिणाम यही निकलता है कि राज्य सर्व शक्तिमान, अजर अमर, परम अधिकारवाली तथा नैतिकता का संरक्षक होना चाहिए (State should be omnipotent, infallible absolute and the guardian of morality) राज्य को सामान्य इच्छा की एक मात्र सच्चा प्रतिनिधि मानकर जर्मन आदर्शवादी राज्य की प्रशंसा करते की तथा उच्च स्थान देने में मर्यादाओं का अतिक्रमण कर गये हैं। वे राज्य तथा राजसत्ता के अनन्य पुजारी हैं और हीगल की दृष्टि में तो "राज्य पृथ्वी पर साक्षात ईश्वर का आगमन है" (March of God on earth) 'वह एक ऐसी दैविक इच्छा है जो दिग्वव्यापी व्यवस्था में वास्तविक रूप से अभिव्यक्त होती है" (It is the divine will unfolding itself to the actual shape and organisation of the world)। इस प्रकार राजसत्ता की चरम सीमा की निरंकुशता तथा निस्सीमता का समर्थन होने के कारण आदर्शवादी राज्य की कल्पना पूर्णतः एक सर्वाधिकारवादी राज्य

(Totalitarian State) की कल्पना की है, जिसके विरुद्ध विद्रोह करने का अधिकार किसी को नहीं हो सकता।

८ राज्य का आधार बल नहीं, इच्छा है (Will not force is the basis of the state)—प्रसिद्ध अंग्रेजी आदर्शवादी टी० एच० ग्रीन का मत है कि राज्य के विशाल ढांचे को स्थिर रखने वाला स्तम्भ, राज्य की दबाव डालने की शक्ति नहीं। राज्य को जीवित रहने के लिए केवल राजकीय बल ही पर्याप्त नहीं है क्योंकि उसका सच्चा और वास्तविक आधार यदि कोई है अथवा हो सकता है तो वह व्यक्ति की आन्तरिक इच्छा का मूल रूप है। आदर्शवादियों का कहना है कि हम राज्य में केवल इसीलिए नहीं रहते कि हम पुलिस तथा न्यायालयों से भय है, बल्कि हमारी राज्य सत्ता की सदस्यता का असली कारण यह है कि हमारी सामान्य इच्छा अथवा वास्तविक इच्छा (Real will) यह चाहती है कि हमें राज्य में रहना चाहिए क्योंकि उसकी सदस्यता हमारे वृहत्तर हित के लिए अनिवार्य है। यह माना कि हमारे राज्य की आज्ञापालन के अनेक कारणों में राज्य का भय भी एक प्रमुख कारण है, किन्तु वह ही एक मात्र कारण नहीं हो सकता। इस मत के समर्थन में निम्नलिखित तर्क दिये जा सकते हैं।

१ यदि बल ही आज्ञाकारिता का आधार है तो, सेना तथा पुलिस आदि में नौकर सशस्त्र व्यक्ति भी राज्य की आज्ञा का क्यों पालन करते हैं।

२ राज्य के नागरिकों में पाये जाने वाली सहयोग, न्याय तथा ईमानदारी आदि की भावनाएं भी कम महत्वपूर्ण नहीं।

३ व्यावहारिक दृष्टि से वर्तमान युग में एक भी राज्य पूर्णतः बल पर आधारित नहीं।

अतः आदर्शवादी स्पेंसर के इस मत का खण्डन करते हैं कि "राज्य दुर्गुण की सन्तान है, जिस पर आज भी पतृक दुर्गुणों के चिह्न अंकित हैं। (State is an offspring of evil bearing upon it the marks of its parentage) क्योंकि रूसो के शब्दों में "परम शक्तिशाली मनुष्य का अधिकार कोई अधिकार नहीं है। बल एक शारीरिक शक्ति है जिसकी आधीनता स्वीकार करना एक आवश्यकता या या अधिक से अधिक बुद्धिमानी का कार्य हो सकता है, इच्छा का नहीं" The right of the strongest is on right at all. Force is a physical power to yield to it is an act of necessity not of will and at the most an act of prudence)।

आदर्शवादियों के मतानुसार मानव व्यक्तित्व के तीन पहलू होते हैं—विचार, अनुभव तथा इच्छा। उनमें से यह अन्तिम पहलू राज्य का सच्चा आधार है। इच्छा के भी दो प्रकार हैं प्रथम असली (Actual) और दूसरा वास्तविक (Real)। असली इच्छा व्यक्ति की स्वार्थपूर्ण भावना के फल स्वरूप जाग्रत होती हैं और समाज की परवाह न करते हुए केवल आत्म कल्याण चाहती है। किन्तु वास्तविक इच्छा (Real

will) मनुष्य की इच्छा का वह निस्वार्थ पक्ष है, जो उसके अन्तःकरण की सच्ची आवाज होती है और इसीलिए सदैव परोपकारी एवं स्थाई होती है। ग्रीन के मतानुसार यदि हम मनुष्य की सारी इच्छाओं को एकत्रित करें तो असली इच्छायें (Actual will) स्वार्थी होने के कारण आपस में टकराकर नष्ट हो जायेंगी और वास्तविक इच्छायें शेष रह जायगी, जिनके सामूहिक रूप का नाम ही साधारण इच्छा है (General will) जिसे दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि "वह हमारे छोटे छोटे अन्तरों का विशाल योग है (General will is the grand total of small difference)। उदाहरणार्थ एक चोर चोरी करता है। उसे चोरी की प्रेरणा देने वाली उसकी असली इच्छा (Actual will) है जो स्वार्थी है। किन्तु वास्तविक इच्छा (Real will) अथवा समाज की सामान्य इच्छा (General will) यह है कि उसे चोरी नहीं करनी चाहिए और ऐसा करने के लिए सजा मिलनी चाहिए। अतः राज्य चोर को सजा देने में समाज की सामान्य इच्छा अथवा उस व्यक्ति की ही व्यक्त करता है। इसी कारण से व्यक्ति राज्य की आज्ञा का पालन करता है और यह साधारण इच्छा ही राज्य का असली आधार है।

९. राज्य की आज्ञा पालन करना ही स्वतन्त्रता है (Liberty consists in the obedience of state)—आदर्शवाद राज्य को सामान्य इच्छा का प्रतिनिधि तथा व्यक्ति की आन्तर चेतना अथवा विवेकशीलता (Rationality) का प्रतीक मानता है इसलिए उसके अनुसार राज्य कभी भी, कोई ऐसा काम नहीं करता जो व्यक्ति के विकास में बाधक हो। राज्य के सारे कानून व्यक्ति को पूर्णता विकास के लिए एक वातावरण की सृजना करते हैं, जिसके अन्तर्गत रह कर ही वह स्वतन्त्रता का उपभोग कर सकता है। इसलिए आदर्शवादियों का मत है कि राज्य के किसी भी कानून की अवज्ञा करना, अपनी ही स्वतन्त्रता के मार्ग में रोड़े अटकाना है। राज्य का प्रत्येक आदेश व्यक्ति को स्वतन्त्र बनाने के लिए है। इसलिए उसका पालन ही स्वतन्त्रता है। आदर्शवादी मानते है कि पूर्ण स्वतन्त्रता स्वाधीनता का निषेध है' (Absolute freedom is the negation of liberty)। स्वतन्त्रता सम्बन्धी आदर्शवादी दृष्टिकोण सकारात्मक (Positivist) है जिस प्रकार कुरूपता का अभाव सुन्दरता नहीं होता उसी प्रकार बन्धनों का अभाव स्वतन्त्रता नहीं है। स्वतन्त्रता एक निश्चित वस्तु (Determinate) है जो "मानवीय चेतना से उद्भासित होती है और अपने उपभोग के लिए कुछ अधिकार चाहती है' (Human conscience postulates liberty Liberty involves rights and rights demand the state)।

१०. राज्य अधिकारों का जन्म दाता है (State is the creator of rights)—आदर्शवादी किन्हीं प्राकृतिक प्राक् राजनैतिक (Pre political) अधिकारों में विश्वास नहीं करते। उनकी परिभाषा के अनुसार "अधिकार कुछ ऐसी बाह्य परिस्थितियाँ है जो मनुष्य के आन्तरिक विकास के लिए आवश्यक है' (Rights are certain outer conditions essential for the innerdevelopment of man)।

मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास के लिए राज्य इन बाह्य परिस्थितियों का निर्माता है अत उसे दूसरे शब्दो मे अधिकारो का न मदाता भी कह सकते हैं।

११ राज्य का कार्य क्षेत्र परिपूर्ण जीवन के मार्ग की बाधाओ को बाधित करना है। (The sphere of state action is to hinder the hinderances of perfect life)—यद्यपि आज के युग म प्रवृत्ति यह है कि राज्य का समाजीकरण हो और समाज का राष्ट्रीयकरण (There should be socialisation of state and nationalisation of society)। आदर्शवादी यह मानते है कि राज्य का सच्चा कर्तव्य "नागरिक के जीवन को सुखमय बना उसे परिपूर्ण बनाना है।" अर्थात् एक व्यक्ति को अपने जीवन का सुखी, सम्पन्न तथा सुन्दर बनाने के लिए मार्ग म जिन-जिन बाधाओ का सामना करना पडता है उन सबको दूर कर व्यक्ति को पूर्ण जीवन की प्राप्ति मे सहायता करना ही राज्य का कार्य होना चाहिए। ग्रीन के अनुसार आत्मानुभव प्राप्त करना (Attainment of self realisation) ही व्यक्ति की पूर्णता (perfection) का चिह्न है। यह आत्मानुभव कुछ परिस्थितियो की विद्यमानता के बिना असम्भव है अत परिपूर्ण जीवन के मार्ग की बाधाओ का दूर करने के साथ साथ कुछ एसी आवश्यक परिस्थितियो का निर्माण यह जीवन सम्भव हो सके बनाये रखने के लिए भी राज्य को प्रयत्नशील होना चाहिए। अग्रेज विचारक मानते है कि नैतिकता एक आन्तरिक वस्तु है जिसे राज्य न लागू करता है और न उसे कभी लागू करना चाहिए। आदर्शवादी राज्य म व्यक्ति एक साथ ही अधिपति है तथा प्रजा भी (Sovereign and subject both) इसलिए यदि राज्य साधारण इच्छा की अवहेलना कर, परिपूर्ण जीवन के मार्ग की बाधाओ को दूर नही करता तो व्यक्ति को अधिकार है कि अपने व्यक्तिगत के मन का अतिक्रमण होने पर उसके विरुद्ध विद्रोह करे। जर्मन दार्शनिक हीगल आदि व्यक्ति को यह अधिकार नहीं देते।

आदर्शवादी विचारक (Idealist Thinkers)—राजनीति शास्त्र के इतिहास म आदर्शवादी विचारको के दो वर्ग हैं, जर्मन तथा दूसरा इगलिश। आदर्शवादी सिद्धान्त के मूलभूत तत्वो पर एक मत होते हुए भी, कुछ राष्ट्रीय तथा सास्कृतिक परम्पराओ के कारण इन दोनो विचार वर्गों को मान्यताये एक दूसरे से काफी भिन्न हैं। भौगोलिक दृष्टि से उन्नीसवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध म बिस्मार्क (Bismarck) के उदय से पूर्व जर्मनी एक विभाजित राज्य था, और राष्ट्रीय चेतना को जाग्रत कर विभिन्न राज्यो के एकीकरण द्वारा एक संयुक्त जर्मन साम्राज्य की स्थापना, वहाँ की वास्तविक समस्या थी। इस प्रश्न ने जर्मन राजनैतिक विचारधारा पर भी अपना उचित प्रभाव डाला, जिसके कारण कुछ विशुद्ध तथा उच्चकोटि के दार्शनिक हीगल (Hegel)। काट (Kant) आदि के हाथो म पहुँच कर जर्मन आदर्शवाद राज्य का एक चरमतावादी सिद्धान्त (Absolute theory)। बन गया जर्मन राज्य को सयुक्त, शक्तिशाली तथा सुदृढ बनाने के लिए, एक तर्क पूर्ण दर्शन का सहारा लेकर जर्मन आदर्शवादियो ने राज्य की सर्व शक्तिशालिता एव सर्वगुणसम्पन्नता पर बल दिया

और सभी क्षेत्रो मे निरकुश बना कर व्यक्ति को एक बहुत ही महत्वहीन तथा मूल्यहीन प्राणी बना दिया।

इङ्गलैंड की सामाजिक तथा सास्कृतिक परिस्थितियाँ जर्मनी से बिलकुल भिन्न थी। उन्नीसवी शताब्दी तक इङ्गलैंड एक सुदृढ साम्राज्य बन चुका था। कितनी ही क्रान्तियो के बाद इङ्गलैंड का राजा केवल एक वैधानिक प्रधान (Constitutional head) के रूप मे स्वीकृत किया जा चुका था। उदारतावाद (Liberalism) अंग्रेजी राजनैतिक विचारधारा मे पहले से ही घर कर चुका था। अत इस पृष्ठभूमि के साथ अंग्रेज आदर्शवादियो के लिए यह सम्भव नहीं था कि वे जर्मन परम्पराओ को ज्यो की त्यो स्वीकार कर लें। दूसरे जर्मन आदर्शवादी व्यावहारिक अनुभव शून्य केवल दार्शनिक (Armchair Philosophers) मात्र थे जिन्हे वस्तुस्थिति का कोई ज्ञान नहीं था। इसके विपरीत अंग्रेज आदर्शवादी ग्रीन, बोसाक्वेट आदि व्यावहारिक राजनीतिज्ञ (Practical Politicians) थे। अत केवल शास्त्रीय दृष्टि से ही आदर्शवाद की विवेचना न करके उन्हे उसे सशोधित (Modified) कर परिस्थितियो के अनुरूप बनाने के साथ उसे एक जीवित दर्शन भी बनाया है। ग्रीन, ब्रेडले तथा बोसाक्वेट का यह परिवर्तित तथा सशोधित आदर्शवाद, जिसके अनुसार राज्य सर्व शक्तिमान न होकर केवल निषेधात्मक कार्य (Negative functions) करता है आदर्शवाद का अंग्रेजी रूपान्तर (English variant) कहा जाता है।

काण्ट (Kant) 1724-1804—इमेनुअल काण्ट जर्मन आदर्शवादी दर्शन का पिता कहा जाता है, फ्रास की राज्यक्रान्ति (French Revolution) तथा अमेरिका के स्वाधीनता युद्ध (War of American Independence) ने इसकी विचारधारा को अत्यधिक प्रभावित किया था। तत्कालीन इङ्गलैंड की स्थिति का भी इसे अच्छा ज्ञान था। मौलिकता (Originality) के नाम पर काण्ट के दर्शन मे नवीनता कुछ भी नहीं है। रूसो तथा माण्टेस्क्यू (Rousseau and Montesquieu) के राजनैतिक दर्शन ही उसके दर्शन के प्रेरणा स्रोत हैं और उनके उधार लिए गये विचारों को ही वह एक नवीनता के साथ क्रमबद्ध (Systematize) करता है। प्रसिद्ध इतिहासकार डनिङ्ग (Dunning) के शब्दों में "राज्य के उद्भव और रूप के सम्बन्ध मे काण्ट का सिद्धान्त ठीक वही है जो रूसो का था, और उसे उन्होंने अपनी शब्दावली मे अपनी तर्क नीति के साथ व्यक्त किया है। इसी प्रकार 'सरकार' का विवेचन करने में वह माण्टेस्क्यू का अनुसरण करता है।" (His doctrine as to the origin and nature of the State is merely Rousseau's put into the garb of Kantian terminology and logic his analysis of Government follows Montesquieu in Like manner)—Dunning काण्ट, के राजनैतिक विचार, उसकी निम्नलिखित अमर रचनाओं मे पाये जाते हैं —

1 Metaphysical first principle to the theory of law (1796)

2 For Perpetual peace (1795)
3 The Principles of Political Right (1793)
4, The natural principle of Political order
5 The Critique of Pure reason (1781)

काट की प्रणाली (Method of Kant)—काट का मत था कि राजनीति का अध्ययन नैतिक दृष्टिकोण से किया जाय। नैतिकता को वह मनुष्य की पूर्णता का माप दण्ड (Yard Stick) मानता है। उसका यह विश्वास था कि नैतिकता से पृथक होकर राजनीति सर्वथा मूल्यहीन है और नैतिक आदेशों (Moral imperatives) के आधार पर ही राजनीति का अध्ययन, पूर्णत उपयोगी तथा सार्थक हो सकता है। राजनीति का नैतिकता के प्रसङ्ग सहित अध्ययन करने की काँटीन प्रणाली कही जाती है जो इस विचारक की आदर्शवादी दर्शन को सबसे बड़ी देन है।

नैतिक इच्छा की स्वाधीनता (Autonomy of the moral will)—यह शब्दावली काट का अपना आविष्कार है। वह रूसो के 'नैतिक इच्छा' अथवा 'साधारण इच्छा के सिद्धान्त में अवश्य विश्वास करके आगे बढ़ता है और यह सिद्धान्त ही उसके समूचे दर्शन की आधारशिला है।' काट का मत है कि सच्चे अर्थों में केवल वही व्यक्ति स्वतन्त्र है जो नैतिक रूप में स्वाधीन है। स्वतन्त्रता का अर्थ वह यथा इच्छा तथा अनियन्त्रित कार्य करने की उच्छृङ्खलता नहीं मानता। उसका मत है कि एक व्यक्ति के उपभोग योग्य सच्ची स्वतन्त्रता वही है 'जो दूसरों के सम्मान तथा सार्वदेशिक कानून द्वारा मर्यादित हो (which is qualified by respect for others and controlled by universal laws)। स्वतन्त्रता को वह अधिकारों के साथ सम्बद्ध मानता है और उसकी मान्यता है कि 'स्वतन्त्रता व्यक्ति की इच्छा का अधिकार है। जिसे आत्मारोपित आदेशात्मक कर्तव्य भी कहा जा सकता है।" (Freedom is a right to will, a self imposed imperative duty)। इस प्रकार अधिकार और स्वतन्त्रता के मध्य एक अन्योन्याश्रित सम्बन्ध स्थापित करता हुआ काट नैतिक इच्छा की स्वाधीनता पर बल देता है। इस पर टिप्पणी करते हुए वागाहन (Vaughan) लिखता है कि 'काँटियन दर्शन में अधिकार का विकास स्वाधीनता में तथा स्वाधीनता का विकास अधिकार में होता हुआ दिखाई देता है।" (Right expands into freedom and freedom expands into right)

• काँट का व्यक्तिवादी दृष्टिकोण (Kant as an Individualist)—आदर्शवादी होने के साथ-साथ काँटियन दर्शन में व्यक्तिवादी तत्व भी स्पष्टत लक्षित होते हैं। हीगल के विपरीत वह बहुत अधिक मात्रा में व्यक्तित्व की गरिमा एवं महत्ता को सम्मान की दृष्टि से देखता है। वस्तुत व्यक्ति की स्वतन्त्र इच्छा ही उसके दर्शन का केन्द्र बिन्दु तथा आरम्भ स्थल है। उसके अनुसार व्यक्ति अपना उद्देश्य स्वयं है और कभी भी किसी अन्य साध्य का साधन नहीं माना जा सकता। यहां पर काट परम्परागत आदर्शवादी दर्शन (Classical idealism) से कुछ असहमति प्रकट करता है

किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि व्यक्ति केवल अपने स्वार्थ साधन तक ही सीमित रहे। व्यक्तिगत स्वार्थ के साथ उसे सार्वजनिक हित का भी ध्यान रखना है। कान्ट के अपने शब्दों में सदिच्छा को छोड़कर संसार में या उससे बाहर ऐसी किसी वस्तु की कल्पना नहीं की जा सकती जिसे बिना किसी रोक के अच्छा कहा जा सके" (Nothing can possibly be conceived in the world or out of it which can be called good without qualification except a good will)।

व्यक्तिगत स्वतन्त्रता (Individual liberty)—कान्ट वैयक्तिक स्वतन्त्रता का प्रेमी और प्रबल समर्थक है। इस स्वतन्त्रता को वह इतनी बहुमूल्य मानता है और इसके प्रति उसका इतना मोह है कि वह इसे राज्य की वेदी पर भी बलिदान करना नहीं चाहता। यद्यपि वह यह मानता है कि सामूहिक अथवा सार्वजनिक हित के सम्मुख वैयक्तिक स्वतन्त्रता को उसके आधीन माना जाना चाहिए किन्तु इतने पर भी हीगल की भाँति वह उसे निर्दयता पूर्वक कुचलने अथवा वौगहान (Vaughan) के मतानुसार "न्याय तथा व्यक्तिगत स्वाधीनता के बीच उसके मस्तिष्क में स्पष्टतः एक मानसिक संघर्ष चल रहा है और इन दोनों में समन्वय स्थापित करने का उसे कोई मार्ग नहीं सूझता। वह इतना अधिक ईमानदार है कि दोनों में से एक को भी बलिदान करने को तैयार नहीं" (It is clearly a conflict in his mind between the claims of justice and the claims of individual freedom He does not see his way fully to reconcile the two He is too honest to sacrifice either)।

सामाजिक समझौता (Social contract)—कान्ट ने राज्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कभी कोई विवेचना नहीं की। फिर सामाजिक समझौते का यह विचार उसने रूसो के दर्शन से इस लिए लिया है, क्योंकि वह मानता है कि न्याय के अनुसार राज्य किसी भी व्यक्ति को कोई भी ऐसा कानून मानने के लिए बाध्य नहीं कर सकता, जिसके लिए उसने पहले सहमति (Consent) न दे दी हो। इस तर्क के आधार पर कान्ट सामाजिक समझौते का जिक्र करता है जिसे वह ऐतिहासिक सत्य न मानकर (Historical truth) केवल एक काल्पनिक वस्तु मानता है। कान्ट का सामाजिक समझौते का सिद्धान्त एक विचार मात्र है जिसके अनुसार 'लोग अपनी जंगली तथा विधानहीन स्वाधीनता को पूर्ण स्वाधीनता की प्रतिष्ठा के लिए छोड़ देते हैं तथा अपने सनातन अधिकारों को समर्पित कर, एक समानतन्त्र के रूप में उन्हें तुरन्त वापस प्राप्त कर लेते हैं" (People abandon their wild lawless freedom in order to substitute a perfect freedom and surrender their eternal freedom in order to receive it immediately back again as members of a Commonwealth)। कान्ट इस समझौता को एक नैतिक समझौता भी मानता है जिसके अनुसार राज्य का निर्माण नहीं होता, बल्कि सामाजिक जीवन की एक कम संगठित स्थिति से अधिक संगठित स्थिति में विकसित होना व्यक्त होता है दूसरे शब्दों में मनुष्य एक विधानहीन स्वाधीनता को छोड़कर एक उच्चतर स्वाधीनता प्राप्त करते हैं।

सम्पत्ति (Property)—सामान्य आदर्शवादियों की भाँति काण्ट भी व्यक्तिगत सम्पत्ति की व्यवस्था को स्वीकार करता है। वह लाक (Locke) के इस सिद्धान्त से भी सहमत नहीं है कि व्यक्ति अपने श्रम के मिश्रण द्वारा सम्पत्ति के विषय में काण्ट के विचार चरम व्यक्तिवादी है और वह यह मानता है कि सम्पत्ति के बिना मनुष्य का पूर्ण विकास नहीं हो सकता क्योंकि सम्पत्ति उसकी 'इच्छा की अभिव्यक्ति मात्र ही तो है।' लेकिन यह मानता हुआ भी वह सम्पत्ति का अधिकार देते समय व्यक्ति पर अपने पड़ौसी के अधिकारों के सम्मान का बन्धन लगाता है, क्योंकि सम्पत्ति का अधिकार वस्तुतः प्राकृतिक न होकर समाज प्रदत्त अधिकार है।

दण्ड (Punishment)—दण्ड का उद्देश्य काण्ट केवल दण्ड मानता है। उसके मत में दण्ड अपराधी को डराने या सुधारने के लिये नहीं दिया जाता बल्कि अपराधी को दण्डित करने का एक मात्र कारण यही है कि समाज में न्याय की महत्ता बनी रहे और नियम तथा मर्यादाओं का भंग करने वाला उसकी सजा मिल जाय। दण्ड से अपराधी में कोई सुधार नहीं होता और न भविष्य में अपराधों की संख्या में ही कोई कमी आती है। इस प्रकार दण्ड सम्बन्धी सुधारवादी (Reformative) तथा निरोधात्मक (Deterrent) दोनों ही सिद्धान्तों को काण्ट अस्वीकार करता है।

अधिकार और कर्तव्य (Rights and duties)—काण्ट के अनुसार अधिकार और नैतिक स्वाधीनता दो पर्यायवाची शब्द (Synonymous terms) हैं। उसके शब्दों में, 'मनुष्य की मानवता के नाते जो एक मात्र मौलिक अधिकार प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त है, वह है स्वाधीनता।" (The only original right belonging to each man by virtue of his humanity is freedom) इसी स्वाधीनता की परिभाषा करते हुए वह एक अन्य स्थान पर लिखता है स्वाधीनता का अर्थ है ऐसा कोई भी कार्य करने की शक्ति, जिससे अपने पड़ौसी पर किसी प्रकार का कोई आघात न पहुँचे" (Freedom consists in the power to do any thing which inflicts no injury on one's own neighbour)। काण्ट अधिकारों को उनके अनुरूप कर्त्तव्यों से संयुक्त देखता है। कर्तव्यों को वह स्वयं के प्रति राज्य के प्रति तथा राज्य के अन्य नागरिकों के प्रति तीन रूपों में विभाजित करता है। एक नैतिक दार्शनिक होने के कारण वह अधिकारों से अधिक कर्त्तव्यों पर बल देता है। उसके मत में कर्त्तव्य एक आत्मारोपित वस्तु (Self imposed) है जिसे स्वीकार करने के लिए मनुष्य की अन्तर चेतना उसे विवश करती है। काण्ट ने विशेष अवस्थाओं में पाये जाने वाले कुछ निश्चित कर्त्तव्यों का निर्देश नहीं किया है अतः आलोचक लोग "उसे एक विचार विहीन धारणा कह कर उसका उपहास करते हैं" (The duties of Kant are a Concept without content)।

राज्य का कार्य क्षेत्र (Sphere of State action)—अपने विचारों में कुछ-कुछ व्यक्तिवादी होने के कारण काण्ट राज्य को अधिक कार्य सौंपना नहीं चाहता। उसके राज्य का कार्य क्षेत्र बहुत संकुचित तथा निषेधात्मक (Negative) है। उसके मत में

राज्य प्रत्यक्ष रूप से "नैतिक स्वाधीनता" के विकास तथा प्रसार के लिए कुछ नहीं कर सकता। यह काम तो अपने आप करना होगा। अतः राज्य का कर्तव्य तो केवल इतना ही है कि वह 'उसकी स्वाधीनता के मार्ग की बाधाओं को बाधित करे (To hinder the hinderance to freedom) तथा ऐसी बाह्य सामाजिक स्थितियों की स्थापना करे जिनके अन्तर्गत नैतिक विकास सम्भव हो सके। इस प्रकार राज्य का अधिकार क्षेत्र न होने के कारण हम बार्कर (Barker) के साथ यह मान सकते हैं कि राज्य के प्रति कान्ट का दृष्टिकोण कुछ असन्तोषपूर्ण तथा व्यक्तिवादी है" (The attitude of Kant towards the State was on the whole, somewhat grudging and individualstic)।

क्रान्ति का अधिकार (Right of Revolution)—क्रान्ति के विषय में कान्ट के विचारों पर फ्रांस की राज्यक्रान्ति का प्रभाव पड़ा था। क्रान्ति से उसे घृणा थी अतः उसने एक ऐसी अपरिवर्तनशीलता का उपदेश दिया है जिसे बर्क भी घृणा की दृष्टि से देखता।" (He preached a Stagnation which even Burke would have regarded excessive)। नैतिक विकास के लिए राज्य की अनिवार्यता होने के कारण उसके विरुद्ध विद्रोह को 'वह धर्म शास्त्र में पवित्रात्मा के प्रति किये जाने वाले पाप के समान मानता है, जिसके लिए इहलोक तथा परलोक दोनों में क्षमा नहीं मिल सकती' (The overthrow of a Sovereign is an immoral and inexpiable sin like the sin against the Holy Ghost spoken of by theologians which can never be forgiven by in this world or in the next)। यहाँ कान्ट जर्मन आज्ञावादी परम्पराओं को मानता है और कहता है कि 'यदि विधान में कोई परिवर्तन करना है तो वह केवल शासक ही कर सकता है, जन क्रान्ति नहीं।"

सरकार के विभेद (Forms of Government)—कान्ट राज्य के तीन भेद करता है। (१) एकतन्त्र (Autocracy), (२) कुलीन तन्त्र (Aristocracy) और, (३) प्रजातन्त्र (Democracy)। इसी प्रकार सरकार, के भी उसने दो प्रकार माने हैं—एक गणतन्त्रीय (Republican) और दूसरी तानाशाही (Despotic)। सरकार के भेद का विभेद कान्ट ने इस आधार पर किये हैं कि सरकार में विधायिका (Legislature) तथा कार्यपालिका (Executive) अलग-अलग हैं या नहीं। वह प्रतिनिधि मूलक सरकार का समर्थक था और जो सरकार ऐसी नहीं हो उसे विवेक शून्य (Irrational) मानता है। किन्तु अनोखी बात यह है कि वह एक राजा को भी जनता का प्रतिनिधि मानता है। प्रो० डुनिंग (Dunnings) के मत में कान्ट के राजतन्त्रवादी (Monarchist) होने का कारण स्पष्ट है और वह यही कि 'प्रशिया के राज्य का एक राज्यकीय विश्वविद्यालय में वयोवृद्ध प्रोफेसर होने के नाते वह राजतन्त्र के प्रति अपनी अन्ध श्रद्धा स्थापन में असमर्थ है।'

विश्व शान्ति (World Peace)—हीगल के विपरीत काण्ट विश्वशान्ति का कट्टर समर्थक था। उसका मत था कि यूरोपीय राज्य व्यवस्था शक्ति सन्तुलन (Balance of Power) के सिद्धान्त पर आधारित है, अतः यह स्थाई शान्ति नहीं रख सकती। उसने बहुत पहले ही एक संघात्मक अन्तर्राष्ट्रीय सत्ता की कल्पना की थी। वह इसे ईश्वरीय इच्छा बतलाता था कि समस्त मानव जाति एक संयुक्त विश्व राज्य के अन्तर्गत सुख और शान्ति से रहे। वह विश्वबन्धुत्व (Universal Brotherhood) के सिद्धान्त का उपासक था और समूचा मानवता का एक इकाई के रूप में दर्शन के कारण जर्मन राष्ट्रीयता उसकी दृष्टि में नगण्य थी।

सभ्यता और संस्कृति (Civilization and Culture)—काण्ट के विचारानुसार सभ्यता एक स्वाभाविक एवं अनायास होने वाला अनजाना विकास है। यह एक बाह्य वस्तु है जबकि संस्कृति एक सतर्क तथा विवेक प्रेरित (Deliberate and Conscious) विकास है। यह अन्तर विषयक है जो मनुष्य की अन्तरात्मा द्वारा उत्पन्न होती है। संस्कृति की प्राप्ति मनुष्य तभी कर सकता है जब यह बहुत दिन तक अपने समाज में रह कर उसके लिए परिश्रम करे।

काण्ट के दर्शन की आलोचना
(Criticism of Kantian Philosophy)

१ काण्टियम दर्शन एक विषयहीन आदर्श है (An ideal without concept)—काण्ट एक शुष्क दार्शनिक है जिसके कारण उसका दर्शन आदर्श होते हुए भी आवश्यकता से अधिक भावात्मक (Abstract) तथा सूक्ष्म है।

२ यह अनुभवात्मक प्रणाली का लाभ नहीं उठाता (He does not make use of the empirical method)—काण्ट का दर्शन एक अनुभवहीन, तर्कवादी, दार्शनिक का दर्शन है। उसने व्यावहारिक राजनीति का न अध्ययन किया और न उससे कोई लाभ ही उठाया। इस कारण उसके दर्शन में एक अव्यावहारिकता (Impracticability) आ गई है जो उसे यथार्थ (Realities) से दूर कर केवल कल्पना अथवा मस्तिष्क का विषय मात्र ही रहने देता है। डेवी (Dewy) के शब्दों में "ऐहिक, उद्देश्यों और परिणामों से पृथक कर्तव्य का उद्देश्य बुद्धि को कुण्ठित करता है" (A gospel of duty separated from empirical purposes and results tends to gag intelligence)।

३ काण्टीय दर्शन आत्मविरोधी है (Kantian Philosophy is Self-Contradictory)—काण्ट अपने दर्शन में स्थान-स्थान पर ऐसी मान्यतायें देते हैं जो परस्पर विरोधी हैं, और जिनमें सामंजस्य स्थापित हो सकना है। उदाहरणार्थ "स्वाधीनता" (Freedom) की परिभाषा देते समय कभी वे व्यक्तिवादी विचारधारा से प्रभावित हो उसे स्वीकार कर लेते हैं तो कभी उसे "उच्चतर शक्तियों के नैतिक विकास के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ" बतलाने लगते हैं। इसी प्रकार सम्पत्ति

दण्ड, राज्य का मायक्षत्र आदि सभी विषयो पर उनके विचार परस्पर टकराते हैं तथा स्पष्ट नही है। वोगाह्न (Vaughan) के शब्दो मे "काट असफल इसीलिए हुए कि राज्य सम्बन्धी दो पृथक धारणाओ के बीच वे चक्कर काटते रहे (Kant failed, because he hovered betwen two entirely different conceptions of the State)

४ राज्य और सस्कृति की परिभाषा भयकर है—अन्य जमन दार्शनिको की भाँति काँट भी राज्य को एक ऐसी सस्था मानता है जिसम जनता की भावना मृत होती है। आगे चलकर हीगल आदि के दशन मे राज्य की यही परिभाषा उसे सवशक्तिमान (Omnipotent) बना देती ह अत यह एक भयकर परिभाषा है।

इस प्रकार काट के दशन पर आलोचको द्वारा उपरोक्त आरोप लगाये जाते हैं। काट जसे तार्किक विचारक के दशन म इस प्रकार की कुछ दुबलताओ का होना स्वाभाविक ही था, क्योकि जिस युग का वह प्रतिनिधित्व करता है वह राजनीति क युग म एक सक्रान्ति माना है (Transitional stage) और डेवी के शब्दो मे "काट सच्चे अर्थों म दशन के प्राचीन युग के अन्त तथा आधुनिक विचारधारा के आरम्भ का एक उल्लेखनीय प्रतीक है (In genuine sense Kant marks the end of the old age in Philosophy and a transition to the distinctively Modern Thought)। रसल (Rusell) आदि विचारक काट के उदय को चाहे "एक दुर्भाग्य" माने (A mean misfortune) किन्तु राजनीति का कोई भी गम्भीर विद्यार्थी यह अस्वीकार नही कर सकता कि वह आदशवाद का एक सच्चा सस्थापक है।

फिश्ते (Fichte) 1762-1814—यह एक व्यावहारिक जमन आदशवादी था (Practical German idealist) काट से प्रभावित होकर इसने अपना दशन विश्व ब धुत्व से आरम्भ किया, किन्तु बाद म नेपोलियन की विजय यात्रा द्वारा उत्पन्न विपत्तियो से यह एक चरम राष्ट्रीयतावादी (Nationalist) बन गया। अन्य जमन आदशवादियों की भाँति यह भी राज्य का व्यक्ति के अह की अभिव्यक्ति मानता है (An expression of Self) यह व्यक्ति का विवेकशील इच्छा (Rational will) रखने का अधिकार देता है। काट तथा ग्रीन की भाँति फिश्ते के राज्य का चित्र सर्वाधिकारवादी (Totalitarian) नही है। सम्पत्ति के प्रश्न पर वह काट के विचारों स आरम्भ करता है और उसे केवल एक अधिकार मात्र न मानकर, नैतिक महत्व भी देता है। उसके शब्दो मे "सम्पत्ति व्यक्ति के अहकार की अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि सार्वभौम इच्छा की अभिव्यक्ति है।' (Property is not an expression of individual egotism but of universal will) अत बिना इस अधिकार के व्यक्ति का नतिक आत्मनिणय का सर्वोच्च अधिकार (The Supreme right of every man to moral self determination) केवल खिलवाड मात्र रह जाता है। अपनी पुस्तक (Closed Commercial State) म फिश्ते न राजकीय समाजवाद

(State Socialism) का भी समर्थन किया है। वह रूसो के सामाजिक सिद्धान्त को अपना आधार बना कर चलता है। एक स्थान पर उसने स्वयं लिखा है "रूसो की भस्म पर शान्ति तथा उसकी स्मृति पर प्रसन्नता स्थापित की जानी चाहिए, क्योंकि उसने अनेकों आत्माओं में ज्वाला सुलगाई है। मेरी व्यवस्था आदि से अन्त तक उसके स्वतन्त्रता सम्बन्धी विचार का ही विश्लेषण है।" (Peace be on Rousseau s ashes and blessings in his memory for he has kindled fire in many souls My system from beginning to end is nothing but an analysis of the concept of freedom)। वह प्राकृतिक अवस्था में विश्वास नहीं करता, किन्तु उसने तीन प्रकार के समझौतों १ सम्पत्ति (Property Contract), २ सुरक्षा समझौता (Protection Contract) तथा संधि समझौता (Union Contract) की उद्भावना की है। राज्य के कार्य क्षेत्र के विषय में उसका मत है कि "राज्य सर्व प्रथम जो जिसका है वह उसे दे, प्रत्येक को पहली बार उसकी सम्पत्ति में प्रतिष्ठित करे तब सबसे पहले उसकी उस स्थिति में रक्षा करे।" (State should give each for the first time his own install for the first time in his property and then first protect him in it)। उसके अनुसार राज्यों की सीमायें भौगोलिक आधार पर होनी चाहिए। न्याय वितरण तथा निर्णय आदि के लिए वह प्रत्येक सरकार का एक ईफरो का संघ (A Board of Ephors) बनाना चाहता है, जिनके द्वारा जनता की सर्व प्रभुत्व सम्पन्न इच्छा (Sovereign popular will) अभिव्यक्त होनी चाहिए। इस प्रकार अपने विचारों को कान्टियन दर्शन का आधार लेकर भी फिश्ते उन्हें एक बिलकुल भिन्न ढंग से प्रस्तुत करता है। डेवी के अनुसार "कान्ट का नैतिक व्यक्तिवाद, फिश्ते में आकर आचारात्मक समाजवाद बन जाता है।" (Moral Individualism of Kant becomes ethical Socialism in case of Fichte)। फिश्ते के दर्शन में रूसो की छाप स्पष्ट रूप से अंकित देख कर प्रो० केटलिन टीका करते हुए लिखते हैं कि "फिश्ते एक प्रकार से रूसो का ही अधिक मानवीय, विश्ववादी, उदार, अराजकतावादी, सामूहिक राष्ट्रीयतावादी तथा राष्ट्रीय समाजवादी जर्मन संस्करण था।" (The German Rousseau—*humanized Cosmopolitan, liberal, anarchist,* Collectivist nationalist and national Socialist)

हीगल (Hegel) 1770—1831—जर्मन आदर्शवादियों में राजनीतिक विचारधारा को सबसे अधिक प्रभावित करने वालों में हीगल का नाम सर्व प्रथम आता है। वह एक यथार्थवादी दार्शनिक (Realist Philosopher) था। उसने विश्व इतिहास का अध्ययन एक बिलकुल नवीन ढंग से किया है और उसकी चरम परिणति (Culmination) होहनजोलन प्रशिया (Hohenzollern Prussia) में मानी है। वह एक उच्चकोटि का राष्ट्रीयतावादी था, और अपने समय में प्रचलित जर्मन एकीकरण (Unification movement) के प्रश्न से इतना अधिक प्रभावित हुआ

था कि राज्य को ईश्वर का आगमन अथवा दैवी प्रतिरूप तक मान बैठा है। निःसन्देह हीगल के युग की वास्तविक राजनतिक समस्या एक सुदृढ एवं सर्वशक्तिमान राज्य की स्थापना थी, और उसी के समर्थन के लिए वह अपने राजनीतिक दर्शन का उपयोग करता है। इस प्रकार हीगल अपने युग का दार्शनिक प्रतिनिधि है और जर्मन राज्य की प्रतिष्ठित महत्ता तथा सर्वशक्तिमानता को सर्वत्र प्रतिष्ठित करने के लिए वह एक दार्शनिक तत्व का आधार लेता है जिसके अनुसार राज्य एक रहस्यमय उच्च शिखर पर पहुच जाता है। गम्भीरता पूर्वक अध्ययन करने पर हीगल का आदर्शवाद, राष्ट्रीयतावाद की ही एक अभिव्यक्ति है, जो आगे जाकर हिटलर (Hitler) तथा मुसोलिनी (Mussolini) के हाथो मे नाजीवाद (Nazism) तथा फासीवाद (Facism) के उदय का कारण बनी। तर्क के आधार पर अनेको लोगो का दावा है कि प्रथम तथा द्वितीय विश्वयुद्धो का बहुत कुछ उत्तरदायित्व हीगल तथा उसके आदर्शवाद को है।

हीगल की प्रसिद्ध रचनाये निम्नलिखित है —

1 *The Phenomenology of Spirit* (1807)
2 *Logic* (1812 16)
3 The Philosophy of Right (1821)
4 *Philosophy of History* (1823 30)

प्रो० सबाइन (Sabine) का मत है कि "हीगल की राजनतिक विचारधारा का महत्व दो बिन्दुओ पर केन्द्रित है और वे है द्वन्द्वात्मक प्रणाली (Dialectical method) और राष्ट्रीय राज्य का आदर्श स्वरूप।"

डायलक्टिक प्रणाली (*The dialectic method*)—हीगल के मतानुसार मानव सभ्यता का विकास कभी भी एक सीधी रेखा मे नही होता। जिस प्रकार से एक प्रचण्ड तूफान से थपेडे खाता हुआ एक जहाज अपना मार्ग बनाता है इसी प्रकार से सभ्यता भी अनेको टेढे मेढे रास्तो मे से होती हुई आगे बढती है। हीगल मानता है कि यह विश्व एक स्थाई वस्तु (Static) न होकर प्रगतिशील (Dynamic) क्रिया है अत उसका अध्ययन सदैव एक विकासवादी (Evolutionary) दृष्टिकोण से किया जाना चाहिए। उसकी धारणा है कि विश्व के समस्त पदार्थों का विकास अविकसित तथा एकतापूर्ण स्थिति की ओर होता है, जिसके कारण विरोधी वस्तुओ (Contradictory forms) का जन्म हो जाता है और फिर अन्त मे विभिन्नता के बीच एकता (Unity in diversity) की स्थापना होती है। विकासवाद की इस क्रिया मे निम्न कोटि की वस्तुये, उच्च कोटि की वस्तुओ मे विकसित होकर पूर्णता प्राप्त करती है और उनकी निम्नता नष्ट होकर उच्चता ग्रहण कर लेती है। विकसित होने के पश्चात् कोई भी वस्तु वह नही रहती जो वह पहले थी, वह कुछ आगे बढ जाती है। विकासवादी इसी क्रिया को हीगल ने "डायलक्टिक" (Dialectic) का नाम दिया है।

यूनानी लोगों ने अपने विचार विमर्श में सर्वप्रथम इस डायलैक्टिक प्रणाली को अपनाया था। इस प्रणाली से आपसी कथोपकथन, तर्क और प्रतितर्क द्वारा वे सत्य को ही प्रमाणित नहीं करते थे बल्कि नई सत्य की खोज भी करते थे। हीगल डायलक्टिक की इस प्रणाली को विचारों पर भी लागू करता है। उसके अनुसार समस्त डायलैक्टिक प्रणाली इस प्रकार है। "सर्व प्रथम प्रत्येक वस्तु का एक मौलिक रूप (Thesis) होता है। विकासवाद के अनुसार यह बढ़ती है और उसका विकसित रूप कालांतर में इसके मौलिक रूप का बिलकुल विपरीत हो जाता है जिसे विपरीत रूप (Antithesis) कहते हैं। ज्यों ज्यों समय आगे बढ़ता है विकासवाद सिद्धान्त के अनुसार ये मौलिक रूप तथा विपरीत रूप आपस में मिलते है और इन दोनों के मेल से वस्तु का नया सामञ्जस्य (Synthesis) बन जाता है। यह सामञ्जस्यपूर्ण रूप थोड़े दिनों में फिर मौलिक रूप बन जाता है और फिर यही क्रिया आवृत होने लगती है।" उदाहरणार्थ के लिए यह विकासवादी क्रिया एक अण्डे (Egg) में देखी जा सकती है। अण्डे में एक जीव होता है यह जीव (Thesis) मौलिक रूप है। धीरे धीरे गर्भाधान (Fertilization) के पश्चात इसके निषेधात्मक गुण (Negative property) नष्ट हो जाते हैं। यह उसका विपरीत (Antithesis) है, किन्तु इन गुणों के नष्ट हो जाने से अण्डे के जीव की मृत्यु नहीं होती बल्कि एक नये प्रकार से जीव का जन्म होता है, जो पहले दोनों रूप से भिन्न है। इस रूप को सामञ्जस्यपूर्ण रूप (Synthesis) कहा जायगा। डायलैक्टिक की इस प्रणाली द्वारा ही हीगल समाज तथा राज्य के विकास का अध्ययन करता है। वह मानता है कि यूनानी राज्य Thesis थे, धर्म राज्य उसके Anti thesis इसलिए राष्ट्रीय राज्य उनका एक Synthesis होगा। कला (Art), धर्म (Religion) तथा दर्शन (Philosophy) को भी वह इसी प्रकार मूल रूप, विपरीत रूप तथा सामञ्जस्यपूर्ण रूप मानता है। इन तीनों अवस्थाओं का एक दूसरे से सम्बद्ध होने के कारण, तथा बाह्य परिस्थितियों द्वारा प्रभावित होने के कारण कुछ आलोचक लोग इस प्रणाली को सामाजिक विज्ञानों (Social sciences) के क्षेत्र में अनुपयुक्त बतलाते हैं। किन्तु दार्शनिक दृष्टि से देखने पर यह प्रणाली विकासवादी अध्ययन के लिये बड़ी ठोस तथा सही प्रतीत होती है। कार्ल मार्क्स ने अपनी इतिहास की भौतिकवादी परिभाषा देते समय हीगल की इसी प्रणाली का अनुसरण किया है।

राज्य (State)—हीगल के मत में 'इतिहास में राज्य ही व्यक्ति है और जीवन चरित्र में जो स्थान व्यक्ति का है इतिहास में वही स्थान राज्य का है (The state is to history what a given individual is to biography)। वह राज्य को परिवार और समाज की सुरक्षा तथा पूर्णता के लिए अनिवार्य मानता है। उसकी धारणा है कि, "राज्य हमारी स्वाधीनता का प्रत्यक्षीकरण है हमारी विवेकशीलता का मूर्त रूप है तथा हमारे परिपूर्ण ज्ञान की साकार प्रतिमा है (State is the actualization of freedom an embodiment of reason and an image of perfect rationality)। वह हमारी, सच्ची निष्पक्ष तथा निस्स्वार्थ सामान्य इच्छा का

प्रतिनिधित्व करता है इस कारण व्यक्ति की सच्ची स्वतन्त्रता उसके आज्ञा पालन में ही है। वह राज्य को एक नैतिक संस्था होने के नाते अधिकारों का जन्मदाता भी मानता है। उसके राज्य का एक निश्चित एवं चरम उद्देश्य है और व्यक्ति राज्य के लिए जीता है अतः वह राज्य के विरुद्ध कोई अधिकार नहीं माँग सकता। राज्य एक स्थाई संस्था है जो अपने नैतिक गुण के कारण व्यक्तियों के भाग्य की सच्ची निर्णायिका है। राज्य सम्बन्धी हीगल के विचारों से प्रो० जोड (Joad) निम्नलिखित निष्कर्ष निकालते हैं —

१ राज्य कभी भी अप्रतिनिधित्व रूप से कार्य नहीं करता (State never acts unrepresentatively) अर्थात यदि पुलिस किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करती है और न्यायाधीश उसे सजा देता है तो इसका कारण यह है कि उस व्यक्ति की असली इच्छा यही है कि उसे सजा मिले।

२ व्यक्ति एक एकाकी इकाई नहीं है (Individual is not a Solitary unit) अर्थात वह जिस समाज में रहता है उसका एक अविभाज्य अंग है।

३ राज्य अपने नागरिकों की सामाजिक नैतिकता को अपने में समेटे हुए है तथा उनका प्रतिनिधित्व करता है (State contains within itself and represents *the social morality of its citizens*) अर्थात राज्य नैतिकता से ऊपर है।

इस प्रकार हीगल के राज्य की कल्पना एक निरकुश, सर्व शक्तिमान चरमता वादी तथा अभ्रान्त राज्य की कल्पना है (*Conception of a despotic omnipotent*, absolute and infallable state) जिसे उसने "पृथ्वी पर ईश्वर का आगमन" (March of God on earth) कहा है।

स्वाधीनता (Freedom)—हीगल स्वाधीनता को व्यक्ति के जीवन का तथ्य (Essence of life) मानता है। उसके अपने शब्दों में "स्वाधीनता मनुष्य का एक विशिष्ट गुण है, जिसे अस्वीकार करना उसकी मनुष्यता को अस्वीकार करना है। इसलिए स्वाधीन न होने का अर्थ है अपने अधिकारों और कर्तव्यों को भी तिलांजलि दे देना क्योंकि राज्य के अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु स्वाधीनता का प्रत्यक्षीकरण नहीं हो सकती' (*Freedom is the distinct quality of man ... To renounce* one's freedom is to renounce one's humanity, not to be free is therefore a renounciation of one s human rights and even of one's duties. Nothing short of a state is the actualization of freedom)। हीगल चरम व्यक्तिवाद का घोर विरोधी था, अतः उसके अनुसार स्वाधीनता की प्राप्ति तथा उसका उपभोग राष्ट्रीय राज्य में ही सम्भव था। इसीलिए एक अच्छे नागरिक द्वारा राज्य के कानून का पालन किया जाना उसने उसका एक पुनीत कर्तव्य माना है। इतिहासकार सबाइन (Sabine) के मत में "हीगल का मस्तिष्क जर्मनी के एकीकरण के प्रश्न से चिन्तित था, अतः उसने व्यक्ति को राज्य में विलीन करते समय

कुछ भी हिचकिचाहट नहीं दिखलाई। वह राज्य की वेदी पर व्यक्ति का बलिदान चढा देता है" (Hegel's mind was haunted by the question of German unification Hence he did not hesitate to merge the individual into the state He even sacrificed the individual at the altar of the state)।

युद्ध और अन्तर्राष्ट्रीयतावाद (War And Internationalism)—हीगल राष्ट्रीय राज्य (Nation State) का प्रशसक ही नहीं पुजारी था। उसके इस राज्य की कल्पना बडी व्यापक थी। अन्तर्राष्ट्रीयता म उसका विश्वास बिलकुल नहीं था और इसीलिए वह युद्ध को भी एक अनिवार्यता मानता है। उसके अनुसार सघर्ष (Struggle) राष्ट्रीयता राज्य का एक आवश्यक गुण है जो दैवी सिद्धान्त (Divine purpose) के अनुरूप भी है। वह मानता है कि 'युद्ध व्यक्ति के स्वार्थी अह का नाश करता है और इस प्रकार मानव जाति को पतन के मार्ग से बचाकर क्रियाशीलता का सचार करता है (War destroys the selfish egotism of the individual and preserves mankind from corruption and engenders mobility)। युद्ध की आवश्यकता के विषय मे हीगल बडे अद्भुत तर्क देता है। उसकी मान्यता है कि एक समय मे केवल एक ही जाति मे परमात्मा की पूर्ण अभिव्यक्ति हो सकती है और इसलिये युद्ध मे किसी राज्य की सफलता 'दैवी योजना का व्यग (Irony of divine idea) को व्यक्त करती है। तात्पर्य यह है कि विजयी राष्ट्र ईश्वर का कृपापात्र सिद्ध हो जाता है। दूसरे युद्ध की स्थिति राज्य की सर्व शक्तिशाली (Omnipotence) की भी द्योतक है। हीगल राष्ट्रीय होने के कारण किसी अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था तथा कानून का समर्थक नहीं है। अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों को वह केवल कुछ, परम्परा मात्र मानता है, जिसे कोई भी सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न राज्य चाहे जब तक माने अथवा जब उचित समझे भग भी कर सकता है।

दण्ड तथा सम्पत्ति (Punishment and Property)—काट की भाँति हीगल भी दण्ड के प्रश्न को एक नैतिक दृष्टि से देखता है। वह मानता है कि किसी भी अधिकार के भग होने पर राज्य का कर्तव्य हो जाता है कि वह अपराधी को दण्डित करे। सार्वजनिक सुरक्षा (Public Security) उसकी दृष्टि में दण्ड का उद्देश्य नहीं है। दण्ड का अर्थ केवल यही है कि जिस अधिकार की अवज्ञा द्वारा जिस व्यक्ति के प्रति तथा उसके द्वारा समाज एव न्यायविधान के प्रति जो अत्याचार हुआ है उसका बदला (माप) लिया जा सके। दण्ड, समाज तथा अपराधी दोनो का समान अधिकार है जिसके द्वारा उन दोनो को अपना उचित न्याय मिल जाता है। सम्पत्ति के विषय म हीगल की मान्यता थी कि वह व्यक्तित्व की पूर्णता के लिए आवश्यक है क्योकि उसके द्वारा ही व्यक्ति की इच्छा अपने को क्रियाशील रख सकती है।

विधान और इतिहास (Constitution and History)—हीगल के अनुसार राज्य की तीन शक्तियाँ हैं—१ व्यवस्थापिका सम्बन्धी (Legislative) २ प्रशासनिक (Administrative), तथा राजतान्त्रिक (Monarchic)। इनमें वह राजतान्त्रिक शक्ति को प्रमुख मानता है क्योंकि यह राज्य में एकता उत्पन्न करती है। वह मानता है कि एक वैधानिक राजतन्त्र (Constitutional Monarchy) में ही परिपूर्ण विवेकशीलता (Perfect rationality) उपलब्ध हो सकती है। क्योंकि इसमें राजतन्त्र, कुलीनतन्त्र (Aristocracy) तथा प्रजातन्त्र तीनों के तत्त्व पाये जाते हैं। वह चाहता है कि राज सत्ता (Sovereignty) जन साधारण को न दी जाकर राजा के हाथों में होनी चाहिए। विधायिका (Legislature) में बाहे जनता का प्रतिनिधित्व हो और उसके बनाये गये सिद्धान्तों का कार्यपालिका (Executive) देश में लागू करे किन्तु उन्हें अन्तिम रूप देने का अधिकार राजा को होना चाहिए जिससे देश में एकता बनी रहे।

इतिहास की परिभाषा देता हुआ हीगल लिखता है, "इतिहास मानवात्मा के आत्मशोध के लिए की गई एक तीर्थयात्रा है" (History is the pilgrimage of the spirit of man in search of itself)। उसकी दृष्टि में इतिहास का मार्ग मानवीय विवेक द्वारा प्रदर्शित होता रहता है और 'विश्व इतिहास विश्व का निर्णय है" (World history is the world judgment)। निर्णय का अर्थ है एक जाति की दूसरी पर विजय, जो विश्व चेतना के एक जाति से दूसरी जाति में स्थानान्तरित होने का प्रमाण है। हीगल ने विश्व इतिहास को स्वाधीनता की अनुभूति के आधार पर चार अवस्थाओं में बाँटा है—१ पौर्वात्य (Orientals), इनमें यहाँ केवल एक निरंकुश शासक स्वाधीन होता था, २ यूनानी (Greeks), ३ रोमन (Romans) इन दोनों में यहाँ कुछ लोग स्वाधीन होते थे ४ जर्मन (Germans)। हीगल मानता है कि जर्मनी में सभी लोग स्वाधीन हैं। उसके मत में इतिहास की अपनी समस्याएँ तथा अपने समाधान होते हैं। बुद्धिमान लोग न इतिहास का निर्माण करते हैं और न निर्देशन, बल्कि अवश्यम्भावी घटनाओं के तर्क के सम्मुख उन्हें भी झुकना पड़ता है। वे केवल ये समझने का प्रयास करते हैं कि कौनसी व्यवस्था विनाश-मार्ग है। हीगल के शब्दों में, "इतिहास बुद्धिमानों का पथ प्रदर्शन करता है तथा मूर्खों को घसीटता है" (History leads the wise men and drags the fools)।

इच्छा (Will)—इच्छा सिद्धान्त हीगल ने भी रूसो से ग्रहण किया है। वह कांट की भाँति मनुष्य की इच्छा को स्वाधीन मानता है जो कि शुद्ध सूक्ष्म ज्ञान का एक पक्ष होने के कारण "शाश्वत, सर्वव्यापी, स्वयं चेतन तथा आत्म निर्णायक है" (which is eternal, universal Self conscious and Self determining)। यही स्वतन्त्र तथा परिपूर्ण 'इच्छा' नाना प्रकार के विचारों में अभिव्यक्त होती है, जिनमें कानून, या तरिक नैतिकता तथा राष्ट्रीयता उत्पन्न करने वाली संस्थायें आदि प्रमुख हैं।

परिवार (Family)—हीगल के मतानुसार परिवार, समाज तथा राज्य का एक आवश्यक तत्व है। यह हमारे एक मानसिक तत्व की ही अभिव्यक्ति है। इसका एक विवेकपूर्ण उद्देश्य है। हीगल की दृष्टि में यह किसी भावना अथवा समझौते पर आधारित नहीं है बल्कि एक आचारात्मक तथा भावजनित इकाई है जो पति पत्नी के मध्य एक नैतिक सम्बन्ध स्थापित करती है। हीगल मानता है कि एक पतिव्रत पर आधारित आधुनिक परिवार प्राचीन बहु विवाह का पालन करने वाले परिवारों से अधिक सभ्य तथा उच्च है।

हीगल के दर्शन की आलोचना
(Criticism of Hegel's Philosophy)

१ यह एक सर्वशक्तिमान तथा निरकुश राज्य का पुजारी है (Hegel [illegible] a case for an omnipotent and absolute state)—[illegible] राष्ट्रीयतावादी दार्शनिक है जो व्यक्ति तथा वैयक्तिक स्वतन्त्रता को [illegible] मानकर राज्य की वेदी पर बलिदान कर देता है और ईश्वर [illegible] है। उसका यह सर्वाधिकारवादी राज्य (Totalitarian state) [illegible] नहीं खाता। ब्राउन (Brown) के शब्दों में व्यावहारिक दृष्टि से [illegible] का अर्थ है" आत्मिक दासता, दैहिक आधीनता, अनिवार्य [illegible] के लिए युद्ध, और शान्तिकाल में मनुष्यों द्वारा [illegible] काल में मोलोक की उपासना' (Hegelian state [illegible] servitude, bodily conscription wars for [illegible] and [illegible] devotion of human beings to Leviathan [illegible])।

२ विश्व इतिहास तथा दैवी शक्ति के [illegible] गई ये दोनों व्याख्याये किसी एक विशिष्ट [illegible]। [illegible] ये निष्पक्ष तथा एक वास्तविक [illegible] बढ़ाना था।

५ हीगल के युद्ध सम्बन्धी विचार भयंकर हैं (Hegelian ideas about war are frought with disasterous consequences)—हीगल ने युद्ध को मानव सभ्यता के विकास तथा राज्य की सर्वशक्तिशालिता का परिचय देने के लिए आवश्यक माना है। अन्तर्राष्ट्रीय कानून की उपेक्षा का उपदेश देने के कारण उसका दर्शन मृत्यु विनाश तथा संहार का भयंकर उपदेश देता है।

६ हीगल का राज्य दर्शन आवश्यकता से अधिक बुद्धिवादी है (Hegelian philosophy of State is too much philosophical and intellectual)—हीगल एक शुष्क दार्शनिक है और अनुभव शून्य कोरे दार्शनिक होने के कारण वे भ्रम से ये मान बैठे हैं कि "विवेकशीलता ही वास्तविकता है और वास्तविकता सदैव विवेकपूर्ण होती है" (Rational is real and real is rational)। अति दार्शनिकता के कारण उनका यह दर्शन केवल कल्पना मात्र है। वौगहन (Vaughan) के अनुसार उनकी इस दार्शनिकता का मूल कारण "स्थापित व्यवस्था के प्रति एक अन्धविश्वास पूर्ण सम्मान तथा उसे विशृङ्खलित अथवा संशोधित करने वाली प्रत्येक धमकी के प्रति अविश्वास करना था। (A Suprstitious reverence for the established order and an urdue distrust of all that threatens to modify or disturb it)

७ हीगल का आदर्शवाद क्रूरतावाद या पशुवाद है (Hegelianism is brutalism or Animalism)—तत्कालीन अवस्था की प्रशंसा करने के आवेश में हीगल कुछ इतनी अधिक सीमायें लांघ गया प्रतीत होता है कि आलोचकों के मत मे "वह बर्बरता को इसीलिए दैवी रूप दे देता है क्योंकि वह सफल हो गई है"। (Hegel defies successful brutality because it has succeeded

हीगल के दर्शन का मूल्यांकन (Evaluation of Hegelian Philosophy)—उपरोक्त आलोचना तथा दुर्बलताओं के होते हुए भी आदर्शवाद के समर्थक हीगल की युग परिवर्तनकारी विचारधारा को निम्नलिखित मूल्यवान विशेषताओं के कारण महत्वपूर्ण मानते हैं।

१ राजनीति तथा नीति शास्त्र के पारस्परिक सम्बन्ध को समझने वालों में हीगल सबसे अधिक स्पष्ट तथा सूक्ष्म है (Grasped the connection between morals and politics)।

२ 'राज्य व्यक्ति की उन्नति के लिए अनिवार्य है तथा व्यक्ति राज्य का एक अविभाज्य अंग है," इस सिद्धान्त की प्रतिष्ठा द्वारा हीगल ने राजनीति शास्त्र को एक महत्वपूर्ण योग दिया है।

३ ऐतिहासिक प्रणाली को भली भाँति समझने वाला वह पहला विचारक है।

४ व्यक्ति की चेतना पर समाज की प्रेरणामूलक बुद्धि का जो ऋण है (Debt of the individual Conscience to instinctive sense of the

Community) उसको समझने तथा स्वीकार करने वालो मे उसका नाम उल्लेखनीय है।

॥ विवेक द्वारा प्रगति (Progress by reason) हीगल के दर्शन का एक सत्य सिद्धान्त है।

हीगल और काट (Hegel And Kant)—जर्मन आदर्शवाद के संस्थापक तथा आदि प्रवर्तक होने के कारण काट तथा हीगल दोनो की विचारधाराओ के मूल तत्व समान हैं किन्तु कुछ सामयिक परिस्थितिया तथा मानसिक चिन्तन की धाराओ मे अन्तर होने के कारण उनके राजनैतिक दर्शनो मे निम्नलिखित भेद दृष्टव्य हैं —

१ आत्मिक विचार (Spiritual idea) यद्यपि काट और हीगल दोनो के विचारो की आधारभूमि है, किन्तु फिर भी उनकी प्रणालियो (Methods) मे अन्तर है। काट ने निगमनात्मक प्रणाली (Deductive method) अपनायी, किन्तु हीगल ने विकासवादी (Evolutionary)। बोसाङ्क के शब्दो मे "व्याख्यानात्मक आलोचना काट के दर्शन का मुख्य विचार है और हीगल की सफलता का केन्द्र बिन्दु है विकास।" (Analytical criticism is the dominent idea of Kants, the keynote of Hegel s achievement is Evolution)

२ "काट ने अपना चिन्तन व्यक्तिगत चेतना से आरम्भ किया था, लेकिन हीगल ने बाह्य ज्ञान और सगठित सस्थाओ की दुनियाँ से।" (Kant started from the individual consciousness Hegel from the world of externalized knowledge and of organised institutions)—Vaughan

३ काट व्यक्तिवादी था किन्तु हीगल व्यक्तिवाद का घोरतम विरोधी।

४ काट विश्वबन्धुत्व तथा विश्वशान्ति का समर्थक था और एक अन्तर्राष्ट्रीय सस्था की स्थापना चाहता था, किन्तु हीगल राष्ट्रीय राज्य का अन्धा पुजारी है और उसे निर्बाध रखने के कारण किसी अन्तर्राष्ट्रीय सस्था अथवा कानून की व्यवस्था नही चाहता।

५ काट राज्य का आधार एक काल्पनिक समझौता मानता है किन्तु हीगल राज्य को एक स्वाभाविक आवश्यकता मानकर आगे बढता है।

इस प्रकार रूसो तथा यूनानी दार्शनिको से प्रेरणा लेने पर भी अपने सिद्धान्तो की विस्तृत विवेचना मे इन दोनो दार्शनिको मे ये उपरोक्त अन्तर स्पष्ट रूप से दिखाई देते है।

जर्मन आदर्शवाद के प्रभाव (Influences of German idealism)—प्रो० डनिंग (Dunning) जर्मन आदर्शवादियो की विचारधाराओ से निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले हैं। इन दार्शनिको ने—

१ यह बतलाया कि राजनीति शास्त्र की महान् सत्यो का उद्घाटन तथा खोज अनुभव के बदले शुद्ध चिन्तन (Pure Speculation) द्वारा ही सम्भव हो सकता है।

२ तत्कालीन व्यवस्थाओं को रहस्यात्मक दार्शनिक नाम तथा रूप दिया है।

३ राजनीति में इच्छा सिद्धांत (Theory of will) का विस्तार से विवेचन किया है।

४ सामाजिक समझौते के सिद्धान्त को भी दार्शनिक रूप में प्रस्तुत किया है (हीगल ने नहीं)।

५ राज्य की असीम महत्ता तथा शक्तिशालिता का निर्भीक होकर समर्थन किया है।

६ आदर्शवाद की ओट में राष्ट्रीयतावाद का प्रचार किया है।

टी० एच० ग्रीन (T H Green) 1836 1882—यह एक उदार अग्रज आदर्शवादी था। दार्शनिक होने के साथ-साथ यह अपने समकालीन समाज की समस्याओं में बड़ी रुचि रखता था और उनका एक व्यवहारिक ज्ञान भी उस कम न था। आक्सफोर्ड में नैतिक दर्शन का प्रोफेसर होते हुए भी उसने व्यावहारिक राजनीति (Practical politics) में सदैव सक्रिय भाग लिया था। उसकी प्रसिद्ध रचनायें निम्नलिखित हैं —

1 Principles of Political obligation—(1879)

2 Prolegomena of Ethics (1883)

3 Lectures on Liberal Legislation and freedom of Contract

4 Lectures on English Revolution

विचार स्रोत (Sources)—ग्रीन के दर्शन के प्रेरणा स्रोत अनेक दार्शनिकों की विचारधाराएं हैं। आदर्शवादी विचारक होने के नाते अपने पूर्वजों द्वारा निर्दिष्ट की गई आदर्शवादी परम्पराओं को वह अपने दर्शन की आधारशिला मानकर आगे बढ़ता है और उन्हें यथासम्भव परिस्थिति अनुकूल संशोधित कर क्रमबद्ध तथा नियमित (Coherent and Consistent) विचार दर्शन में गूंथता है। अपने दर्शन के मूल तत्वों (Fundamentels) के लिए अपने पूर्वज प्लेटो, अरस्तु, रूसो, कान्ट तथा हीगल आदि का वह पर्याप्त रूप में ऋणी है किन्तु उनका अन्ध अनुसरणकर्ता न होकर यह एक नई विचार प्रणाली (New School of Idealist Political Thought) (आदर्शवादी राजनीतिक विचारधारा) की स्थापना करता है।

प्लेटो और अरस्तु (Plato and Aristotle)—इन दो महान यूनानी विचारकों से ग्रीन ने यह स्वीकार किया है कि राज्य व्यक्ति के अस्तित्व तथा जीवन के लिए स्वाभाविक तथा आवश्यक (Natural and necessary) है। उन दोनों की भांति ग्रीन भी राज्य का उद्देश्य यही मानता है कि वह व्यक्ति के परिपूर्ण विकास में सहायक हो और अपने समस्त नागरिकों का समान तथा शुद्ध हित (Common and pure good) का ध्यान करा कर उन्हें आत्म सन्तोष (Self Satisfaction) एवं आत्मानुभव (Self realisation) प्रदान करे। प्लेटो तथा अरस्तु की विचारधाराओं में से एक

व्यावहारिक विचारक होने के कारण वह अरस्तु से अधिक प्रभावित है। किन्तु ग्रीन दार्शनिकों के इस विचार से कि व्यक्ति राज्य का अभिन्न अंग है सहमत होते हुए भी, ग्रीन उनके इस कुलीनतावाद को स्वीकार नहीं करता कि आत्मानुभव कुछ ही व्यक्तियों के लिए सम्भव हो सकता है। आत्मानुभव को सबके लिए सम्भव मानकर वह एक अधिक उदार तथा प्रजातन्त्रीय दृष्टिकोण से काम लेता है।

रूसो (Rousseau)—रूसो व कांट आदि की भांति ग्रीन ने भी नैतिक स्वाधीनता का सिद्धान्त ग्रहण किया है। रूसो की इस धारणा को कि "नैतिक स्वाधीनता (Moral freedom) मनुष्य का एक विशिष्ट और अनुपम गुण है" वह अक्षरशः स्वीकार करता है किन्तु साथ ही साथ उस पर अपनी ओर से कुछ सीमाओं का भी निर्देश करता है। उसकी दृष्टि में नकारात्मक (Negative) और सकारात्मक (Positive), सामान्य (Generic) और विशिष्ट (Particular) न्यायमूलक (Juristic) और आध्यात्मिक (Spiritual) स्वाधीनताओं में तथा भौतिक अहंता (Empirical ego) और शुद्ध अहंता (Pure ego) में पर्याप्त अन्तर है। इन युग्मों (Pairs) में से प्रथम प्रकार की अर्थात् नकारात्मक, सामान्य, न्यायमूलक और भौतिक (Negative, generic, Juristic and empirical) स्वाधीनता का अर्थ वह मानता है, अपनी आत्मनिर्णय की भावना (Acting on preference) के अनुसार कार्य करना जब कि दूसरी प्रकार की स्वाधीनता का अर्थ है विवेक (Reason) तथा तर्क (Logic) के आधार द्वारा अपनी इच्छाओं को सम्पादित करना।

कांट (Kant)—कांट की भांति ग्रीन भी व्यक्ति के महत्व तथा व्यक्तित्व की पवित्रता में विश्वास करता है। वह राज्य के हितों की रक्षा के लिए व्यक्ति की स्वतन्त्रता की बलि नहीं चढ़ाता। राज्य पर बल देते हुए भी वह सर्वत्र व्यक्ति को नहीं भूला है। अतः उसका दृष्टिकोण कांटीय कहा जा सकता है।

हीगल (Hegel)—हीगल की तरह ग्रीन ने भी माना है कि राज्य का उद्देश्य व्यक्ति को स्वाधीन बनाना है तथा राज्य एवं अन्य संस्थायें नैतिक विचारों का साकार रूप होने के कारण व्यक्ति की स्वाधीनता के लिए बेड़िया नहीं हो सकता है। (State and institutions are no fetters on the individual freedom but are embodiment of ethical ideas)। किन्तु इससे आगे वह हीगेलियन दर्शन को स्वीकार नहीं करता। उदारतावादी (Liberal) तथा व्यावहारिक (Practical) होने के कारण वह हीगल के साथ यह मानने को तैयार नहीं है कि—

१ राज्य निरंकुश, सर्वशक्तिशाली तथा चरमतावादी (Absolute) होना चाहिए।

२ प्रत्येक राज्य में रहने वाले को स्वाधीनता तथा पूर्ण आत्मानुभव प्राप्त हो सकता है।

३ वास्तविकता, विवेकपूर्ण है तथा सारी विवेकपूर्ण वस्तुयें यथार्थ होनी हैं। (The actual is the rational and the rational is real)।

४ युद्ध राज्य के लिए आवश्यक है तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं की कोई आवश्यकता नहीं है।

५ स्वाधीनता धनात्मक (Positive) न होकर केवल ऋणात्मक (Negative) होती है।

६ व्यक्ति का राजकीय हित के सामने कोई मूल्य नहीं है।

इसी प्रकार दण्ड, विधान, राज्य के प्रति विद्रोह का अधिकार आदि विषयों पर भी ये दोनों विचारक एक दूसरे से कोसों दूर हैं।

राज्य (The State)—ग्रीन राज्य को मानव चेतना (Human Consciousness) की उपज मानता है। अपनी इस मान्यता के पक्ष में वह इस प्रकार तर्क देता है, मानव चेतना में स्वाधीनता पूर्व कल्पित है स्वाधीनता में अधिकार निहित हैं और अधिकारों के लिए राज्य की अपेक्षा है।" (Human consciousness postulates liberty Liberty involves rights and rights demand the State) इस प्रकार ग्रीन के अनुसार यद्यपि मानव चेतना के कारण एकदम राज्य की उत्पत्ति नहीं होती बल्कि परोक्ष रूप से (Indirectly) उसकी अन्तर चेतना तीन अवस्थाओं (Stages) में से गुजर कर राज्य के आविर्भाव (Emergence) को आवश्यक बना देती है। ग्रीन एक प्रजातन्त्रात्मक विचारक (Democratic thinker) था अत उसकी इस उपरोक्त मान्यता का अर्थ यह निकलता है कि राज्य का सच्चा आधार "एक समान उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सामूहिक चेतना है।" (A common consciousness of a Common purpose) सभी व्यक्ति आत्मानुभव (Self realisation) का समान उद्देश्य रखते है अत उनका राज्य में रहने तथा उसका आत्मार्पण (Surrender) करने का मूल कारण यही है कि वे राज्य का अस्तित्व अपने हित में आवश्यक समझते हैं। इसलिए ग्रीन का मत है कि 'बल न होकर इच्छा ही राज्य का सच्चा आधार है" (Will not force is the basis of the State) वह आगे मानता है कि समस्त संस्थाओं का मूल्य उनकी कार्यकुशलता पर निर्भर करता है जो संस्था हम अपने चरम उद्देश्य तक पहुचने में सहायता करती है उसकी उतनी ही तत्परता से आज्ञा पालन करना हमारा नैतिक कर्तव्य है। इस दृष्टि से उसका विश्वास है कि राज्य एक नैतिक संस्था होने के कारण हम अपने नैतिक जीवन प्राप्य उद्देश्य के निकट पहुचने में सबसे अधिक सहायता करता है अत हम उसकी आज्ञा का पालन करते हैं और यही हमारी राजनैतिक आज्ञाकारिता का आधार है (Basis of Plitical obligation)। स्वयं ग्रीन के शब्दों में 'स्वेच्छापूर्वक आज्ञा पालन के न प्राप्त होने पर, यदि राज्य नागरिकों पर बल का प्रयोग करता है तो केवल इसलिए क्योंकि वे अपने पड़ोसियों के अधिकार तथा हितों के लिए आवश्यक अवस्थाओं को, जिन्हें राज्य भली भांति समझता है, बनाये रखना नहीं चाहते।" (The obedience which if not rendered willingly the State compels the citizens to render because it does not present itself to him as the condition of the maintenance

of those rights and interests common to himself with his neighbours which he understands)।

उपरोक्त धारणा के आधार पर ग्रीन राज्य को स्वाभाविक तथा अनिवार्य मानता है। नैतिक सस्था होने के कारण उसकी दृष्टि मे वह साधारण इच्छा का सच्चा प्रतिनिधित्व करती है। अत यदि वह नागरिको को अधिकार दिलाने के लिये बल का प्रयोग भी करे तो न्याय सगत (Justified) है।

राज्य के कर्तव्य (Functions of the state)—ग्रीन के मत म राज्य का प्रमुख कर्तव्य व्यक्ति द्वारा अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास प्राप्त करवाना है। (Fulfilment of the personality) अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसको यह आवश्यक है कि वह कुछ ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न करें जिनमे नैतिकता का विकास हो सके। कान्ट की भाँति ग्रीन भी यह मानता है कि नैतिकता को राज्य लागू नही कर सकता। वह तो व्यक्ति के अन्त करण से सम्बद्ध वस्तु है जो व्यक्ति द्वारा आत्मारोपित कर्तव्या के निष्पक्ष सपादन में ही निहित है। (Morality consists in the disinterested performance of self imposed duties)। तात्पर्य यह है कि एक मनुष्य अपने अन्त करण (Conscience) के कहने पर अपने उचित कर्तव्यो को बिना किसी लोभ और भय के करता है, तो उसकी नैतिकता की वृद्धि होती है। इन कर्तव्यो के करने मे राज्य प्रत्यक्ष रूप (Directly) से कुछ नही करता, वह तो केवल ऐसी परिस्थितियाँ पैदा करता है तथा उन्हे बनाये रखता है जिनमे इन कर्तव्यो का पालन सुगमता से हो सके। अत ग्रीन के आदर्शवादी राज्य का कर्तव्य यही है कि इन कर्तव्यो के करने म व्यक्ति के माग म जो बाधाएँ आयें उन्हे दूर करे (Hinder the hinderances) तथा ऐसी आवश्यक परिस्थितियो की सर्जना करे तथा उन्हे स्थिर रखे (Create and maintain conditions)

ग्रीन के राज्य की कल्पना एक चरमतावादी राज्य (Absolute state) का चित्र नही है। वह राज्य को वाह्य तथा आन्तरिक दोनो दृष्टियो से सीमित मानता है उसके मत मे राज्य के कार्य धनात्मक (Positive) तथा ऋणात्मक (Negative) दोनो प्रकार के होने चाहिए। नकारात्मक (Negative) दृष्टि से वह यह चाहता है कि राज्य व्यक्ति को वह काम करने दे 'जो कार्य करने योग्य है" और इनके करने मे जहाँ वह वाधाओ के कारण असमर्थ हो, उन बाधाओ को दूर करें। (The state should allow and remove obstacles that lye before human capacity, when he seeks to do things worth doing) धनात्मक दृष्टिकोण (Positive view) से राज्य के कार्य क्षेत्र की व्याख्या करते हुए ग्रीन राज्य को यह अधिकार देता है कि जहा नैतिकता के विकास लिए वह उपयुक्त समझे वहा नागरिक मे हस्तक्षेप करे तथा उचित अवसरो पर बल का भी प्रयोग करे। राज्य का यह हस्तक्षेप व्यक्ति के जीवन म कहा तक होगा तथा, बाधाओ को दूर करने के लिए राज्य क्या-क्या करेगा इसकी कोई निश्चित सीमायें ग्रीन ने निर्धारित नही की हैं, किन्तु अपनी समकालीन

व्यावहारिक परिस्थितियों को देखते हुए उसने कुछ उदाहरणों द्वारा इस ओर संकेत अवश्य किया है। ऋणात्मक दृष्टि से जैसे वह मानता है कि अज्ञान (Ignorance), शराबखोरी (Drink), भिखमंगापन (Pauperism) आदि मानव शक्ति की अभिव्यंजना के मार्ग की बाधायें हैं, जिन्हें दूर करने के लिए राज्य को प्रयत्न करने चाहिए। इस प्रकार धनात्मक क्षेत्र (Positive sphere) में स्वस्थ नैतिक जीवन की अवस्थाओं को बनाये रखने के लिए व्यक्तियों को स्वच्छ रहने शराब न पीने तथा माता पिता को अपने बच्चों को शिक्षित करने के लिए बल पूर्वक बाध्य कर सकती है। इस प्रकार बार्कर (Barker) के शब्दों में ग्रीन "स्वाधीनता की सृजना के लिए बल का प्रयोग करता है" (Green uses force to create freedom)।

स्वाधीनता (Freedom)—ग्रीन के मतानुसार स्वाधीनता कोई अनियमित वस्तु नहीं है। वह आत्म चेतना का ही एक प्रकार से दूसरा रूप है। मनुष्य की अन्तर चेतना सदैव सुख और सन्तोष चाहती है। यदि यह सन्तोष व्यक्ति को प्राप्त नहीं होता तो इसका अर्थ यह है कि उसे नैतिक स्वाधीनता नहीं है। हीगल की भाँति ग्रीन यह नहीं मानता कि 'राज्य स्वाधीनता का प्रत्यक्ष रूप' है। (Actualisation of freedom) उसके अनुसार "स्वाधीनता एक ऐसे काम करने की क्षमता है, जिसके द्वारा व्यक्ति वे कार्य करता है जो उसे करने चाहिए।" (Freedom is a capacity to do things worth doing and enjoying) उसकी स्वाधीनता की परिभाषा कान्ट के अधिक समीप है क्योंकि उसका यह विश्वास है कि "सद्इच्छा ही स्वतन्त्र इच्छा है।" (The good will alone is free will) स्वाधीनता में ग्रीन ने दो आवश्यक गुण माने हैं, (१) धनात्मकता (Positive property) तथा (२) सुनिश्चितता (Determinateness) अर्थात् स्वाधीन व्यक्ति वह है जो यथा इच्छा मनमाने काम न करके, अपने जीवन के उच्चादर्शों की प्राप्ति के लिए कुछ निश्चित कार्य करता है।

अधिकार (Rights)—अधिकारों की परिभाषा करते हुए ग्रीन लिखते हैं— 'अधिकार व्यक्ति की अपनी उद्दिष्ट वस्तुओं को चाहने की माँग है। ये कुछ ऐसी परिस्थितियाँ हैं जो मनुष्य के आन्तरिक विकास के लिए नितान्त आवश्यक हैं' (A right is a claim of the individual to will his own ideal objects Rights are certain outer condition essential for the inner development of man)। इससे स्पष्ट है कि ग्रीन अधिकार को एक ऐसी वस्तु मानता है जो मनुष्य व्यक्तित्व के साथ चिमटी हुई (Inherent in the personality) है। और केवल उन्हीं व्यक्तियों को प्राप्त हो सकती है जो समाज के सदस्य हों। सामाजिक व्यक्ति के नैतिक उत्पादन के लिए एक आवश्यक मार्ग होने के कारण ग्रीन इन्हें "प्राकृतिक अधिकार (Natural rights) का नाम भी देता है। एक अधिकार की प्राप्ति के लिए इस प्रकार ग्रीन दो शर्तें लगाता है (१) वह केवल एक समाज के सदस्य को ही मिल सकता है तथा (२) उस समाज में एक सामान्य हित (Common good) की

प्राप्ति का लक्ष्य होना चाहिए। नैतिकता तथा अधिकारों में अंतर करता हुआ वह मानता है कि अधिकार कानून के बाह्य बल द्वारा लागू किये जा सकते हैं, किन्तु नैतिकता नहीं।

राज्य के विरोध का अधिकार (Right of Resistance)—ग्रीन के अनुसार नागरिकों द्वारा राज्य के कानून का विरोध करने का अवसर इसलिए उत्पन्न होता है क्योंकि कभी-कभी समाज द्वारा स्वीकृत अधिकार तथा राज्य के कानूनों द्वारा स्वीकृत अधिकारों में कुछ असमानता (Discrepancy) उत्पन्न हो जाता है। उदाहरण के लिए एक नागरिक दास प्रथा का विरोधी है। वह यह अनुभव करता है कि यद्यपि राज्य के कानूनों के अन्तर्गत दास प्रथा वैधानिक है, किन्तु समाज चेतना इसे स्वीकार नहीं करती। इसी असमानता के कारण राज्य और नागरिकों में विरोध उत्पन्न होता है। ग्रीन मानता है कि समाज की सच्ची चेतना यदि राज्य द्वारा स्वीकृत किसी कानून अथवा प्रथा को अनुचित एवं हानिकारक समझती है तो नागरिकों को राज्य के विरुद्ध आवाज उठाने का अधिकार है। यहां वह हीगेलियन न होकर कुछ व्यक्तिवादी है, तथा इङ्गलिश उदारतावाद (English liberalism) की छाप उसके दर्शन पर स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है।

प्राकृतिक कानून (Natural Law)—हाब्स, लॉक आदि द्वारा प्राकृतिक कानून की दी गई परिभाषा कि "यह विवेकशीलता की अभिव्यक्ति है" (Dictates of reason) को अस्वीकार करता हुआ ग्रीन मानता है कि प्राकृतिक कानून का सम्बन्ध उन सब वस्तुओं से हो, जो समाज के अन्तिम उद्देश्य की प्राप्ति के लिए समाज में होनी चाहिए" (Natural law is concerned with all those things which ought to exist in Society was to reach its ultimate goal)। वह यह मानता है कि राजकीय कानून यदि वास्तविक समाज का चित्र उपस्थित करते हैं तो प्राकृतिक कानून कुछ ऐसे नियम हैं जो आदर्श राज्य में होने चाहिए।

राज्य और समाज (State and Society)—ग्रीन ने राज्य को 'समाजों' का समाज माना है। इन समाजों को बनाने वाला यद्यपि राज्य नहीं है, किन्तु इन सबके बीच एक निश्चित समन्वय स्थापित करने का अधिकार (Right of Adjustment) राज्य को है। जैसा कि बार्कर लिखते हैं "राज्य प्रत्येक संघ की आन्तरिक अधिकार व्यवस्था का सन्तुलन करता है और ऐसी प्रत्येक अधिकार व्यवस्था का शेष अन्य व्यवस्थाओं के साथ समन्वय करता है" (The state adjusted for each the System of rights internally It also adjusted the System of right to the rests externally)। इसी समन्वय स्थापित करने के अपने अधिकार के कारण ग्रीन राज्य को एक अन्तिम अधिकार सत्ता प्राप्त संस्था मानते हैं। इस प्रकार उनका सिद्धान्त बहुत कुछ बहुलवादी (Pluralist) सा लगता है।

दण्ड (Punishment)—ग्रीन का कथन है कि दण्ड अपराधी द्वारा प्रयोग में लाये गये बल के विरोध में प्रयुक्त किया गया बल है। वह मानता है कि अपराध का

कोई माप दण्ड नहीं हो सकता और न ऐसा आँका जा सकता है कि किसी सजा के दन स किस अपराधी मे कितना सुधार होता ह। इसी प्रकार राज्य यह भी नहा माप सकता कि किस दण्ड स कितनी पीडा उत्पन्न होती है। फिर यदि यह सम्भव भी हो सके ता हर अपराधी को अलग अलग प्रकार की सजा मिलनी चाहिए। ग्रान मानता है कि दण्ड का कोई निश्चित विधान नहीं हो सकता और न अपराध के अनुपात मे सजा देना ही सम्भव है। उसका यह भी मत है कि दण्ड द्वारा अपराधी म कोई नैतिक सुधार नहीं होता, क्योकि वह तो केवल अपने आप ही हो सकता है। उसकी दृष्टि म दण्ड केवल एक ही उद्देश्य से दिया जाता है और वह यही कि समाज के अन्य सदस्य स्वतन्त्रता का उपभोग कर सकें क्योकि "दण्ड का अर्थ अपराधी को पीडा के लिए पीडा पहुचाना नहीं है और न भविष्य मे अपराधो की आवृत्ति को रोकना ही है, बल्कि उसका अर्थ अन्य व्यक्तियों के मस्तिष्क मे अपराध के विचार के साथ एक बहुत बडा भय जोड देना है, जिसस वे उन्हे करने का आकर्षित न हो" (Punishment is not to cause pain to the criminal for the sake of causing it, nor preventing him from committing the crime again but to associate terror with the contemplation of the crime in the minds of others, who may be tempted to commit it)।

सम्पत्ति (Property)—सम्पत्ति के विषय म ग्रीन एक मध्यमार्गी उदारतावादी है। यहाँ उसका आदर्श न समाजवाद है और न व्यक्तिवाद। वह मानता है कि प्रत्येक व्यक्ति के स्वतन्त्र जीवन के अधिकार के लिए सम्पत्ति एक अनिवार्य संस्था है। सम्पत्ति मे जीवन को क्रियाशील रखने का एक आकर्षण होता है अत वह व्यक्ति के नैतिक विकास मे सहायता करती है। किन्तु इस प्रकार का स्वच्छन्द सम्पत्ति अधिकार समाज मे असमानता (Inequality) उत्पन्न करेगा, प्रतियोगिता बढेगी तथा शोषण होगा। ऐसी स्थिति मे ग्रीन व्यक्तिवाद से तुरन्त समाजवाद पर कूद जाता है और कहता है कि ऐसी हालत मे राजकीय हस्तक्षेप बहुत आवश्यक है। उसका मत है कि राज्य को ऐसे असहनीय पूजीवाद को समाप्त कर सम्पत्ति के यथोचित समान वितरण के लिए नियम बनाना चाहिए।

युद्ध तथा विश्व बन्धुत्व (War and universal brotherhood)—युद्ध पर विचारो के विषय म ग्रीन हीगल का बडा तीव्र आलोचक था। उसका मत था कि युद्ध कभी भी एक सही बात नहीं हो सकता। वह उसे अपूर्ण राज्य (*Imperfect* State) का चिह्न मानता है और कहता है कि अत्यन्त विवशतापूर्ण परिस्थिति म भी राज्य को एक निर्दयतापूर्ण आवश्यकता (Cruel Necessity) से अधिक कुछ भी नहा कहा जा सकता। ग्रीन का विश्वास है कि सभ्यता के विकास के साथ साथ युद्ध जैसी घृणित वस्तु स्वत ही लुप्त हो जायेगी। युद्ध की अनावश्यकता के प्रतिपादन म वह हीगल के एक-एक तर्क का उत्तर देता हुआ यह निष्कर्ष निकालता है कि युद्ध प्रत्येक व्यक्ति के जीवित रहने के अमूल्य अधिकार का भंग करता है अत वह किसी भी

दृष्टि से न्याय सगत नही। युद्ध के लाभो के खण्डन म ग्रीन हीगल के तर्कों का इस प्रकार उत्तर देता है —

१ यद्यपि हीगल के कथनानुसार सिपाही हत्यारे से भिन्न ह, फिर भी युद्ध एक सामूहिक हत्या के अतिरिक्त और कुछ भी नही कहा जा सकता।

२ यद्यपि युद्ध-भूमि मे कोई व्यक्ति किसी विशेष व्यक्ति का मारने के लिए शस्त्र नही चलाता, फिर भी युद्ध क्षेत्र की हत्याओ का जिम्मेदार होता तो कोई न कोई व्यक्ति है ही।

३ हीगल का यह कथन पूर्णत असत्य है कि युद्ध मे सिपाही स्वेच्छा से स्वयं सेवक की भाति प्राणो का बलिदान करते ह।

४ युद्ध कभी भी आत्मत्याग (Self Sacrifice) तथा वीरता (Heroism) की भावनाओ की वृद्धि नही करता। युद्ध उच्च आदर्शों की अपेक्षा तुच्छ स्वार्थों के लिए ही लडे जाते ह।

५ युद्ध कभी अपरिहार्य नही हो सकते। गत युद्ध इसलिए हुआ कि सरकारो ने अपने कर्तव्यो का पालन ठीक ठीक ढग से नही किया।

६ "युद्ध की स्थिति राज्य की सर्वशक्तिमानता की द्योतक नही है" वरन वह तीव्र राष्ट्रीयता व निकृष्ट कोटि की देशभक्ति (Chauvinism) को प्रोत्साहित करती है।

युद्ध विरोधी होने के कारण ग्रीन स्वाभाविक रूप से विश्व-बंधुत्व की भावना म विश्वास करता था। वह मानता था कि मानवता के सामूहिक हित म ही व्यक्ति का हित निहित है इसलिए काण्ट की भाति वह भी एक अन्तर्राष्ट्रीय समाज की स्थापना का पक्षपाती था और चाहता था कि वह स्वतन्त्र राष्ट्रों की इच्छापूर्ण स्वीकृति पर आधारित हो।

प्रतिनिधि सरकार (Representative Government)—अंग्रेज विचारक होने के कारण प्रतिनिधि सरकार म ग्रीन की भारी आस्था थी और वह लोकतान्त्रिक पद्धति के आधार पर चुने हुए लोगो के शासन का दृढ समर्थक था।

प्रभाव (Influence)—बाकर के शब्दों म "ग्रीन एक ऊँची उड़ान लेने वाला आदर्शवादी तथा एक ठोस यथार्थवादी भी था" (Green was a soaring idealist and a sober realist)। आलोचक चाहे उसके दर्शन म इधर उधर छोटी मोटी भूलों का सकेत दे लेकिन उसके दर्शन की मूलभूत भित्ति को कोई चुनौती नही दे सकता। यथार्थ म व्यक्ति के मूल्य, समाज के महत्व, स्वाधीनता के सम्मान तथा अन्तर्राष्ट्रीयता की उपयोगिता को उसने केवल एक काल्पनिक शुष्क दार्शनिक की दृष्टि से ही नही बल्कि एक अनुभवी व्यावहारिक तथा गम्भीर विचारक की सूक्ष्म दृष्टि से भी देखा है। सम्पत्ति अधिकार तथा निरंकुश राज्य के विरोध आदि के विषय म भी उसके विचार बडे उदार तथा ठोस है।

इङ्गलैण्ड के राजनैतिक इतिहास म ग्रीन न जिस नय अध्याय को १९वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों मे लिखा है वह आज अक्षरश सत्य तथा व्यावहारिकता से मेल खाता हुआ दिखाई देता है। उसके द्वारा समर्थित श्रम कानून आदि २०वी शताब्दी म यथावत् बन गये। व्यक्तिवादी दर्शन का अन्त करने वालो मे ग्रीन का महत्व कम नही है। यथार्थ म वह हीगेलियन चुनौती को स्वीकार करने वाला एक ही व्यक्ति था जिसने उसे संशोधित कर अंग्रेजी परम्पराओ के अनुरूप तथा सच्चे अर्थों म आदर्श बना दिया।

ग्रीन के दर्शन की उल्लेखनीय बातें (Significant points of Green's Philosophy)—

(१) ग्रीन आदर्शवाद म उदारता का समन्वय कर उसे अंग्रेजी परम्पराओ के अनुरूप ढालने वालो में सब प्रथम है।

(२) ग्रीन का दर्शन पूर्णत व्यावहारिक (Practical) तथा मध्यमार्गी (Moderate) है।

(३) ग्रीन का दर्शन एक क्रमबद्ध ठोस दर्शन (Coherent Philosophy) है, जिसम आत्म विरोधी (Self Contradictory) बात नहीं हैं।

(४) ग्रीन समाजवाद और आदर्शवाद और व्यक्तिवाद मे एक सुन्दर सामञ्जस्य स्थापित करता है।

(५) ग्रीन का राज्य सर्व-शक्तिमान नही है, अत उसका दर्शन आधुनिक युग के लिए पूर्णत समीचीन दर्शन (Uptodate Philosophy) है।

(६) ग्रीन विश्व-बन्धुत्व तथा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद मे विश्वास करता है।

(७) ग्रीन ग्रीक दर्शन का पुनरुत्थान कर राज्य को नैतिक संस्था मानता है।

(८) ग्रीन इच्छा को राज्य का आधार मानता है। अत वह प्रजातान्त्रिक विचारक (Democratic Thinker) है।

(९) ग्रीन का दण्ड-विषयक सिद्धान्त सर्वथा ठीक एवं उपयुक्त है।

(१०) ग्रीन वैयक्तिक स्वाधीनता का सच्चा पुजारी है।

ब्रडले (Bradley) 1846-1924—यह दूसरा प्रसिद्ध अंग्रेज आदर्शवादी था। इसके विषय में बार्कर का मत है कि "वह एक रहस्यमय पुरुष था" (Mystery surrounds the man Bradley)। अपने दर्शन के प्रतिपादन मे वह सफल नहीं है। हीगल की विचारधारा मे वह अधिक प्रभावित मालूम होता है और बहुत ही अव्यवस्थित ढग से उसकी व्याख्या करता है। उसकी प्रमुख रचनायें 'Ethical Studies' तथा 'My Station and its duties' हैं। प्लेटो की न्याय सिद्धान्त (Conception of Justice) भी इसके दर्शन का एक महत्वपूर्ण आधार-स्तम्भ है। उसके दर्शन की मुख्य-मुख्य बातें निम्नलिखित हैं—

(१) समाज मनुष्य को नैतिक बनाता है—ब्रैडले का मत है कि "जिस व्यक्ति को हम मनुष्य के नाम से पुकारते हैं वह समाज के कारण ही बना है।" वह

मानता है कि नैतिक बनने के लिए हमें अपने देश की नैतिक परम्पराओं का पालन करना चाहिए (To be moral, we must live in accordance with the moral traditions of our country)।

(२) मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है—उसके शब्दों में "जिस परिस्थिति में व्यक्ति श्वास लेता है वह सर्वथा सामाजिक है।" (The very atmosphere which he breathes is Social)

(३) मनुष्य जन्म से एक राष्ट्र का सदस्य पैदा होता है—उदाहरण के लिए ब्रैडले मानते हैं कि एक अंग्रेज घर में पैदा होने वाला बच्चा परिवार के साथ साथ अंग्रेज राष्ट्र का एक जन्मजात सदस्य है।

(४) राज्य समग्र इकाइयों की व्यवस्था है (The State is a system of wholes)—ब्रैडले के मत में राज्य एक नैतिक जीव (moral organism) है, और समाज की अन्य सारी सामाजिक इकाइयाँ अथवा संस्थायें इसके अन्तर्गत आ जाती हैं।

(५) अपने कर्तव्यों को पूरा करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है—ब्रैडले की धारणा है कि प्रत्येक व्यक्ति समाज में कुछ प्रवृत्तियों को लेकर जन्म लेता है। अतः उसे चाहिये कि विशाल सामाजिक जीवन में वह उन प्रवृत्तियों के अनुकूल अपना स्थान (Station of life) चुन ले और उसके सारे कर्तव्यों को ईमानदारी तथा निष्ठा के साथ पूरा करे। ब्रैडले की यह धारणा प्लेटो के न्याय सिद्धान्त से अक्षरशः मिलती है।

आलोचना (Criticism)—आलोचकों ने ब्रैडले के दर्शन को निस्सार बतलाया है और कहा कि "उसमें मौलिक तथा महान" (Original and great) कुछ भी नहीं है। उसके दर्शन में निम्नलिखित त्रुटियाँ बतलाई गई हैं—

(१) वह राज्य और समाज के रूपों के विषय में अस्पष्ट है और उन दोनों में कोई भेद नहीं करता।

(२) ब्रैडले का यह वाक्य कि सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए "मुझे अपने स्थान तथा उसके कर्तव्यों का ध्यान रखना चाहिए" स्पष्ट नहीं है। यह एक ऐसी लचीली बात है, जिसकी अनेकों व्याख्यायें हो सकती हैं।

प्रो० बोसांक्वेट (B Bosanquet) 1848 1933—प्रो० हॉबहाउस ने बोसांक्वेट को "हीगेलियन दर्शन का आधुनिकतम तथा सर्वाधिक निष्ठावान व्याख्याता" कहा है (Most modern and most faithful exponent of Hegelianism)। यह बात कुछ अत्युक्तिपूर्ण मालूम होती है। यह कहना अधिक सत्य होगा कि "बोसांक्वेट अपना दर्शन रूसो तथा ग्रीन से आरम्भ करता है तथा हीगल में उसकी चरम परिणति हुई है" (He began with Rousseau and Green and ended almost in Hegel—Ashirvatham)। बोसांक्वेट की प्रसिद्ध रचनायें निम्नलिखित हैं—

1 Philosophical theory of the State—1899

2 Social and International ideals—1917

3 The Value and Destiny of the Individual—1913

इच्छा (Will)—बोसाक्वेट अपने दर्शन का आरम्भ रूसो के इच्छा सिद्धान्त से करता है। उसके अनुसार स्वतन्त्र इच्छा विवेकपूर्ण (Rational) तथा विश्वव्यापी (Universal) वस्तुओं को चाहने मे विकास करती है। अपने इच्छा सिद्धान्त में सर्व प्रथम (१) वह मानता है कि मनुष्य की वास्तविक इच्छा (Real will) तथा असली इच्छा (Actual will) मे अन्तर होता है। यह असली इच्छा (Actual will) स्वार्थी होती है जब कि वास्तविक इच्छा (Real will) समाज का तथा सार्वजनिक कल्याण का ध्यान रखती है। (२) दूसरे यह वास्तविक इच्छा (Real will) कोई एकाकी वस्तु नही है। यह अन्य सामाजिक प्राणियों की वास्तविक इच्छा मे संयुक्त है और समाज के सारे प्राणियो की इसी वास्तविक इच्छाओं के समूह को साधारण इच्छा (General will) कहा जा सकता है। (३) तीसरे बोसाक्वेट मानता है कि राज्य इसी साधारण इच्छा (General will) का साकार रूप है और उसका प्रतिनिधित्व करता है।

संस्था सिद्धान्त (Theory of Institutions)—संस्थाओं को बोसाक्वेट नैतिक विचारों का मूर्तरूप (Embodiment) मानता है। उसके संस्था सिद्धान्त की तीन आधारभूत मान्यतायें है (१) प्रत्येक सामाजिक संस्था मानव मस्तिष्क की एक जटिल मिश्रित क्रियाशीलता है (The group is a complicated inter working of the mind of the individual)। (२) समुदाय की सामूहिकता व्यक्ति के मस्तिष्क मे प्रतिबिम्बित होती है (The totality of the group is reflected in the mind of the individual)। (३) प्रत्येक सदस्य अन्य सदस्यों पर अपने विचारों को लादने की प्रवृत्ति रखता है। उदाहरण के लिए वह परिवार, राज्य आदि संस्थाओं के नाम गिनाता है।

राज्य (The State)—बोसाक्वेट के मत मे राज्य एक पूर्ण नैतिक संस्था है जो समाज मे सामञ्जस्य स्थापित करने का कार्य करता है। राज्य को वह लगभग समाज का पर्यायवाची (Synonymous) ही मानता है और कहता है कि "राज्य सभ्य जीवन का एक आवश्यक तत्व है" (A necessary factor in civilized life)। उसकी यह दृढ मान्यता है कि नैतिक सम्बन्ध राज्य मे ही सम्भव हो सकते हैं अत "राज्य व्यवस्थित नैतिक विश्व का एक तत्व न होकर समस्त नैतिक विश्व का संरक्षक है" (The State is the guardian of the whole moral world but not a factor within the moral world)।

व्यक्तिगत तथा सार्वजनिक कार्य (Public and private acts)—बोसाक्वेट के अनुसार सार्वजनिक तथा व्यक्तिगत कार्य मे अन्तर होता है। उदाहरण के लिए वह कहता है कि यदि एक व्यक्ति हत्या करता है तो यह एक व्यक्तिगत कार्य है किन्तु यदि एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से युद्ध छेड़ देता है, या ऋण लौटाने से इन्कार कर देता है

ता य मावजनिक काय ह । इन दोना स्थितिया म किय गये अपराधा की माना मे अ तर है । वह तक दता है कि व्यक्ति स्वाथ के वशीभूत होकर नीच काय करता है किन्तु राज्य व्यक्तियो के नतिक हित के उच्चादश को ध्यान म रख कर काय करता है अत यदि वह युद्ध भी लडता है तो अपराध नही करता । इसी आधार पर बोसाक्वट युद्ध का पक्ष लेते है और हीगलियन विचारधारा के बहुत समीप पहुच जात ह ।

बोसांक्वेट की आलोचना
(Criticism of Bosanquet)

१ राज्य का चित्र अनुत्तरदायी तथा निदयतापूण है (An irresponsible and tyrannical picture of the state)—हीगल की भाति बोसांक्वट राज्य की अतिमहत्ता पर इतना बल देता है कि व्यक्ति तथा उसकी स्वतन्त्रता निदयतापूवक कुचल दी जाती है । ऐसा सरमूतावादी राज्य (Absolute state) व्यक्ति के नतिक उत्थान के करने उसके विकास को कुण्ठित कर पगु बना दता है ।

२ समाज और राज्य मे भेद नहीं है—बोसाक्वेट की सबसे बडी भूल यह है कि वह राज्य का समाज का समानाथक मान कर चलता है । य दा भिन्न भिन्न सस्थाये है ।

३ अन्तर्राष्ट्रीयतावाद म विश्वास नहीं (No faith in inter nationalism)—बोसाक्वेट राष्ट्रीय राज्य की कल्पना को अपना उद्देश्य मानकर आग बढता ह । यह अशुद्ध है । सभ्यता के विकास के साथ मानवता को एक दिन अन्तर्राष्ट्रीयता का अपना उद्देश्य बनाना होगा ।

४ व्यक्तिगत तथा सावजनिक नैतिकता मे अन्तर नहीं हो सकता—अर्नेस्ट बाकर बोसांक्वट के इस सिद्धात के घार विरोधी है कि राज्य द्वारा किये जाने वाले कार्यों की नैतिकता एक सामा य व्यक्ति के कार्यों की नतिकता से भिन्न होती है । उनके शब्दो म "जब एक नागरिक अपन राज्य का वधानिक रूप से क्षति-पूर्ति के लिय उत्तरदायी मान सकता है तो फिर समझ म नही आता कि वैधानिक उत्तरदायित्व स्वीकार करने वाले राज्य के लिए नतिक उत्तरदायित्व स्वीकार करना क्यो कठिन है' (If a citizen can treat his own state l as legally responsible for damage it is difficult to see why a state which can undergo a legal responsibility should not also uedergo moral responsibility) ।

५ आलोचक बोसाक्वेट के सामाजिक मस्तिष्क सामाजिक इच्छा तथा सामाजिक जीव सिद्धान्ता को भी सवथा दोषपूण बतलाते हैं ।

६ राज्य को एक सामाजिक जीव (Social organism) के रूप मे कल्पना करने के कारण मराइवर (MacIver) ने कहा है कि बोसाक्वट एक अप्रजातन्त्रात्मक विचारक (Undemocratic thinker) है ।

७ बोसांक्वेट का इच्छा सिद्धान्त भी आधुनिक आलोचक प्रो० हाबहाउस (Hobhouse) के हाथों पड कर सर्वथा महत्वहीन हो गया है। प्रो० हाबहाउस का मत है कि व्यक्ति की इच्छा के कभी भी ऐसे दो भाग नहीं हो सकते, क्योंकि व एक दूसरे से संयुक्त हैं। उनके मत में इच्छा को Real और Actual दो अलग अलग रूप में मानना शब्दों के साथ खिलवाड करना है।

ग्रीन और बोसांक्वेट (Green and Bosanquet)—ये दो अंग्रेजी विचारक आदर्शवाद के दो छोरों का प्रतिनिधित्व करते हैं। समय की दृष्टि से यद्यपि ग्रीन पहिले आते हैं पर विचारों की क्रमवद्धता के अनुसार उनका दर्शन बोसांक्वेट के हीगेलियन दर्शन से अधिक स्पष्ट, सुन्दरतर तथा आधुनिकता के अधिक निकट है। इन दोनों आदर्शवादियों में अनेक स्थानों पर कुछ विचार साम्य है, किन्तु साथ ही ऐसे स्थलों की भी कमी नहीं है जहाँ वे एक दूसरे को फूटी आंख से भी नहीं देख सकते।

समानतायें (Resemblances)

१ दोनों ही विचारक अपने दर्शन के गुम्फन में ग्रीक दर्शन से प्रेरणा लेकर प्रवृत्त हुये हैं तथा रूसो, काण्ट, हीगल आदि आदर्शवादी पूर्वजों का प्रभाव दोनों ही के दर्शन पर स्पष्ट रूप से लक्षित होता है।

२ दोनों ही राज्य को अनिवार्य और स्वाभाविक मानते हैं, जिसका उद्देश्य व्यक्ति का नैतिक विकास करना है।

३ राज्य को एक नैतिक संस्था मानने के अतिरिक्त ये दोनों ही राज्य को निषेधात्मक कार्य (Negative functions) देना चाहते हैं जिसके कारण इन दोनों के राज्य का स्वरूप तथा कार्य-क्षेत्र बहुत कुछ भिन्न होते हुए भी काफी समान है।

४ ये दोनों ही जर्मन आदर्शवादियों द्वारा पूजे गये निरंकुश राजतन्त्र (Absolute monarchy) के विरोधी हैं। स्वभावत अंग्रेज होने के नाते दोनों को ही अपनी प्रतिनिधित्वपूर्ण संस्थाओं से प्रेम तथा मोह है।

अन्तर (Differences)

१ ग्रीन नागरिकों को राज्य के अत्याचारी तथा पथ भ्रष्ट होने पर उसके विरुद्ध विद्रोह करने का अधिकार देता है जिसके कारण उसका राज्य निरंकुश अथवा सर्वसत्तावादी नहीं कहा जा सकता जबकि बोसांक्वेट हीगेलियन विचार धारा में विश्वास करता हुआ राज्य को अनियन्त्रित अधिकार देता है।

२ दण्ड के विषय में भी ग्रीन और बोसांक्वेट में मतभेद है। दोनों दण्ड के निरोधात्मक सिद्धान्त (Deterrent theory) में विश्वास करते हैं, किन्तु बोसांक्वेट का मत है कि दण्ड व्यक्ति के मस्तिष्क के कोने में पडा-पडा उसका सुधार भी करता है। इस प्रकार वह दण्ड के मनोवैज्ञानिक पक्ष (Psychological aspect) पर पर्याप्त बल देता है।

३ युद्ध तथा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद के विषय में ग्रीन एक उदारतावादी तथा विश्व संस्थाओं के अस्तित्व में विश्वास करने वाला है किन्तु बोसांक्वेट हीगल से प्रभावित होने के कारण राष्ट्रीय राज्य को अन्तर्राष्ट्रीय संघ में शामिल होने की आज्ञा नहीं देता।

४ बोसांक्वेट का मत है कि केवल जीवन तथा महत्तर जीवन के मध्य सदैव संघर्ष की भावना रहती है और इस संघर्ष को टालना कोई सरल कार्य नहीं है। मनुष्य मात्र किसी निश्चित व्यवस्था में सुगठित न होकर विशृंखलित अधिक है, अतः वे किसी विश्व संघ की स्थापना नहीं कर सकते। ग्रीन इससे उल्टा मानता है।

५ बोसांक्वेट राज्य को समस्त नैतिक विश्व का संरक्षक मानता है (A guardian of the whole moral world) और कहता है कि वह नागरिकों के प्रति नैतिक रूप से उत्तरदायी है। अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों के बिना भी नागरिकों की रक्षा करना उसका कर्तव्य है। किन्तु ग्रीन राज्य को समस्त नैतिक विश्व का एक तत्त्व मात्र मानता है, जिसे अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों का निष्ठा के साथ पालन करना चाहिए।

आदर्शवादी सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of Idealism)—उपरोक्त आदर्शवादी विचारकों द्वारा प्रतिपादित राज्य के आदर्शवादी सिद्धान्त पर आज के युग के आलोचक अनेक प्रकार से प्रहार करते हैं। प्रसिद्ध राज्यशास्त्री (Political Theorist) गार्नर का मत है कि "आधुनिक युग के अधिकतर राजनैतिक लेखक हीगलियन दर्शन को और विशेषतः उसके राज्य के चरमतावादी तथा दैवी सिद्धान्त को अस्वीकार करते हैं।" (Practically all political writers today reject most of the Hegelian Philosophy specially the doctrine of absolutism of the state and its alleged divinity)। इसी प्रकार हीगल का राज्य की नैतिकता का मूर्तरूप मानना तथा उसे एक रहस्यमय रूप देकर उसके व्यक्तित्व तथा हितों को नागरिकों के व्यक्तित्व तथा हितों से भिन्न मानना कुछ ऐसे विषय हैं जिनको लेकर आधुनिक आलोचकों ने इसे अत्यन्त भयंकर, मिथ्या, एकांगी तथा शरारतपूर्ण तक कह डाला है (Dangerous, false, one sided and even wicked)।

१ यह पूर्णतः तात्त्विक दर्शन है जो यथार्थताओं से परे है (It is a pure metaphysical theory away from the realities of life)—आलोचकों का यह मत है कि यह एक शुष्क भावात्मक दर्शन (Abstract philosophy) है जो इतना अधिक सूक्ष्म तथा आदर्शवादी है कि व्यावहारिकता से बिलकुल सम्बन्धहीन हो गया है। वे मानते हैं कि "इस अति-आदर्शवाद का ढाँचा चाहे स्वर्ग में भले ही सम्भव हो पर इस पृथ्वी पर नहीं स्थापित किया जा सकता।" (Its pattern may be laid up in heaven but it is not established on this earth)। जर्मन आदर्शवादी "कुर्सी के विचारक" (Arm-chair philosopher) थे और इसीलिए उनमें से हीगल यह मान बैठा है कि "जो वास्तविक है वही विवेकपूर्ण है और

विचारपूर्ण सारी वस्तुये यथार्थताये होती हैं" (Real is rational and rational is real)। यह सिद्धान्त किन मानसिक तथा दार्शनिक विशिष्ट कल्पना के और कुछ नहीं कहा जा सकता। इस सिद्धान्त के प्रतिपादकवर्गों का समाज की नग्न यथार्थ (Naked realities) का ज्ञान नहीं है और इसीलिए जेम्स के यह शब्द पूर्णत सत्य हैं कि "आदर्शवाद एक ऐसा विचारशील दर्शन है जो सुख और दुःख की कटु अनुभूतियों तथा स्पष्ट तथ्यों को हमसे दूर रखता है।"

२ आदर्शवादी राज्य सर्वशक्तिमान है (The idealist state is omnipotent)—ग्रीन को छोड़ कर अन्य सारे आदर्शवादी राज्य का मानव-समाज में सर्वोच्च स्थान प्रदान करते हैं। वे राज्य को असीमित अधिकार देते हैं और व्यक्ति को उसकी इच्छानुसार नाचने वाला एक खिलौना मात्र मानते है। राज्य की महत्ता के विषय मे आदर्शवादी यह विचार आज प्रजातन्त्र के युग में किसी को भी ग्राह्य नहीं हो सकता। अनियन्त्रित अधिकार तथा स्वाधीनता सदैव उसके विनाश का कारण हुआ करते है। अत यदि राज्य का वास्तविक उद्देश्य व्यक्ति के नैतिक जीवन की पूर्णता का आभास करवाना है तो उसे सर्वशक्तिमान तथा अनियन्त्रित होना उचित नहीं।

३ राज्य सदैव ही सही नहीं हुआ करता (State is not always infallable)—आदर्शवादियों की यह मान्यता कि राज्य साधारण इच्छा का प्रतिनिधित्व करता है, अत उसका कोई भी कार्य कभी भी गलत नहीं हो सकता, चुनौती दिये जाने योग्य है। राज्य को सत्य का पुतला मानते समय आदर्शवादी यह भूल जाते है कि आखिर सरकार अथवा राज्य को चलाने वाले व्यक्ति ही तो होते हैं, जिनसे गलती होना सर्वथा स्वाभाविक है। अत राज्य भी सदैव ही सही नहीं हो सकता।

४ राज्य साधन है, साध्य नहीं (State is a means and can never be an end in itself)—राज्य के सभी आदर्शवादी विचारक राज्य का एक पृथक व्यक्तित्व मानते है और उसे एक साधन न मान कर साध्य बतलाते हैं। आज के युग में यह आदर्शवादी विचार स्वीकार नहीं किया जा सकता। यदि हम व्यावहारिक दृष्टि से देखें तो राज्य एक संस्था है जिसका उद्देश्य व्यक्तियों को कल्याणप्रद तथा सुखमई जीवन प्रदान करना है। इस साध्य की प्राप्ति के लिये राज्य केवल एक साधन है जो व्यक्ति के हित के लिए जीता है व्यक्ति राज्य के लिए नहीं जीता।

५ राज्य का आधार इच्छा नहीं है (Will is not the basis of the state)—आलोचकों ने ग्रीन के इच्छा सिद्धान्त की भी सामाजिक मनोविज्ञान (Social Psychology) के आधार पर भर्त्सना की है। उनका कहना है कि समाज की साधारण इच्छा जैसी कोई चीज यथार्थ में सम्भव नहीं है, क्योंकि हमारी इच्छायें या तो व्यक्तिगत इच्छायें हैं, या कुछ भी नहीं हैं' (Either we have individual

or no wills at all)। दूसरी दृष्टि से देखने पर यह एक भयंकर सिद्धान्त है क्योंकि "एक अप्रजातन्त्रात्मक राज्य में भी यह अनुदारता उत्पन्न करने में बहुत सहायक हो सकता है" (The concept of general will can become the tactics of conservatism even in an undemocratic state—Hobson) अतः आलोचकों के मत में जब साधारण इच्छा जैसी कोई चीज ही नहीं है, तो वह राज्य का आधार भी नहीं हो सकती।

६. राज्य और समाज में अन्तर है (The state and society are not identical)—प्राय सभी आदर्शवादियों ने राज्य को समाज समझने की भूल की है। वे मानते हैं कि राज्य का क्षेत्र समाज के क्षेत्र के समान ही है इसलिए राज्य की सत्ता भी उतनी ही होनी चाहिए जितनी कि समाज की। यह एक भ्रान्त धारणा है। सत्य तो यह है कि "राज्य समाज के लिए आवश्यक होते हुए भी, उसकी एक अवस्था मात्र है" (The state though at present necessary to society is one of its conditions only)। समाज का क्षेत्र राज्य से बहुत अधिक विस्तृत है। उदाहरण के लिए कैथोलिक चर्च एक विश्व व्यापी संस्था है किन्तु वेटिकन राज्य (Vatican state) विश्वव्यापी नहीं हो सकता। इसलिए आलोचकों का विश्वास है कि अगर हमने समाज को राज्य तक ही सीमित कर दिया तो मानव जीवन बिलकुल दरिद्र व हेय हो जायगा।

७. आदर्शवादी स्वाधीनता का रूप असत्य है (Idealist conception of liberty is erroneous)— आदर्शवादी मानते हैं कि राज्य हमारी साधारण इच्छा को व्यक्त करता है अतः उसकी आज्ञा के पालन करने में ही व्यक्ति स्वाधीनता प्राप्त कर सकता है। इस तथ्य के खण्डन में आलोचकों का कथन है कि राज्य साधारण इच्छा का प्रतिनिधित्व ही नहीं करता, फिर उसके आदेशों के पालन से व्यक्ति स्वाधीन भी कैसे रह सकता है। वे मानते हैं कि यह तो एक विरोधाभास (Paradox) है कि व्यक्ति को स्वाधीन बनाने के लिए उसकी 'इच्छा' के प्रतिकूल उस पर बल का प्रयोग किया जाय। हाबहाउस (Hobhouse) तो यहाँ तक कहते हैं कि 'यह सिद्धान्त कि कानून की अनुरूपता में ही स्वतन्त्रता है, स्वतन्त्रता का वास्तविक निषेध है" (The doctrine that individual has no freedom unless it is in conformity with law is the virtual negation of freedom)।

८. आदर्शवादी नैतिक और राजनैतिक अधीनता में अन्तर नहीं करते (Idealists do not distinguish between political and moral obligations) —हॉब्सन के अनुसार आदर्शवादी दर्शन की सबसे बड़ी भूल यही है कि वे नैतिकता को कानून तथा कानून द्वारा स्वीकृत सभी बातों को नैतिक मान बैठे हैं (What is legal is moral or what is moral is legal)। नैतिकता और कानून बिलकुल दो भिन्न-भिन्न वस्तुयें हैं। उदाहरण के लिए सन्ध्या को बिना रोशनी मोटर चलाना कानून

के विरुद्ध हो सकता है, किन्तु इसे अनैतिक आचरण (Immoral action) नहीं कहा जा सकता। आन्तरिक चेतना की पुकार राज्य के कानून से सदैव मेल ही खाये, यह आवश्यक नहीं। यदि ऐसा होता तो हमारे स्वतन्त्रता संग्राम के समय महात्मा गांधी तथा जवाहरलाल नेहरू को कानून भंग कर जेल जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। किन्तु कानूनों के भंग करने में उन्होंने अपनी नैतिकता के आदेशों का पालन किया जो इन दोनों प्रकार की आधीनताओं के अन्तर को स्पष्ट कर देता है।

९ आदर्शवादी राज्य अन्तर्राष्ट्रीय राज्य नहीं बना सकता (**Idealist state rules out the possibilities of an international order**)—आदर्शवादियों का कथन है कि व्यक्ति को केवल राज्य की आज्ञा का ही पालन करना चाहिए क्योंकि वह समस्त नैतिक विश्व का एकमात्र संरक्षक है। राज्य का यह चित्र अति राष्ट्रीयतावादी है, जो किसी भी प्रकार के अन्तराष्ट्रीय संगठन की भावनाओं को पहले से ही समाप्त कर देता है। यथार्थ में हीगल तथा बोसांक्वेट के राज्य किसी विश्व-संस्था के सदस्य नहीं बन सकते। अतः आज २०वीं शताब्दी के अन्तर्राष्ट्रीय युग में हम उनके आदर्शवाद को प्राचीन तथा अनुपयुक्त कह कर अस्वीकार कर सकते हैं।

१० आदर्शवादी वैयक्तिक तथा राजकीय नैतिकताओं को भिन्न भिन्न मानते हैं (**Idealists distinguish between the standards of private and public moralities**) – बोसांक्वेट आदि विचारकों का यह सिद्धान्त स्वीकार नहीं किया जा सकता कि राज्य द्वारा युद्ध में हजारों आदमियों के प्राण ले लेने पर भी उतना बड़ा अपराध नहीं होता, जितना एक व्यक्ति द्वारा अपने एक पड़ोसी की हत्या करने से होता है। यह मत विवेकसंगत (Rational) नहीं है।

११ राज्य इकाई नहीं है (*State is not a unity*)—आदर्शवादी राज्य को एक इकाई मानते हैं। आलोचक इसका खंडन करते हुए कहते हैं कि राज्य का इकाई रूप तो केवल एक कल्पना मात्र है, क्योंकि "जैसे एक पेड़ों का कुंज एक पेड़ नहीं हो सकता, एक भेड़ों का झुण्ड एक भेड़ नहीं हो सकता, इसी प्रकार से एक व्यक्तियों का समुदाय एक व्यक्ति कदापि नहीं हो सकता" (Just as a groove of trees is not a tree, a flock of sheep is not a sheep, similarly an assemblage of individuals is not an individual) राज्य का यह एकात्मवादी सिद्धान्त (Monastic conception) बहुत पहले ही ध्वस्त हो चुका है और बहुलवादी राज्य आज के युग की पुकार है।

इस प्रकार उपरोक्त तर्कों के आधार पर आदर्शवादी सिद्धान्त को चुनौती दी गई है। प्रो० हाब्हाउस आदि आलोचक तो आदर्शवादी राज्य के इस खण्डन में सीमा लाँघ गये हैं। वे आत्मवाद को आदर्शों का कट्टर शत्रु समझाते हुए इसे "एक असत्य तथा भ्रमपूर्ण दैवी राज्य का सिद्धान्त (False and wicked doctrine of God state) कह कर इसकी भर्त्सना करते हैं। हीगल के राज्य के पूजावादी सिद्धान्त की ...

सिल्ली उड़ाते हैं और उसे एक बर्बर व असभ्यतापूर्ण पशु समाज में उपयुक्त मानते हैं। इसी प्रकार प्रो० जाड भी मानते हैं कि "राज्य का आदर्शवादी सिद्धान्त राज्य के कर्तव्यों के विषय में सैद्धान्तिक रूप से दुर्बल, वास्तविकता से दूर तथा भयंकरता की सीमाओं तक फैला हुआ है।" किन्तु यह स्मरण रहे कि आदर्शवाद की यह आलोचना ग्रीन के विषय में अक्षरशः सत्य नहीं है। अन्य आदर्शवादियों की तुलना में उसका दर्शन काफी उदार (Moderate) तथा समीचीन (Upto date) है जिसमें बहुत कुछ आलोचना के योग्य होते हुए ग्राह्य तथा सारपूर्ण तत्व कम नहीं है। ग्रीन के उदारतावादी आदर्शवाद से निम्नलिखित मूल्यवान विचार लिए जा सकते हैं।

१ राजनीति तथा नीतिशास्त्र के बीच एक घनिष्ट सम्बन्ध है और यह आदर्शवादी मान्यता बिलकुल सही है कि राजनीतिक को नैतिक दृष्टिकोण से पढ़ना चाहिए।

२ राज्य एक संगठनात्मक वस्तु है और व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है। आदर्शवाद इस बात पर ठीक-ठीक बल देता है।

३ आदर्शवाद की यह मान्यता बिलकुल सत्य है कि मनुष्य को अपनी नैतिक उन्नति स्वयं करनी चाहिए तथा राज्य का कर्तव्य उसको विकसित करने के लिए आवश्यक अवस्थायें उत्पन्न करना है।

४ ग्रीन का उदार आदर्शवाद, आदर्श होते हुए भी कल्पना (Utopia) नहीं है। बहुत कुछ अंशों में सत्य, अनुभव, तथा ज्ञान पर आधारित होने के कारण उसे "बेकारी में उपजने वाले का स्वप्न मात्र कह कर अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

५ आदर्शवादियों द्वारा बुद्धि और इच्छा सम्बन्धी गुणों को सर्वोच्च गुण मानने के प्रश्न पर भी कोई विवेकशील व्यक्ति आपत्ति नहीं कर सकता।

भौतिक उपयोगितावाद के विरुद्ध (Materialistic Utilitarianism)—जिसे शूकर वृत्ति (Pig mentality) भी कहा जाता है, आदर्शवाद एक उग्र प्रतिक्रिया का परिचय देता है। अतः प्रसन्नता और पीड़ा की जगह नैतिकता सांस्कृतिकता तथा आध्यात्मिकता की बातें करने के कारण यह परम महत्वपूर्ण दर्शन है।

इस प्रकार आदर्शवाद के पक्ष तथा विपक्ष में तर्क तथा प्रतितर्क किये जाते हैं। यथार्थ में आदर्शवाद के समर्थक तथा आलोचक दोनों ही आंशिक रूप से सत्य कहते हैं। पूर्ण सत्य तो यह है कि आदर्शवाद और विशेषतः जर्मन आदर्शवाद तो एक विशिष्ट युग की एक विशिष्ट विचारधारा थी जिसने जर्मनी के एकीकरण के लिए राष्ट्रीयता की भावना को जाग्रत करने के उद्देश्य से "वीर राज्य अथवा राज्य पूजा के सिद्धान्त" का चुना था। किन्तु इतना होते हुए भी आदर्शवाद की जो आलोचनायें हुई हैं वे अधिकतर अनुचित और अयुक्तिपूर्ण हैं और इस सिद्धान्त की एक भ्रान्त धारणा पर आधारित हैं' (Much of the criticism against idealism is

सर्वाधिकारवाद

(Totalitarianism)

इटली के विश्व विख्यात तानाशाह (Dictator) मुसोलिनी ने कहा है कि "यदि उन्नीसवीं शताब्दी समाजवाद, उदारतावाद और प्रजातन्त्र का युग था तो बीसवीं शताब्दी अधिकार समष्टिवाद और सर्वाधिकारवादी राज्य का युग है" *(If the ninteenth Century was an age of Socialism liberalism and* democracy the twentieth Century is *to be a* Century of authority Collectivism and totalitarian *State)*। विश्व इतिहास में सभ्यता तथा प्रजातन्त्र को विनाश से बचाने के लिए मित्रराष्ट्रों (Allied powers) ने दो भयानक नर संहारकारी विश्व-युद्ध लड़े, किन्तु यदि उनके परिणामों को ध्यान से देखा जाय तो ज्ञात होगा, कि इन विश्व युद्धों में मित्र राष्ट्रों की जीत होते हुए भी, उनके सिद्धान्तों की एक बहुत बड़ी हार छुपी हुई है। कैसर विलियम द्वितीय के परास्त हो जाने पर भी जर्मनी में प्रजातन्त्र सफल नहीं हो सका और उसकी समाधि पर हिटलर ने अपने सर्वाधिकारवादी राज्य की आधारशिला का शिलान्यास किया। रूस में जारशाही के समाप्त होने पर भी लेनिन के नेतृत्व में एक नई बॉलशेविक तानाशाही (Bolshevic dictatorship) की स्थापना हुई। उसी प्रकार द्वितीय महायुद्ध में हिटलर को मुँह तोड़ पराजय देने पर भी, विश्व में प्रजातन्त्र का प्रसार एक इंच भी नहीं हुआ बल्कि चीन जैसे एक विशाल प्रायद्वीप में भी सर्वाधिकारवाद ने अपने नये चरण रखे और रूसी तानाशाही और भी कठोर हो गई प्रतीत होती है।

शास्त्रीय दृष्टि से सर्वाधिकारवादी राज्य प्रजातन्त्रात्मक राज्य का बिलकुल उल्टा है अथवा यों कहिए कि प्रजातन्त्र की आधुनिक युग में विश्वव्यापी असफलता (Universal failure) तथा अक्षमता का देखकर ही इसकी प्रतिक्रिया के रूप में इस सिद्धान्त का जन्म हुआ है। वैसे सर्वाधिकारवाद कोई दर्शन नहीं है और राज्य-सिद्धान्त की कोई विवेचना करना ही इसका उद्देश्य है। यह तो एक व्यावहारिक यथार्थ है जो यथार्थ पहले है और दर्शन बाद में। प्रो० सबाइन के शब्दों में 'यह कार्य पहले करता है और उसे सैद्धान्तिक रूप उसके बाद देता है' (It accomplishes first and theorizes afterwards)। यह एक बहुत उग्र विचारधारा है जो साम्यवादी राज्य की भांति व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन पर राज्य का अपना अधिकार-क्षेत्र रखने का दावा करती है। यह व्यक्ति के सूक्ष्म से सूक्ष्म कार्यों तक में हस्तक्षेप करना चाहती है। एक प्रसिद्ध राजनैतिक शास्त्री इस पर व्यंग्यात्मक टिप्पणी करता बतलाता हुआ

टिप्पणी करता है कि "जिस प्रकार बाइबिल का उपदेश यह है कि परमात्मसत्ता में ही हमारा जीवन क्रियाशीलता तथा अस्तित्व है, उसी प्रकार सर्वाधिकारवादियों का भी यह कहना है कि राज्य में ही हमारा अस्तित्व, जीवन तथा क्रियाशीलता सम्भव है" (As Bible teaches that we live, move and have our being in God so totalitarianism teaches that we live move and have our being in State)। सर्वाधिकारवाद के अनुसार व्यक्ति का जीवन उसका अपना नहीं है वह तो राज्य द्वारा उसे उपभोग के लिए दी गई एक धरोहर मात्र है, जिसे वह किसी भी समय आवश्यकता पड़ने पर छीन सकता है अथवा इच्छानुसार रक्षण तथा व्यय करने का आदेश दे सकता है। सर्वाधिकारवादी यह सिद्धान्त जर्मन आदर्शवाद का ही एक अधिक लोकप्रिय तथा प्रचलित संस्करण है (A popular and current edition of German Idealism)।

इतिहास (History)—सर्वाधिकारवादी सिद्धान्त का उद्गम यूनानी दर्शन से ढूँढ़ा जा सकता है। यूनान के नगर राज्यों (City State) में राज्य का महत्व इतना अधिक था कि वह व्यक्ति का सर्वस्व कहा जा सकता है। तत्कालीन परिस्थितियों के कारण यूनान के इन नगर राज्यों के नागरिक, राजनैतिक जीवन में इस प्रकार घुल-मिलकर रहते थे कि "नागरिक जीवन उनकी साँसों में व्याप्त था और नागरिकता तो लगभग एक व्यवसाय के समान थी" (Civic life was the breath of the nostrils of the Greeks and the Citizenship was almost a profession —MacIver)। उनका राज्य उनके लिए सब कुछ था, जिसे वे अपना समाज भी मानते थे। राज्य का यह रूप आज के सर्वाधिकारी राज्य से बहुत कुछ भिन्न होते हुए भी सिद्धान्त रूप में काफी समान है। मध्य युग में चर्च के प्रतिद्वन्द्वी (Rival) के रूप में आ जाने पर राज्य का यह रूप बहुत कुछ भिन्न हो गया। सोलहवीं शताब्दी में 'होली रोमन एम्पायर' के पतन के पश्चात् यूरोप में जब निरंकुश राजतन्त्र (Despotic Monarchies) का अभ्युदय हुआ तो लुई XIV के इन शब्दों में कि "मैं ही राज्य हूँ" (I am the State) सर्वाधिकारवादी राज्य की कल्पना फिर से पुनर्जीवित हुई। इस समय के सर्वशक्तिमान निरंकुश राजाओं ने अपने को ईश्वर का प्रतिनिधि बतलाकर राज्य की सर्वशक्तिशालिता का समर्थन किया। अठारहवीं शताब्दी के सुप्रसिद्ध विचारक रूसो ने भी निरंकुश राजतन्त्र (Absolute Monarchy) को स्वीकार न करते हुए भी अपने साधारण इच्छा सिद्धान्त द्वारा एक ऐसे राज्य की उद्भावना की जिसकी वेदी पर मूल्यहीन व्यक्ति का बलिदान चढ़ाया जा सकता है। आधुनिक जर्मन आदर्शवाद तो वर्तमान सर्वाधिकारवाद का माता एवं दार्शनिक रूपान्तर ही था जिससे प्रेरणा लेकर ही मार्क्स तथा मुसोलिनी ने अपना व्यावहारिक दर्शन रखा। यदि गम्भीरता पूर्वक देखा जाय तो बिस्मार्क (Bismarck) तथा हिटलर के कार्य के पीछे एक ही दर्शन था और वह था हीगल का, जिसके अनुसार राज्य 'पृथ्वी पर ईश्वर का साक्षात् आगमन' (March of God on earth) है।

आज के युग में मूलभूत आधारों में (Fundamental premises) एक होते हुए भी प्रादेशिक परिस्थितियों के कारण, भिन्न भिन्न देशों में सर्वाधिकारवाद ने भिन्न भिन्न रूप धारण किये हैं। सच तो यह है कि सर्वाधिकारवाद ही क्या कोई भी विचारधारा समान रूप से सब देशों में एक सी नहीं पाय सकती। कितने ही सांस्कृतिक, ऐतिहासिक तथा भौगोलिक एवं मनोवैज्ञानिक कारण उसके रूप में अनेकों अंतर पैदा कर देते हैं। वैसे तो सर्वाधिकारवादी दर्शन, मूलत जर्मन हीगलियन आदर्शवाद से जन्मा है किन्तु व्यावहारिक रूप से स्वयं जर्मनी, रूस, इटली, चीन आदि देशों में जहाँ जहाँ भी यह पहुंचा है, वहाँ वहाँ ही इसके रूप में कुछ न कुछ अन्तर है और इसी कारण इसे जर्मनी में नाजीवाद (Nazism), इटली में फासीवाद (Fascism), रूस में साम्यवाद (Communism) तथा चीन में माओइज्म (Maoism) आदि विभिन्न नामों से पुकारा जाता है। इनमें से साम्यवाद तथा फासीवाद का वर्णन हम अगले अध्यायों में करेंगे। इंगलैंड की वैधानिक तानाशाही (Constitutional Dictatorship) भी इसी का एक उदार रूपान्तर कहा जा सकता है।

अब इसके विभिन्न रूपों के अन्तरों को देखने से पहले हम यह जानना चाहिए कि सर्वाधिकारवादी सिद्धान्त क्या है तथा ऐसे राज्य के प्रमुख लक्षण कौन कौन से हैं।

सर्वाधिकारवादी सिद्धान्त

सर्वाधिकारवादी राज्य का स्वरूप तानाशाही है (The totalitarian State is *dictatorial in character*)—सर्वाधिकारवाद, प्रजातान्त्रिक सरकार तथा संसदीय *प्रणाली का घोर विरोधी है।* यह उदारतावादी विचारधारा (Liberalism) में *विश्वास नहीं करता और मानता है कि राज्य का स्वरूप एक* सर्वशक्तिमान, अजर, अमर, सर्वव्यापी तथा सर्वगुण सम्पन्नता का होना चाहिए। वह चाहता है कि सर्वोच्च राजसत्ता किसी एक व्यक्ति अथवा दल को सौंप दी जाय और फिर वह जो कुछ करे उसे करने की पूर्ण स्वाधीनता हो। उसे ऐसी सत्ता के विरुद्ध विद्रोह करना अथवा विरोध व्यक्त करना पाप है जो असह्य है। *सर्वाधिकारवादी मानते हैं कि राज्य से कभी कोई भूल नहीं हो सकती। "वह एक परमपूर्ण, चिरस्थाई और दैवी शक्ति प्रेरित* संस्था है, जिससे ऊपर कुछ भी नहीं है। क्योंकि सबकी स्थिति राज्य के भीतर है उससे बाहर तथा विरुद्ध किसी की स्थिति नहीं' (*The State is an absolute, permanent and supernaturally sanctioned Institution There is nothing* beyond the state—because all are within the state none outside the state and none against the State—Mussolini) राज्य की यह *तानाशाही* रूस में एक दल (Party) की तथा जर्मनी एवं इटली में एक व्यक्ति की तानाशाही के रूप में विकसित हुई।

२ संसदीय प्रजातन्त्र सर्वाधिकारवाद के लिए अभिशाप है (*Parliamentary* democracy is an anthem to a totalitarianism)- सर्वाधिकारवादी *प्रजातन्त्र*

की असफलता पर उसकी खिल्ली उड़ाते हैं और कहते हैं 'यह तो एक सड़ती हुई लाश है" (Democracy is a decaying corpse)। उनका मत है कि प्रजातन्त्र का युग अब समाप्त हो चुका और अनुभव ने यह सिद्ध कर दिया है कि इस संसार के आदमी अभी प्रजातन्त्र के योग्य नहीं है इसलिए प्रजातन्त्र दुनिया से एक अकाल मौत मर रहा है। उनकी धारणा है कि यह प्रजातांत्रिक प्रणाली केवल ऊपरी दिखावा मात्र है। संसदों में केवल बकवास ज्यादा होती है और लोकप्रियता (Popularity) तथा जनता के नाम पर मूर्ख अयोग्य तथा, निकम्मे आदमी मजे उड़ाते हैं और देश को भारी हानि होती है। फिर संकटकाल (Emergency) युद्ध आदि के अवसरों के लिए तो यह बिलकुल अयोग्य सरकार है। अतः सर्वाधिकारवादी चाहते हैं कि इसे बदल कर कुछ योग्य एवं बुद्धिमान व्यक्तियों के विशिष्टजन (Aristocrates) द्वारा शासन चलाया जाय, जिसको चुनने में निर्वाचन आदि प्रणाली भी काम में ली जा सकती है। इस प्रकार प्रजातन्त्र का सम्पूर्ण नाश न चाह कर भी सर्वाधिकारवाद इसके रूप में आमूल चूल परिवर्तन चाहता है।

३ सर्वाधिकारवाद बुद्धि और विवेक को अस्वीकार कर प्रवृत्तियों और स्वाभाविक प्रवृत्तियों का उपासक है (Totalitarianism rejects rationalism and glorifies instinct)—आध्यात्मिक दृष्टि से देखने पर सर्वाधिकार बुद्धि और विवेक का उचित स्थान देकर स्वाभाविक प्रवृत्तियों को अधिक महत्वपूर्ण मानता है। वह यह मान कर चलता है कि तर्कशीलता तथा बुद्धिवाद पर विश्वास करने से मनुष्य आगे नहीं बढ़ता, बल्कि उसकी सच्ची उन्नति तो तब सम्भव हो सकती है जब वह अपनी स्वाभाविक प्रेरणाओं तथा प्रवृत्तियों के अनुसार कार्य करे। इस विश्वास के कारण इसे बुद्धि विरोधी दर्शन कहा जा सकता है (Anti intellectualist Philosophy)।

४ सर्वाधिकार व्यक्तिवाद का विरोधी है (Totalitarianism is anti Individualist in character)—सर्वाधिकारवादी राज्य के तानाशाही स्वरूप से यह स्वाभाविक परिणाम निकलता है कि ऐसे राज्य में वयक्तिक स्वतन्त्रता तथा गरिमा को कोई महत्व नहीं दिया जा सकता। सर्वाधिकारवाद का यह प्रथम सिद्धान्त है कि सर्वोच्च सत्ता किसी एक व्यक्ति अथवा संस्था को दे दी जाय, जो विशाल जन समुदाय का नेतृत्व करे। राज्य का काम मार्गदर्शन करना है और अन्य व्यक्तियों का तो केवल एक ही कर्तव्य बच रहता है और वह राज्कीय आदेशों का आंख मीच कर अनुसरण करना। ऐसे राज्य में व्यक्ति की वैयक्तिकता तथा मौलिकता कोई मूल्य नहीं रखती और सार्वजनिक हित में वहां उन सबको बलिदान किया जा सकता है। साम्यवादी रूस तथा नाजी जर्मनी का इतिहास बतलाता है कि वहां व्यक्ति के खाने पीने, पढ़ने, घूमने तथा विवाह तक करने पर बन्धन है और व्यक्ति राज्य के इशारों पर एक यन्त्र की भांति कार्य करता है। इस प्रकार राष्ट्र की रक्षा के नाम पर वे व्यक्ति का सर्वस्व छीन सकते हैं।

५ **सर्वाधिकारवादी राज्य विरोध सहन नहीं कर सकता (Totalitarianism tolerates no political opposition)**—सर्वाधिकारवाद एक दल (Party) अथवा एक व्यक्ति का पूर्ण स्वामित्वपूर्ण शासन चाहता है और यह नहीं सहन कर सकता कि प्रजातन्त्रात्मक प्रणाली की भांति देश की सरकार की कदम कदम पर आलोचना की जाय और उसका विरोध हो। उनका मत है कि ऐसा करने से सरकार सुधरती नहीं है बल्कि जो कुछ वह करना चाहती है वह भी नहीं कर सकती। एक निश्चित सत्ता देश को एक निश्चित उद्देश्य तक शीघ्रता से तभी ले जा सकती है जब उसके रास्ते में किसी को रोड़े न अटकाने दिये जाय। इसलिए प्रजातन्त्र में कोई आस्था न रखते हुए वे निर्भयतापूर्वक कहते हैं कि देश में एक ही दल का शासन हो और "उस दल का विरोधी दल केवल एक ही शर्त पर बन सकता है जबकि वह स्वयं जेल में बन्द कर दिया जाय।" The opposition party can exist on the sole condition that the other party is in jail) वे समाचारपत्र, रेडियो, चलचित्र, रंगमंच, साहित्य आदि सभी पर एक नियन्त्रण रखना चाहते हैं जिसमें सरकार के विरुद्ध जनता में भ्रम न फैले और उसका उत्तर देने के लिए सरकार को व्यर्थ ही अपना अमूल्य समय तथा शक्ति न खर्च करनी पड़े।

६ **सर्वाधिकारवाद एक अति राष्ट्रीय विचारधारा है—(Totalitarianism is a Chauvanistic Creed)**—सर्वाधिकारवादी राज्य प्रायः सभी राष्ट्रीय राज्य हुए हैं और हैं। अतः वह राष्ट्रीयता की भावना पर आवश्यकता से अधिक बल देकर राष्ट्र को गौरव तथा गरिमा प्रदान करते हैं। राज्य को राष्ट्र के साथ समान मान कर वे संकीर्ण राष्ट्रीयता (Narrow nationalism) का प्रचार करते हैं और लोगों में अन्धी देशभक्ति जाग्रत करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों का जन्म होता है।

७ **सर्वाधिकारवादी राज्य सर्वोपरि संस्था है (Totalitarian State is all in all)**—सर्वाधिकारवाद इन बहुलवादी सिद्धान्त में विश्वास नहीं करता कि राज्य में राज्य की भांति समान महत्व तथा सत्ता वाले अनेकों संघ होते हैं। इसके विपरीत यह मानता है कि सर्वाधिकारवादी राज्य एक असीम सत्ताधारी राज्य है और अन्य सारे संघ जैसे स्कूल, चर्च परिवार आदि राज्य के आधीन होने चाहिए। इनमें से किसी भी राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक संघ का अस्तित्व पृथक तथा स्वतन्त्र नहीं है। ये राज्य की अनुमति से जीते हैं और उन पर एक कठोर नियन्त्रण रखने का राज्य को पूरा पूरा अधिकार है। इसके अतिरिक्त वे यह भी मानते हैं कि जीवन में बहुरूपता लाना व मानव के ऐच्छिक सुख समृद्धि के लिए घातक है।

८ **सर्वाधिकारवाद मानवीय सिद्धान्तों में विश्वास नहीं करता है (Totalitarianism does not believe in humanitarianism)**—सर्वाधिकारवादी राज्य का चित्र एक दम क्रूर व निर्दयी राज्य का चित्र है जो राष्ट्र के हितों के लिए

की असफलता पर उसकी खिल्ली उड़ाते हैं और कहते हैं "यह तो एक सड़ती हुई लाश है" (Democracy is a decaying corpse)। उनका मत है कि प्रजातन्त्र का युग अब समाप्त हो चुका और अनुभव ने यह सिद्ध कर दिया है कि इस संसार के आदमी अभी प्रजातन्त्र के योग्य नहीं हैं इसलिए प्रजातन्त्र इस दुनिया से एक अकाल मौत मर रहा है। उनकी धारणा है कि यह प्रजातान्त्रिक प्रणाली केवल ऊपरी दिखावा मात्र है। संसदों में केवल बकवास ज्यादा होती है और लोकप्रियता (Popularity) तथा जनता के नाम पर मूर्ख अयोग्य, तथा, निकम्मे आदमी मजे उड़ाते हैं और देश को भारी हानि होती है। फिर संकटकाल (Emergency) युद्ध आदि के अवसरों के लिए तो यह बिल्कुल अयोग्य सरकार है। अतः सर्वाधिकारवादी चाहते हैं कि इसे नष्ट कर कुछ योग्य एवं बुद्धिमान व्यक्तियों के विशिष्टवर्ग (Aristocrates) द्वारा शासन चलाया जाय, जिसको चुनने में निर्वाचन आदि प्रणाली भी काम में लो जा सकती है। इस प्रकार प्रजातन्त्र का समूल नाश न चाह कर भी सर्वाधिकारवाद इसके रूप में आमूल चूल परिवर्तन चाहता है।

३ सर्वाधिकारवाद बुद्धि और विवेक को अस्वीकार कर प्रवृत्तियों और स्वाभाविक प्रवृत्तियों का उपासक है (Totalitarianism rejects rationalism and glorifies instinct)—आध्यात्मिक दृष्टि से देखने पर सर्वाधिकार बुद्धि और विवेक को उचित स्थान देकर स्वाभाविक प्रवृत्तियों को अधिक महत्वपूर्ण मानता है। वह यह मान कर चलता है कि तर्कशीलता तथा बुद्धिवाद पर विश्वास करने से मनुष्य आगे नहीं बढ़ता, बल्कि उसकी सच्ची उन्नति तो तब सम्भव हो सकती है जब वह अपनी स्वाभाविक प्रेरणाओं तथा प्रवृत्तियों के अनुसार कार्य करे। इस विश्वास के कारण इसे बुद्धि विरोधी दर्शन कहा जा सकता है (Anti intellectualist Philosophy)।

४ सर्वाधिकार व्यक्तिवाद का विरोधी है (Totalitarianism is anti Individualist in character)—सर्वाधिकारवादी राज्य के तात्पर्य ही स्वरूप से यह स्वाभाविक परिणाम निकलता है कि ऐसे राज्य में वैयक्तिक स्वतन्त्रता तथा गरिमा को कोई महत्व नहीं दिया जा सकता। सर्वाधिकारवाद का यह प्रथम सिद्धान्त है कि सर्वोच्च सत्ता किसी एक व्यक्ति अथवा संस्था को दे दी जाय, जो विशाल जन समुदाय का नेतृत्व करे। राज्य का कार्य मार्गदर्शन करना है और अन्य व्यक्तियों का तो केवल एक ही कर्तव्य बच रहता है और वह राजकीय आदेशों का आँख मीच कर अनुसरण करना। ऐसे राज्य में व्यक्ति की वैयक्तिकता तथा मौलिकता कोई मूल्य नहीं रखती और सार्वजनिक हित में वहाँ उन सबों का बलिदान किया जा सकता है। साम्यवादी रूस तथा नाजी जर्मनी का इतिहास बतलाता है कि वहाँ व्यक्ति के खाने पीने, पढ़ने, घूमने तथा विवाह तक करने पर बन्धन हैं और व्यक्ति राज्य के इशारों पर एक यन्त्र की भाँति कार्य करता है। इस प्रकार राष्ट्र की रक्षा के नाम पर व्यक्ति का सर्वस्व छीन लेते हैं।

५ सर्वाधिकारवादी राज्य विरोध सहन नहीं कर सकता (Totalitarianism tolerates no political opposition)—सर्वाधिकारवाद एक दल (Party) अथवा एक व्यक्ति का पूर्ण स्वामित्वपूर्ण शासन चाहता है और यह नही सहन कर सकता कि प्रजातन्त्रात्मक प्रणाली की भांति देश की सरकार की कदम कदम पर आलोचना की जाय और उसका विरोध हो। उनका मत है कि ऐसा करने से सरकार सुधरती नही है, बल्कि जो कुछ वह करना चाहती है यह भी नही कर सकती। एक निश्चित सत्ता देश को एक निश्चित उद्देश्य की शीघ्रता से तभी ले जा सकती है जब उसके रास्ते मे किसी को रोड़े न अटकाने दिये जाय। इसलिए प्रजातन्त्र मे कोई आस्था न रखते हुए ये निर्भयतापूर्वक कहते हैं कि देश मे एक ही दल का शासन हो और "उस दल का विरोधी दल केवल एक ही शर्त पर बन सकता है जबकि वह स्वय जेल मे बन्द कर दिया जाय।" The opposition party can exist on the sole condition that the other party is in jail) वे समाचारपत्र, रेडियो, चलचित्र, रगमंच, साहित्य आदि सभी पर एक नियन्त्रण रखना चाहते है जिससे सरकार के विरुद्ध, जनता मे भ्रम न फैले और उसका उत्तर देने के लिए सरकार को व्यर्थ ही अपना अमूल्य समय तथा शक्ति न खर्च करनी पडे।

६ सर्वाधिकारवाद एक अति राष्ट्रीय विचारधारा है—(Totalitarianism is a Chauvanistic Creed)—सर्वाधिकारवादी राज्य प्राय सभी राष्ट्रीय राज्य हुए हैं और हैं। अत वह राष्ट्रीयता की भावना पर आवश्यकता से अधिक बल देकर राष्ट्र को गौरव तथा गरिमा प्रदान करते है। राज्य को राष्ट्र के साथ समान मान कर वे सकीर्ण राष्ट्रीयता (Narrow nationalism) का प्रचार करते हैं और लोगो मे अन्धी देशभक्ति जाग्रत करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप साम्राज्यवादी प्रवृत्तियो का जन्म होता है।

७ सर्वाधिकारवादी राज्य सर्वोपरि सस्था है (Totalitarian State is all in all)—सर्वाधिकारवाद उस बहुलवादी सिद्धान्त मे विश्वास नहीं करता कि राज्य मे राज्य की भांति समान महत्व तथा सत्ता वाले अनेको सघ होते है। इसके विपरीत यह मानता है कि सर्वाधिकारवादी राज्य एक असीम सत्ताधारी राज्य है और अन्य सारे सघ जैसे स्कूल, चर्च, परिवार आदि राज्य के आधीन होने चाहिए। इनमे से किसी भी नैतिक, सामाजिक शैक्षिक सघ का अस्तित्व पृथक तथा स्वतन्त्र नही है। वे राज्य की अनुमति से जीते हैं और उन पर एक कठोर नियन्त्रण रखने का राज्य को पूरा पूरा अधिकार है। इसके अतिरिक्त वे यह भी मानते हैं कि जीवन मे बहुरूपता लाने के कारण वे अधिक सघ समृद्धि के लिए घातक है।

८ सर्वाधिकारवाद मानवीय सिद्धान्तों मे विश्वास नहीं करता है (Totalitarianism does not believe in humanitarianism)—सर्वाधिकारवादी राज्य का चित्र एक बड़े क्रूर व निर्दयी राज्य का चित्र है जो राष्ट्र के हितों के

सार उदारतावादी तथा मानवतावादी सिद्धान्तों को तिलाञ्जलि देने में बिल्कुल भी नहीं हिचकता। वह एक बहिष्कारमूलक (Exclusive State) राज्य होता है और राष्ट्र की उन्नति के लिए विद्वेष, घृणा, धोखा आदि उपायों का भी आश्रय ले सकता है। सर्वाधिकारवादियों की दृष्टि में राजनीति में कोई नैतिक सिद्धान्त नहीं चलते और सत्य, आदि के सिद्धान्तों को मानने से विनाश हो सकता है। जर्मनी को एक विशाल राष्ट्र के रूप में देखने के लिए हिटलर ने अनेक ऐसे छल छद्मों से काम लिया है जो इस बात का प्रमाण हैं कि वे मकेवलियन दर्शन (Machiavellian Philosophy) के उपासक हैं।

९ सर्वाधिकारवाद धर्म का शत्रु है (Totalitarianism is anti religious dogma)—राज्य की एक सत्तात्मकता स्थापित करने के लिए सर्वाधिकारवादी धर्म को भी राज्य के आधीन रखकर एक निष्क्रिय शक्ति (A passive (movement) में बदल देना चाहते हैं। वे धर्म को राज्य के प्रतिद्वंद्वी (Rival) के रूप में स्वीकार करने के लिए कभी उद्यत नहीं हैं। जर्मनी, इटली तथा रूस तीनों देशों में उसके महत्व को कम करने के लिए तरह-तरह के उपाय काम में लाये गये हैं। स्पेंडर ने एक स्थान पर लिखा है कि "रूस ने धर्म को समाप्त करने की चेष्टा की, मुसोलिनी ने उसे निष्प्राण बनाने की तथा हिटलर ने उसे आधीन करने की।"

१० सर्वाधिकारवाद एक आन्दोलन है (Totalitarianism is a mass movement)—इस मान्यता को स्वीकार करने में लेखकों के विभिन्न मत हो सकते हैं किन्तु यह सर्व सम्मत अवश्य है कि चाहे वह जन आन्दोलन हो अथवा न हो तीनों ही सर्वाधिकारवादी राज्यों ने उसे एक जन आन्दोलन के रूप में दिखाने का प्रयास अवश्य किया है। साम्यवादी तथा नाजी एवं फासिस्ट तीनों का ही दावा है कि उनकी सरकार के पीछे वहाँ की जनता का पूरा पूरा सहयोग है। आरम्भ में अधिकतम विचारक इसे सत्य न मानकर इन सर्वाधिकारवादी राज्यों को कुछ लोगों के षड्यन्त्र पर आधारित मानते थे, पर समय यह सिद्ध करता जा रहा है कि निरन्तर अपने उद्देश्य में एक निष्ठा से लगे रहने के कारण, आरम्भ में जन प्रीति न होने हुए भी वे आज प्रजातन्त्रात्मक राज्यों की तुलना में कम लोकप्रिय राज्य नहीं हैं। सच चाहे कुछ भी है यह बुद्धि सगत अवश्य है कि जिस अल्पकाल में रूस और जर्मनी ने उन्नति करके दिखाई है वह बिना जन सहयोग के असम्भव थी।

सर्वाधिकारवाद का मूल्यांकन (Evaluation)—उपरोक्त सर्वाधिकारवादी दर्शन का यदि गहराई से अध्ययन किया जाय और उसे विगत अतीत में सर्वाधिकारवाद द्वारा प्राप्त सफलताओं की पृष्ठभूमि में देखा जाय, तो यह स्पष्ट है कि सर्वाधिकारवाद एक जीवित दर्शन है जो आज के दिन भी विश्व की आधी से अधिक जनसंख्या द्वारा मान्यता प्राप्त है। इसके गुणों तथा महत्त्व का प्रतिपादन करने के लिए हम इसमें से निम्नलिखित ग्राह्य विचार ढूँढ सकते हैं।

१ यह एक यथार्थतावादी दर्शन है (It is a reality philosophy)—सर्वाधिकारवाद के पक्ष मे सबसे प्रबल बात यही है कि यह एक व्यावहारिक दर्शन (practical philosophy) है, जो जीवन तथा समाज की जटिल यथार्थताओ के लिए समाधान उपस्थित करता है। इस समस्त दर्शन का एक भी तत्व काल्पनिक नही है बल्कि सच तो यह है कि वह दर्शन बाद मे बना है और एक यथार्थता पहले है। जर्मन आदर्शवादियो की भांति वे राज्य को सब शक्तिमान इस आधार पर नही मानते कि यह नैतिक सृष्टा है, बल्कि इसलिए कि विरोध आदि होने पर प्रशासनिक व्यवस्था (Administrative system) शिथिल हो जाता है।

२ यह देश भक्ति की भावना जागृत करता है (It is a patriotic philosophy)—प्रत्येक व्यक्ति मे राष्ट्रीय भावना के साथ साथ देशभक्ति के अकुरो को वर्द्धित करने के कारण सर्वाधिकारवाद एक मूल्यवान सिद्धान्त माना जाता है। राष्ट्र के उत्थान के लिए नागरिको का देशभक्त होना चाहिए और सर्वाधिकारवाद उन्हे ऐसा बनाये रखने के लिए प्रयत्न करता है जिसमे देश मे एकता रहती है।

३ ऐसी सरकारें कार्य कुशल सरकारें होती हैं (Totalitarian regimes are efficiency regimes)—सर्वाधिकारवाद यह मानकर चलता है कि सिद्धातो की अपेक्षा जीवन की वास्तविकतायें ज्यादा महत्वपूर्ण हैं। राज्य मे भ्रष्टाचार, भूख तथा कार्य कुशलता का अभाव है तो जनमत, मूल अधिकार तथा ससदीय प्रजातन्त्र सब केवल दिखावटी ढकोसला मात्र है। सुखी जीवन की आवश्यकतायें व्यक्ति के लिए जुटाना सरकार के लिए सिद्धातो की रक्षा की अपेक्षा अधिक जरूरी है। सर्वाधिकारवाद इस पर सही बल देता है और रूस जर्मनी आदि के उदाहरण यह सिद्ध करते है कि वहाँ की सरकारें अधिक कार्य कुशल (Efficiency regimes) हुई हैं।

४ प्रजातन्त्र निश्चय ही दोष पूर्ण हैं (It exposes the evils of democracy) —सर्वाधिकारवाद ने एक प्रकार से अपनी विजय के जयघोष द्वारा प्रजातन्त्र की मृत्यु की घोषणा कर दी है। यथार्थ मे आज के युग व्यवहारिक रूप मे आने पर प्रजातन्त्र पूर्णत दोषपूर्ण एव अनुपयुक्त हो गया है। अत सर्वाधिकारवादी यह सिद्धान्त कि "प्रजातन्त्र को अब अधिक समय तक थोपना उसकी शव परीक्षा करना है' (The imposition of democracy is its post martum) सत्य प्रतीत होता है।

सर्वाधिकारवाद की आलोचना (Criticism of Totalitarianism)—आज का युग यद्यपि सर्वाधिकारवाद की ओर दिन प्रति दिन बढता जा रहा है, किन्तु फिर भी वर्तमान काल मे प्रजातन्त्र के उन प्रशसको की कमी नहीं है जो इस सिद्धान्त के एक एक अश की आलोचना मे ढेरो रचनाये लिख चुके हैं। अनुभव के आधार पर इन आलोचको का मत है कि सर्वाधिकारवाद की प्रजातन्त्र पर विजय मनुष्य की पशुता की उसकी मानवता पर विजय है और यदि दुर्भाग्य से सर्वाधिकारवाद एक विश्वव्यापी विचारधारा बन गया तो हम सभ्यता के युग से फिर बर्बर एव अध

विकसित जंगलीपन मे पहुच जायगे। इन आलोचकों का इस सिद्धान्त की मूलाधार शिलाओं से ही विरोध है और उनकी आलोचना में वे निम्नलिखित तर्क उपस्थित करते हैं —

१ सर्वाधिकारवाद एक अमानवीय दर्शन है। (An inhuman 'Philosophy)—आलोचकों का कहना है कि जो सिद्धान्त मनुष्य को मनुष्य मान कर नहीं चलता वह उसके लिए कदापि उपयुक्त नही हो सकता। मनुष्य एक यन्त्र नहीं है जो केवल पेट भरने पर ही चलता हो। वह एक बुद्धिवादी विवेकशील प्राणी है, जो प्रत्येक कार्य को कितनी ही उच्च भावनाओ तथा प्रेरणाओ से प्रेरित होकर करता है। सर्वाधिकारवाद बुद्धिवाद का विरोधी है अत उसे बुद्धिवादी युग में बुद्धिवादी समाज की विचारधारा के रूप मे कभी भी स्वीकृत नही किया जा सकता। नैतिकता के विरुद्ध सर्वाधिकारवादी छल छद्म तथा चालाकी का उपदेश देते हैं, जो किसी भी विवेकशील तथा नैतिक मूल्यो वाले व्यक्ति द्वारा स्वीकार नहीं किये जायँगे।

२ सर्वाधिकारवाद साम्राज्यवादी है (Totalitarianism is Imperialistic)—अति राष्ट्रीय अथवा उग्रराष्ट्रीय होने के कारण सर्वाधिकारवाद अन्तर्राष्ट्रीयता में विश्वास नही करता, बल्कि अपने देश और राष्ट्र की समृद्धि के लिए अन्य राष्ट्रों का शोषण करना चाहता है। यह एक महान स्वार्थी तथा भयङ्कर सिद्धान्त है, जिसके कारण हजारों व्यक्ति युद्धों मे प्राण दे चुके हैं और लाखों की संख्या में आज भी उपनिवेशवाद (Colonialism) के पंजो के नीचे कराह रहे हैं। जब राष्ट्रीयता अन्धी हो जाती है तो वह इस नारे मे विश्वास करने लगती है "मेरा देश-चाहे सही हो अथवा गलत" (My country right or wrong) इसी उत्तेजनात्मक नारे की आड मे मुसोलिनी ने इथोपिया को जीता, हिटलर पोलण्ड को लेता लेता जैकोस्लेवाकिया भी मागने लग गया। सच पूछा जाय तो प्रथम विश्वयुद्ध के बाद बढने वाली इस सर्वाधिकारवादी विचारधारा ने ही यूरोप द्वारा एशिया तथा अफ्रीका का शोषण करवाया है और दूसरे महायुद्ध का भी कारण यही प्रवृत्ति थी। यदि यह विचारधारा भविष्य में पनपती रही तो हो सकता है कि तृतीय विश्व युद्ध का भय, भी एक दिन वास्तविकता म बदल जाय।

३ सर्वाधिकारवादी राज्य दासों का समाज है (Totalitarian State conceives a Society of Slaves)—कोई भी विचारशील व्यक्ति इस तर्क को स्वीकार नही कर सकता कि राज्य की कार्यकुशलता तथा सामूहिक हित की रक्षा के लिए एक व्यक्ति कोई मूल्य नही रखता, अत उसे कुचला जा सकता है। ये शब्द इस सभ्य समाज के लिए उपयुक्त नहीं हैं। यह माना कि राष्ट्रीय हित को प्राथमिकता दी जाय, किन्तु व्यक्ति को राज्य के सारे कार्य एक निर्जीव एव चेतनाहीन प्राणी की तरह देखने दिए जाँय, उसकी मानवता का अपमान है। उसका एक व्यक्तित्व है, जिसे नियन्त्रित करने का अधिकार किसी भी सभ्य राज्य को नहीं होना चाहिए। यदि राज्य उसके खाने, पीने, बोलने तथा घूमने मे दखल देता है तो उसकी

स्थिति तथा एक यूनानी युग के दास (Slave) की स्थिति में क्या अन्तर है ? व्यक्ति को राज्य के संकेतों पर नाचने वाला एक खिलौना मात्र समझना, एक भूल है, जिसे सभ्यता के विकास की गति को उलटा करना कहा जा सकता है।

४ विचार स्वातन्त्र्य एक मौलिक प्रवृत्ति है (Freedom of Expression is a Spontaneous impulse)—समाज का प्रत्येक सदस्य जीने के लिए नहीं जीता वह एक सुन्दर तथा सुखी जीवन बिताने को जीता है। इस सुन्दर जीवन को बिताने के लिए, अपने स्वतन्त्र विचारों की अभिव्यक्ति अनिवार्य है। सर्वाधिकारवाद विचार स्वातन्त्र्य पर बन्धन लगाता है तथा राज्य के विरुद्ध किसी भी प्रकार का विरोध करने का अधिकार नहीं देता। प्रेस, रेडियो, चलचित्र तथा साहित्य आदि कठोर निरीक्षण तथा नियन्त्रण, ऐसे राज्य में व्यक्ति की अपनी मौलिकता तथा निष्पक्ष विचार वृत्ति को विकसित नहीं होने देता। डा० गोबिल्स के शब्दों में "ऐसे राज्य में प्रेस एक पियानो बना दी जाती है, जिस पर प्रचार मन्त्रालय अपनी इच्छित धुनें बजाते हैं।" (Press is developed into a piano on which the propaganda ministry plays any tune it likes) इस आदि सर्वाधिकारीवादी देशों में आज भी व्यक्ति को यह अधिकार नहीं है जिसके कारण वहां की कला, संस्कृति, तथा साहित्य कुछ कुछ सड़न से लग गये हैं।

५ सर्वाधिकारवाद एक शांतिप्रिय विचारधारा नहीं है (Totalitarianism is not a pacifist philosophy)—सर्वाधिकारवादी सभी विचारधारायें 'राष्ट्रीय हितों की रक्षा के लिए युद्ध की स्वीकृति देती हैं। फासिस्ट मुसोलिनी के शब्दों में "युद्ध पुरुष के लिए ऐसे ही स्वाभाविक है जैसे नारी के लिए मातृत्व।" (War is to man what maternity is to woman) उसने 'विश्वशान्ति को कायरों का एक स्वप्न कहा है" (World peace is a dream of the cowards) वह यह भी मानता है कि पड़ोसियों पर आक्रमण कर अपने देश का क्षेत्रफल बढ़ाना आवश्यक है (Italy musts expand or perish)। इसी प्रकार रूसी साम्यवादी भी अपनी विचारधारा को अन्तर्राष्ट्रीय बनाने के लिए सब कुछ बलिदान करने के लिए तैयार हैं। इस कारण हम कह सकते हैं कि यह एक भयंकर ही नहीं बल्कि विनाशकारी विचारधारा है जिसे एटम और हाइड्रोजन के युग में रहने वाला मानव कभी भी तथा किसी भी कीमत पर स्वीकार नहीं कर सकता।

६ सर्वाधिकारवाद प्रजातन्त्र का एक अतिरञ्जित चित्र प्रस्तुत करता है (Totalitarianism presents an exaggerated picture of democracy)—आलोचकों का मत है कि सर्वाधिकारवादियों ने जो प्रजातन्त्र में दुर्गुण बतलाये हैं वे बहुत कुछ सिद्धान्तों के भ्रान्त अध्ययन पर आधारित हैं। कितनी ही त्रुटियां होते हुए भी प्रजातन्त्र एक सर्वोत्तम शासन प्रणाली है, जिसकी मानव मस्तिष्क कल्पना कर सकता है। सर्वाधिकारवादी राज्य की तुलना में वह दोषपूर्ण होते हुए भी काफी

विकसित जगलीपन मे पहुच जायेंगे। इन आलोचको का इस सिद्धान्त की मूलाधार शिलाओं से ही विरोध है और उनकी आलोचना में वे निम्नलिखित तर्क उपस्थित करते हैं —

१ सर्वाधिकारवाद एक अमानवीय दर्शन है। (An Inhuman Philosophy)—आलोचको का कहना है कि जो सिद्धान्त मनुष्य को मनुष्य मान कर नहीं चलता वह उसके लिए कदापि उपयुक्त नही हो सकता। मनुष्य एक यन्त्र नहीं है जो केवल पेट भरने पर ही चलता हो। वह एक बुद्धिवादी विवेकशील प्राणी है, जो प्रत्येक कार्य को कितनी ही उच्च भावनाओ तथा प्रेरणाओ से प्रेरित होकर करता है। सर्वाधिकारवाद बुद्धिवाद का विरोधी है अत उसे बुद्धिवादी युग मे बुद्धिवादी समाज की विचारधारा के रूप मे कभी भी स्वीकृत नही किया जा सकता। नैतिकता के विरुद्ध सर्वाधिकारवादी छल कपट तथा चालाकी का उपदेश देते हैं, जो किसी भी विवेकशील तथा नैतिक मूल्यो वाले व्यक्ति द्वारा स्वीकार नही किये जायेंगे।

२ सर्वाधिकारवाद साम्राज्यवादी है (Totalitarianism is Imperialistic)—अति राष्ट्रीय अथवा उग्रराष्ट्रीय होने के कारण सर्वाधिकारवाद अन्तर्राष्ट्रीयता में विश्वास नही करता, बल्कि अपने देश और राष्ट्र की समृद्धि के लिए अन्य राष्ट्रो का शोषण करना चाहता है। यह एक महान स्वार्थी तथा भयङ्कर सिद्धान्त है, जिसके कारण हजारो व्यक्ति युद्धो मे प्राण दे चुके हैं और लाखो की सख्या म आज भी उपनिवेशवाद (Colonialism) के पजो के नीचे कराह रहे हैं। जब राष्ट्रीयता अन्धी हो जाती है तो वह इस नारे मे विश्वास करने लगती है "मेरा देश चाहे सही हो अथवा गलत" (My country right or wrong) इसी उत्तेजनात्मक नारे की आड म मुसोलिनी ने इथोपिया को जीता, हिटलर पोलण्ड को लेता लेता जैकोसलेवाकिया भी मागने लग गया। सच पूछा जाय तो प्रथम विश्वयुद्ध के बाद बढने वाली इस सर्वाधिकारवादी विचारधारा ने ही यूरोप द्वारा एशिया तथा अफ्रीका का शोषण करवाया है और दूसरे महायुद्ध का भी कारण यही प्रवृत्ति थी। यदि यह विचारधारा भविष्य म पनपती रही तो हो सकता है कि तृतीय विश्व-युद्ध का भय भी एक दिन वास्तविकता म बदल जाय।

३ सर्वाधिकारवादी राज्य दासों का समाज है (Totalitarian State conceives a Society of Slaves)—कोई भी विचारशील व्यक्ति इस तर्क को स्वीकार नही कर सकता कि राज्य की कार्यकुशलता तथा सामूहिक हित की रक्षा के लिए एक व्यक्ति कोई मूल्य नहीं रखता, अत उसे कुचला जा सकता है। ये शब्द इस सभ्य समाज के लिए उपयुक्त नहीं हैं। यह माना कि राष्ट्रीय हित को प्राथमिकता दी जाय, किन्तु व्यक्ति को राज्य के सारे कार्य एक निर्जीव एवं चेतनाहीन प्राणी की तरह देखने दिए जाय, उसकी मानवता का अपमान है। उसका एक व्यक्तित्व है, जिसे नियन्त्रित करने का अधिकार किसी भी सभ्य राज्य को नही होना चाहिए। यदि राज्य उसके खाने, पीने, बोलने तथा घूमने में दखल देता है तो उसकी

स्थिति तथा एक यूनानी युग के दास (Slave) की स्थिति में क्या अन्तर है ? व्यक्ति को राज्य के संकेत पर नाचने वाला एक खिलौना मात्र समझना, एक भूल है, जिसे सभ्यता के विकास की गति को उलटा करना कहा जा सकता है।

४ विचार स्वातन्त्र्य एक मौलिक प्रवृत्ति है (Freedom of Expression is a Spontaneous impulse)—समाज का प्रत्येक सदस्य जीने के लिए नहीं जीता वह एक सुन्दर तथा सुखी जीवन बिताने को जीता है। इस सुन्दर जीवन को बिताने के लिए, अपने स्वतन्त्र विचारों की अभिव्यक्ति अनिवार्य है। सर्वाधिकारवाद विचार स्वातन्त्र्य पर बन्धन लगाता है, तथा राज्य के विरुद्ध किसी भी प्रकार का विरोध करने का अधिकार नहीं देता। प्रेस, रेडियो, चलचित्र तथा साहित्य आदि कठोर निरीक्षण तथा नियन्त्रण, ऐसे राज्य में व्यक्ति को अपनी मौलिकता तथा निष्पक्ष विचार वृत्ति को विकसित नहीं होने देता। डा० गोबिन्स के शब्दों में "ऐसे राज्य में प्रेस एक पियानो बना दी जाती है जिस पर प्रचार मन्त्रालय अपनी इच्छित धुनें बजाते हैं।" (Press is developed into a piano on which the propaganda ministry plays any tune it likes) रूस आदि सर्वाधिकारीवादी देशों में आज भी व्यक्ति को यह अधिकार नहीं है, जिसके कारण वहाँ की कला, संस्कृति, तथा साहित्य कुछ कुछ सड़ने से लग गये हैं।

५ सर्वाधिकारवाद एक शांतिप्रिय विचारधारा नहीं है (Totalitarianism is not a pacifist philosophy)—सर्वाधिकारवादी सभी विचारधारायें राष्ट्रीय हितों की रक्षा के लिए युद्ध की स्वीकृति देती हैं। फासिस्ट मुसोलिनी के शब्दों में "युद्ध पुरुष के लिए ऐसे ही स्वाभाविक है जैसे नारी के लिए मातृत्व।" (War is to man what maternity is to woman) उसने 'विश्वशान्ति को कायरों का एक स्वप्न कहा है" (World peace is a dream of the cowards) वह यह भी मानता है कि पड़ोसियों पर आक्रमण कर अपने देश का क्षेत्रफल बढ़ाना आवश्यक है (Italy musts expand or perish)। इसी प्रकार रूसी साम्यवादी भी अपनी विचारधारा को अन्तर्राष्ट्रीय बनाने के लिए सब कुछ बलिदान करने के लिए तैयार हैं। इस कारण हम कह सकते हैं कि यह एक भयंकर ही नहीं बल्कि विनाशकारी विचारधारा है जिसे एटम और हाइड्रोजन के युग में रहने वाला मानव कभी भी तथा किसी भी कीमत पर स्वीकार नहीं कर सकता।

६ सर्वाधिकारवाद प्रजातन्त्र का एक अतिरञ्जित चित्र प्रस्तुत करता है (Totalitarianism presents an exaggerated picture of democracy)—आलोचकों का मत है कि सर्वाधिकारवादियों ने जो प्रजातन्त्र में दुर्गुण बतलाये हैं, वे बहुत कुछ, सिद्धान्तों के भ्रान्त अध्ययन पर आधारित हैं। कितनी ही त्रुटियाँ होते हुए भी प्रजातन्त्र एक सर्वोत्तम शासन प्रणाली है, जिसकी मानव मस्तिष्क कल्पना कर सकता है। सर्वाधिकारवादी राज्य की तुलना में वह दोषपूर्ण होते हुए भी काफी

सबल तथा विचारपूर्ण लगती है। यदि उसमें कुछ त्रुटियाँ घर कर गई हैं, तो उनके कारण निराशावादी होकर हमें विनाशमार्ग को नहीं चुनना है। वास्तव में प्रजातन्त्र मरा नहीं है, वह बीमार जरूर है अतः उसके मरने से पहले, उसका इलाज कराने के बदले कोई भी दत्तक (गोद) लेना एक बहुत बड़ी मूर्खता होगी।

भविष्य (Future)—सर्वाधिकारवाद का मूल्य निर्धारित करते समय हम उसकी सफलताओं को जरूर ध्यान में रखना चाहिए। सर्वाधिकारवाद का घोर से घोर आलोचक भी इसे अस्वीकार नहीं कर सकता कि इन राज्यों ने जनकल्याण के लिए अनवरत साधना द्वारा बहुत कुछ प्राप्त किया है तथा सभी क्षेत्रों में इनकी सफलतायें विस्मयकारिणी हैं। किन्तु यदि ध्यान से देखा जाय तो लिण्डसे (Lindsay) के शब्दों में "वह कल्याण उस मूल्य के सामने कुछ भी नहीं है जो जनता को उस कल्याण के लिए चुकाना पड़ा है।" राज्य और समाज के नाम पर व्यक्तियों के साथ जो जो अनाचार तथा अमानवीय घटनायें हुई हैं, वे इतिहासकारों का विषय हैं। जर्मनी जिसे हिटलर ने कुछ समय के लिए प्रसिद्धि के उच्चतम शिखर पर पहुँचा दिया था, केवल एक ही झटके में इस तरह विनष्ट हो गया कि आज तक भी उसकी कीमत जर्मनी के गरीब किसान और मजदूर नहीं चुका पाये हैं। रूस तथा चीन आदि की प्रगति के विषय में कुछ भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। किन्तु यह मानना होगा कि इस विचारधारा में एक बहुत तीव्र उत्तेजना तथा आकर्षण है। विवशताओं के कारण आधे से अधिक विश्व इस आत्मसमर्पण (Surrender) कर चुका है अब देखना यह है कि हम प्राचीन इतिहास से कुछ शिक्षा लेते हैं अथवा अपनी पीढ़ी का एक नया ही इतिहास लिखते हैं।

साम्यवाद

(Communism)

अपनी सुप्रसिद्ध रचना "राजनीति शास्त्र" में प्रो० सी० ई० एम० जोड (Joad) ने लिखा है कि "साम्यवाद एक ऐसा शब्द है जिसके अनेकों अर्थ हैं।" (Communism is a term with many different meanings)। कुछ लोग इसे एक सर्वाधिकारवादी समाज का दर्शन मानते हैं। कुछ का मत है कि यह समाजवाद का ही एक विकसित रूप है तथा वस्त्र आदि जीवन की दैनिक आवश्यकतायें प्रत्येक व्यक्ति को सुगमता पूर्वक उपलब्ध हो सकेंगी। यथार्थ में इस साम्यवादी दर्शन के शास्त्रीय दृष्टि से संस्थापक कार्ल मार्क्स तथा एंजिल्स हैं तथा लेनिन और स्टालिन ऐसे दो महान रूसी राजनीतिज्ञ हुए हैं, जिन्होंने उनके द्वारा बताये गये इन साम्यवादी सिद्धान्तों पर चलकर, सर्वप्रथम इसे एक व्यावहारिक दर्शन (Practical philosophy) बनाने के लिए यत्न किया है। इन दो जर्मन विचारकों द्वारा लिखा गया (Communist Manifesto) वह प्रथम महत्वपूर्ण ग्रन्थ है, जिसमें साम्यवादी सिद्धान्तों का निरूपण अत्यन्त ही स्पष्ट एवं प्रभावपूर्ण ढंग से किया गया है। यह रचना एक प्रकार से साम्यवाद की बाइबिल है, जिसके अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि आधुनिक साम्यवाद वर्तमान युग के असमानता पूर्ण पूंजीवाद के विरुद्ध एक रोषपूर्ण प्रतिक्रिया है जो श्रमिक राज्य के माध्यम द्वारा, वर्तमान युग की वैषम्य एवं अत्याचार पूर्ण प्राचीरों को ध्वस्त कर एक वर्गहीन तथा राज्यहीन समाज की स्थापना चाहता है। इस प्रकार साम्यवादी व्यवस्था का उद्देश्य सामाजिक विकास की उस चरम परिणति को प्राप्त करना है, जहाँ ऊँच-नीच और छोटे बड़े का भेद भाव न हो, तथा जीवन की आवश्यकतायें इतनी सुगमता से सुलभ हों कि राज्यहीन स्थिति में रहते हुए भी एक व्यक्ति स्वस्थ जीवन का निर्माण कर सके। यहाँ आकर साम्यवाद अपने उद्देश्य में अराजकतावाद बन जाता है, जिसे दूसरे शब्दों में यों भी कहा जा सकता है कि जहाँ साम्यवाद समाप्त होता है वहाँ से अराजकतावाद का आरम्भ है। किन्तु एक ओर जहाँ अराजकतावाद राज्यहीन समाज को एक प्राप्त वस्तु मानकर चलता है (Takes for granted) वहाँ दूसरी ओर साम्यवाद उस राज्यहीन स्थिति तक पहुँचने के मार्ग का निर्देश करता है। अपने आदर्श अराजकतावाद को पाने के लिए ही साम्यवाद एक प्रणाली विशेष पर बल देता है और इसीलिए इसे एक "प्रणाली सिद्धान्त" भी (Theory of method) कहते हैं। जोड के शब्दों में "अराजकता एक ऐसे समाज से

सम्बन्धित है, जिसे वह स्थापित करना चाहता है, किन्तु साम्यवाद की प्रबल समस्या यह है कि इस प्रकार का समाज किस प्रकार से लाया जाय।" (Anarchists are concerned with that kind of society which they desire to see established, while Communism is occupied with the problem of how to bring about that kind of Society) साम्यवाद आज की पूँजीवादी व्यवस्था को नष्ट करना चाहता है और इस पूँजीवाद की अवस्था से समाज किस प्रकार एक समाजवादी अथवा अन्त मे अराजकतावादी स्थिति तक पहुँचेगा, यही इस विचारधारा का विवेच्य विषय है।

इतिहास (History)—साम्यवाद कोई आधुनिक अथवा नवीन दर्शन नहीं है। प्रसिद्ध यीक दार्शनिक प्लेटो ने अपनी रचना "रिपब्लिक" मे दार्शनिक शासक (Philosopher king) के सिद्धान्त के साथ-साथ सम्पत्ति तथा नारी समाज मे साम्यवादी व्यवस्था का प्रतिपादन किया था यद्यपि यह प्लेटोनिक साम्यवाद आधुनिक साम्यवाद से सर्वथा भिन्न था और केवल शासक वर्ग के ही लिए दार्शनिक आधारों पर निर्धारित (Prescribed) किया गया था। किन्तु इसी से प्रेरणा लेकर वर्तमान युग में अनेको साम्यवादी रचनाये लिखी गई। मूर (Moore) की (Utopia) एक ऐसी ही रचना है जो साम्यवादी व्यवस्था का चित्रण करती है। हैरिंगटन (Harrington) तथा कैम्पवेल (Campbel) आदि की कुछ रचनाओ में भी साम्यवादी समाज के चित्र मिलते हैं। किन्तु ये सब साम्यवादी चित्र आदर्शात्मक अधिक हैं और केवल दर्शन का विषय हैं। आधुनिक साम्यवाद अपनी प्रेरणा के मूल स्रोत इनसे लेते हुए भी एक उग्र व्यावहारिक तथा यथार्थवादी विचारधारा है, जो चिन्तन से अधिक कार्य पर बल देती है और कार्य करने के लिये एक निश्चित मार्ग का निर्देश करती है।

साम्यवादी सिद्धान्त (Communist Philosophy)—आधुनिक साम्यवादी दर्शन का आदि प्रणेता, संस्थापक तथा व्याख्याकर्ता कार्ल मार्क्स है, जिसकी अमर रचनायें "दास केपिटल" तथा "कम्यूनिस्ट मेनीफेस्टो" से इस सारे सिद्धान्त का उद्गम हुआ है। इन ग्रन्थों मे मार्क्स तथा एंजिल्स ने इतिहास को एक स्वतन्त्र दृष्टि से देखते हुए, उसकी भौतिकवादी व्याख्या की है। इतिहास के अपने अध्ययन मे उन्होंने एक अनवरत चलते रहने वाले वर्गयुद्ध (Class war) को देखा है और उनकी यह मान्यता है कि आधुनिक पूँजीवाद समाज, बहुत शीघ्र ही एक स्वाभाविक मौत (Natural death) मर जायगा। इस कारण वे चिर शोषित श्रमिक वर्ग को पूँजीवाद के विरुद्ध उसकी जीत का आश्वासन देते हुए उसके सम्मुख एक रचनात्मक कार्यक्रम (Constructive programme) रखते हैं जिसको क्रियान्वित (Implement) कर वे अपनी दीर्घकालीन दासता का अन्त तथा एक सुखी, स्वस्थ एवं सुन्दर समाज का निर्माण कर सकते हैं।

१ साम्यवादी इतिहास का अध्ययन भौतिकवादी है (Materialistic Interpretation of History)—मार्क्स एक घोर यथार्थवादी (A rank realist)

था। उसकी यह दृढ धारणा थी कि मनुष्य जीवन जितना आर्थिक विचारों (Economic considerations) से प्रभावित होता है उतना अन्य किसी सामाजिक, नैतिक अथवा सांस्कृतिक समस्याओं से प्रभावित नहीं होता। ये आर्थिक विचार उसके जीवन के प्रत्येक कार्य अथवा क्रिया के पीछे प्रेरणात्मक रूप में (Motivating force) छुपे रहते है, और धर्म, नीति, आचार विहार आदि जो भी कार्य वह करता है उसमें पहले यह देख लेता है कि इससे उसे आर्थिक लाभ होगा अथवा हानि। इसी सिद्धान्त को सामने रख कर मार्क्स ने इतिहास का अध्ययन किया और इतिहास की क्रान्तियों तथा आकस्मिक परिवर्तनों आदि के कारणों को देख कर वह इसी निर्णय पर पहुंचा कि "मनुष्य जाति की प्रगति विचारों द्वारा न होकर आर्थिक परिवर्तनों द्वारा ही हुई है।" (Human progress is determined not by human ideas but by economic developments) उसका यह मत है कि इतिहास में केवल एक ही परिवर्तनकारी तत्व है और वह है आर्थिक समस्या। इसलिए यदि किसी भी ऐतिहासिक क्रान्ति का कारण ढूंढना है तो, उस देश अथवा राष्ट्र का रूखा राजा महाराजाओं का इतिहास (Drum and battle history) मत पढ़ो, बल्कि वहाँ की आर्थिक व्यवस्था का विस्तृत अध्ययन करो। उदाहरण के लिए यदि फ्रांस की राज्य क्रान्ति (French Revolution), रूस के बोलशेविक का दलन तथा अमेरिका में दासप्रथा का अन्त, आदि युग परिवर्तनकारी घटनाओं का कारण जानना है तो किसी लुई, जार अथवा लिंकन को पढ़ने से काम नहीं चलेगा, बल्कि यह देखना होगा कि वहाँ की जनता किस प्रकार भूखी तथा नंगी रहकर उन हृदयहीन अमीरों के विलास के साधन जुटा रही थी। इस प्रकार मार्क्स द्वारा दी गई इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या कि "इतिहास का प्रत्येक परिवर्तन तथा विश्वास वहाँ की जनता के आर्थिक स्वार्थों तथा वर्ग स्वार्थों के साथ सम्बद्ध है" (Every movement or belief in history is to be explained by the economic interest or class interest of the people concerned) साम्यवादी दर्शन का आरम्भ बिंदु है।

साम्यवाद वर्ग युद्ध में विश्वास करता है (Communism believes in class war)—इतिहास के भौतिकवादी अध्ययन द्वारा मार्क्स यह निर्णय करता है कि समाज में आर्थिक विषमता के कारण सदैव से दो वर्ग रहे है, एक धनिक वर्ग तथा दूसरा श्रमिक वर्ग जिसे वह दूसरे शब्दों में सम्पत्तिहीन (Haves and Havenots) भी कहता है। ये दोनों वर्ग आर्थिक दृष्टि से एक दूसरे के बिलकुल विपरीत हैं और परस्पर में एक दूसरे को अपना शत्रु समझते है। मार्क्स का ऐतिहासिक अध्ययन के आधार पर यह मत है कि ये दो विरोधी वर्ग प्रत्येक समाज में आदि काल से रहते आये हैं और इन दोनों में सदैव से ही संघर्ष चलता रहा है। पूंजीवादी वर्ग (Haves class) सदैव से उत्पादन के साधनों का स्वामी रहा है और श्रमिक वर्ग अपनी दरिद्रता के कारण विवश होकर इस वर्ग को बहुत सस्ते दामों पर अपना श्रम बेचता रहा है, जिसके परिणाम स्वरूप धनिक और भी अधिक धनवान हो गये हैं और सारी

सम्पत्ति उनके हाथों मे केन्द्रित हो गई है। (Centralisation of Capital) श्रमिक वर्ग की दरिद्रता इससे और भी अधिक बढ़ी है और इस कारण ज्यों ज्यों मानव समाज म चेतना आती जा रही है, त्यां-त्यां ही श्रमिक वर्ग इस पूंजीवादी शोषण के विरुद्ध लड़ते चले आ रहे हैं और एक अनवरत वर्ग युद्ध प्रत्येक समाज म सदैव चलता रहता है।

3 मार्क्स ने अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है (**Marx has propounded the theory of Surplus Value**)—इन दो वर्गों म चलने वाले इस सतत संघर्ष का मूल कारण मार्क्स ने अपने 'अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त (Theory of Surplus Value) मे दिया है। उसका तर्क इस प्रकार है कि प्रत्येक वस्तु का मूल्य, उस पर खर्च किये गये श्रम के अनुसार होता है। जिस वस्तु पर हम जितना कम श्रम करना पड़ता है, वह उतनी ही सस्ती होती है। उदाहरण के लिये एक घड़ी को बनाने म एक मजदूर काफी परिश्रम करता है, इसलिए उसका मूल्य भी सस्ता नहीं है, जबकि एक फाउन्टेनपेन को बनाने म उसे उससे कम मेहनत करनी पड़ती है, अतः वह मूल्य म घड़ी से सस्ता होता है। हवा को प्राप्त करने के लिये मनुष्य को कोई मेहनत नहीं करनी पड़ती, अतः वह मुफ्त म मिलती है। तात्पर्य यह कि प्रत्येक वस्तु को उसका मूल्य देने वाला, उसके श्रमिक का श्रम है तथा जिस कीमत पर वह बाजार म बिकती है, उसम बहुत अन्तर है। मार्क्स इस अन्तर को वस्तु का अतिरिक्त मूल्य (Surplus Value) मानता है जिसे बिना कुछ किये ही मालदार पूंजीपति बीच म ही हड़प जाता है। उदाहरण के लिए फ्लेक्स फैक्ट्री म यदि एक मजदूर एक जूता जोड़ा बनाता है तो उसे आठ रुपये मिलते हैं, और मानलो उस जूते जोड़े मे लगने वाली सामग्री की कीमत दस रुपया है, किन्तु वह जूता बाजार म पच्चीस रुपये का बिकता है, इस प्रकार अठारह रुपये निकाल देने के बाद सात रुपये उस जूते का अतिरिक्त मूल्य है, जिसे फैक्ट्री का मालिक पूंजीपति बिना हाथ पैर हिलाये हड़प जाता है। ईमानदारी से यह सब मजदूर का ही मिलना चाहिए था, किन्तु मजदूरों की दरिद्रता का पूंजीपति अनुचित लाभ उठाकर उस अतिरिक्त मूल्य से अपना जेबें भरता है और उन्हें दरिद्रता तथा भूख की सीमा से आगे नहीं बढ़ने देता है। यही कारण है कि मालिक और श्रमिक के बीच की यह खाई बढ़ती जा रही है और एक वर्ग युद्ध निरन्तर चलता रहता है। अतिरिक्त मूल्य की परिभाषा देते हुए मार्क्स ने लिखा है कि "यह उन दो मूल्यों का अन्तर है जिन्हें एक मजदूर पैदा करता है तथा पाता है।" (Surplus value is the difference between the value of the wages which a labourer produces and which he actually receives)

४ पूंजीवादी राज्य का उन्मूलन करने के लिए साम्यवाद एक सामाजिक क्रान्ति चाहता है (**Communism contemplates a social revolution to uproot the Capitalist State**)—साम्यवादियों का मत है कि वर्तमान राज्य (इन

और चीन को छोड़ कर) पूँजीवादी सिद्धान्तों पर आधारित हैं और उस दोषपूर्ण व्यवस्था को समाज में स्थिर रखना चाहता है। वे आज के राज्यों पर यह दोष आरोपित करते हैं कि वे कुछ पूँजीपतियों के हाथ की कठपुतली मात्र हैं और कल्याणकारी राज्य (Welfare state) होने का दावा करने पर भी दीन हीन श्रमिक वर्ग के शोषण का अन्त करने के लिए कुछ भी नहीं करते। साम्यवाद की यह दृढ़ मान्यता है कि पूँजीवाद का किसी भी रूप में जब तक समाज में अस्तित्व रहेगा वर्गभेद चलते रहेंगे और वर्गयुद्ध के कारण सुख और शान्ति एक स्वप्न मात्र रहेगी। पूँजीवाद का सबसे बड़ा दुर्गुण वह यह मानते हैं कि वह समाज में दो शत्रु वर्गों (Hostile Camps) को ही जन्म नहीं देता बल्कि धनिकों को अधिक धनिक, तथा निर्धनों को निरन्तर निर्धन बनाता है। यही कारण है कि पूँजीवादी राज्यों में कुछ लोग एक ओर अतिरिक्त विलास और सम्पन्नता में पड़े पड़े सड़ते हैं तो दूसरी ओर एक दीन को दिन भर पसीना बहाने पर भी एक रूखा रोटी का टुकड़ा नसीब नहीं होता। बहुलता के होते हुए भी समाज में विपन्नता है (Poverty in the midst of plenty)। धन तथा जन शक्ति का एक निर्दयतापूर्ण दुरुपयोग होता है तथा साम्राज्यवाद आदि कितने ही अवगुण पनपते हैं। समाज में इस अनाचार पूर्ण विषमता तथा वर्गवादी शोषण (Class exploitation) को चिरस्थाई (Perpetuate) बनाने वाले पूँजीवादी राज्यों को साम्यवादी अमानवीय, अनैतिक तथा सभ्यता के उज्ज्वल मुख पर एक कलङ्क मानते हैं। उनकी मान्यता है कि पूँजीवाद निश्चय ही एक हिरण्यकश्यप (सोने का कछुवा) है, जो बिना किसी नरसिंह अवतार के नहीं मर सकता। इसलिए वे शान्ति तथा अहिंसात्मक प्रणालियों में विश्वास नहीं करते और कहते हैं कि इस पूँजीवादी, भ्रष्ट जर्जर तथा गलित एवं अन्यायपूर्ण व्यवस्था को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए एक ही मार्ग है और वह यह कि इसके विरुद्ध एक उग्र सामाजिक जन क्रान्ति हो, और हिंसात्मक (Violent) तथा क्रान्तिकारी (Revolutionary) उपायों द्वारा पूँजीवादी व्यवस्था को दूर फेंक कर उसकी समाधि पर एक एक साम्यवादी व्यवस्था की स्थापना के लिए एक श्रमिक राज्य का निर्माण किया जाय।

५ मध्यान्तरिम समय के लिए साम्यवाद श्रमिकों की तानाशाही का पक्षपाती है (Communism advocates a Dictatorship of the proleteriat for the interim period)—मार्क्स ने माना है कि पूँजीवादी व्यवस्था अपने आन्तरिक दुर्गुणों के कारण स्वतः ही मर जायगी और परिवर्तन चक्र (Cycle of Change) के अनुसार श्रमिक वर्ग की जीत निश्चित है। किन्तु मार्क्सियन साम्यवाद यह मान कर चलता है कि एक बार पूँजीवादी राज्य को सत्ताच्युत करके ही यह नहीं समझ लेना चाहिए कि पूँजीवाद मर गया। रावण के सिर की भाँति एक सिर कटने पर दूसरा सिर उग सकता है। अतः साम्यवाद का पूँजीवाद से एक दम चौकी ... ... वर्गहीन समाज में नहीं पहुँचना है। उसे पराजित शत्रु से सावधान रहना है और

ऐसे सारे कार्य करने हैं जिसके कारण उसके पुनर्जीवन की कोई सम्भावना न रहे। अत पूंजीवाद की इन जड़ों म दही डालने के लिए साम्यवादी यह आवश्यक समझते ह कि अन्तरिम समय (Interim period) के लिए राज्य का अस्तित्व रहे और इस समय म श्रमिक वग का तानाशाहीपूर्ण शासन (Dictatorship of the proleteriat) चले। प्रसिद्ध रूसी नेता ट्राटस्की के शब्दा म ऐसे समय मे वह क्रांतिकारी वर्ग, जिसन शस्त्रा के बल पर सत्ता छीनी है अपने हाथ मे बन्दूक लेकर उन सब प्रयत्नों को कुचलने के लिए विवश होगा तथा कुचलेगा जो उसके हाथों से सत्ता छीनने के लिए किए जायग। (A revolutionary class, which has conquered power with arms is bound to and will suppress, rifle in hand all attempts to tear power out of its hands) मार्क्स ने अपनी 'मैनीफैस्टो' म ऐसे कुछ कार्यों का निर्देश किया है। वह चाहता है कि इस अन्तरिम समय मे, जिसमें कि पहले राज्य का अस्तित्व लुप्त हो, श्रमिकों की तानाशाहीपूर्ण सरकार को चाहिए कि वह वैयक्तिक सम्पत्ति का उन्मूलन पैतृक अधिकारों की सम्पत्ति (Abolition of right of inheritance) यातायात तथा सवाहन के साधनों का केन्द्रीकरण, बच्चों की अनिवार्य एव नि शुल्क शिक्षा उत्पादन के साधनों का राष्ट्रीयकरण (Nationalisation of the means of production) तथा पूंजीपतियों के बैंकबैलेन्स आदि को जब्त करने के लिए कठोर कदम उठाये।

६ साम्यवाद का अन्तिम उद्देश्य राज्यहीन समाज है (In a full communistic Society the State shall wither away)—साम्यवादियों का मत है कि राज्य एक स्थाई सस्था नही है, अत एक पूर्ण तथा वास्तविक साम्यवादी समाज का आरम्भ तब से होगा जब श्रमिकों की तानाशाही के बाद राज्य स्वत लुप्त हो जायेगा। (State shall wither away) इतिहास की आर्थिक व्याख्या करते समय साम्यवादियों ने माना है कि राज्य हमेशा, धनिक वर्ग का सहायक रहा है तथा पूंजीपतियों के हितों की रक्षा करने के लिये इसने श्रमिकों पर हमेशा अत्याचार किये हैं और उन्हें चूसा है। अत जब श्रमिकों की तानाशाही वर्ग का उन्मूलन कर देगी तब राज्य की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी और ऐंजिल्स (Engels) के शब्दों में "ज्योंही स्वाधीनता की सम्भावना होगी राज्य अपने अस्तित्व का अन्त कर देगा।" (When it becomes possible to speak of freedom the State as such shall cease to exist) इस राज्यहीन आदर्श समाज में धर्म, जाति, रंग तथा धन के आधार पर कोई भेद भाव नही किया जायगा और प्रत्येक को अधिकतम न्याय प्राप्त हो सकेगा। ऐसे समाज मे प्रत्येक व्यक्ति को कुछ निश्चित समय के लिए आवश्यक रूप से परिश्रम करना पड़ेगा और उत्पादन सामाजिक आवश्यकताओं के आधीन होगा। कोई भी परिश्रम करने वाला योग्य व्यक्ति भूखा तथा नङ्गा नही रहेगा और समाज इस सिद्धान्त पर चलेगा कि "जो मेहनत न करे, उसे खाने को भी न दिया जाय।" (He who does not work, does not eat) अयोग्य तथा वृद्धों को राज्य सरक्षण देगा तथा आज के

समाज में पाई जाने वाली, कष्ट देने वाली विषमताएँ विलुप्त हो जायेंगी कुछ साम्यवादी यह भी चाहते हैं कि 'प्रत्येक व्यक्ति को कार्यानुसार वस्तुएँ प्रदान न करके आवश्यकतानुसार वस्तुएँ प्रदान करना साम्यवादी समाज का ध्येय होना चाहिए।" (From each according to his work to each according to his necessities, must be the goal of a Communist Society)।

७ साम्यवाद प्रजातन्त्र का आलोचक है (Communism is a critic of democracy)—साम्यवादियों का प्रजातन्त्र में बिल्कुल विश्वास नहीं है। वे प्रजातन्त्रात्मक संस्थाओं को धनिकों की संस्थायें बतलाकर (Bourgeois institutions) उनका उपहास करते हैं। उनकी धारणा है कि प्रजातान्त्रिक प्रणाली से श्रमिकों के हितों की रक्षा कदापि सम्भव नहीं हो सकती, क्योंकि प्रजातान्त्रिक तरीकों से श्रमिक वर्ग पूँजीवादी वर्ग के साथ टक्कर लेने में सफल नहीं हो सकता। अपनी पूँजी के सहारे धनिक लोग प्रजातन्त्र को एक खेल तथा दिखावे में बदल सकते हैं अतः इन संस्थाओं को समूल रूप से विनष्ट कर देना चाहिए। अन्तरिम समय में जब तक सरकार रहेगी, साम्यवाद केवल श्रमिकों की तानाशाही (Dictatorship of the Proletariat) चाहता है, और चुनावों में केवल श्रमिकों को ही भाग लेने का अधिकार देता है। वह विरोध (Opposition) सहन नहीं कर सकता और चाहता है कि इस अवसर पर सरकार को चाहिये कि अपने विरोधी दलों तथा व्यक्तियों को निर्दयतापूर्वक कुचल कर अपने वश में रखे, तथा एक साम्यवादी दल (Communist party) को ही जीवित रहने का अधिकार हो। रूस में, जहाँ, मार्क्सवादी दर्शन सर्वप्रथम क्रियान्वित किया गया, वहाँ आज भी केवल एक साम्यवादी दल की तानशाही है और प्रजातन्त्र केवल एक दिखावा मात्र है।

८ साम्यवाद धर्मों का भी उन्मूलन चाहता है (Communism stands for the abolition of religions also)—मार्क्स का मत है कि वर्ग की वर्तमान शोचनीय दशा के लिए बहुत कुछ धर्म भी उत्तरदायी है। उसका कहना है कि शोषक वर्ग (Exploiting class) ने सदैव अपनी सामन्तशाही को जीवित रखने के लिए धर्म का आश्रय लिया है और धर्म पर अन्ध विश्वास करने वाली जनता ने भाग्यवाद (Fatelism) के नाम पर सारे अनाचारों तथा शोषणों को सहन किया है। इतिहास में एक ही नहीं कितने ही लुई और जार पैदा हुए, किन्तु उनके अन्याय और शोषण के विरुद्ध जनता ने कभी आवाज इसलिये नहीं उठाई क्योंकि वह यह मानती आई है कि ईश्वर ने उन्हें दुख पाने के लिये ही उत्पन्न किया है। इस भाग्यवादी दर्शन को मार्क्स बहुत शरारतपूर्ण (Mischievous) मानता है, जिसने इतिहास का सम्यता के नैसर्गिक विकास को रोका है। इसीलिए वह "धर्म को जनता की अफीम कहता है (Religion is the opium of the people) जिसे खाकर जनता उँघती रहती है। अतः मार्क्सवादी दर्शन में धर्म के लिए कोई स्थान नहीं है और उसे एक "नास्तिक विचार धारा" (Atheistic cult) भी कहा जा सकती है। राजनीति के क्षेत्र

उपदेश सा लगता है, जिसके कारण उसे निष्पक्ष राजनैतिक दार्शनिक नही कहा जा सकता ।

३ साम्यवादी समाज का द्वन्द्वात्मक आधार असत्य है (The dialectical basis of Communist Society is false)—मार्क्स, हीगल के द्वन्द्वात्मक प्रणाली का अनुसरण करने पर भी, उसका इतिहास पर ठीक-ठीक प्रयोग (Application) नहीं कर सका । उसका समाज को (१) आदिम साम्यवाद, (२) वैज्ञानिक समाज तथा (३) उत्तरतर साम्यवाद नाम की तीन अवस्थाओ मे बाँटना, सर्वथा अवैज्ञानिक, असत्य एव कल्पना मात्र हैं । इतिहास साक्षी है और यह प्रमाणित करता है कि मार्क्स का यह कथन असत्य है कि समाज के विकास मे सामन्तवाद (Feudalism) के पश्चात् पूजीवाद (Capitalism) तथा पूँजीवाद के बाद साम्यवाद (Communism) का आविर्भाव होना है १९१७ से पूर्व जार का रूस न पूजीवादी था और न वज्ञानिक दृष्टि से समाजवादी, किन्तु वह पूर्णत कृषि प्रधान था । इसी प्रकार चीन भी साम्यवाद के पदार्पण के पहले औद्योगिक दृष्टि से कोई विकसित देश नही था । अत वहा पर साम्यवाद की स्थापना साम्यवादी मान्यता के प्रतिकूल है ।

४ साम्यवाद सर्वाधिकारवादी सिद्धान्त है (Communism is a totalitarian Creed)—अपने अन्तिम उद्देश्य मे राज्य का पूर्ण विनाश चाहते हुए भी साम्यवादी व्यक्ति के व्यक्तित्व तथा उसकी स्वतन्त्रता का अधिक सम्मान की दृष्टि से नही देखते । उनकी दृष्टि मे समाज के हित के सामने व्यक्ति नगण्य है और समाज का प्रत्येक सदस्य अपने व्यक्तिगत रूप म सम्पूर्ण समाज मे एक दास से अधिक कुछ भी नहीं है । उसे न बोलने की स्वाधीनता है न अभिव्यक्ति की और उसके दैनिक जीवन की छोटी छोटी सी क्रियाओ पर भी राज्य का बन्धन है । अत ऐसे समाज के व्यक्ति का उन्मुक्त विकास नही हो सकता और न उसे किसी प्रकार की स्वाधीनता ही हो सकती है । तात्पर्य यह है कि साम्यवादी समाज एक सर्वाधिकारवादी समाज है ।

५ साम्यवादी प्रणाली हिंसा तथा रक्तपात की उपासक है (Communist methodology believes in violence and sabotage)—सैद्धान्तिक दृष्टि से यदि साम्यवादी सिद्धान्त को आदर्श मान भी लिया जाय तो अपने आदर्श को प्राप्त करने के लिए साम्यवादी जिस प्रणाली (Method) की वकालत करते हैं वह किसी भी विवेकशील व्यक्ति के लिए मान्य नही हो सकती । आज की पूजीवादी व्यवस्था चाहे कितनी ही जघन्य एव दोषपूर्ण हो, किन्तु वतमान शासकों का हिंसा तथा रक्तपात द्वारा सहार कर उसे नष्ट करना एक मानवोचित तरीका नहीं । 'पवित्र से पवित्र उद्देश्य भी घृणित तरीको द्वारा पाये जाने पर भ्रष्ट हो जाता है (गाँधीजी) और समस्त समाज मे एक बहुत भयकर अव्यवस्था तथा कानूनहीनता फैल जाती है । अत एव ऐसी विचारधारा जो मनुष्य को हिंसा तथा क्रांति का पाठ पढाकर उसकी घृणित पाशविकता तथा बर्बरता को प्रोत्साहन देती है किसी भी सभ्य समाज के अनुरूप नही हो सकती । दूसरे श्रमिकों द्वारा राज्य के विरुद्ध एक हिंसात्मक क्रांति

करना कोई मजाक नहीं है। राज्य के बल के विरुद्ध बल का प्रयोग करने वाले चाहे कितने ही शक्तिशाली हों, पर उनकी जीत निश्चित नहीं हो सकती 'क्योंकि मानवता के सुदीर्घ इतिहास में कभी पशुता की पशुता से विजय नहीं हुई।'

—महादेवी वर्मा।

६ राज्य एक वर्ग संगठन नहीं है (*State is not a class organisation*)—आलोचकों की यह धारणा है कि साम्यवादियों द्वारा राज्य को एक वर्ग संगठन कहकर उसकी निन्दा करना भी एक निर्विवाद सत्य नहीं है। राज्य में हो सकता है कुछ वर्ग हों, और रहें ही किन्तु राज्य किसी एक वर्ग का प्रतिनिधि नहीं है, उसकी दृष्टि में सब समान हैं और सच पूछा जाय तो यह किसी बल व शोषण के लिए न होकर, व्यक्ति की स्वाभाविक इच्छा पर आधारित है। यह एक नैतिक संस्था है जिसमें रहकर ही व्यक्ति अपना विकास कर सकता है। अतः आलोचकों का मत है कि राज्य को एक वर्ग संगठन के रूप में मानकर चलना एक पक्षपातपूर्ण विचार (Prejudicial idea) है और इसी कारण उसका उन्मूलन चाहना एक और भी भयंकर कल्पना है।

७ राज्य कभी ■ तरिम तथा अस्थाई संस्था नहीं हो सकती (*State can never be a temporary and interim institution*)—साम्यवादी यह धारणा कि सामाजिक क्रांति तथा पूंजीवाद की निमम हत्या के बाद राज्य कुछ समय के लिए एक अस्थाई संस्था के रूप में जीवित रहेगा और उसके लुप्त होने से पूर्व के इस अन्तरिम समय में श्रमिकों का तानाशाहीपूर्ण शासन होगा, युक्तिसंगत नहीं है। अगर साम्यवाद को व्यावहारिक रूप में लाया गया तो यह हो जायगा कि पूंजीवादी सरकार के बदले श्रमिकों की एक तानाशाहीपूर्ण (Dictatorial) सरकार बन जाये किन्तु एक बार सरकार बनने के बाद यह कठिन ही नहीं असम्भव है कि श्रमिक लोग सत्ता का परित्याग कर दें और राज्य को अन्तर्धान (Wither away) हो जाने दें। सत्ता का मोह उन्हें यह कभी नहीं करने देगा और इस स्थिति में आगे की राज्यहीन समाज की कल्पना केवल Utopia ही रहेगी। प्रत्यक्ष के लिए प्रमाण की आवश्यकता नहीं। रूस में श्रमिकों की तानाशाही (Dictatorship of the Proleteriat) स्थापित हुये आज ३७ वर्ष से लगभग हो चुके, लेकिन वहां से राज्य के लुप्त होने के कोई लक्षण नहीं दिखाई देते और न पूर्ण समानता प्राप्त करने का जो उद्देश्य है वह ही प्राप्त हो सका है। अतः स्पष्ट है कि मनुष्य की जन्मजात विभिन्नताओं के कारण समाज में असमानताएं रहेंगी और एक राज्यहीन समाज की स्थिति न सम्भव है और न वाञ्छनीय।

८ पूंजीवादी व्यवस्था में पूंजी केन्द्रीकरण हो यह आवश्यक नहीं (*Centralisation of capital is not always necessary in a capitalistic order*)—साम्यवादी विकासवाद के सिद्धान्त को चुनौती देते हुए कुछ आलोचक यह मानते हैं कि यह आवश्यक नहीं कि पूंजीवादी व्यवस्था में छोटे पूंजीपति विनष्ट हो जायें और उनकी

पूंजी भी खिचकर बड़े पूंजीपतियो के हाथ मे चली जाय । वे मानते हैं कि दोनो ही प्रकार के पूंजीपति एक साथ जीवित रह सकते है ।

९ पूंजीवाद द्वारा भी श्रमिको का कल्याण हो सकता है (Capitalism too can improve the lot of the labourer)—आलोचक साम्यवादी इस दावे को भ्रान्त पूर्ण मानते है कि आधुनिक समाज के दुर्गुणो को मिटाने के लिये साम्यवाद ही एकमात्र रामबाण है । यह सम्भव है और सत्य भी है कि आज के पूंजीवादी ढांचे मे बहुत से अवगुण घर कर गये है किन्तु उनको दूर करने का एकमात्र इलाज यही नही है कि उसे समूल नष्ट कर दिया जाय और एक अधिक अन्यायपूर्ण प्रणाली का वरण किया जाय । ऐसा करना एक दुर्गुण को छोड़कर एक महत्तर दुर्गुण का स्वीकार करना है । आवश्यकता तो यह है कि वर्तमान व्यवस्था को ही अधिक ठीक बनाया जाय और उसी के द्वारा दुखी तथा दरिद्र मजदूरो के भाग्य को उन्नत किया जाय, यह सब पूंजीवाद के जीते जी भी सम्भव है । अमेरिका ने पूंजीवाद को मानते हुये भी श्रमिको की स्थिति मे काफी उन्नति उत्पन्न कर दी है । वैधानिक उपचारो द्वारा निश्चित मजदूरी आदि के नियम बनाकर श्रमिक वर्ग के असन्तोष को मिटाया जा सकता है ।

१० धनिकों तथा श्रमिकों के युद्ध मे श्रमिक ही जीतें यह आवश्यक नहीं (Only the workers are to triumph in the struggle is not guaranteed) मार्क्स का यह नारा कि विश्व के मजदूरो पूंजीवाद के विरुद्ध तुम्हारी जीत निश्चित है, बेचारे गरीब व भोले मजदूरो को भ्रम मे डालने वाला है । प्रथम तो पूंजीवादी दीवारें इतनी जर्जर नही है जितना कि मार्क्स उन्हे समझता है । उनसे टक्कर लेने के लिये समस्त विश्व के मजदूरो की शक्ति भी सम्भवत पर्याप्त न हो । फिर यह जरूरी नही है कि जीतने पर सत्ता मजदूर प्रतिनिधियो को ही मिले । इटली मे मुसोलिनी की विजय इस बात का प्रबल प्रमाण है कि श्रमिको की जीत होते हुए भी सत्ता ऐसे व्यक्तियो के हाथ मे आ सकती है जो पूंजीवाद को जीवित रखना चाहें ।

११ साम्यवाद धर्म का महत्व ठीक ठीक नहीं समझता —मार्क्स का यह कहना कि धर्म जनता की अफीम है, धार्मिकता के सच्चे महत्व को नही समझता है । मनुष्य अपने भौतिक व्यक्तित्व के साथ साथ एक आध्यात्मिक प्राणी भी है । जिस प्रकार उसका शरीर खाना मांगता है उसी प्रकार उसकी आत्मा भी ईश चिन्तन द्वारा एक तृप्ति का अनुभव करती है । मनुष्य के इस पक्ष को [illegible] कर उसे केवल खाने का उपासक मात्र मानना, उसे एक सूअर (Pig) जैसा कोरा पशुमात्र मानना है ।

साम्यवादी दर्शन का मूल्यांकन (Evaluation of communist Philosophy)—उपर्युक्त बहुत आलोचना के पश्चात् भी साम्यवादी दर्शन का मूल्य [illegible] बताया जा सकता । यद्यपि उस दृष्टि [illegible] को स्वीकार करते हुए भी हम [illegible] सत्य को और नहीं मोड़ सकते कि [illegible] आधुनिक युग की सर्वोत्तम [illegible] विचार धारा है और आगे [illegible] अधिक [illegible] सम्पूर्ण [illegible] हुआ है ।

यह तथ्य स्पष्ट करता है कि इस सिद्धान्त में कुछ उपयोगी तथा आकर्षक तत्त्व अवश्य हैं, जिसके कारण यह जहाँ भी कदम रखता है वहीं एक संक्रामक रोग (Infectious disease) की भाँति शीघ्र ही फैल जाता है। ये महत्वपूर्ण तत्त्व निम्नलिखित हैं :—

१. यह राजनैतिक समस्याओं को उनकी जड़ से पकड़ता है (It touches the very fundamentals of political problems)—साम्यवाद वस्तुतः एक आर्थिक राजनीतिक दर्शन है। (A Politico economic Philosophy) प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक विचारक ग्राहम वालस (G. Wallas) का कथन है कि "मानव जीवन का केन्द्र-बिन्दु रुपया है।" (Money is the rubber of human life) अतः जितनी भी मानव जीवन की समस्यायें हैं। वे प्रधानतः आर्थिक समस्यायें हैं और जब तक उनका समाधान आर्थिक दृष्टिकोण से नहीं ढूँढा जायगा तब तक उनका अन्त नहीं हो सकता। राजनैतिक समस्या भी इस नियम का कोई अपवाद नहीं और एक यथार्थवादी दृष्टिकोण से सभी सुलझाई जा सकती हैं, जब उन्हें आर्थिक ढाँचे के प्रकाश में देखा जाय। यहाँ मार्क्स ने समस्या को ठीक ठीक जड़ पकड़ी है जिसके कारण उसका दर्शन एकांगी होते हुए भी बहुत सुदृढ तथा बलिष्ट है। वास्तविक दृष्टि से तो आदर्शवाद भी एक परम ठोस दर्शन नहीं है किन्तु केवल दर्शन होने के कारण वह केवल कालेज और विश्वविद्यालयों में पढ़ने के अतिरिक्त और कुछ मूल्य नहीं रखता।

२. साम्यवाद पूँजीवादी व्यवस्था के दुर्गुणों पर ठीक ठीक प्रकाश डालता है (Communism rightly throws light on the evil of Capitalistic order)—पूँजीवाद एक सड़ी गली तथा विकलांग विचारधारा है और पूँजीवाद का बड़े से बड़ा समर्थक भी इस प्रकार का उत्तर नहीं दे सकता कि यह समाज में स्वतन्त्रता के नाम पर असमानता तथा शोषण का पक्ष लेता है। मार्क्स के कथनानुसार समाज में सदैव एक वर्गयुद्ध रहा है, इसे चाहे साम्यवाद के आलोचक स्वीकार न करें, किन्तु आज के समाज में भी यदि वे आँख पसार कर देखें तो उन्हें स्पष्ट दो वर्ग दिखाई देंगे एक स्वच्छ देशनी परिधानों में सज्जित, विलास और व्याकुलता में उद्भिल तथा सनसनाहट करती हुई मोटरों में घूमने वाला तथा दूसरा जीर्ण शीर्ण दुर्गन्धमय चिथड़ों में कङ्काल को समेट अर्द्धविभूषित तथा धू-धू करती हुई रिक्शा गाड़ियों को घसीटने वाला। एक ही देश में रहने वाले एक ही हाड़ मांस के बने हुए तथा समबुद्धि मानवों में यह भेद उत्पन्न करने वाली केवल पूँजीवादी व्यवस्था है और जब तक यह रहेगी यह वर्गभेद की दीवारें ध्वस्त नहीं होंगी। साम्यवाद इसी ध्रुव सत्य को उद्घाटित करता है।

३. साम्यवादी आदर्श अनुकरणीय है (Communistic ideal is worth pursuing)—साम्यवादी आदर्श एक राज्यहीन वर्गहीन तथा समता के आधार पर निर्मित समाज की स्थापना करता है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन की आवश्यकतायें, अपने श्रम द्वारा सुगमता पूर्वक जुटा सके। यह आदर्श वास्तविकता से कुछ दूर भले ही हो किन्तु इसको आदर्श मानकर चलने पर ही तो समाज वहाँ तक पहुँच सकेगा। मानव समाज एक चेतनापूर्ण समाज है अतः उसकी पूर्णता इसी में है-

कि राज्यहीन रह कर अपनी व्यवस्था करे। यह अराजकतावादी आदर्श होने के कारण ही, अस्वीकृत नही किया जा सकता वह तो हमारे समाज को आगे बढने के लिए एक लक्ष्य बतलाता है अत सवथा अनुकरणीय है।

४ वर्तमान परिस्थितियो मे क्रान्ति प्रणाली ही सफल हो सकती है (Revolution alone can succeed under present circumstances)—मार्क्सवादियो के इस तक म भी काफी बल दिखाई देता है, कि आज के समाज की परिस्थितिया इस प्रकार की पूजीवाद की जडें इतनी गहरी पहुँच चुकी हैं कि बिना किसी हिंसक क्रान्ति के उसके आधार स्तम्भो को हिलाया नही जा सकता। अन्य किसी भी प्रकार के अहिंसात्मक तथा शान्तिपूण उपाय एक हृदयहीन तथा दुष्ट पूजीपति को पिघला नही सकते और फिर यदि किसी प्रकार गाधीवादी प्रणाली से उसका हृदय परिवतन भी किया जाय तो यह एक इतना धीमा तथा विलम्बपूण (Delatory) तरीका है, कि दीन हीन तथा शोषित वग उतने समय तक शान्तिपूण ढग से उसकी प्रतीक्षा नही कर सकता। दूसरे श्रमिक वग विश्व मे बहुमत मे है और उनकी माग बिलकुल सत्य है, तब वे अपन शत्रु से क्या न प्रत्यक्ष लोहा लें।

५ धम प्रगति मे बाधक है (Religion obstructs progress)—ऐतिहासिक दृष्टि मे यदि देखा जाय तो मार्क्सवाद की यह मान्यता बिलकुल सत्य प्रमाणित होती है कि धम हमेशा शासकवग का चाटुकार रहा है तथा उसने अपनी प्रतिक्रियावादी शक्तियो द्वारा शोषितवर्ग को अन्यायी शासको से प्रतिशोध लेने से रोका है। एक धार्मिक समाज कभी भी प्रगतिशील समाज नही हो सकता और चूकि साम्यवाद एक प्रगतिशील विचारधारा है, अत उसे एक धमहीन समाज की कल्पना करनी ही चाहिए।

६ अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त एक गम्भीर तथा नग्न सत्य है (The theory of Surplus value is a grave and naked truth)—यदि हम मार्क्सवाद की आधारभूमि को स्वीकार कर लेते हैं तो उसके सारे परिणाम हमे बाध्य होकर स्वीकार करने पडते हैं। अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त एक ऐसा ही मूल तत्व है जो पूजीवाद की हृदय हिला देने वाली विभीषिकाओ उद्घटित करता है। यह सिद्धान्त इतना तकपूण तथा ठोस है कि इसे चुनौती नही दी जा सकती और एक बार हम स्वीकार कर लेने पर पूजीवाद की हम किसी भी आधार पर रक्षा नही कर सकते।

रूसी लेनिनवाद (Leninism)—सन् १९१७ की बोलशेविक क्रान्ति के पश्चात् रूस ने लेनिन के नेतृत्व में मार्क्सवाद को एक व्यावहारिक दशन का रूप देने का प्रयत्न किया। अन्यायपूण जारशाही को समाप्त कर वहा सवप्रथम एक सवहारा सरकार (Proletarian Government) की स्थापना हुई। तत्कालीन रूस की परिस्थितिया को देखत हुए लेनिन ने अपन गुरु [illegible] सिद्धान्तो को मूल रूप मे स्वीकार कर उन्हें परि[illegible] अनुकूल बना[illegible] । यह युग साम्रा[illegible]

वाद का युग था और इसीलिए कुछ लोग लेनिनवाद को साम्राज्यवाद और सर्वहारा क्रान्ति के युग के अनुकूल बनाया गया मार्क्सवाद कहते हैं। (Leninism is Marxism of the epoch of imperialism and proletarian Revolutions) लेनिनवाद की प्रमुख विशेषतायें निम्न हैं—

१ लेनिनवाद साम्यवाद की स्थापना के लिए प्रचण्ड तथा रक्तपातपूर्ण क्रान्तियों का समर्थक है, तथा साम्यवाद के इस हिंसात्मक पक्ष पर मार्क्सवाद से अधिक बल देता है।

२ लेनिन के मत में पूर्ण प्रजातन्त्र एक प्रवञ्चना मात्र है। इसके शब्दों में "पूंजीवादी समाज में हम ऐसा प्रजातन्त्र देखते हैं जो नियन्त्रित है, निम्नकोटि का है और झूठा है। वह एक ऐसा प्रजातन्त्र है जो केवल धनिक वर्ग और एक अल्प समुदाय के लिए है।" (In Capitalist Society we have a democracy that is curtailed, wretched and false, a democracy only for the rich and for the minority)

३ लेनिन सर्वहारा वर्ग की तानाशाही का प्रबल समर्थक था।

४ लेनिनवाद का अन्तिम उद्देश्य एक वर्गहीन तथा राज्यहीन समाज स्थापित करना है। उसका मत है कि ऐसे समाज में कोई शोषक तथा शोषित नहीं होगा।

५ लेनिन प्रत्येक व्यक्ति को उसकी योग्यतानुसार वस्तुएँ मिलने के पक्ष में न होकर वस्तुओं का आवश्यकतानुसार वितरण चाहता था।

लेनिनवाद की तीन विशेषतायें निम्नलिखित हैं जो उसे मार्क्सवाद से भिन्न करती हैं—

१ लेनिनवाद साम्यवाद के क्रान्तिकारी पक्ष पर अधिक बल देता है।

२ लेनिनवाद मार्क्सवाद को रूस की परिस्थितियों में ढालता है।

३ लेनिनवाद मार्क्सवाद को एक समीचीन (Uptodate) विचारधारा बनाता है।

स्टालिनवाद की विशेषताएँ—लेनिन के बाद स्टालिन ने अपने युग की बदली हुई परिस्थितियों में, लेनिनवाद से भी कुछ अन्तर किये। अपने विचारों में उग्र राष्ट्रीयतावादी होने के कारण स्टालिन यह मानता था कि साम्यवाद को सफल बनाने के लिए अथवा कार्यान्वित करने के लिए, यह आवश्यक नहीं कि उसे विश्व-क्रान्ति अथवा विश्वव्यापी विचारधारा का रूप दिया जाय। इसी विचार के कारण उसका अपने प्रतिस्पर्धी (Rival) ट्रोटस्की से विरोध हो गया था, जो प्रकट रूप में रूस में साम्यवाद की जड़ें मजबूत बनाने से पहले उसे विश्वव्यापी विचारधारा के रूप में देखना चाहता था। स्टालिन का मत था कि साम्यवाद की असली उन्नति तब होगी जब रूसी साम्यवादी कुछ समय के लिए विश्व के रंगमंच से अपनी दृष्टि हटाकर रूस पर ही केन्द्रित रखेंगे। इस प्रकार लेनिनवाद तथा मार्क्सवाद का एक सच्चा अनुयायी

कि राज्यहीन रह कर अपनी व्यवस्था करे। यह अराजकतावादी आदर्श होने के कारण ही, अस्वीकृत नहीं किया जा सकता वह तो हमारे समाज को आगे बढ़ने के लिए एक लक्ष्य बतलाता है अतः सर्वथा अनुकरणीय है।

४ वर्तमान परिस्थितियों में क्रान्ति प्रणाली ही सफल हो सकती है (Revolution alone can succeed under present circumstances)—मार्क्सवादियों के इस तर्क में भी काफी बल दिखाई देता है, कि आज के समाज की परिस्थितियाँ इस प्रकार की पूँजीवाद की जड़ें इतनी गहरी पहुँच चुकी हैं कि बिना किसी हिंसक क्रान्ति के उसके आधार स्तम्भों को हिलाया नहीं जा सकता। अन्य किसी भी प्रकार के अहिंसात्मक तथा शान्तिपूर्ण उपाय एक हृदयहीन तथा दुष्ट पूँजीपति को पिघला नहीं सकते और फिर यदि किसी प्रकार गांधीवादी प्रणाली से उसका हृदय परिवर्तन भी किया जाय तो यह एक इतना धीमा तथा विलम्बपूर्ण (Delatory) तरीका है, कि दीन हीन तथा शोषित वर्ग उतने समय तक शान्तिपूर्ण ढंग से उसकी प्रतीक्षा नहीं कर सकता। दूसरे श्रमिक वर्ग विश्व में बहुमत में है और उनकी माँग बिलकुल सत्य है, तब वे अपने शत्रु से क्यों न प्रत्यक्ष लोहा लें।

५ धर्म प्रगति में बाधक है (Religion obstructs progress)—ऐतिहासिक दृष्टि से यदि देखा जाय तो मार्क्सवाद की यह मान्यता बिलकुल सत्य प्रमाणित होती है कि धर्म हमेशा शासकवर्ग का चाटुकार रहा है तथा उसने अपनी प्रतिक्रियावादी शक्तियों द्वारा शोषितवर्ग को अन्यायी शासकों से प्रतिशोध लेने से रोका है। एक धार्मिक समाज कभी भी प्रगतिशील समाज नहीं हो सकता और चूँकि साम्यवाद एक प्रगतिशील विचारधारा है, अतः उसे एक धर्महीन समाज की कल्पना करनी ही चाहिए।

६ अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त एक गम्भीर तथा नग्न सत्य है (The theory of Surplus value is a grave and naked truth)—यदि हम मार्क्सवाद की आधारभूमि को स्वीकार कर लेते हैं तो उसके सारे परिणाम हम बाध्य होकर स्वीकार करते पड़ते हैं। अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त एक ऐसा ही मूल तत्व है जो पूँजीवाद की हृदय हिला देने वाली विभीषिकाओं उद्घटित करता है। यह सिद्धान्त इतना तर्कपूर्ण तथा ठोस है कि इसे चुनौती नहीं दी जा सकती और एक बार इसे स्वीकार कर लेने पर पूँजीवाद की हम किसी भी आधार पर रक्षा नहीं कर सकते।

रूसी लेनिनवाद (Leninism)—सन् १९१७ की बोलशेविक क्रान्ति के पश्चात् रूस ने लेनिन के नेतृत्व में मार्क्सवाद को एक व्यावहारिक दर्शन का रूप देने का प्रयत्न किया। अन्यायपूर्ण जारशाही को समाप्त कर, वहाँ सर्वप्रथम एक सर्वहारा सरकार (Proletarian Government) की स्थापना हुई। तत्कालीन रूस की परिस्थितियों को देखते हुए लेनिन ने अपने गुरु मार्क्स के सिद्धान्तों को मूल रूप में स्वीकार कर उन्हें परिस्थितियों के अनुकूल ढालने का प्रयत्न किया। यह युग सामान्य

वाद का युग था और इसीलिए कुछ लोग लेनिनवाद को साम्राज्यवाद और सर्वहारा क्रान्ति के युग में अनुकूल बनाया गया मार्क्सवाद कहते हैं। (Leninism is Marxism of the epoch of imperialism and proletarian Revolutions) लेनिनवाद की प्रमुख विशेषतायें निम्न हैं—

१ लेनिनवाद साम्यवाद की स्थापना के लिए प्रचण्ड तथा रक्तपातपूर्ण क्रान्तियों का समर्थक है, तथा साम्यवाद के इस हिंसात्मक पक्ष पर मार्क्सवाद से अधिक बल देता है।

२ लेनिन के मत में पूर्ण प्रजातन्त्र एक प्रवञ्चना मात्र है। इसके शब्दों में 'पूंजीवादी समाज में हम ऐसा प्रजातन्त्र देखते हैं जो विकलाङ्ग है, निम्नकोटि का है और झूठा है। वह एक ऐसा प्रजातन्त्र है जो केवल धनिक वर्ग और एक अल्प समुदाय के लिए है।" (In Capitalist Society we have a democracy that is curtailed wretched and false, a democracy only for the rich and for the minority)

३ लेनिन सर्वहारा वर्ग की तानाशाही का प्रबल समर्थक था।

४ लेनिनवाद का अन्तिम उद्देश्य एक वर्गहीन तथा राज्यहीन समाज स्थापित करना है। उसका मत है कि ऐसे समाज में कोई शोषक तथा शोषित नहीं होगा।

५ लेनिन प्रत्येक व्यक्ति को उसकी योग्यतानुसार वस्तुएँ मिलने के पक्ष में न होकर वस्तुओं का आवश्यकतानुसार वितरण चाहता था।

लेनिनवाद की तीन विशेषतायें निम्नलिखित हैं जो उसे मार्क्सवाद से भिन्न करती हैं—

१ लेनिनवाद साम्यवाद के क्रान्तिकारी पक्ष पर अधिक बल देता है।

२ लेनिनवाद मार्क्सवाद को रूस की परिस्थितियों में ढालता है।

३ लेनिनवाद मार्क्सवाद को एक समीचीन (Uptodate) विचारधारा बनाता है।

स्टालिनवाद की विशेषताएँ—लेनिन के बाद स्टालिन ने अपने युग की बदली हुई परिस्थितियों में, लेनिनवाद से भी कुछ अन्तर किये। अपने विचारों में, उग्र राष्ट्रीयतावादी होने के कारण स्टालिन यह मानता था कि साम्यवाद को सफल बनाने के लिए अथवा कार्यान्वित करने के लिए, यह आवश्यक नहीं कि उसे विश्व-क्रान्ति अथवा विश्वव्यापी विचारधारा का रूप दिया जाय। इसी विचार के कारण उसका अपने प्रतिस्पर्धी (Rival) ट्रोटस्की से विरोध हो गया था, जो प्रकट रूप में रूस में साम्यवाद की जड़ें मजबूत बनाने से पहले उसे विश्वव्यापी विचारधारा के रूप में देखना चाहता था। स्टालिन का मत था कि साम्यवाद की असली उन्नति तब होगी जब रूसी साम्यवादी कुछ समय के लिए विश्व के रंगमंच से अपनी दृष्टि हटाकर रूस पर ही केंद्रित रखेंगे। इस प्रकार लेनिनवाद तथा मार्क्सवाद का एक सच्चा अनुयायी

हान के साथ साथ स्टालिनवाद उसमे केवल एक ही नई बात जोडना चाहता है और वह यह कि पहले एक देश म साम्यवाद लाया जाय (Communism in one Country first) कुछ समय तक इस सिद्धान्त के अनुसार रूस म साम्यवादी व्यवस्था की स्थापना कर, बाद म स्टालिन भी अन्तर्राष्ट्रीयतावादी बन गया था और (Communist International) द्वारा उसने मार्क्सवाद को एक विश्वव्यापी सिद्धान्त बनाने के लिए यत्न भी किये थे। उसी के पद चिन्हो पर चलते हुए आज मैलिनकोव (Malenkov) भी साम्यवाद को एक अन्तर्राष्ट्रीय विचारधारा के रूप मे सर्वसम्मत एव प्रचलित विचारधारा (Ideology) बनाना चाहते हैं। रूस में अपनी जडें स्थाई बनाने के पश्चात् उन्होने चीन को अपने दूसरे कार्यक्षेत्र के लिए चुना है और यह स्पष्ट रूप से भविष्यवाणी नही की जा सकती कि अमेरिका के भरसक प्रयत्न करने के उपरान्त भी साम्यवाद का तीसरा कदम, एशिया, यूरोप तथा अफ्रीका म कहाँ गिरगा। - -

साम्यवाद और समाजवाद—प्राय लोग समाजवाद और साम्यवाद को समान उद्देश्य वाली विचारधारायें समझने की भूल करते हैं। यथार्थ मे ये दोनो कभी भी एक रूप धारण नही कर सकती और इनके उद्देश्य कार्यक्षेत्र तथा विचारो मे भी विशाल अन्तर है। मार्क्स का मत था कि "समाजवाद साम्यवादी समाज की पहली सीढी है। यह उसके मंजिल के आधे रास्ते पर है तथा साम्यवाद अपने उद्देश्यो म समाजवादी उद्देश्यों से कहीं अधिक उग्र तथा आगे है। इन दोनो विचारधाराओ के प्रधान अन्तर निम्नलिखित हैं।

१. साम्यवाद उत्पादन, वितरण तथा उपभोग (Production, distribution and consumption) तीनो के साधनो पर एक समान स्वामित्व (Common ownership) चाहता है। वह चाहता कि लोग मिल जुल कर सहकारी ढग म वस्तुए उत्पन्न करें और मिल-जुल कर ही उनका उपभोग कर। समाजवाद उत्पादन तथा वितरण पर समान स्वामित्व के सिद्धान्त पर तो साम्यवादियों के साथ सहमत है किन्तु उनका समान उपभोग नही चाहता।

२ साम्यवाद एक क्रान्तिकारी विचारधारा है जो पूंजीवादी व्यवस्था का तुरन्त हिंसात्मक उपायों द्वारा विनाश कर देना चाहती है किन्तु समाजवाद एक विकासवादी (Evolutionary) विचार धारा है जो वैधानिक उपचारो द्वारा धीरे धीरे पूंजीवादी व्यवस्था का अन्त करने का उद्देश्य लेकर चलती है।'

३ साम्यवादी राज्य को एक स्थाई संस्था नही मानते, और कहते हैं कि पूर्ण साम्यवादी समाज की स्थापना पर वह लुप्त हो जायगी, किन्तु समाजवादी उसे एक स्थाई संस्था मान कर उसे अधिक से अधिक कार्य देने के पक्ष मे हैं।

४ साम्यवादी राज्य को पूजीपतियो का सहायक मानकर उसकी भर्त्सना करते हैं किन्तु समाजवादी उसे जनकल्याण की संस्था (Welfare institution) मान कर उसकी प्रशसा करते हैं।

५ साम्यवादियों का उद्देश्य है कि प्रत्येक व्यक्ति को वेतन उसकी व्यक्तिगत आवश्यकताओं के अनुसार दिया जाना चाहिए, किन्तु समाजवादी व्यवस्था में एक श्रमिक को वेतन उसके श्रम के अनुसार मिलता है। (From each according to his capacity to each according to his needs is a Communistic principle)

६ साम्यवाद बहुत कुछ अंश में एक अन्तर्राष्ट्रीय विचारधारा है जबकि समाजवादी सारी योजनायें पूर्णत राष्ट्रीय ही हुआ करती हैं।

७ साम्यवादी धर्म विरोधी है किन्तु समाजवाद नहीं।

८ साम्यवाद प्रजातन्त्र की खिल्ली उड़ाता है और एक सर्वहारा तानाशाही (Dictatorhip of the Proletariat) का समर्थन करता है किन्तु ठीक इसके विपरीत समाजवाद एक शांतिपूर्ण तथा उदारवादी (Liberal) विचारधारा है जो प्रजातन्त्र में दृढ़ विश्वास करती है।

साम्यवाद और अराजकतावाद (Communism and anarchism)—अपने उद्देश्य तथा व्यवस्था में साम्यवादी तथा अराजकतावादी चिन्ह बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। प्रिंस क्रोपोटकिन के राज्य का सिद्धान्त 'साम्यवादी अराजकतावाद' (Communistic anarchism) कहा जाता है अधिकतर अराजकतावादी, साम्यवादी प्रणाली को स्वीकार करते हैं तथा इसी प्रकार साम्यवादी लगभग सभी, अराजकतावादी समाज को आदर्श मानते हैं। अत य दोनों एक दूसरे से सम्बद्ध हैं।

समानतायें

१ साम्यवादियों की तरह अराजकतावादी भी यह मानते हैं कि अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए हिंसक तथा रक्तरंजित क्रान्तियाँ सर्वथा उचित हैं।

२ साम्यवाद तथा अराजकतावाद दोनों का ही उद्देश्य एक वर्गहीन तथा राज्यहीन समाज की स्थापना करना है।

३ दोनों ही राज्य को एक दुर्गुण मानते हैं।

अन्तर

१ साम्यवाद एक प्रणाली सिद्धान्त है, जबकि अराजकतावाद एक उद्देश्य सिद्धान्त। अर्थात् अराजकतावादी दर्शन में जब एक ओर सामाजिक व्यवस्था का विशद चित्राङ्कन किया गया है तो साम्यवाद इस व्यवस्था को प्राप्त करने के लिए एक प्रणाली विशेष निर्धारित करता है और उसी पर अधिक बल देता है।

२ साम्यवादी राज्य की आलोचना करते हुए भी उसे आन्तरिक समय में स्थिर रखना चाहते हैं और कहते हैं कि पूँजीवाद के समूल नाश के लिए साम्यवादी व्यवस्था के आरम्भ में इसकी आवश्यकता है। अराजकतावादी राज्य को एक अनावश्यक दुर्गुण बतलाते हैं और चाहते हैं कि इसका तुरन्त नाश हो जाना चाहिए।

३ साम्यवादी व्यवस्था स्वार्थ होने के कारण समाज में धीरे धीरे आयगी किन्तु अराजकतावादी इसे एकदम लाना चाहते हैं।

४ साम्यवादी व्यक्तिगत सम्पत्ति के विरोधी हैं और उसे किसी भी रूपमें स्वीकार नही करते, किन्तु स्टिनर आदि कुछ अराजकतावादी ऐसे हैं जो व्यक्तिगत सम्पत्ति का विनाश नही चाहते ।

५. कुछ दार्शनिक अराजकतावादी टालस्टाय (Philosophical Anarchist) आदि हिंसात्मक प्रणाली के भी विरोधी हैं, जिसे सभी साम्यवादी एक स्वर मे स्वीकार करते हैं ।

६ अराजकतावाद राज्यहीन समाज मे बन्धुत्व की भावना पर बल देता है, जबकि साम्यवादी दर्शन का केन्द्रबिन्दु "समानता" है ।

साम्यवाद आज के औद्योगिक युग की उपज है और श्रमिकवर्ग तथा शोषित मानवता का पक्ष लेने के कारण एक बहुत ही आकर्षक विचार धारा लगती है। सैद्धान्तिक रूप मे भी यह एक समन्वयात्मक विचार वाद है जिसमे जर्मनी की राजनैतिक, फ्रांस की सामाजिक तथा इङ्गलैंड की आर्थिक विचारधारायें अपना अवसान पाती हैं । यथार्थ मे हीगल, रूसो तथा एडम स्मिथ, मार्क्स के आध्यात्मिक पिता हैं, और इन तीनो के विचारो को एक सुश्रृङ्खलित रूप मे गूँथ कर मार्क्स ने आधुनिक राजनैतिक विश्व को एक ठोस दर्शन प्रदान किया है, जिसमे आज के समस्या पूर्ण विश्व की अधिकतम समस्याओ का एक स्थाई तथा विवेकपूर्ण समाधान है । व्यावहारिक दृष्टि से मार्क्सवाद कहाँ तक सफल हुआ है इस विषय मे कोई निश्चित मत नही दिया जा सकता, किन्तु इतना निर्विवाद अवश्य है कि प्रजातन्त्रात्मक उदारतावाद से टक्कर लेने के लिए आज की राजनीति मे वह एक एक दुर्बल प्रतिद्वन्दी नहीं है ।

फासीवाद

(Fascism)

फासीवादी सिद्धान्त के प्रवर्तक इटली के विश्वविख्यात तानाशाह मुसोलिनी है। साम्यवाद की भाँति फासीवाद भी एक सर्वाधिकारवादी विचारधारा (Totalitarian ideology) है, जो "उन्नीसवी शताब्दी की मध्यवर्गीय पूँजीवादी सभ्यता के विरुद्ध इटली म उत्पन्न हुई थी।" प्रो० सी० डी० बर्न्स (C D Barnes) ने इसकी परिभाषा देते हुए, अपनी अमर रचना "राजनैतिक आदर्श" (Political ideals) मे लिखा है कि "इटली का फासीवाद एक ऐसा राजनीतिक तथा सामाजिक आन्दोलन है, जिसका उद्देश्य राजनैतिक तथा सामाजिक व्यवस्था का पुनर्गठन करना है" (Italian Fascism is a political and Social movement, having its object the re-establishment of a political and social order)। आगे एक स्थान पर विचारधारा के क्रान्तिकारी पक्ष का विवेचन करते हुये वे मानते हैं कि "इटली में इसके उदय का प्रधान कारण धर्महीन पुनरुत्थान (Pagan Renaissance)' धार्मिक सुधार (Religious Reformation) तथा तत्पश्चात् घटित होने वाली फ्रान्सीसी राज्यक्रान्ति (French Revolution) द्वारा विकसित होने वाली, व्यक्तिवादी मनोवृत्ति (Individualist mentality) पर एक कटु तथा आलोचनापूर्ण प्रहार (Repudiation) करना था। यथार्थ मे प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् यूरोप मे [illegible] उदारतावाद (Democratic liberalism) के बुरी तरह [illegible] हो [illegible] पर उसी की एक उग्र प्रतिक्रिया के रूप मे इस विचारधारा का [illegible] हुआ था, [illegible] का प्रबल उद्घोष कर, व्यक्तिवाद, पूंजीवाद, समाजवाद, [illegible] साम्य-वाद आदि सभी प्रचलित विचारधाराओं का [illegible] है। [illegible] राष्ट्रीय एकता पर बल देता है और राष्ट्रीय हितों के [illegible], [illegible], अन्तर्राष्ट्रीयता तथा प्रजातन्त्र आदि सभी को उपेक्षणीय [illegible] है। [illegible] शब्द की उत्पत्ति लेटिन भाषा के शब्द 'Fasces' से हुई है [illegible] उसका कुछ शलाकाओं का गट्ठर (A bundle of rods [illegible])। [illegible] के शासक इसे अपनी सत्ता के चिह्न [illegible] की एकता का प्रतीक माना [illegible] प्रशंसक तथा उपासक [illegible] मानते हैं और वटे [illegible]

करते हैं। अपने मूल रूप में 'फासीवाद' सर्वाधिकारवाद (Totalitarianism) के सब सिद्धान्तों को स्वीकार करता है, किन्तु युद्ध कालोत्तर (Post war) अवस्थाओं में उत्पन्न होने के कारण वह एक ऐसी विचारधारा है जो इटली की सांस्कृतिक, भौगोलिक तथा ऐतिहासिक परम्पराओं के अनुरूप ढाली गई है। एक प्रसिद्ध आलोचक के शब्दों में हम इसे 'सर्वाधिकारवाद का ही इटालियन रूपान्तर अथवा मुसोलिनी द्वारा सम्पादित इटालियन संस्करण कह सकते हैं' (Fascism may be termed as an Italian variant or an Italian edition of totalitarianism, propounded by Benitto Mussolini)

फासीवाद का उदय (Emergence of Fascism)—फासीवाद पूर्णतः एक इटालियन राष्ट्रीय क्रान्ति (Italian National movement) है। और सन् १९१६ में इटली के सुयोग्य नेता मुसोलियन ने फासिस्ट सिद्धान्तों के आधार पर एक फासीवादी राज्य की स्थापना की थी। इटली जैसे प्रायद्वीप में सर्वप्रथम इस उग्र विचारधारा के उदय होने का कारण युद्धोत्तरकालीन परिस्थितियाँ थी। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद जब विजयी मित्रराष्ट्रों ने जर्मनी को वरसाई की संधिपत्र (Treaty of Versailles) पर हस्ताक्षर करने के लिए बाध्य कर उसके सारे साम्राज्य को आपस में बाँटकर हड़प लिया, तो इटली ने भी अपनी १९१४ की लन्दन संधि के आधार पर विजयी होने के कारण कुछ प्रान्त माँगे। किन्तु फ्रांस के प्रधान मन्त्री क्लेमेन्सो (Cleamanau) ने इटालियन प्रतिनिधि ऑरलैंडो (Orlando) की एक भी न सुनी और इटली को मित्र राष्ट्रों के साथ भारी हानि उठानी पड़ी थी किन्तु जब वरसाई की संधि द्वारा उसको क्षतिपूर्ति (Compensation) नहीं मिला तो समस्त इटली में एक रोष और क्षोभ की लहर दौड़ गई। आर्थिक दृष्टि से इटली इस समय तक पहले ही कंगाल हो चुका था, तथा युद्ध से लौटे हुए सिपाही बेकार घूम रहे थे। श्रमिकों की स्थिति और भी हीन थी, जिसके कारण देश के कोने कोने में असन्तोष व्याप्त था। प्रतिदिन हड़तालें होती थीं और देश का उत्पादन भी हर रोज घटता जा रहा था। सभी को भय तथा आशङ्का थी कि बहुत शीघ्र ही साम्यवाद रूस की भांति इटली को भी आ दबायगा। युद्ध के पश्चात् नित्य प्रति यह स्थिति विपन्न से विपन्नतर होती आ रही थी जबकि सन् १९२२ में बेनिटो मुसोलिनी के रूप में इटली ने सर्वप्रथम अपना नेता तथा त्राता (Saviour) प्राप्त किया।

मुसोलिनी सर्वप्रथम इटली के भ्रान्त तथा हताश नागरिकों के सम्मुख एक आकर्षक तथा रचनात्मक कार्यक्रम लेकर आया। उसने इटली की जनता को दो नारे दिये—पहला इटली एक शानदार परम्पराओं वाला महान देश है तथा दूसरे इटली के अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान तथा आन्तरिक सुदृढ़ प्रशासनिक व्यवस्था को पाये बिना इटली का चैन से नहीं बैठना है। उसने स्पष्ट रूप से यह घोषणा की कि "उसका कार्यक्रम बातें करना अथवा आदर्श सिद्धान्तों का पालन करना नहीं बल्कि सक्रिय तथा रचनात्मक काम करना है' (My programme is action not talk)। सन् १९२८ से पूर्व

मुसोलिनी तीन साल तक इटालियन ड्यूस (Duce) अर्थात वहा की संसद का सदस्य रह चुका था, अत उसे वहा की सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक अवस्थाओं का अच्छा ज्ञान था। संसद मे वह एक क्रांतिकारी दल का नेता था और सन् १९२२ में पतनोन्मुख इटली की बिगड़ती हुई स्थिति से लाभ उठाकर उसने २८ अक्टूबर को रोम पर धावा बोल दिया। बेचारा इटली का राजा घबरा गया और दूसरे ही दिन उसने फासी नेता मुसोलिनी को इटली की सरकार बनाने के लिए निमन्त्रण दिया। मुसोलिनी ने इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया और केवल तीन साल तक बड़ी कठिनाई के साथ ड्यूस के विरोध के बीच कार्य करते हुए सन् १९२६ मे उसने ड्यूस (Duce) को भंग कर दिया और सच्चे अर्थों मे इटली का तानाशाह बन बैठा।

इटली राज्य का प्रधान अधिष्ठाता बनने के दिन से द्वितीय महायुद्ध तक मुसोलिनी इटली के भाग्य का एक मात्र निर्माता तथा विधाता बना रहा। उसने सम्पूर्ण प्रजातन्त्रात्मक प्रणाली की समाप्ति कर एक सर्वाधिकारवादी एकतन्त्र की नींव डाली। अपने विचारों को जनता मे प्रचलित करने के लिए उनका प्रचार किया और प्रेस, रेडियो तथा साहित्य पर एक कठोर नियन्त्रण लगा दिया। आर्थिक दृष्टि से, पूंजीवाद को प्रोत्साहन देकर उसने साम्राज्यवादी नीति का श्री गणेश किया और एबीसिनिया युद्ध की जीत कर इथोपिया पर अधिकार कर लिया। अपने कार्यों का जनता द्वारा समर्थन प्राप्त करने के लिए उसने उनकी राष्ट्रीयता को चरम सीमा तक जाग्रत रखा और व्यक्ति तथा वैयक्तिक स्वाधीनता की राष्ट्र तथा राष्ट्रीय हितों की वेदी पर बलि चढ़ा एक प्रबल फासीदल के सर्वाधिकार पूर्ण राज्य की स्थापना की।

फासीवादी सिद्धान्त (The Theory of Facism)—शास्त्रीय दृष्टि से फासीवाद कोई क्रमबद्ध सुगठित राज्य दर्शन नहीं है और न साम्यवाद के संस्थापक मार्क्स की भांति इसको कोई दार्शनिक पिता ही कहा जा सकता है। राजनीति के इतिहास मे फासीवाद ही एक ऐसा सिद्धान्त है जो सैद्धान्तिक दृष्टि अथवा शुद्ध चिन्तन द्वारा उत्पन्न न होकर नग्न यथार्थताओं के आधार पर रचा गया है। Communist Manifesto की भांति फासीवाद की कोई आधारभूत बाइबिल नहीं है, बल्कि सिद्धान्त रूप म विचार करने के लिए यह केवल कुछ ऐसे कार्यों तथा तर्कों का संग्रह मात्र है जो इटली के फासी नेता मुसोलिनी ने किये थे और जिन्हें उसने परिस्थितियों के अनुकूल आवश्यक तथा उपयोगी बतलाया था। यथार्थ मे यह कोई सिद्धान्त नहीं है और न इसके पास कार्य करने के लिए कोई निश्चित तथा स्थाई कार्यक्रम ही है। यह तो केवल एक कला मात्र (Technique) थी, जो यह बतलाती है कि राजनीति मे हिंसा द्वारा सत्ता किस प्रकार प्राप्त की जा सकती है और उसे कैसे स्थाई बनाया जा सकता है। स्वयं मुसोलिनी के ये शब्द थे—"हमारा कार्यक्रम बहुत सरल है। हम इटली पर शासन करना चाहते हैं। इटली के मोक्ष के लिए कार्यक्रमों की कमी नहीं है बल्कि कमी है मनुष्यों की तथा उनकी इच्छा शक्ति की" (Our programme is simple We wish to Govern Italy It is not programmes that are wanting

for the Salvation of Italy but men and will powers)'। वह औपचारिक सिद्धान्तों को बहुत तुच्छ व उपेक्षणीय व बन्धन मानता था (Formal principles are nons and tin fetters)। क्योंकि उसके मत में "फासीवाद लोग इटली की राजनीति के जिप्सी हैं, जो किन्हीं निश्चित सिद्धान्तों से बंधे हुए न होकर, इटली की जनता के कल्याण के एकमात्र ध्येय को सामने रख अनवरत रूप से आगे बढ़ते रहे हैं" (Fascists are the gypsies of Italian politics not being tied down to any fixed principles, they proceed unceasingly toward the goal of the people of Italy) साधारण रूप से फासीवाद किसी आदर्श, सन्त महन्त तथा आध्यात्मिकता में विश्वास नहीं करता। मुसोलिनी की अपनी परिभाषा के अनुसार "फासीवादी किसी व्यवस्था, सन्त, महन्त तथा सिद्धान्त के उपासक नहीं हैं और इनसे भी कम वे प्रसन्नता, मोक्ष तथा काल्पनिक लोक में विश्वास करते हैं। वे उस प्रत्येक वस्तु के समर्थक हैं जो व्यक्ति के जीवन को सुन्दरतर, आरामपूर्ण उच्चतर तथा स्वतन्त्र एवं विशाल बनाती है, (Fascists put no faith in any system, nostrum, saint or apostle, still less do they believe in happiness, Salvation or the promised land they stand for everything that exalts and ennobles the individual gives him more comfort more liberty and wider life.) इस प्रकार फासिस्ट दर्शन प्रधानतः अवसरवादी (Opportunist) तथा क्रियात्मक है। वह एक लचीली विचारधारा है जो आवश्यकतानुसार यथाइच्छा मोड़ ली जाती है। फासिस्ट लोग काम पहले करते हैं और उसे दर्शन का रूप बाद में देते हैं। आचारात्मक सभी विचारों का खण्डन करने के कारण इसे 'सत्तावादी राजनीति का सिद्धान्त (Philosophy of power politics) भी कहा जा सकता है।

१ फासिज्म राष्ट्र की उपासना करता है (Fascism glorifies the Nation) फासिस्ट लोगों का मत है कि राष्ट्र का एक अपना व्यक्तित्व अपनी इच्छा, तथा स्वतन्त्र उद्देश्य होता है। आदर्शवादियों की दृष्टि में जो स्थान राज्य का है, फासिस्ट उसे राष्ट्र का बतलाते हैं। उनका कहना है कि राष्ट्र कोई व्यक्तियों की भीड़ का नाम नहीं है, बल्कि उसका स्वरूप संघटनात्मक (Corporate) है। केवल एक निश्चित भू भाग में रहने वाले, एक भाषा-भाषी तथा एक सी ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक परम्परायें रखने वाले व्यक्ति ही मिलकर राष्ट्र कहे जा सकते हैं। अतः राज्य तथा समाज का स्वरूप एक जैविक स्वरूप (Organismic form) है, जिससे पृथक् करने पर व्यक्ति एक अस्तित्वहीन भावात्मकता (Not existing abstraction) मात्र रह जायगा। राष्ट्र के इस रूप की फासिस्ट लोग उपासना करते हैं और मानते हैं कि वह जनता के भाग्य का एक मात्र तथा अन्तिम निर्णेता है। राष्ट्र के सारे साधन इसे गौरवपूर्ण बनाने के लिए खर्च किये जाने चाहिये तथा उसकी अभिवृद्धि ही व्यक्ति के मस्तिष्क में रहने वाला प्रधान विचार होना चाहिये। राष्ट्र समाज को एक सूत्र में बांध कर संयुक्त रखता है और उसका क्षेत्र केवल जीवित व्यक्तियों तक ही सीमित न होकर भावी पीढ़ियों तक है।

२ फाजिस्म राज्य एक सब सत्तात्मक राज्य है (Fascist State is an omnipotent Sovereign State)—फासिस्ट लोग राज्य को सर्वाधिकारवादी, एव सब शक्तिमान सस्था के रूप मे देखना चाहते हैं। व्यक्ति और राज्य को चुनते है और मानते हैं कि राज्य का हित व्यक्ति के हितो से अधिक महत्वपूर्ण है। व्यक्ति के अधिकारो और कर्तव्यो मे से भी कर्त्तव्य को ही प्रधानता देते हैं। उनकी एक मात्र पुकार है "व्यवस्था, अनुशासन तथा अधिकार" (Order Discipline and Authority) और इन तीनो की प्राप्ति के लिए उनका राज्य पूर्ण उच्छृखलता के साथ वैयक्तिक स्वाधीनता को कुचल सकता है। वे राज्य को ही सवस्व मानते हैं और मुसोलिनी के शब्दो मे 'ससार की कोई भी मानवीय तथा आध्यात्मिक वस्तु उससे बाहर नही हो सकती और यदि हो तो उसका कोई मूल्य नही हो सकता" (Nothing human or spiritual exists and much less has value outside the State)। यथार्थ मे फासिज्म राज्य को एक ऐसी सब शक्तिशाली सस्था के रूप म देखता है, कि व्यक्ति के सामाजिक जीवन का कोई भी पक्ष उसके कठोर अनुशासन पूर्ण नियमो से मुक्त नही हो सकता। फासीवादी व्यवस्था मे व्यक्ति राज्यकीय चक्र की धुरी न होकर एक साधारण सा पुर्जा मात्र है। उसका कर्तव्य है कि वह पूर्ण निष्ठा के साथ राज्य का भक्त बना रहे और उसे श्रद्धा के साथ देखे। फासिस्ट सर्वाधिकारवादी राज्य का चित्र इन शब्दो से स्पष्ट है "सब कुछ राज्य के अन्तर्गत होना चाहिए, राज्य के विरुद्ध तथा राज्य के बाहर कुछ भी नही हो सकता" (Every thing within the State, nothing against the State nothing outside the State)

३ फासिस्ट स्वाधीनता को अधिकार न मानकर कर्त्तव्य मानते हैं (To Fascist liberty is not a right but a duty)—फासिस्ट लोगो की स्वाधीनता की परिभाषा अपनी है तथा बहुत कुछ नवीन भी। फासिज्म वयक्तिक स्वाधीनता का इतना प्रशसक नही है, जितना कि एक शक्तिशाली राज्य का, अत उसकी यह मान्यता है कि स्वाधीनता कोई प्राकृतिक देन नही हैं, वरन् राज्य के द्वारा स्वीकृत की गई एक रियायत (Concession) है। राष्ट्र अथवा राज्य को वह मानव विकास के लिए एक अनिवार्यता मानता है जिसम राष्ट्रीयता की भावना प्रतिष्ठित है। इसलिए यह स्वाभाविक है कि राज्य के आदेशो की अवज्ञा न की जाय क्योकि उनके पालन करने में ही व्यक्ति स्वाधीनता का अनुभव कर सकता है। फासिस्ट लोगों का मत है कि व्यक्ति सच्चे अर्थों मे स्वाधीन तब ही हो सकता है, जब वह अपने को राष्ट्र के व्यक्तित्व के साथ मिलाकर एक कर दे। यदि वह ऐसा न करके राज्य के नियमो का भग करता है तो इसका अर्थ यह है कि वह स्वतन्त्र न रहना चाह कर दासता (Slavery) के मार्ग पर जाना चाहता है। फासिस्ट स्वाधीनता की परिभाषा देते हुए जनटाइल (Gentile) ने लिखा है कि "कानून और राज्य स्वाधीनता की चरम परिणितियाँ हैं तथा अधिकतम राज्यकीय दल के साथ मिलकर एकाकार हो जाती है।" (Law and the State are supreme manifestations of liberty–and

maximum of liberty coincides with maximum of State force) । फासिस्टो का कहना है कि राज्य की ज्यों-ज्यों शक्ति बढ़ेगी त्यों-त्यों ही वह स्वाधीनता का क्षेत्र भी विस्तृत हो जायगा क्योंकि एक फासिस्ट राज्य में व्यक्ति की सुरक्षा तथा स्वाधीनता कानून के घूंसे द्वारा रक्षित की जाती है (Liberty is guarded by the mailed fist of law) ।

४ फासिस्ट राज्य में व्यक्ति उपेक्षणीय है (The individual is negligible in a Fascist State)—फासिज्म व्यक्तिवाद का कट्टर शत्रु है। वह यह मानता है कि राष्ट्र का सामूहिक हित एक इतनी बहुमूल्य वस्तु है कि उसकी प्राप्ति के लिए कुछ व्यक्तियों का बलिदान कोई महत्व नहीं रखता। नैतिक तथा कानून दोनों ही दृष्टियों से फासिस्ट लोग राज्य की महत्ता तथा प्राथमिकता (Priority) के सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं। उनके मत में राज्य अथवा राष्ट्र की सेवा में ही व्यक्ति का कल्याण तथा उन्नति है, अतः राज्य से भिन्न व्यक्ति का कोई अपना स्वतन्त्र उद्देश्य नहीं हो सकता। उसका अन्तिम अवसान राज्य में ही होता है, अतः राज्य के विरुद्ध उसके कोई अधिकार नहीं हो सकते। उसका तो उच्चतम कर्तव्य केवल एक है और वह यही कि वह परम निष्ठा के साथ राज्य की आधीनता को स्वीकार करता हुआ उसके आदेशों का पालन करे। मुसोलिनी ने लिखा है "फासिस्ट राज्य वैयक्तिक सुरक्षा तथा भौतिक सम्पन्नता प्रदान करने वाला कोई रात्रि प्रहरी नहीं है—बल्कि यह तो एक आत्मिक इकाई है जो राष्ट्र की आर्थिक, राजनैतिक तथा न्याय मूलक व्यवस्था को प्राप्त करने के लिए उद्भूत हुई है।" (The Fascist State is not a night watchman solitous only of personal safety and object for guaranteeing material—but it is a Spiritual entity for securing political, economic and judicial organisation of the Nation) ।

५ फासिज्म प्रजातन्त्र का विरोधी है (Fascism is opposed to democracy)—फासिज्म का सिद्धान्त प्रजातन्त्र तथा उदारतावाद (Liberalism) का घोर शत्रु है। यह संसदीय प्रजातन्त्र (Parliamentary democracy) में तनिक भी आस्था नहीं रखता बल्कि इस 'मूर्खतापूर्ण, भ्रष्ट, धीमी, काल्पनिक तथा अव्यावहारिक प्रणाली' (Stupid, Corrupt, slow moving, visionary and impracticable system) कह कर इसका उपहास करता है। इसकी मान्यता है कि यह एक मरणासन्न शव (Decaying Corpse) है [illegible] पूर्णतः सड़ चुका है। संसदों को इटालियन फासिस्ट "गप्पें लड़ाने वाली दुकानें" बतलाते हैं जो कोई भी कार्य कुशलतापूर्वक सम्पादित करने में अयोग्य तथा असमर्थ हैं (Parliaments are talking shops, incapable of accomplishing substantial results) । ये प्रजातन्त्र को एक अप्राकृतिक (Unnatural) वस्तु मानते हैं और यह तर्क देते हैं कि जन साधारण अपने आप पर शासन करने के लिए कभी भी योग्य नहीं हो सकता। उनकी दृष्टि में सार्वजनिक इच्छा जैसी कोई चीज, केवल मतदान द्वारा प्रकट नहीं हो

सकती और इसीलिए व यह घोषणा करते हैं कि प्रजातन्त्र के मूल आधार ही मिथ्या और अवास्तविक (Unreal) है।

६ फासिज्म कुलीनतन्त्र मे विश्वास करता है (Fascism believes in Aristocracy)—प्रजातन्त्र की आलोचना करते समय फासिस्ट लोग यह तर्क देते हैं कि जन साधारण प्रत्यक देश तथा प्रत्यक काल म अज्ञानी, अन्धविश्वासी तथा भावात्मक (Sentimental) होता है, इस कारण उत्तम राष्ट्र का नतृत्व करने की क्षमता नही हो सकती। विशाल राष्ट्र म सदव कुछ हा ऐसे योग्य अनुभवी तथा काय कुशल व्यक्ति हुआ करते हैं, जो निश्चित आदर्शों से प्रेरणा लेकर निष्ठा के साथ सम्पूण राष्ट्र के हितो को भली भाँति पहिचान कर उसकी रक्षा कर सकते है। फासिस्ट व्यक्ति की ज मजात असमानताओ म विश्वास करते हैं और उन लाभदायक उपयोगी तथा अवश्यम्भावी भी मानते हैं।' (Fascism affirms the immutable, beneficial, fruitful inequality of mankind) इसी तक के आधार पर उनका कहना है कि काय कुशलता (Efficiency) के लिए जन साधारण को आलोचना करन का अधिकार नही होना चाहिए। वे तो अज्ञानी हैं, व सलाह नही दे सकत। अत शासन की बागडोर जब कुछ योग्य व्यक्तियो क हाथ म हो तो उनका तो एक ही कर्तव्य है कि वे उनका अन्धानुसरण करें। इस प्रकार ज मजात असमानता का आधार ले फासिस्ट लोग प्रजातन्त्र की मूल आधार शिला को चुनौती देते हैं और कायकुशलता, योग्यता तथा अनुभव की आड ले कुछ कुलीन लोगो के तानाशाही पूण निर्विरोध शासन का समथन करते हैं।

७ फासिज्म मार्क्सवाद से सहमत नहीं (Fascism does not fall in line with Marxism)—इटली के फासी नेता माक्स के साम्यवादी दशन की भित्तियो को भी चुनौती देते हैं। वे माक्सवाद के दो मूलभूत सिद्धान्त इतिहास मे आर्थिक तत्व (Economic factor in History) तथा वगयुद्ध (Class war) दोनो को ही अस्वीकार करते हैं। प्रथम के विषय मे उनका कहना है कि आर्थिक विचार से भी अधिक व्यक्ति राष्ट्रीयता देशभक्ति तथा धम आदि के विचारो से प्रभावित होता है। (In holyness and heroism)। इसी सिद्धान्त के खण्डन म वे यह भी मानते हैं कि आर्थिक सम्पन्नता (Economic prosperity) का अथ प्रसन्नता नहीं है क्योंकि "केवल आर्थिक सम्पन्नता मनुष्य को मनुष्यता से पतित कर पशुत्व के स्तर पर ले आती है, जो कि केवल अपन भोजन तथा अच्छे भोजन के अतिरिक्त अय किसी बात की चिन्ता नही करता (Economic well being degrades humanity and reduces man to the level of animals caring for one thing only to be fed and well fed alone) आध्यात्मवाद (Spiritualism) म विश्वास करने के कारण फासिस्ट इसे एक अमानवीय सिद्धा त घोषित करत हैं। वग युद्ध के सिद्धा त मे से भी, वगवाद के अस्तित्व को समाज म स्वीकार करत हुए फासिस्ट यह नही मानते हैं कि समाज मे केवल दो ही वग है और उनम सतत सघष चलता रहा है। उनकी दृष्टि म प्रत्यक

वर्ग का समाज में अपना महत्व तथा मूल्य है और वे सब परस्पर में मिल जुल कर राष्ट्र के कल्याण तथा प्रगति के लिए सहयोग द्वारा कार्य करते हैं।

८ फासिस्ट आर्थिक नीति समाजवाद तथा व्यक्तिवाद की मध्यवर्तिनी है (**The Economic policy of the Fascists treads a midway between Individualism and Socialism**)—अपने राष्ट्र की आर्थिक नीति निर्धारित करते समय फासिस्ट राष्ट्रीय एकता (National unity) के विचार से सबसे अधिक प्रभावित होते हैं। आर्थिक क्षेत्र में उनके विचार न पूर्णत व्यक्तिवादी नीति (Laissez Faire) का ही समर्थन करते है और न वे इस समाजवादी सिद्धान्त में ही विश्वास करते हैं कि उत्पादन, वितरण तथा उपभोग के समस्त साधनों का राष्ट्रीयकरण (Nationalisation) ही कर दिया जाय। इस विषय में उनकी नीति निश्चित नहीं है तथा वे यह मानते हैं कि राष्ट्रीय एकता को ध्यान मे रखते हुए जहां पूंजीवादी नीति लाभदायक हो सकती है वहां पूँजीवाद को प्रोत्साहित किया जाय किन्तु जहां पूँजीवाद राष्ट्रीय हितों मे हानिकारक सिद्ध हो वहाँ समाजवादी दर्शन का आधार मान कर चला जाय। सच तो यह है कि वे आर्थिक प्रश्नों को राष्ट्रीय दृष्टिकोण से देखते हैं और वैयक्तिक सम्पत्ति को व्यक्तित्व के विकास के लिए परमावश्यक मानते हुए भी उसे राष्ट्रीय हितों के आधीन मानते हैं। इसी कारण से राष्ट्रीय कल कारखानों मे वैयक्तिक स्वामित्व होते हुए भी वे इस बात की स्वीकृति नही देते कि मजदूर हड़तालें कर सकें, तथा पूँजीपति अपनी मिलो के ताला बन्द कर सकें, क्योंकि ऐसा करने से राष्ट्रीय हितों को आघात पहुंचता है।

९ फासिज्म तर्क और बुद्धि में विश्वास नहीं करता (**Fascism is an anti-intellectualist movement**)—बुद्धि तथा तर्क पर अविश्वास करना फासिज्म की एक प्रमुख विशेषता है। राज्य के आदर्शवादी सिद्धान्त के प्रतिकूल फासिस्ट लोग व्यक्ति को स्वभाव से एक विवेकशील (Rational) तर्कपूर्ण तथा बुद्धिवादी (Intellectualist) प्राणी न मानकर, एक भावात्मक (Sentimental) तथा प्रवृत्तिवादी (Instinctive) प्राणी अधिक मानते है। वे वाद विवाद तथा उसके द्वारा विचार परिवर्तन की प्रणाली में विश्वास नहीं करते, बल्कि यह मानते हैं कि जनता की देश भक्ति तथा सरकार के प्रति निष्ठा (Loyalty) को बनाये रखने के लिए सरकार को चाहिए कि वह लोगों के विचारों को प्रचार द्वारा अपने पक्ष मे ही बनाये रखे, और यदि उचित समझे तो उन्हें डराती भी रहे। तात्पर्य यह कि फासीवादी राज्य इस मत का समर्थक है कि लोग अपने हाथ पैर तथा फेफड़ों का प्रयोग अवश्य करें, किन्तु बुद्धि और मस्तिष्क का नहीं। उसने इटली की जनता को राज्य का अन्धा भक्त बनाये रखने को दो नारे दिये थे (१) एक था कि मुसोलिनी हमेशा ठीक बात कहता है (Mussolini is always right) तथा दूसरा यह कि उसके आदेशों मे हम विश्वास करना चाहिये, उनका पालन करना चाहिए तथा उनके लिए युद्ध तक को उद्यत रहना चाहिए।" (To have faith, to obey and to fight) फासिस्ट लोग घोर

यथार्थतावादी (Rankrealists) हैं और इसीलिए वे किसी ऐसे सिद्धान्त मे विश्वास नही करते जो इस दुनिया का न होकर किसी काल्पनिक दुनिया का हो।'केवल बुद्धिवादी दर्शन उनकी दृष्टि मे कुछ बुद्धवादी अमीरो की केवल विलासिता (Luxury) मात्र है। (A mere intellectualist philosophy is the luxury of the Aristocrates)

१० फासिज्म धर्म विरोधी सिद्धान्त नहीं (Fascism is not Antichurch)—सन् १९२१ से पूर्व इटली का फासिस्ट दल धर्म तथा धार्मिक गिरजाघरो को समूल विनाश कर देने के पक्ष म था किन्तु मुसोलिनी के तानाशाह बनने के कुछ समय बाद ही उसने यह अनुभव किया कि, कैथोलिक चर्च का प्रभाव इटली की जनता पर इतना गहरा और प्रबल है कि उसे कुचला नही जा सकता। अनको प्रमुख कथोलिक नागरिको को फासिस्ट दल का सदस्य बनाने के लिए उसने यह उचित समझा कि फासिज्म का हित इसी म है कि वह चर्च के विरुद्ध सघर्ष करने की अपेक्षा उससे सधि कर ले। इसके फलस्वरूप (Vatican Italian Accord) नाम की १९२९ की सधि हुई, जिसके अनुसार पोप ने फासिस्ट सरकार को इटली की सरकार के रूप म मान्यता प्रदान की तथा मुसोलिनी ने "वैटिकन प्रदेश' पर पोप की सत्ता को स्वीकार किया। इस सधि की कुछ अन्य शर्तें ये भी थी कि पोप कैथोलिक पादरियो को इटली की राजनीति म भाग लेने से मना कर देगा तथा इटली के राज्यकीय स्कूलो मे धार्मिक शिक्षा चालू रहेगी। सन् १९२९ की सधि यह सिद्ध करती है कि फासिस्ट लोग धर्म विरोधी नही है, बल्कि अवसरवादी होने के कारण व धार्मिक भावनाओ को राजनतिक लाभ के लिए उपयोग म लाना चाहते हैं। वास्तव मे चर्च उनके हाथ की एक कठपुतली मात्र था जो उनके पक्ष मे प्रचार करता था।

११ फासिज्म हिंसक युद्ध तथा सनिक शक्ति का समर्थक है (Fascism favours violence and military power)—फासिस्ट लोग शान्तिप्रिय (Pacifist) नही हैं। उनका मत है कि मनुष्य के सारे कार्यों तथा प्रयत्नो का उद्देश्य धन बटोरना अथवा प्रसन्नता प्राप्त करना नही है, बल्कि सत्ता प्राप्त करना है, जिसके बिना वह समाज मे अपनी प्रतिष्ठा कायम नहा रख सकता। राष्ट्र के विषय म भी व इस सिद्धान्त को सच मानते हैं और खुले शब्दो मे यह कहते हैं कि "बिना युद्ध के मानवता का विकास असम्भव है। राष्ट्र की उन्नति के लिए व उसकी सनिक शक्ति को बढाना चाहते हैं। जिससे कि एक फासिस्ट राज्य हिंसात्मक युद्ध लडकर एक विशाल साम्राज्य बन सके। फासिस्ट नेता मुसोलिनी युद्ध को एक गौरवशाली वस्तु मानता था, "जो पुरुषो के लिए इतना ही स्वाभाविक है जितना कि स्त्री जीवन के लिए मातृत्व।" (There should be a military regimentation everywhere and the barbarous world must be civilized by liquid fire and poisonous gases) अपने उद्देश्यो की पूर्ति म हिंसा तथा रक्तपात, उनकी दृष्टि म उपयोगीय है। युद्ध की प्रशसा के गीत गाने गान व इस सीमा तक पहुच गये ह कि

"विश्व शान्ति उन्हें कायरो का स्वप्न" दिखाई देती है (World peace is Coward s dream)। हिटलर के ये शब्द कि "अनवरत युद्धो से मानवता महान बन सकी है तथा चिर शान्ति मे उसका विनाश हो जायगा" (In internal wars mankind has become great and in eternal peace it would be ruined)। फासिज्म भी स्वीकार करता है और चाहता है कि औरत अधिक से अधिक सन्तान उत्पन्न करें, जिससे साम्राज्यवादी युद्धो के लिए ईंधन मिल सके।

१२ फासिज्म साम्राज्यवाद को अपना उद्देश्य मानकर चलता है (Fascism aims at imperialism)—युद्ध को मनुष्य के लिए आवश्यक तथा सद्गुणो को बढाने वाले मानने के कारण फासिस्ट नेता मुसोलिनी मानता था कि "प्रत्येक सरकार अथवा राष्ट्र को अन्य राष्ट्रो पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से शासन करते हुए एक साम्राज्य बनाने का ध्येय अपने सामने रखना चाहिए।" (Every Government must be thought of an empire i e a nation which directly or indirectly rules other nations) उसकी तो यह स्पष्ट धारणा थी कि बिना साम्राज्यवादी युद्धो के इटली उन्नति नही कर सकती अत "या तो उसे फैलना चाहिए अथवा मर जाना चाहिए।" (Italy must expand or perish) फासिज्म अन्तर्राष्ट्रीयता तथा विश्वशान्ति की खिल्ली उडाता है और उन्हें अप्राकृतिक तथा हानिकारक बतलाता हुआ मानता है कि "साम्राज्यवाद, जीवन का शाश्वत तथा अपरिवर्तनशील नियम है।" (Imperialism is the eternal immutable law of life) इस प्रकार फासिज्म एक तीव्र तथा अविवेकशील राष्ट्रीय विचारधारा है, जो आक्रमण और युद्ध द्वारा छोटे राज्यो को जीत कर विशाल साम्राज्य का स्वप्न देखता है।

१३ फासिस्ट राज्य का एक सुसंगठित राज्य का चित्र है (The Fascist State Is a Coroporatne State)—इटली के फासिस्टो ने इटली में एक सुसंगठित राज्य (Corporative State) की स्थापना की थी, जिसकी सामाजिक तथा राजनैतिक व्यवस्था बिलकुल नवीन थी। यह व्यवस्था पूँजीवादी और समाजवादी दोनो से भिन्न थी इसमे उन्होने प्रादेशिक प्रतिनिधित्व (Territorial Representation) के स्थान पर व्यावसायिक प्रतिनिधित्व (Functional Representation) को आरम्भ किया था। सारे राज्य मे मजदूर सघो का अन्त कर उन्होने सस्थानो (Corporations) की स्थापना की, जो व्यावसायिक आधार पर बनाये गये थे और जिनका निरीक्षण और सचालन (Regulation) का काम फासिस्ट सरकार करती थी। प्रो० जोड (Prof Joad) के शब्दो मे "ये सस्थान ही राज्य की आत्मा की विभिन्न धाराओ मे बटकर विशिष्ट उद्देश्यो की पूर्ति के लिए उसकी सम्पूर्णता का रूप बनाते थे।" These corporations, supporting parts of the whole in the State, specialized char[illegible] through which the State Spirit is canalized and diffused for special purposes) फासिस्ट इटली मे इन सस्थानो का [illegible] किया गया था [illegible]

व्यवस्था एक पिरेमिड की तरह थी (Hierarchical) अर्थात् छोटे संस्थान बड़े संस्थानों में प्रतिनिधि भेजते थे, ये बड़े संस्थान प्रादेशिक संस्थानों को तथा उन प्रादेशिक संस्थानों से संसद के लिए प्रतिनिधि चुने जाते थे। किन्तु इन सब पर इटली के फासिस्ट दल का पूरा पूरा नियन्त्रण था।

फासीवाद की आलोचना (Criticism of Fascism)—फासीवादी यह सिद्धान्त अपनी अद्भुत मान्यताओं के कारण आज के आलोचकों द्वारा बड़ी निर्दयता के साथ खण्डित कर दिया गया है। यथार्थ में यह कोई सिद्धान्त ही नहीं था, बल्कि जैसा कि प्रो० सबाइन (Prof Sabine) का मत है "यह केवल कुछ विचारों का संग्रह मात्र था जो विभिन्न स्रोतों से लिए जा कर स्थिति की आवश्यकताओं के अनुसार ढाल दिये गये थे।" (It was a body of ideas taken from various sources and put together to fit the exigencies of the situation)। यही कारण है कि व्यावहारिक दृष्टि से इटली में बहुत कुछ सफलता प्राप्त करने के बाद भी सैद्धान्तिक दृष्टि से यह एक दुर्बल अमानवीय तथा अवसरवादी दर्शन ही रहा और द्वितीय विश्वयुद्ध में मुसोलिनी की हार ने यह सिद्ध कर दिया कि राष्ट्र के नाम पर लोगों को कुछ समय के लिए धोखा अवश्य दिया जा सकता है किन्तु शक्ति राजनीति का सिद्धान्त (Power Politics) राजनीति में स्थाई सफलता नहीं दे सकता। इटली का फासीवाद मुसोलिनी की मृत्यु के साथ साथ सदैव के लिए मर गया जिसके प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं।

१ **फासिज्म प्रगतिशील विचारों का विरोधी है (Fascism is opposed to progressive ideas)**—फासिस्ट विचार बड़े बर्बर तथा असभ्य राक्षसों के से विचार मालूम होते हैं। यदि हम २० वीं शताब्दी की आत्मा का अध्ययन करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन फासिज्म करता है वे युग की पुकार के बिलकुल विपरीत हैं। आज का हमारा प्रगतिशील समाज प्रजातन्त्र, विचारों की स्वाधीनता, विश्व शान्ति तथा सभी मनुष्यों की मूलभूत एकता आदि विचारों में बड़ी श्रद्धा के साथ विश्वास करता है और इन्हें आधुनिक समाज में चिरस्थाई बनाने के लिए कोशिश कर रहा है फासिस्ट इसके विरुद्ध युद्ध का उपदेश देते हैं, विश्वशान्ति को कायरता बतलाते हैं, प्रजातन्त्र को मरा हुआ और सड़ने वाला शव कहते हैं, तथा मनुष्यों में बुद्धिमानों और कम बुद्धिवालों का भेद करते हैं और एक नेता के पीछे भेड़ों की तरह चलने की बातें करते हैं, जो बिलकुल प्रतिक्रियावादी (Reactionary) और आदिम युग (Primitive age) के से विचार लगते हैं और एक सभ्य प्रगतिशील राष्ट्र के लिए शोभा नहीं देते।

२ **फासिस्ट राष्ट्र को आवश्यकता से अधिक गौरव देते हैं (Fascism is too Nationalists)**—फासिस्ट लोग यदि राष्ट्र को महत्त्व दें तो इसमें आपत्ति की कोई बात नहीं हो सकती किन्तु आपत्ति की बात तो यह है कि वे राष्ट्र को एक रहस्यमय देवता (A mysterious God) बतलाकर जन साधारण से उसकी पूजा करवाते हैं।

शाही का अर्थ है चारों ओर से दम घोटना और परिणामस्वरूप सबको बंजर कर देना। विज्ञान की उन्नति केवल स्वतन्त्र भाषण के वातावरण में ही हो सकती है।' (Dictatorship means muzzles all round and consequently stultific ation Science can flourish only in an atmosphere of free speech)

६ फासिस्टों के संस्थानिक राज्य का आधार मजबूत नहीं था (The basis of Corporative fascist State was not strong)—फासिस्टों का राज्य इटली में संस्थानिक अवश्य था, किन्तु उसका आधार दृढ़ नहीं था। अर्थात् समस्त इटली में कितने ही छोटे छोटे संस्थान (Corporation) और उन सबकी व्यवस्था भी एक पिरेमिड की तरह थी। किन्तु उन सब पर फासिस्ट दल का इतना कठोर नियन्त्रण था कि उनकी स्वतन्त्रता नहीं के बराबर थी। एक दृढ़ संस्थानिक राज्य में सत्ता का विकेन्द्रीकरण (Decentralization) होना चाहिए किन्तु फासिस्ट एक पार्टी का राज्य स्थापित कर उस संस्थानिक व्यवस्था को एक 'ऐसे पिरेमिड का रूप देते हैं जो अपने आधार पर टिका हुआ न होकर चोटी के बल उल्टा खड़ा हुआ हो।" (The pattern of Fascism is that of a pyramid balanced on its apex)

७ फासिस्टों का चर्च के साथ समझौता करना उनकी हार है (Accord with Church is an obvious defeat of Fascism)—आरम्भ में फासीवाद धर्म का विरोधी था और साम्यवाद की तरह उसका विनाश चाहता था। किन्तु सत्तारूढ़ होने पर जब फासिस्ट कैथालिक चर्च का विनाश नहीं कर सके तो उन्होंने उसके सामने घुटने टेक दिये। १९२९ का (Italy Vatican Accord) फासिस्टों की आन्तरिक दुर्बलता का प्रमाण है। धर्म के साथ गठबन्धन करके उन्होंने अपने सिद्धान्तों को तिलांजलि दे दी। इस कारण प्रो० आशीर्वादम का मत है कि "फासिज्म एक ऐसा सिद्धान्त है जिसके मूल में निराशा छिपी हुई है (Pessimism is deep seated in the principles of Fascism)

८ शक्ति राजनीति पतन के अतिरिक्त और कहीं नहीं ले जाती (Power Politics is bound to lead towards ruin and ultimate chaos)—फासिज्म एक विवेक विरोधी (Irrational) विचारधारा होने के कारण अवसरवादी है और जैसे भी हो सच तथा झूँठ, उचित और अनुचित सभी उपायों द्वारा साम्राज्य विस्तार चाहती है। फासिस्ट राजनीति में किन्हीं नैतिक आदर्शों से प्रेरणा नहीं लेते, बल्कि ऐसा मालूम होता है कि "उनके सिद्धान्त और व्यवहार में मेकायवली फिर से जीवित हो उठा हो।" (In their teachings and practice Machiavelli has come back to life)। सत्ता पाने तथा उसे स्थाई बनाने के लिए धोखे और चालाकी से बल का प्रयोग करना कभी आज तक सफल नहीं हुआ। स्वयं इटली के इतिहास से ही इसका प्रमाण देता हुआ गुगलीमो फेरेरो (Guglielmo Ferreoro) लिखता है, शक्ति जिसका निर्माण करती है उसका विनाश भी। सेनाओं की सन्तान रोमन साम्राज्य उन्हीं सेनाओं से नष्ट हो गया जिन्होंने उसे जन्म दिया था—शक्ति पर आधा-

वे लोग राष्ट्र को एक व्यक्तित्व प्रदान करते हैं और मानते हैं कि वह अपना उद्देश्य स्वयं है (End in itself), यह विचार राष्ट्र को आवश्यकता से अधिक गौरवशाली बना देता है, जो आन्तरिक दृष्टि से नागरिकों के कल्याण में बाधा पहुंचाता है और बाह्य दृष्टि से साम्राज्यवाद का रास्ता तैयार करता है।

३ फासिस्ट विश्व शान्ति का विरोध करते हैं (Fascism is antipacifist) — फासिस्ट लोगों का यह मत कि युद्ध मनुष्य की श्रेष्ठ शक्तियों को विकसित होने का अवसर देता है (War brings out best human energies to the highest tension) एक पागलों का सा प्रलाप है। कोई भी बुद्धिमान प्राणी आज इस हाइड्रोजन और कोबाल्ट बम्बों के युग में युद्ध की बात नहीं कर सकता। फासिस्टों को यह ज्ञात होना चाहिए कि आधुनिक युग में केवल एक युद्ध ही लड़ने के बाद मानवता इस प्रकार आत्महत्या (Suicide) कर लेगी कि ऐसा कोई बचेगा ही नहीं जिसकी शक्तियों का विकास हो। विश्वशान्ति को धोखा बतलाना अपने आपको धोखा देना है।

४ भय और शक्ति के बल पर राज्य अधिक दिन नहीं चल सकता (No state can last long on the basis of force and intimidation)—मनुष्य जाति का आज तक का इतिहास बतलाता है कि भय और शक्ति के बल पर कुछ समय के लिए चाहे अभिमान करने की सफलता मिल गई हो, किन्तु अन्त में उन सभी राज्यों का भयंकर पतन हुआ है। आज सारे जर्मनी में हिटलर का कोई नाम लेने वाला भी नहीं रहा। मुसोलिनी की जिस प्रकार हत्या हुई वह कथा दर्दनाक है। सच बात यह है कि एक स्थाई और लोकप्रिय सरकार का आधार न्याय, ईमानदारी और इच्छा ही हो सकती है। ग्रीन के शब्द "राज्य का आधार बल न होकर इच्छा है" (Will not force is the basis of the state) बिल्कुल सत्य है। बल मस्तिष्क और आत्मा को कुचलता है और इसीलिए "बल के सामने झुकना आवश्यकता का कार्य हो सकता है या अधिक से अधिक बुद्धिमानी का किन्तु इच्छा का नहीं (To yield to force may be an act of necessity not of will, at the most an act of prudence)

५ एक केन्द्रीकृत फासिस्ट समाज में कला और विज्ञान की उन्नति नहीं हो सकती (Arts and science can not develop in a centralized fascist society)—प्रो० कोकर (Coker) का मत है कि "एक राष्ट्र के सार्वजनिक तथा सांस्कृतिक जीवन को केन्द्रीकृत किये जाने पर, वहाँ के महान साहित्य कला तथा ज्ञान की उन्नति की सम्भावनायें नष्ट हो जाती हैं (A highly centralized-direction of public and cultural life of a nation destroys the possibility of great learning literature and art)। फासिस्ट समाज कुछ समय के लिए अथवा संकट काल में जरूर सम्पन्न दिखाई दे सकता है, किन्तु साधारण शान्तिपूर्ण समय के लिए वह बिल्कुल अनुपयुक्त है। ऐसे दम घोटने वाले वातावरण में विज्ञान कभी नहीं पनप सकता। विश्व विख्यात वैज्ञानिक आइंस्टीन (Einstein) का कथन है, 'ज्ञान

शाही का अर्थ है चारो ओर से दम घोटना और परिणामस्वरूप सबको बंजर कर देना। विज्ञान की उन्नति केवल स्वतन्त्र भाषण के वातावरण में ही हो सकती है।" (Dictatorship means muzzles all round and consequently stultification Science can flourish only in an atmosphere of free speech)

६ फासिस्टों के सस्थानिक राज्य का आधार मजबूत नहीं था (The basis of Corporative fascist State was not strong)—फासिस्ट का राज्य इटली म संस्थानिक अवश्य था, किन्तु उसका आधार दृढ नहीं था। अर्थात् समस्त इटली में कितने ही छोटे छोटे संस्थान (Corporation) और उन सबकी व्यवस्था भी एक पिरेमिड की तरह थी। किन्तु उन सब पर फासिस्ट दल का इतना कठोर नियन्त्रण था कि उनकी स्वतन्त्रता नहीं के बराबर थी। एक दृढ संस्थानिक राज्य में सत्ता का विकेन्द्रीकरण (Decentralization) होना चाहिए किन्तु फासिस्ट एक पार्टी का राज्य स्थापित कर उस संस्थानिक व्यवस्था को एक 'ऐसे पिरेमिड का रूप देते है जो अपने आधार पर टिका हुआ न होकर चोटी के बल उल्टा खड़ा हुआ हो।' (The pattern of Fascism is that of a pyramid balanced on its apex)

७ फासिस्टों का चर्च के साथ समझौता करना उनकी हार है (Accord with Church is an obvious defeat of Fascism)—आरम्भ में फासीवाद धर्म का विरोधी था और साम्यवाद की तरह उसका विनाश चाहता था। किन्तु सत्तारूढ होने पर जब फासिस्ट कैथोलिक चर्च का विनाश नहीं कर सके तो उन्होंने उसके सामने घुटने टेक दिये। १९२९ का (Italy Vatican Accord) फासिस्टों की आन्तरिक दुर्बलता का प्रमाण है'। धर्म के साथ गठबन्धन करके उन्होंने अपने सिद्धान्तों को तिलाञ्जलि दे दी। इस कारण प्रो० आशीर्वादम का मत है कि "फासिज्म एक ऐसा सिद्धान्त है जिसके मूल मे निराशा छिपी हुई है (Pessimism is deep seated in the principles of Fascism)

८ शक्ति राजनीति पतन के अतिरिक्त और कहीं नहीं ले जाती (Power Politics is bound to lead towards ruin and ultimate chaos)—फासिज्म एक विवेक विरोधी (Irrational) विचारधारा होने के कारण अवसरवादी है और जैसे भी हो सच तथा झूँठ, उचित और अनुचित सभी उपायो द्वारा साम्राज्य विस्तार चाहती है। फासिस्ट राजनीति म किन्ही नैतिक आदर्शों से प्रेरणा नहीं लेते, बल्कि ऐसा मालूम होता है कि "उनके सिद्धान्त और व्यवहार म मकायवली फिर से जीवित हो उठा हो।' (In their teachings and practice Machiavelli has come back to life)। सत्ता पाने तथा उसे स्थाई बनाने के लिए धोखे और चालाकी से बल का प्रयोग करना कभी आज तक सफल नहीं हुआ। स्वय इटली के इतिहास से ही इसका प्रमाण देता हुआ गुगलीमो फेरेरो (Guglıemo Ferreoro) लिखता है, 'शक्ति जिसका निर्माण करती है उसका विनाश भी। सेनाओं की महान रोमन साम्राज्य उन्ही सेनाओ से नष्ट होगया जिन्होंने उसे जन्म दिया था—शक्ति पर आधा-

रित शासन केवल पतनो मुख लोगों म ही जीवित रह सकते हैं" (What force had created, force destroyed The child of Armies, the Roman Empire, was destroyed by armies that had given it birth Regimes of force can survive only among decadent people) ।

६ फासिज्म व्यक्ति के विरुद्ध सारे मोर्चों पर युद्ध करता है (Fascism was a war against Individual on all fronts)—फासिज्म एक सर्वाधिकारवादी विचारधारा है (Totalitarian Creed) जो व्यक्ति तथा वैयक्तिक स्वतन्त्रता का कुछ भी मूल्य नहीं करती । राष्ट्र की आज्ञा का पालन करना स्वतन्त्रता है स्वाधीनता एक अधिकार नहीं बल्कि कर्तव्य है, फासिस्टों की कुछ ऐसी अदभुत मान्यतायें हैं, जिन्हे कोई भी स्वीकार नही कर सकता । फासिस्ट राज्य की सत्ता के पुजारी हैं और एक फासिस्ट दल के विरुद्ध, अन्य किसी दल का अस्तित्व तथा विरोध सहन नहीं कर सकते । वे प्रजातन्त्रात्मक तरीके से विचार विमर्श की अनुमति नहीं देते । विरोधियों के लिए उनके राज्य मे खाना और वस्त्र हो सकते हैं, किन्तु केवल जेल म । कानून का शासन (Rule of law) जैसी कोई चीज फासिस्ट राज्य म नहीं मिल सकती । व्यक्ति सरकार अथवा राज्यरूपी मशीन का एक पुर्जा मात्र है, जिसका न कोई अपना व्यक्तित्व है और न मौलिकता । ऐसा राज्य सिवा एक "उत्पीडन केन्द्र" (Concentration Camp) के और कुछ भी नहीं हो सकता, और उसम रहने वाले व्यक्ति दासो से ज्यादा स्वतन्त्र नही हो सकते ।

१० फासिज्म एक अनिश्चित दर्शन है (Fascism is a vague philosophy)—प्रथम तो फासिज्म कोई दर्शन ही नही है और यदि खींचतान कर उसे दर्शन भी माना जाय तो वह अनिश्चित तथा विरोधी बातो से भरा हुआ है (Full of inconsistancies) । यदि सैद्धान्तिक दृष्टि से उसका विवेचन किया जाय तो उसमे ऐसी बहुत सी विचारधाराएं एक जगह एकत्रित मिलती हैं, जो परिस्थिति की आवश्यकताओ के अनुसार ले ली गई हैं किन्तु एक क्रमबद्ध तथा सुसगठित दर्शन म ठीक-ठाक नही बैठती । फासिज्म की इस सैद्धान्तिक दुर्बलता पर टिप्पणी करते हुए प्रो॰ सेबाइन (Sabine) लिखते हैं, "फासिज्म के लिए यह बहुत कठिन था कि वह हीगलियन राष्ट्रीयता, प्लेटो की कुलीनतन्त्रात्मक सरकार की कल्पना, बर्गसन का अबुद्धिवाद" इत्यादि को एक (दर्शन) मे सम्मिलित करे और उन्हे व्यावहारिक रूप म भी सफलतापूर्वक कार्यान्वित करके दिखलाये" (It was difficult for fascism to combine Hegalian nationalism, Plato s Government by Aristocracy, Bergsonian anti intellectualism etc into one and to work them successfully in actual practices) ।

फासिज्म की सफलतायें (Achivements of Fascism)—उपरोक्त आलोचना तथा द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात्, मुसोलिनी के भयानक पतन को जानते हुए भी फासिज्म को राजनीति शास्त्र के इतिहास म महत्वहीन कह कर उपेक्षा नहीं की जा

सकती। उसे ऐसा कहना वास्तविकता तथा सचाई से आँखें मींचना है। सैद्धान्तिक दृष्टि से चाहे यह सच हो कि फासिज्म कोई दर्शन ही नहीं है किन्तु प्रथम युद्ध के पश्चात् की इटली तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का अध्ययन करने वाला कोई भी विद्यार्थी यह अस्वीकार नहीं कर सकता कि मुसोलिनी तथा उसके अनुयायियों ने अपने देश के लिए बहुत कुछ किया है। इटली की अर्थ नीति को उन्होंने नये सिरे से सम्भाला। खेती की उन्नति की। इटली में नये उद्योग धन्धों का विकास किया। भ्रष्ट और पतित सरकार से प्रशासन (Administration) की सफाई की। नई-नई इमारतें बनवाई और इस प्रकार इटली की सांस्कृतिक, सामाजिक, तथा राजनैतिक व्यवस्था में एक काया पलट उपस्थित कर दी। अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से विश्वयुद्ध के समय ओर्लैंडो (Orlando) की इटली तथा १६३६ की मुसोलिनी की इटली में रात दिन का अन्तर था। इथोपिया उन्हें एबीसिनीयन युद्ध द्वारा मिल चुका था तथा मित्र राष्ट्रों की आँख अगर हिटलर के बाद यूरोप में किसी पर पड़ती थी तो मुसोलिनी पर। यह सब राष्ट्रीय समृद्धि और अन्तर्राष्ट्रीय गौरव इटली को सिर्फ १६ वर्ष के समय में दिलाने का श्रेय फासिज्म को ही है। आकाश में अति प्रचण्डता से चमकने वाले तारे (Metror) की भाँति इटली यूरोप की क्षितिज (Horizon) पर चमक उठा, और बलगेरिया, ग्रीस, रूमानियाँ, स्पेन, जापान तथा दक्षिणी अमेरिका के अनेक देशों में फासिस्ट क्रान्तियाँ विभिन्न रूप में सुलगने लगी। धीरे धीरे इटली का फासीवाद एक विश्व व्यापी विचारधारा के रूप में दिखाई देने लगा, और मुसोलिनी के ये शब्द कि "२०वीं शताब्दी फासिज्म का युग होगी, जिसमें इटली तीसरी बार मानवता का नेतृत्व करेगी।" १६३७ में होने वाले हिटलर और मुसोलिनी के समझौते ने एक बार विश्व को हिला दिया जो यह सिद्ध करता है कि तत्कालीन व्यावहारिक राजनीति में फासिज्म एक अत्यन्त ही प्रबल शक्ति थी। विश्व के सभी देशों में यद्यपि फासिस्ट क्रान्तियाँ सफल नहीं हुई, किन्तु उनसे फासिज्म का विश्वव्यापी प्रभाव स्पष्ट है। द्वितीय युद्ध में चाहे किन्हीं कारणों से फासिज्म अपनी मौत या बेमौत मर गया हो किन्तु यह मानना होगा कि उसने —

१ आधुनिक जर्जर, असत्य एवं मलिन प्रजातन्त्र का भण्डा अवश्य फोड़ दिया था।

२ एक दलीय और सर्वाधिकारवादी सरकार की स्थापना कर एक कार्य कुशल और योग्य सरकार की स्थापना की थी।

३ एक संस्थानिक व्यवस्था द्वारा श्रम कल्याण के लिए बहुत कुछ किया था।

४ राष्ट्रीयता को इटालियन लोगों के हृदय में जागृत कर उन्हें देश भक्त साहसी तथा राष्ट्र के नाम पर मिटने वाला बना दिया था।

५ इटली की ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक परम्पराओं को पुनर्जीवित किया था।

६ एबीसीनिया युद्ध द्वारा इटली की जनसंख्या के लिए सुख और समृद्धि का मार्ग खोला था।

इटली की भ्रान्त तथा हताश जनता के सम्मुख एक रचनात्मक कार्यक्रम सफल नेतृत्व प्रदान किया था।

इटली की खोई हुई अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा फिर से दिलवाई थी।

साम्यवाद और फासीवाद (Communism and Fascism)—प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् राजनीति में सहसा चमकने वाले ये दोनों वाद अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। अनेकों दृष्टिकोणों से समान मार्गों तथा समान उद्देश्यों वाले होते हुए भी इन दोनों में अनेकों मतभेद भी हैं। अत इनका एक तुलनात्मक अध्ययन अपेक्षित है।

समानतायें (Resemblances) –

१ दोनों ही विचारधारायें राजनीति में अपना जन्म हीगल के आदर्शवादी दर्शन से ग्रहण करती हैं। हीगल के राष्ट्र पूजा (Glorification of Nation) के सिद्धान्त को फासिज्म और भी अधिक आगे ले जाती है, जब कि मार्क्स हीगल की द्वन्द्वात्मक प्रणाली (Dialectic method) के आधार पर इतिहास का विश्लेषण करता है। इस प्रकार दोनों का उद्गम स्थान (Source) हीगलवाद है।

२ साम्यवाद और फासीवाद दोनों ही प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् उत्पन्न होने वाली रूसी तथा इटालियन परिस्थितियों से पैदा हुए हैं। महायुद्ध के कारण इन दोनों ही देशों में अव्यवस्था तथा निराशा थी, जिससे लाभ उठा कर लेनिन और मुसोलिनी ने इन दोनों सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप देने का उपयुक्त अवसर चुना। राष्ट्रवादी फासिज्म यद्यपि आज मर चुका है किन्तु साम्यवाद अन्तर्राष्ट्रीय बनता जा रहा है।

३ दोनों ही दर्शन सर्वाधिकारवादी राज्यों (Totalitarian States) का चित्र उपस्थित करते हैं। फासिस्ट राज्य आदि से लेकर अन्त तक सर्वशक्तिशाली राज्य रहा तथा साम्यवादी व्यवस्था में भी राज्य लुप्त होने से पहले तक (Before it withers away) पूरा तानाशाही होगा।

४ ये दोनों ही विचारधारायें प्रजातन्त्र तथा संसदीय प्रणालियों में विश्वास नहीं करतीं।

५ इन दोनों ही प्रकार की व्यवस्थाओं में एक दलीय शासन होगा। जिस प्रकार फासिस्ट लोग एक फासिस्ट पार्टी के अतिरिक्त अन्य किसी पार्टी को जीने नहीं देना चाहते इसी प्रकार साम्यवादी राज्य में भी विरोधी पार्टी केवल जेल में ही जिन्दा रह सकती है।

६ इन दोनों प्रकार के राज्यों में व्यक्ति का कोई महत्व तथा मूल्य नहीं है। राष्ट्र अथवा समाज के सामूहिक हित के लिए व्यक्ति की स्वाधीनता की बलि चढ़ा देना इन दोनों ही सिद्धान्तों का मूल मन्त्र है।

७ जिस प्रकार साम्यवादी वर्गयुद्ध में विश्वास करते हैं, उसी प्रकार फासिस्ट लोग राष्ट्रीय युद्धों को एक अनिवार्य सत्य मानते हैं। तात्पर्य यह कि दोनों ही युद्ध की अनिवार्यता में विश्वास करते हैं।

८ फासिस्ट तथा साम्यवादी दोनो ही दर्शन अमानवीय (Inhuman) दर्शन हैं। दोनों ही रक्तरंजित क्रांतियो मे विश्वास करते हैं और हिंसात्मक प्रणालियो का समर्थन करते है, जो आज के सभ्य समाज के अनुकूल नही।

९ इन दोनो विचारधाराओं पर आज के औद्योगिक युग का काफी प्रभाव पड़ा है।

१० फासिज्म तथा कम्युनिज्म दोनो ही १९वी शताब्दी के विवेकपूर्ण दर्शन के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया के रूप मे जन्मे हैं और प्रधानत अबुद्धिवादी हैं (Anti intellectualist)।

११ फासिज्म खुले रूप से साम्राज्यवादी है, किन्तु साम्यवाद स्पष्ट रूप से प्रादेशिक साम्राज्य न चाहते हुए भी सैद्धान्तिक साम्राज्यवाद का समर्थक है (Ideological imperialism)।

अन्तर—

१ फासिस्ट "राज्य को फासीवाद आदर्शों की प्रतिमूर्ति मानते हैं।' (The state is the embodiment of the Fascist ideal) उनके लिए वह सब कुछ है किन्तु साम्यवादियो की दृष्टि मे 'राज्य एक ऐसा शस्त्र है जिसके द्वारा सर्वहारा वर्ग वर्गयुद्ध लड़ता है। वह एक भयकर शस्त्र है और इससे अधिक कुछ भी नही।" (State is simply the weapon by which the prolitariat wages the class war, a special sort of Bludgon and nothing more—Lenin) इस प्रकार फासिस्ट व्यवस्था मे राज्य एक स्थाई संस्था है जब कि साम्यवादियो के अनुसार यह एक दिन लुप्त हो जायगी।

२ फासिस्ट लोग का आदर्श समाज की वर्ग व्यवस्था मे कोई अन्तर करना नही है, जबकि साम्यवादी एक वर्गहीन समाज (Classless society) का आदर्श लेकर चलते हैं।

३ फासिज्म पूँजीवाद का विरोधी नहीं, बल्कि उसे स्थाई रखते हुए साम्राज्यवादी नीति का पालन करना चाहते हैं। साम्यवादी पूँजीवाद का जड से विनाश चाहते हैं और उस किसी भी रूप मे तथा किसी भी कीमत पर स्वीकार न करके एक शान्ति प्रिय राष्ट्रीय नीति निर्धारित करना चाहते हैं। प्रादेशिक साम्राज्यवाद उनका लक्ष्य नही।

४ साम्यवादी अपनी व्यवस्था मे किसी भी प्रकार का शोषण नहीं चाहते। वे व्यक्तियो वर्गों अथवा राष्ट्रो द्वारा एक दूसरे का शोषण (Exploitation) सहन नही कर सकते और इसका अन्त करने का वचन देते है, किन्तु फासिस्ट दर्शन शोषण, दमन, अन्याय तथा निरङ्कुशता पर आधारित है। फासिस्ट व्यवस्था मे व्यक्ति राज्य के अन्याय एवं शोषण को जीवन भर सहन करता रहेगा।

५ साम्यवादी समाज मे धनिक और श्रमिक दो ही वर्ग मानते हैं और उनके अनवरत युद्ध पर बहुत अधिक बल देते हैं, किन्तु फासिस्टों के अनुसार समाज मे दो

से अधिक वर्ग है और धनिका और श्रमिकों मे न कोई ऐसी शत्रुता है और न हमेशा चलने वाला युद्ध फासिस्ट मानते हैं कि ये दोनों मिल-जुल कर राष्ट्र के हित के लिए काय करते हैं।

६ साम्यवाद एक नास्तिक विचारधारा है, जिसके अनुसार धम जनता का अफीम है। किन्तु फासिस्ट धम के विरोधी नही है। उन्होंने चच से सन्धि की थी और उसके सहयोग से जनता पर निदयतापूर्वक शासन किया था।

७ साम्यवादी सभी क्षेत्रों मे स्त्रियो को पुरुष के समान मानते हैं और उन्ह समान अधिकार भी देते हैं, जबकि फासिज्म नारी दासत्व मे विश्वास करता है और उन्ह हीन मानता है।

८ साम्यवादी दशन किसी जातीय पवित्रता (Racial purity) के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करता है जबकि इटली के फासिस्ट इटालियनों को परम पवित्र व उच्चतर जाति के लोग मानते हैं।

९ साम्यवादी मनुष्य मनुष्य की समानता में विश्वास करते हैं, किन्तु फासिस्टों की मान्यता है कि मनुष्य जन्म से असमान पदा होते हैं।

१० फासिस्ट राज्य को एक साध्य (End) मानकर चलते हैं, जबकि साम्यवाद के अनुसार वह समाज को वगहीन बनाने का एक साधन (means) मात्र है।

इस प्रकार हम उपसंहार के रूप म यह कह सकते हैं कि "साम्यवाद यदि एक जीवन का दर्शन है तो फासिज्म मृत्यु का। एक "जीओ और जीने दो" में विश्वास करता है तो दूसरा दूसरा को मार कर जीने म।" (If Communism is a philosophy of life, then Fascism is that of death One believes in Live and let live while other in living by killing

---

अराजकतावाद

(Anarchism)

राज्य के समाज म स्थान तथा स्थायित्व के विषय म जितने सिद्धान्त प्रचलित हैं, उनम अराजकतावाद एक बहुत महत्वपूण तथा प्रभावशाली विचारधारा है। अराजकतावाद वह दशन अधिकार विरोधी (Anti authoritarian) विचार वर्गों म से है, जो सब प्रकार के राज्य, राजसत्ता, तथा राजनैतिक नियत्रणो का उपहास कर एक राज्यहीन समाज की कल्पना करता है। अराजकता शब्द की उत्पत्ति ग्रीक् शब्द "अनारकिया" (Anarchia) से हुई है, जिसका शाब्दिक अथ है "शासन का अभाव" (Absence of rule) अत, अराजकतावाद एक ऐसी क्रान्तिकारी विचारधारा है जो राज्य तथा राजकीय शासन का उन्मूलन (Abolition) कर उसके स्थान पर एक राज्यहीन तथा वगहीन (Classless) समाज का पुनगठन करना चाहती है। अराजकतावादी दशन के मत मे सब प्रकार के राजनैतिक बल का प्रयोग चाहे वह राजतन्त्र (Monarchy) द्वारा प्रयुक्त किया जाय अथवा गणतन्त्र (Republic) द्वारा, समान रूप से हानिकारक है, अत राज्य एक दुगुण है जो समाज मे सवथा अनावश्यक, अवाञ्छनीय तथा अत्याचारितापूण है। अराजकतावादी राज्यहीन समाज मे राज्य के रिक्त स्थान को स्वतन्त्र एव ऐच्छिक सस्थाओं (Voluntary associations) द्वारा भरना चाहते हैं, जिनके होने पर राज्य के दण्डधारी विभाग जैसे सेना, न्यायालय, कारागार आदि सब निरथक सिद्ध हो जायेंगे। प्रिंस क्रोपोटकिन (Prince Kropotkin) के शब्दो मे "अराजकतावाद जीवन तथा चरित्र सम्बन्धी एक वह सिद्धान्त अथवा दशन है, जिसके अन्तगत एक सरकारहीन समाज की व्यवस्था की गयी है और उस समाज मे सामञ्जस्य स्थापित करने के लिए किसी कानून अथवा सत्ता की आज्ञाकारिता की आवश्यकता नही है, बल्कि जिसमे सभ्य जीवन की आवश्यकताओ तथा इच्छाओ की पूर्ति नाना प्रकार के प्रादेशिक तथा व्यावसायिक सघो के पारस्परिक समझौता द्वारा सम्भव हो सकेगी।" (Anarchism is a theory of life and conduct under which society is conceived without government—harmony in such a society being obtained not by submission to law or by obedience to any authority by free agreements concluded between the various groups, territorial and professional, constituted—for the satisfaction of the infinite needs and aspirations of a civilized being)

अराजकतावाद का इतिहास (History of Anarchism)—अराजकतावाद एक बहुत प्राचीन विचारधारा है। अपने क्षेत्र में कुछ व्यापक तथा बहुमार्गी होने के कारण इसके कुछ मूल विचार तत्व अपको क्रान्तिकारी तथा शान्तिपूर्ण समाजवादी तथा व्यक्तिवादी विचार धाराओं में ढढे जा सकते हैं। हमारे देश के बहुत से प्राचीन सन्त तथा विचारक मानवीय पूर्णता तथा अलौकिक आनन्द की प्राप्ति के लिए राज्य की आवश्यकता न मानकर एक बाधा मानते थे। चीनी दार्शनिक च्वांगजू (Chuang Tzu) ने आज से बहुत पहिले ही यह माना था कि यह मानव स्वभाव के प्रतिकूल है कि एक व्यक्ति अन्य बहुत से व्यक्तियों को अपने आधीन रखे। ग्रीक लोगों के लिए राज्य सब कुछ था, किन्तु उनके कुछ दिनों बाद ही सिनिक्स (Cynics) तथा स्टोइक्स (Stoics) विचारक राज्य की अति महत्ता के सिद्धान्त को अस्वीकार कर यह उपदेश देते हैं कि व्यक्ति के एक प्राकृतिक तथा स्वच्छन्द विकास के लिए राज्य की सम्पना आवश्यक नहीं है और व्यक्ति राज्य से पृथक रह कर भी अपनी आत्मिक उन्नति कर सकता है। आज के युग में कुछ दार्शनिक गाडविन (Godwin), टालस्टाय (Tolstov), क्रापोटकिन (Kropotkin) आदि ने इस राज्यहीन समाज के प्रश्न पर पुनः विचार किया और अराजकतावादी सिद्धान्त का प्रतिपादन कर उसे एक आधुनिक राजनैतिक विचारधारा का रूप दिया है।

अराजकतावादी सिद्धान्त (The Theory of Anarchism)—साम्यवादियों (Communists) का मत है कि श्रमिक की तानाशाही अथवा सर्वाधिकारपूर्ण सरकार (Dictatorship of the Proletariat) की स्थापना के पश्चात् राज्य अन्तर्धान (Wither away) हो जायगा और समाधि पर एक स्वतन्त्र तथा स्वाधीन समाज की स्थापना होगी। इस सिद्धान्त के साथ जहां साम्यवादी दर्शन समाप्त होता है वहीं से अराजकतावाद का आरम्भ है। अराजकतावादियों का उद्देश्य समाज में एक ऐसी व्यवस्था को उत्पन्न करना है जिसमें केवल राजकीय हस्तक्षेप ही नहीं वरन् सामाजिक धार्मिक तथा आर्थिक आदि सब प्रकार के शोषण का अन्त हो और व्यक्ति को अपने जीवन की सफलता के लिए अधिक से अधिक अवसर मिलें। अतः अराजकतावादी यह राज्यहीन समाज, वर्गहीन (Classless), सत्ताहीन तथा धर्महीन होने के साथ साथ सब प्रकार के पूँजीवादी बन्धनों से भी मुक्त होगा। राज्य के खण्डन में अराजकतावादी व्यक्तिवादियों से भी एक कदम आगे दिखाई देते हैं और व्यक्तिवादी सिद्धान्त कि "राज्य एक आवश्यकीय दुर्गुण है" (State is a necessary evil)। इससे आगे वे मानते हैं कि 'राज्य एक अनावश्यक तथा हानिकारक संस्था है, जिसने सभ्यता तथा मानवता को अवनति एवं पतन की ओर अग्रसर किया है।' The state is an unnecessary and harmful institution which has led humanity and civilization on a path of decay and deterioration) वे राज्य को एक पूँजीवादी संस्था मानते हैं जो व्यक्ति की स्वतन्त्रता की कट्टर शत्रु है और उसका शोषण करने के लिए धर्म की आड़ लेती है। अतः राज्य, धर्म एवं पूँजीवाद तीनों का समूल

उन्मूलन कर अराजकतावाद एक स्वाधीन एवं ऐच्छिक संघों में संगठित तथा एक प्रेम सूत्र में बंधे हुए स्वाधीन परिवार (Love knit family untouched by authority) जैसे समाज की कल्पना करता है।

१ अराजकतावाद राज्य विरोधी है तथा उसकी अत्याचारिता के कारण उसे अनावश्यक मानता है (Anarchism is antistate and regards state as unnecessary because of its cruel character)—अराजकतावादी विचारक राज्य की बड़े कड़े शब्दों में भर्त्सना करते हैं। उनकी दृष्टि में राज्य अनावश्यक ही नहीं बल्कि अवाञ्छनीय भी है। उनका कहना है कि आज के समाज में आज तक व्यक्ति का अनेकों कष्ट पहुँचाने के बाद आज राज्य का केवल एक ही कर्त्तव्य बच रहता है और वह यही है कि "वह अपने मृत्यु के आदेशपत्र पर अपने हस्ताक्षर कर दे।" (The state should sign its own death warrant) वे मानते हैं कि राज्य का अस्तित्व निस्सार ही नहीं, बल्कि समाज के लिए अत्यन्त हानिकारक है। राज्य द्वारा स्थापित तथा खोले गये, पुलिस, जेल, न्याय आदि विभाग निर्दोष तथा भोले भाले व्यक्ति को चरित्रहीन बनना सिखलाते हैं, जिसके कारण समाज में दुर्गुणों की वृद्धि होती है। राज्य के अस्तित्व के कारण ही आज के समाज में, शोषण, अन्याय, असमानतायें तथा अत्याचार दिखाई देते हैं तथा इन सबको चिरस्थाई बनाकर समाज में शोक तथा पीड़ा आदि को जीवित रखने का उत्तरदायित्व भी राज्य पर ही है। अराजकतावादियों की यह दृढ़ धारणा है कि "राज्य प्रथम तो निर्दोष एवं पवित्र व्यक्ति को पाप मार्ग पर प्रेरित कर अपराध करना सिखलाता है और फिर उसे अपराधी होने के अभियोग में दण्डित करता है।" राज्य ने कभी भी किसी आर्त्त तथा सहायता के लिए इच्छुक व्यक्ति की सहायता कर उसके हितों की रक्षा नहीं की। इतिहास साक्षी है कि इसने अपने बल तथा सत्ता के अनुचित प्रयोग द्वारा एक पवित्र एवं भोले मानव को पतन की ओर उन्मुख कर उसे स्वार्थी, निर्दयी, अत्याचारी तथा हृदयहीन बनाया है। सुप्रसिद्ध अराजकतावादी क्रोपोटकिन के शब्दों में 'उस अमुक घृणित मन्त्री को यदि सत्ता न मिली होती तो वह बहुत ही श्रेष्ठ व्यक्ति होता।" (This or that despicable minister might have been an excellent man if power had not been given to him) अतः अराजकतावादियों के मत में "राज्य का अर्थ है दबाव, दण्ड, बाधायें तथा विभाजन जब कि एक अराजकता का अर्थ है स्वतन्त्रता, प्रेम तथा सहयोग' (State means compulsion, punishment, distractions and separation while anarchy means freedom love and cooperation —L Dickenson)।

२ राज्य एक दुर्गुण है (State is an evil)—अराजकतावादियों के मत में राज्य एक परम हानिकारक संस्था होने के कारण एक दुर्गुण है, जिसको एक आदर्श समाज में कोई स्थान नहीं मिल सकता। दण्ड की सरकार प्रतिमा होने के कारण वह अपने बल द्वारा व्यक्ति को अनैच्छिक कार्य करने के लिए विवश करता है, जो

उसके व्यक्तित्व के विकास मे बाधक होते हैं अत यह सर्वथा अमानवीय है कि विचार, सहानुभूति, प्रेम त्याग आदि मानवोचित गुणो अथवा विशेषताओ को मनुष्य से दूर कर जो सस्था उसके नैसर्गिक जीवन प्रवाह (Spontaneous flow of life) को बाधित कर विकासवादी नियम के साथ छेड छाड करती है उसके अस्तित्व को समाज म सहन किया जाय। प्रसिद्ध अराजकतावादी नेता बैकूनिन (Bakunin) के शब्दों म "विकासवाद का वह अटल नियम जो मनुष्य की आरम्भिक पशुता का निषेध तथा उसकी स्वभावज मनुष्यता का प्रगतिशील विकास है" राज्य द्वारा भग किया जाता है" (State violently disturb the law of evolution, which the negation of man s original beastiality and a progressive evolution of his huma nity) अत राज्य एक अमानवीय सस्था है, जो निश्चय ही एक दुर्गुण है।

३ राज्य एक फालतू सस्था है (*State is a superfluous institu tion*)—अराजकतावादी राज्य को एक ऐसी निरर्थक तथा व्यर्थ की सस्था मानते हैं, जिसके अस्तित्व के पीछे कोई भी विवेकपूर्ण उद्देश्य नही है। उनकी मान्यता है कि समाज म राज्य द्वारा किये जाने वाले कार्यों मे एक भी ऐसा कार्य नही है जो राज्य के अभाव मे उतनी ही सुगमता व सरलता से न हो सके। अराजकतावादी यह मानते है कि मनुष्य स्वभाव से ही विवेकशील तथा शान्तिप्रिय प्राणी है और इसीलिए यदि उसका जीवन यथा इच्छा चलता रह तो राज्य के बिना भी वह ऐच्छिक सघो में अपने समाज को सगठित कर एक सम्पन्न एव सुखी समाज का निर्माण कर सकता है। आज क युग मे राज्य द्वारा किए जान वाले काय जैसे – देश की सुरक्षा, आन्तरिक शान्ति एव व्यवस्था स्थापित करना सास्कृतिक पुनर्निर्माण के कार्य करना आदि इन सबके विषय मे उनका मत है कि यदि इस भार को राज्य के कधो से छीनकर स्वतन्त्र सघो को सौंप दिया जाय तो वे इन्हे अधिक कुशलता तथा सरलता से कर सकेंगे। देश की रक्षा के लिए राज्य स्थायी सनायें रखता है किन्तु अराजकतावादियों के मत मे यदि ये सेनायें न रखी जायें तब भी देश की सुरक्षा इससे शिथिल नहीं होती, क्योंकि यदि हम ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो हमे ज्ञात होगा कि स्थायी सनायें आक्रान्ताओ द्वारा सदैव परास्त हुई हैं और उन्ह देश से बाहर निकालने में वहाँ की स्वाभाविक जन-क्रान्तियाँ ही सफल हुई हैं (*Standing armies are always bea ten by invaders, who have historically been repulsed only by sponta neous uprising* Kropotkin) इसी प्रकार शान्ति स्थिर रखने क लिए भी राजकीय पुलिस अथवा न्यायालयो की कोई विशेष आवश्यकता नहीं। मनुष्य अपराधी पैदा नहीं होता बल्कि परिस्थितियाँ उसे वैसा बनाती हैं और चूँकि परिस्थितियों को उत्पन्न करने वाले प्रत्येक देश मे वहाँ की सरकार होती है, अत यदि सरकार न हो तो ऐसे अवसर ही नही आयेंगे जबकि व्यक्तियों के स्वार्थ परस्पर टकरायें और समाज की शान्ति भङ्ग हो। सास्कृतिक तथा शैक्षिक क्षेत्र म आज भी ऐच्छिक सघों द्वारा किया गया काय राज्य के काय से अधिक महत्वपूर्ण है। अत सभी दृष्टियो स देखने पर

अराजकतावादी विचार मानते है कि राज्य एक फालतू संस्था है, जिसके बिना भी समाज उतना ही सुख, शान्ति एव आनन्द के साथ रह सकता है।

४ अराजकतावाद प्रतिनिधित्वपूर्ण सरकार की आलोचना करता है (**Anarchism condemns Representative Government**)—सरकार तथा राज्य की आलोचना करते समय अराजकतावाद केवल राजतन्त्र अथवा भ्रष्ट कुलीनतन्त्र (Oligarchy) आदि की ही भर्त्सना नही करता बल्कि वह यह मानता है कि प्रजातन्त्रात्मक प्रणाली के आधार पर चुनी गई प्रतिनिधित्वपूर्ण सरकार भी नागरिकों का वास्तविक हित नही कर सकती। अराजकतावाद के अनुसार चुनाव तथा प्रतिनिधित्व आदि के सारे सिद्धान्त केवल दिखावा मात्र हैं। यथार्थ मे अन्य व्यक्ति का तो क्या एक व्यक्ति स्वय तक का सच्चा प्रतिनिधित्व नही कर सकता। 'जोड (Joad) के शब्दो म ' प्रतिनिधित्वपूर्ण सरकार एक ऐसे व्यक्तियो की सरकारें होती है जो प्रत्येक काम को खराब ढग से करने के लिए सबके विषय मे थोडा-थोडा जानते हैं किन्तु किसी भी काय को ठीक तरह से करने के लिए उन्हे किसी भी वस्तु का पर्याप्त ज्ञान नही होता।' (Representative Government is a government by men who know just enough about every thing to enable them to do every thing badly and not enough about every thing to enable them to do any thing well —Joad) यथाथ मे एसी सरकारें योग्य तथा अनुभवी व्यक्ति द्वारा न चलाई जाकर कुछ अपरिपक्व (Amateurs) तथा अनुभवशून्य शासकों द्वारा चलाई जाती हैं, जिसके परिणामस्वरूप कितने ही व्यावसायिक राजनीतिज्ञ, पुजारी आदि स्वार्थी लोग मानवीय दुबलताओ का अनुचित लाभ उठाते है। अत प्रतिनिधित्व की प्रणाली सवथा अवास्तविक (Unreal) प्रणाली है जो अन्यायपूर्ण होने के साथ साथ हानिकारक भी है।

५ अराजकतावाद राज्यहीन तथा वर्गहीन समाज की स्थापना चाहता है (**Anarchism envisages a Stateless and classless Society**)—अराजकतावादी समाज की कल्पना एक सयुक्त परिवार जैसी है, जिसका प्रत्येक सदस्य पारस्परिक सौहार्द, सहानुभूति तथा प्रेम के सूत्रो से एक दूसरे से बँधा हुआ रहता है। पारस्परिक मैत्री तथा सहयोग की भावना ही समाज की नींव है, जिसका प्रत्येक सदस्य अपने समान रुचिवाले अन्य सदस्यो के साथ किन्ही समान उद्देश्यो की पूर्ति के लिए मिलजुल कर काम करेगा। अराजकतावादी इस समाज म धर्म रग सम्पत्ति, लिङ्ग (Sex) आदि के आधार पर किसी प्रकार का ऊँच नीच का भेदभाव नहीं होगा और आज के समाज मे पाये जाने वाले वग तथा छोटे बडे की दीवारें सदैव के लिए उन्मूलित कर समतल बनादी जावेंगी। समाज के तुच्छ स तुच्छ सदस्य के जीवन का मूल्य तथा उपयोग उतना ही होगा जितना की एक धनाढ्य पूँजीपति अथवा उसकी सन्तान का। इस प्रकार वतमान राज्य की इस प्रगवादी व्यवस्था का, जिसने समाज पर थोपने की जिम्मेदारी राज्य की है और जिसके कारण आज के समाज

मे रोमाञ्चित करने वाली दरिद्रता (Appalling poverty) तथा पापकारिणी सम्पन्नता (Vicious prosperity) एक साथ दिखाई देती है, अराजकतावाद समूल नष्ट कर, एक ऐसे सहकारी समाज की व्यवस्था करना चाहता है, जिसके सदस्य एक दूसरे के हितो को अपना हित मान कर समाज म उतनी ही तथा व ही वस्तुए उत्पन्न करेगे जितनी तथा जिनकी उनको आवश्यकता होगी। समाज मे अनेका छोट-छोटे सघ होग जो किसी बल अथवा दबाव के कारण सगठित न किय जाकर पारस्परिक कल्याण को ध्यान मे रखकर बनाय जायग । इन सघा म किसी प्रकार की आपसी ईर्ष्या अथवा प्रतियोगिता नहीं होगी और आपस म झगडने क स्थान पर वे एक दूसरे की सहायता करेगे। किन्तु इस समाज का उत्पादन उसी रोज सम्भव हो सकेगा, जिस दिन राज्य अपनी दण्डधारी सत्ता के साथ उसके द्वारा उत्पन्न वगवाद आदि दुर्गुणा के साथ समाज स अन्तर्धान हो जायगा।

६ अराजकतावाद मनुष्य को एक सदभावना सम्पन्न प्राणी मानता है (Anarchism believes man to be altruistic) —राज्य की सत्ता के विरोधी अन्य विचारवर्गों के विपरीत तथा व्यक्तिवाद की भाति अराजकतावाद भी यह मानता है कि मनुष्य जन्म से एक सामाजिक तथा सहयोगी प्राणी होता है, जो आत्मकल्याण के साथ-साथ दूसरा के हित तथा समान लाभ का पूरा-पूरा ध्यान रखता है। उनकी दृष्टि मे हाब्स (Hobbes) का यह सिद्धान्त कि मनुष्य "केवल भूख और भय के वशीभूत होकर ही सारे काय करता है, एकाङ्गी तथा दोषपूर्ण है। वह डार्विन (Darwin) के इस सिद्धान्त को भी अस्वीकार करता है कि व्यक्ति समाज मे अपने अस्तित्व के लिए सघर्ष करता है और अपने से दुर्बल तथा अशक्त प्राणिया को जीत कर उन पर शासन करता है। इन सब के प्रतिकूल अराजकतावादियो की मान्यता है कि मनुष्य स्वभाव से ही स्वतन्त्रता प्रेमी है तथा 'उसकी स्वतन्त्रता ही उसकी मनुष्यता का दपण है क्योकि उसके समस्त मानवी अधिकार उसके भाई की चेतना मात्र ही तो है। (Man's liberty is only the mirroring of his *humanity*, because all his human rights are the consciousness of his *brother* —Bakunin)

७ अराजकतावाद सघों से सगठित एक विकेन्द्रीकृत समाज स्थापित करना चाहता है (Anarchism aims at Constituting a decentralised society organised among various voluntary groups)—अराजकतावादी राज्य पर प्रहार करते समय यह तक देते हैं कि राज्य के अन्तगत सारी व्यवस्था का केन्द्रीकरण (Centralization) हो जाता है जिसके कारण काय कुशलता (efficiency) नष्ट हो जाती है। अत अपन आदश अराजकतावादी समाज की कल्पना म वे प्रशासन (Administration) के विकेन्द्रीकरण (Decentralisation) पर बल देते हैं और चाहते हैं कि समाज का पुनर्निर्माण स्थानीय सस्था अथवा सघा (Local institutions) के आधार पर हो जो पुन विशालतर सस्थाओ म सयुक्त हो एक देशव्यापी रूप धारण

करें। इन सघो की व्यवस्था नीचे से आरम्भ हो ऊपर से नही और यदि कभी कोइ किसी प्रकार का झगडा या मतभेद भी हो जाय तो ये छोटे नीचे के सघ ही उसका मिल जुल कर निपटारा करलें। इस प्रकार अराजकतावादी व्यवस्था मे राज्य अथवा बल का अभाव होते हुए भी व्यवस्था का अभाव नही है (Anarchism is the absence of force It is not the absence of order—Dickenson) राज्य का स्थान यहाँ पर स्वतन्त्र ऐच्छिक सघ ले लेंगे जिनका गठन प्रादेशिक अथवा व्यावसायिक आधार पर होगा। ये सघ तथा सस्थाये भिन्न भिन्न प्रकार तथा आकार की होगी और इनका निर्माण भी पृथक् पृथक् उद्देश्यो को दृष्टि मे रखकर किया जायगा। ये सब सस्थाये मिलकर समाज मे एक सतुलन (Equilibrium) रखेंगी और अपने प्रभावो द्वारा समाज मे नाना प्रकार के परिवर्तन उत्पन्न करेंगी। इसके कारण सतुलन होते हुए भी अराजकतावादी समाज मे एक स्थायी पूर्णता (Static perfection) न होकर एक प्रगतिशील विकास (Dynamic evolution) होगा। समाज मे पाये जाने वाले सघ किसी विशेषाधिकारी वर्ग (Privileged class) का पक्ष न लेकर, आज के युग मे राज्य द्वारा सचालित एव नियन्त्रित सारे कार्यों का आपस मे बाट लेगे। इन सघो का विकास सरलता से जटिलता की ओर होगा और "छोटे से छोटा सघ ही वह आधार होगा जिस पर सम्पूर्ण व्यवस्था आश्रित होगी।" (The smallest group will be the peg upon which the whole structure will depend) जहा तक इन सघो मे आपसी झगडो का निपटाने का प्रश्न है अराजकतावादी यह मानते हैं कि, (१) व्यक्ति के उचित शिक्षा प्राप्त करने पर, (२) प्रतियोगिता के समाज से समाप्त हो जाने पर तथा (३) ऐच्छिक सस्थाओ द्वारा जन कल्याण का काम किये जाने पर आपसी झगडे जैसी किसी चीज की सम्भावना ही नहीं हो सकती। अराजकतावादी समाज का प्रत्येक सदस्य अपनी इच्छानुकूल काम करने मे स्वतन्त्र होगा और ऐच्छिक सघ उसे उन कार्यों के करने के लिए उपयुक्त तथा अनुकूल वातावरण बनायेंगे, अत दुराचारी राज्य की उपस्थिति मे की जाने वाली यह आशका सदैव आशका ही रहेगी। इस प्रकार अराजकतावाद समाज को स्वतन्त्र सघो मे सगठित कर सघात्मक रूप देना चाहता है। प्रो० जोड (Joad) के शब्दो मे यदि हम निष्पक्षता से देखें तो अराजकतावाद प्रादेशिक तथा व्यावसायिक विकेन्द्रीकरण का सबसे प्रबल समर्थक तथा पोषक है' (Anarchism first and foremost a plea for decentralization, both territorial and functional)।

५८ अराजकतावाद पूँजीवाद का कट्टर शत्रु है (Anarchism is an arch-enemy of Capitalism)—साम्यवादियो (Communists) की भाँति अराजकतावादी भी पूँजीवाद के घोर विरोधी हैं और उसे आधुनिक जीवन की विषमता तथा दमनीयता का एक मात्र कारण मानते हैं। राज्य के उन्मूलन के लिए दिये गये अराजकतावादी तर्कों मे एक तर्क यह भी है कि राज्य एक पूँजीवादी सस्था है और

इस कारण पूँजीवादी व्यवस्था के आवश्यक दुर्गुणों का प्रश्रय ही नहीं देता बल्कि उन्हें चिरस्थाई बनाता है। साम्यवादियों के साथ इनका भी दृढ़ विश्वास है कि पूँजीवाद धनिकों को अधिक धनवान तथा दरिद्रों को और भी अधिक दीन बनाता है, जिसके परिणाम स्वरूप समाज में अन्याय व अनैतिकता फैलती है। पूँजीपति, श्रमिकों का शोषण करते हैं और दीन मजदूरों की मेहनत के बल पर आलसी, प्रमादी तथा दुर्व्यसनियों का जीवन बिताते हैं। अतः समाज का नैतिक धरातल नीचा कर उसे पतन की ओर ले जाने वाले पूँजीवाद का अराजकतावाद अत्यन्त घृणा और रोष के साथ खंडन करता है।

९. अराजकतावाद धार्मिक पाखण्डों की भर्त्सना करता है (Anarchism condemns religious hypocracy)—अराजकतावादियों के मत में धर्म सदैव से धनवानों के स्वार्थ साधन का एक सहारा मात्र रहा है और इन्हीं धार्मिक पाखण्डों के नाम पर उन्होंने पवित्र एवं भोले मानव का निर्दयतापूर्वक शोषण किया है। साम्यवादियों की भांति इनका भी मत है कि सत्ताधारी शासकों ने धर्म का प्रयोग सदैव मादक अफीम की भांति किया है (Religion is the opium of the people) और शासित को सन्तोष तथा भाग्यवाद (Fatalism) का भयंकर उपदेश देकर अत्याचारियों का शान्तिपूर्वक सहन करने का पाठ सिखाया है। धर्म सदैव प्रतिक्रियावादी (Reactionary) रहा है और सभ्यता के विकास में सदैव रोड़े अटकाने के कारण इसका इतिहास शासक एवं स्वार्थियों की चाटुकारिता करना अथवा उनके हित में जनता को दिग्भ्रमित (Misguide) करना रहा है। अराजकतावाद चूँकि मनुष्य की निर्बाध,उन्नति पर किसी भी प्रकार के बंधन लगाना हानिकारक समझता है, अतः धार्मिक पाखण्डों के विरुद्ध भी वह एक भीषण प्रतिक्रिया कही जा सकती है।

१०. अराजकतावाद वैयक्तिक सम्पत्ति का भी उन्मूलन चाहता है (Anarchism abolishes private property root and branch)—राज्य की भांति वयक्तिक सम्पत्ति का भी समूल उन्मूलन अराजकतावादियों का नारा है। इनकी दृष्टि में सम्पत्ति जब तक वैयक्तिक रहेगी तब तक समाज में झगड़े तथा नतिक पतन के कारण बने रहेंगे। सम्पत्ति के इतिहास की विवेचना करता हुआ उग्र अराजकतावादी प्रूधो (Proudhon) मानता है कि "समस्त वैयक्तिक सम्पत्ति एक चोरी है" (All property is theft) अतः उसका समाजीकरण (Socialisation) होना चाहिए। समाज में सम्पत्ति के रहने पर ही पूँजीवाद पनपता है जो आज के सारे सामाजिक तथा आर्थिक दुर्गुणों की जड़ है। अतः अराजकतावादी वयक्तिक सम्पत्ति का समूल उन्मूलन (Abolition) चाहते हैं।

अराजकतावादी विचारक
(Anarchist thinkers)

माइकेल बकुनिन (Michael Bakunin) 1814-76—यह एक रूसी अराजकतावादी था। आरम्भ से ही प्रूधो (Proudhon) आदि उग्र अराजकतावादियों की

गये। मार्क्स आदि साम्यवादियों के सम्पर्क में आने से इसके विचार राज सत्ता विरोधी बन गये थे। इसका मत था कि सब प्रकार की आधीनता मनुष्य की उन्नति में बाधक है और वह शासक तथा शासित दोनों को अनैतिकता की ओर ले जाती है। उसके अनुसार अधिक से अधिक जनतान्त्रिक होते हुए भी सरकार शासितों का कल्याण नहीं कर सकती बल्कि शासक जनता के प्रतिनिधि होते हुए भी अत्याचारी तथा मदान्ध हो जाते हैं। वह शक्ति एवं विद्रोह का पुजारी था और गुप्त क्रान्तिकारी संस्थाओं द्वारा राज्य का अन्त करना चाहता था। राज्य की अत्याचारिता तथा अनैतिकता पर उसे क्रोध आता था और उसने अपनी प्रसिद्ध रचना "ईश्वर और राज्य" (God and the State) में लिखा है कि "जब कभी भी मैं अपने विषय से दूर चला जाता हूँ तो इसका कारण यह है कि राष्ट्रों को शाश्वत दासता में डाले रखने के लिए जब मैं राज्य द्वारा काम में लिए जाने वाले अपराधपूर्ण साधनों के विषय में सोचता हूँ तो क्रोध से उबलने लगता हूँ।" (I have wandered from my subject, because anger gets hold of me whenever I think of the base and criminal means adopted by the Government to keep the nations in perpetual slavery)। धर्म के विषय में भी बैकूनिन के विचार बड़े क्रान्तिकारी थे। उसके मत में सब प्रकार की निरंकुशताओं में धार्मिकों की निरंकुशता सबसे अधिक दुखदायी है क्योंकि अपने ईश्वर की महानता तथा अपने विचार की विजय के विषय में वे इतने कट्टर हैं कि वास्तविक, जीवित एवं दुखी मानव की महत्ता एवं स्वतन्त्रता के प्रति वे सर्वथा हृदयहीन दिखाई देते हैं।" (Of all the despotisms that of the religionists is the worst They are so jealous of the glory of their God and the triumph of their idea that they have no heart left for the liberty and dignity for the suffering of the living man) वह ईश्वर को अत्याचारी जार (Czar) कहा करता था और जार को निरंकुश अत्याचारी ईश्वर। धार्मिक पवित्रता की आड़ में पलने वाली अन्यायपूर्ण संस्थाओं के साथ साथ वह वैयक्तिक सम्पत्ति का भी तीव्र आलोचक था और उसका अन्त चाहता था। अराजकतावादी समाज की प्राप्ति के लिए वह विकासवादी (Evolutionary) तथा क्रान्तिकारी (Revolutionary) दोनों प्रकार के साधनों में विश्वास करता था। अपनी रचनाओं में उसने अराजकतावादी समाज के चित्र की ओर कहीं-कहीं संकेत किये हैं। उसके अनुसार इस प्रकार के समाज में "व्यक्तियों से स्वतन्त्र समुदाय होंगे, समुदायों से प्रान्त, प्रान्तों से राष्ट्र, राष्ट्रों का एक संयुक्त यूरोप तथा तत्पश्चात् एक विश्व की स्थापना होगी। (There will be a free Union of Individuals into communes, of communes into provinces of provinces into nations of nations into a United States of Europe and later on of the whole world) मानव सभ्यता के इतिहास को बैकूनिन ने शोषण, अत्याचार, धर्मान्धता तथा हृदयहीनता का इतिहास माना है।

प्रिंस क्रोपोटकिन (Prince Kropotkin) 1842-1921—अराजकतावाद को एक व्यवस्थित रूप देने वाला यह प्रथम विचारक था। यह रूसी था तथा अपने विचारों की उग्रता के कारण इसे अनेकों बार जेल यात्रा करनी पड़ी थी। बकुनिन की भाँति यह भी सब प्रकार के नियन्त्रणों का विरोधी था और धर्म, राज्य तथा वैयक्तिक सम्पत्ति का अन्त चाहता है। अपने इतिहास के ज्ञान द्वारा उसने यह सिद्ध किया कि मनुष्य जाति शताब्दियों तक राज्यहीन अवस्था में रही है और इस समय में प्रचलित रीति रिवाज ही आज की सरकारों के कानून कहलाते हैं। पहिले व्यक्ति इनका स्वेच्छा से पालन करता था किन्तु आज बल के प्रयोग द्वारा राज्य उन्हीं बातों के पालन के मार्ग में अनुचित बाधायें उपस्थित करता है। इतिहास के अध्ययन के आधार पर यह राज्य को अनावश्यक तथा हानिकारक संस्था मानता है, जिसके कारण समाज में भ्रष्टाचार तथा बेकारी आदि के दुर्गुण पाये जाते हैं। क्रोपोटकिन चर्च का भी विरोधी था और उसे केवल धार्मिकों के हाथ की कठपुतली मात्र मानता था। उसके अनुसार अराजकतावादी राज्य में किसी भी प्रकार का बन्धन नहीं होगा और स्वतन्त्र संस्थायें व्यक्ति के साथ निश्चित समझौते के आधार पर बनाई जायेंगी। मानो संस्थायें व्यक्ति से यह कहेंगी, "हम तुम्हें, मकान, भण्डार, मार्ग, विद्यालय सवाहन, संग्रहालय आदि के प्रयोग का आश्वासन इस शर्त पर देती हैं जबकि तुम अपनी बीस से पैंतालीस साल की अवस्था तक जीवन की आवश्यकताओं के लिए आवश्यक कोई काम चार अथवा पाँच घंटे तक करने को तैयार हो।" (We guarantee to you the use of our houses stores streets, means of transportaion, schools, museums etc on the condition that from twentieth to fiftieth year you apply four or five hours a day to some work recognised as necessary for life') इस बात के अनुसार व्यक्ति अपना काम चुन लेगा और बाकी समय में उसे कहीं भी कुछ भी करने का अधिकार होगा। क्रोपोटकिन का विश्वास था कि "मनुष्य काम से घृणा नहीं करता बल्कि अधिक काम से घृणा करता है।" (What is repulsive to people is not work but over work) अतः समाज धीरे-धीरे अपने आप ही अराजकतावादी उद्देश्य की ओर पहुँच जायगा। वह एक साम्यवादी अराजकतावादी (Communist anarchist) था इसलिए उसकी इच्छा थी कि बड़े-बड़े कारखानों के स्थान पर हमें पुनः घरेलू उद्योगों को विकसित करना चाहिए। वह श्रम के विभाजन को भी एक बहुत बड़ा दुर्गुण मानता था और कार्यकाल में कमी तथा मजदूरी में वृद्धि का बहुत बड़ा समर्थक था।

टालस्टाय (Tolstoy) 1823-1910—रूस के सुप्रसिद्ध साहित्यकार तथा दार्शनिक टालस्टाय भी अराजकतावाद के जन्मदाताओं में से हैं। टालस्टाय अपने समय का तथा अपने समाज का बहुत बड़ा आलोचक था। अपनी पुस्तक 'तब हमें क्या करना चाहिए" (What must we do then) उसने रूसी समाज के तत्कालीन दुर्गुणों जैसे वेश्यावृत्ति, निर्धन गृहहीनता आदि का एक बहुत ही नग्न चित्र उपस्थित

लिया है। एक स्थान पर प्रेम तथा मानवीय निराशा की अभिव्यक्ति करता हुआ वह लिखता है "मैं अपने श्रम से अपने पिता की सहायता करना चाहता हूँ मैं विवाह करना भी चाहता हूँ किन्तु मुझे (राज्य द्वारा) छः वर्ष के लिए सैनिक बनाकर कजान भेज दिया जाता है—मैं अपनी सम्पत्ति को बचाता हूँ और उसे अपने बच्चों को देना चाहता हूँ किन्तु एक पुलिस वाला आकर मुझसे मेरी सारी बचत राजकर के नाम पर छीन ले जाता है—मेरी सारी कार्यवाहियाँ राज्य के अधीन हैं—मैं अनुभव करता हूँ कि मेरी तथा मेरे साथियों की स्थिति में सुधार राज्य से मुक्ति पाने पर ही होगा—किन्तु मुझसे कहा जाता है कि मेरे इस तर्क का कारण मेरी अज्ञानता है। (I want to help my father by my labour—I also want to marry but instead I am taken and sent to Kazan to be a soldier for six years—I manage to save something and want to give my savings to my children but a policeman comes and takes from me all I have saved for taxes—All my activities are under the influence of state demands and it appears to me that bettering of my position and that of my brethren will follow our liberation from the state. But I am told such reasoning is the result of my ignorance.) टालस्टाय राज्य को भी धर्म की भांति एक काल्पनिक वस्तु मानता है। (What theologians call the God the Political Science the State) उसके अनुसार राज्य एक अनावश्यक तथा अनुपयोगी संस्था है जो केवल उन्हीं लोगों के लिए जो शासक है, अन्यथा इसका आचरण यह बतलाता है कि यह शोषण, युद्ध, भिक्षावृत्ति तथा वेश्यावृत्ति को प्रोत्साहित करने वाली एक घिनौनी संस्था है। विज्ञान तथा कला का भी टालस्टाय अच्छा पारखी तथा आलोचक था। महात्मा गांधी के विचार उसके दर्शन से बहुत अधिक प्रभावित हुए थे।

प्रूधों (1809-65)—यह एक बहुत योग्य विद्वान तथा उग्र विचारवादी एक फ्रेंच दार्शनिक था। नेपोलियन III के समय की राजनैतिक अवस्था ने इसके विचारों को और भी उग्रतर बना दिया। वह साम्यवादी दर्शन को एक कल्पना मात्र कह कर उसका उपहास करता है। मार्क्स से विरोध होने पर एक स्थान पर यह लिखता है, "साम्यवाद एक विज्ञान नहीं बल्कि विज्ञान का अन्त है। इसे पर वितरण तथा व्यवस्था का नियम नहीं आता। यह लचीला तथा बुद्धिविहीन दुःखवादी धर्म है। यह न विचार करता है और न तर्क। अपने विचार यह परम प्राचीन रहस्यात्मक, अस्पष्ट एवं अवर्णनीय परम्पराओं से ग्रहण करता है। साम्यवाद का अर्थ है त्रुटियों के पाले—सदैव तथा सर्वत्र।" (Communism is not a Science, but an annihilation of it. It is incapable of finding a formula of distribution and organisation. It is an elastic and unintelligent religion of misery. It neither thinks nor does it reason. It borrows its ideas from the most ancient mystic vague and undefinable tradition. Communism means privations everywhere and always.) प्रूधों स्वतन्त्रता तथा स्वाधीनता का

समर्थक है। उसके स्वयं के शब्दों में "मनुष्य के मनुष्य पर शासन का अर्थ है उत्पीड़न। समाज की सर्वोत्तम पूर्णता वह है जहाँ व्यवस्था तथा अराजकता का सम्मिश्रण हो।" (Government of man by man is oppression—the highest perfection of society is the union of order and anarchy) वह सम्पत्ति को चोरी मानता था, किन्तु इतना होते हुए भी वह वंशानुगत सम्पत्ति की प्राप्ति के पक्ष में था और उसकी व्यवस्था में सुधार करना चाहता था। वह श्रमिक वर्ग का असली उद्धारक था और जनता की बैंक" तथा "श्रममुद्रा" (Labour Currency) आदि की भी उसने योजनायें बनाई थी। वह सम्पत्ति के समान वितरण का समर्थक था और उसकी योजना के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को तीन गाय तथा एक एकड़ जमीन वैयक्तिक सम्पत्ति के रूप में मिलनी चाहिए।

इन उपरोक्त विचारकों के अतिरिक्त वारेन (Warren), हॉग्स्किन (Hodgskin), थोरो (H. Thoreon), स्टिनर (Stirner) आदि कितने ही अन्य अराजकतावादी विचारक हुए हैं जिन्होंने राज्यकीय नियन्त्रणों की निन्दा कर एक वर्गहीन तथा राज्यहीन सहयोगात्मक समाज की स्थापना के लिए अपने अपने तर्क उपस्थित किये हैं।

अराजकतावादी साधन (Anarchist method)—राज्य का विनाश कर उसके स्थान पर ऐच्छिक तथा असंगठित समाज की स्थापना के लिए किन साधनों का प्रयोग किया जाय, इस प्रश्न पर अराजकतावादी विचारक एकमत नहीं है। प्रधानतः अराजकतावादियों के दो वर्ग है, जो भिन्न-भिन्न मार्गों के द्वारा एक ही निश्चित उद्देश्य तक पहुँचना चाहते हैं। साधनों के विषय में मत वभिन्य के कारण हम अराजकतावादियों को दो विचार वर्गों में विभाजित कर सकते हैं, एक वह जो शान्तिपूर्ण तथा विकासवादी तरीकों से अराजकतावादी समाज की स्थापना चाहते हैं तथा दूसरे वह जो हिंसात्मक तथा क्रान्तिकारी उपायों द्वारा तुरन्त ही राज्य की समाप्ति कर अपने अराजकतावादी समाज के स्वप्न को चरितार्थ करना चाहते हैं। पहिले प्रकार के विचारक जिनमें टालस्टाय प्रमुख है चाहते हैं कि एक पवित्र उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रयुक्त किए जाने वाले साधन भी पवित्र ही होने चाहिए और इस प्रकार शिक्षा तथा हृदय परिवर्तन आदि के तरीकों पर उचित बल दिया जाय तो शनैः शनैः यह सम्भव है कि उद्देश्य की प्राप्ति हो जाय। इस पक्ष के विचारकों का कहना है कि हिंसात्मक तथा विनाशकारी प्रयत्नों के द्वारा समाज में जो कुछ सुन्दर तथा उत्तम वस्तुएं हैं वे नष्ट हो जायेंगी और एक आदर्श समाज का स्वप्न एक कल्पना मात्र रह जायगा। किन्तु दूसरे प्रकार के उग्र विचारक मानते हैं कि राज्य की जड़ें समाज में इतनी गहरी पहुँच चुकी हैं कि शान्ति तथा विनम्रतापूर्ण साधनों द्वारा उसका नाश करना सर्वथा असम्भव है। राज्य में साथ उसके सहायक धर्म तथा पूंजीवाद दो एस हिरण्यकश्यप हैं जो साधारणतः तथा सरलता से समाज से उन्मूलित नहीं किए जा सकते। उनसे एक घनघोर युद्ध करना होगा और उस युद्ध में विजय तभी सम्भव हो सकेगी जब एक भीषण क्रान्ति के द्वारा राज्य तथा उसके समर्थक एवं उसके अन्य भग्नावशेषों को

सदव के लिए समाप्त कर एक नूतन एवं सौभाग्यशाली समाज की स्थापना की जाय। क्रोपोटकिन, प्रूधों आदि ऐसे ही उग्र अराजकतावादी थे।

अराजकतावाद का मूल्यांकन (Evaluation of Anarchism)—आज के समाजवादी युग में वाह्य रूप से अव्यावहारिक विचारधारा लगते हुए भी शास्त्रीय दृष्टि से अराजकतावादी एक अत्यन्त मूल्यवान दर्शन है। इसने राज्य तथा समाज सम्बन्धी कितने ही सत्यों का उद्घाटन किया है और अनेक दोष तथा दुर्बलताओं के होते हुए भी पूर्ण मानव समाज के लिए यह एक आदर्श विचारधारा है।

१ यह व्यक्ति को नैतिक रूप से उन्नत प्राणी मानता है (It presupposes man as a developed ethical being)—मनुष्य जन्म से दुर्गुणी नहीं होता बल्कि इस घृणित समाज के वातावरण में ही पलकर वह व्यभिचारी अथवा दुराचारी बनता है यह एक सर्वस्वीकृत सत्य है, जिससे अराजकतावादी दर्शन का आरम्भ होता है। अराजकतावाद व्यक्ति को स्वभाव से सामाजिक, पारस्परिक कल्याण के लिए इच्छुक तथा परोपकारी प्राणी मानकर चलता है, जो इस सिद्धान्त की आधारभूत जड़ों को मजबूत बनाता है।

२ राजकीय हस्तक्षेप भूतकाल में हानिकारक सिद्ध हुआ है। (State interference in the past has proved disastrous)—व्यक्तिवादियों की भाँति अराजकतावादी इस तर्क में बहुत अधिक बल है कि राज्य की अनुपयुक्तता इतिहास द्वारा प्रमाणित है। भूतकाल में राज्य ने व्यक्ति के जीवन पर नाना प्रकार के नियन्त्रण लगाये जिसके परिणाम स्वरूप ही हमें मानवता का इतिहास गृहयुद्ध (Civil wars), महायुद्ध तथा आकस्मिक विद्रोहों से भरा हुआ मिलता है। इस कारण अराजकतावादियों का यह कहना कि राज्य का अस्तित्व मानव के विकास में बाधक तथा हानिकारक सिद्ध हुआ है बहुत कुछ अंशों में सत्य प्रतीत होता है।

३ आत्मनिर्भरता तथा सहयोग की भावना ही उन्नति का मूलमन्त्र है। (Self reliance and spirit of co-operation are the key to progress)—अराजकतावाद राज्य की अति महत्ता के खण्डन के साथ-साथ इस बात पर बल देता है कि मनुष्य अपनी उन्नति के लिए राज्य अथवा अन्य किसी सहायता के लिए हाथ न फैलाये बल्कि अपने पैरों पर खड़ा रहना सीखें और आपस में मिल जुल कर अपनी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति करे। यथार्थ में राज्य द्वारा प्रदान की गई सुरक्षा तथा संरक्षण व्यक्ति को आलसी तथा निकम्मा बनाती है। राज्य के अभाव में व्यक्ति जीवन की अनिवार्य सामग्री तथा आवश्यकताओं के लिए खुद प्रयत्नशील होगा जिसके कारण उसके जीवन में एक कर्मण्यता तथा कर्तव्य चेतना रहेगी। ऐच्छिक संघों के गठन को स्वीकृति देकर भी अराजकतावाद अपने दर्शन को एक मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान करता है। विभिन्न संघों में संगठित होने के कारण व्यक्ति अधिक सामाजिक बनेगा और उसकी प्रमुख सहयोग की भावना जाग्रत होकर उसे मानवोचित जीवन बिताना सिखलायेगी। वास्तव में जीवन में उन्नति का मूलमन्त्र आत्मनिर्भरता

१ अराजकतावादी समाज एक कल्पना है (Anarchist society is an Utopia)—कुछ आलोचकों का मत है कि बाह्य दृष्टि से अराजकतावादी दशा आकर्षक होते हुए भी व्यावहारिक (Practical) नहीं है। यथार्थ में एक ऐसे समाज की कल्पना करना जहाँ सत्ता तथा बल न हो और ऐच्छिक संघ ही सारे कार्यों को आपस में निपटा लें मनुष्य स्वभाव पर आवश्यकता से अधिक भरोसा करना है। यह निश्चय ही एक स्वप्न मात्र है, जिसे यदि क्रियात्मक रूप दिया जाय तो एक बहुत भयकर दुर्घटना हो सकती है। फिर यदि प्रेम के आधार पर एक समाज का निर्माण किया भी जाय, तो वह समाज अधिक दिन टिकने वाला नहीं हो सकता। मनुष्य की दुर्बलताओं पर आवश्यकता से अधिक विश्वास कर यदि राज्य को हटा दिया जाय तो जगली जानवरों से भरे एक जगल का सा दृश्य उपस्थित हो सकता है।

२ सभ्य समाज के लिए राज्य एक अनिवार्यता है (State is indispensable for a civilized society)—अराजकतावादियों की यह धारणा कि राज्य एक अनावश्यक दुर्गुण है और उसके बिना भी समाज के कार्य उसी सुगमता से हो सकते हैं एक भ्रांति है। राज्य के कार्यों की आलोचना करते समय वे उसका एक अतिरंजित चित्र (Exaggerated picture) उपस्थित करते हैं। शायद इस बात को भूल जाते हैं कि मनुष्य सामाजिक तथा परोपकारी होने के साथ साथ पशु तथा अपराधी भी होता है और यह पाशविकता प्रेम से नहीं केवल दण्ड से ही सयमित रखी जा सकती है। यदि आज ही हम राज्य की छत्र छाया को अपने पर से हटा दें तो एक बहुत भीषण अव्यवस्था तथा अराजकता फैल जायगी। शक्तिशाली तथा असामाजिक तत्व सगठित होकर सभ्य तथा सुसस्कृत व्यक्ति का जीवन असम्भव कर दे। अत सभ्य जीवन के अस्तित्व के लिए राज्य एक अनिवार्य सस्था है। (The state in some form, whatever may be said in its criticism of its mistakes will be an ab olute necessity among civilized men)।

३ अराजकतावादी समाज मनुष्य के लिए नहीं देवताओं के लिये हो सकता है—जिस सामाजिक प्राणी की बात अराजकतावाद करता है। वह ससार का प्राणी नहीं हो सकता। मनुष्य स्वभाव से ही अपूर्ण है और उसको पूर्ण बनाने के लिए राज्य का उदय हुआ है। अत उसको आरम्भ से ही पूर्ण मानकर चलना, मानव मनोविज्ञान का अज्ञान दिखलाना है। पूर्णता मनुष्य का गुण नहीं देवताओं का गुण हो सकता है अत आलोचक मानते है कि अराजकतावाद यदि पर एक व्यावहारिक दर्शन बन सकता है तो वह केवल स्वर्ग में ही बन सकता है इस पृथ्वी पर नहीं।

४ अराजकतावादी घूमकर उसी बिन्दु पर पहुँच जाते हैं जहाँ से चले थे (Anarchists argue in a cyclic fashion)—अराजकतावाद जैसा कि पहले कहा गया है कि राज्य विरोधी नहीं बल्कि सत्ता विरोधी है। एक बार अराजकतावादी कहते हैं कि व्यक्ति पर किसी भी प्रकार का कोई अकुश नहीं होना चाहिए, किन्तु दूसरी ओर वे समाज की व्यवस्था का कार्य कुछ ऐसे सघो को सौंपना चाहते हैं, जो वर्तमान राज्य,

तथा पारस्परिक सहयोग की भावना ही है, जिस पर बल देने के कारण अराजकता वादी सिद्धान्त पर कोई आपत्ति नहीं कर सकता।

४ अराजकतावाद द्वारा राज्य, पूँजीवाद तथा धर्म की सही भर्त्सना की गई है (Anarchist condemnation of State, Capitalism and religion is correct) – अगर निष्पक्ष तथा गम्भीरता पूर्वक विचार किया जाय तो अराजकता वादियो द्वारा राज्य के दुगुणा तथा पूँजीवाद एव धर्म द्वारा वर्धित इन दुगुणा की हानियो का खण्डन काफी न्याय पूर्ण है। यह तो नित्य प्रति देखने में आता है कि राज्य हमारे दैनिक जीवन मे अनावश्यक हस्तक्षेप करता है तथा उसकी जड धार्मिक भ्रम आदि स्तम्भो पर टिकी हुई हैं। पूँजीवाद सच्चे रूप मे आज के समाज की दयनीय एव शोचनीय स्थिति का जन्मदाता है। इसी के कारण वर्तमान समाज स्पष्टत दो असन्तुष्ट वर्गों मे बटा हुआ है, जिनमे चलने वाला सतत सघर्ष, एक दूसरे की चिन्ता का विषय बना हुआ है। इसे शायद ही कोई विवेकशील प्राणी अस्वीकार करे कि सम्पन्नता तथा बहुलता के मध्य मे दरिद्रता का आवास मानव सभ्यता पर एक बहुत बडा कलक है। अराजकतावादियो का यह तर्क कि धर्म ने सदैव सत्ताधारियो का साथ दिया है और उनके हाथ मे पड कर वह एक पाखण्ड (Hypocrisy) अथवा अफीम मात्र रह गया है, काफी सबल मालूम देता है। यथार्थ मे धर्म भाग्यवाद के दर्शन द्वारा मानवता के विकास को आगे न बढने देकर पीछे को धकेलता है, जिसके कारण एक आदर्श समाज मे उसकी स्थिति सर्वथा असह्य है। अत राज्य, धर्म तथा पूँजीवाद की आलोचना मे अराजकतावादी आघात पूर्णत इतिहास सम्मत तथा उचित प्रतीत होते हैं।

५ अराजकतावादी समाज एक आदर्श उपस्थित करता है (Anarchist society stands as an ideal)—अराजकतावाद के आलोचको का यदि यह मत मान भी लिया जाय कि अराजकतावादी समाज का चित्र बडी कठिनाई मे आज के समाज की परिस्थितियो पर बठ सकता है, तो भी यह मानना होगा कि यह कठिनाई मे प्राप्य होते हुए भी असम्भव नही है। राज्यहीन समाज, शास्त्रीय दृष्टिकोण से एक आदर्श समाज है जहाँ व्यक्ति सारे कार्य आपसी सहयोग द्वारा सम्पादित करें। हमारा समाज यदि आज ऐसा नहीं है तथा उसे ऐसा बनाने मे अनेक कठिनाइयाँ हैं तो भी हमे इस स्वरूप का आदर्श मान कर उसे व्यावहारिक बनाने के लिए प्रयत्न करना चाहिए। अत अराजकतावाद समाज को केवल कल्पना अथवा स्वप्न कह कर उसकी खिल्ली नही उडाई जा सकती। जहाँ तक मनुष्य के मस्तिष्क की पहुँच है वह अपने जीवन के लिए आदर्श तथा पूर्ण दर्शन बनाता है और अराजकतावाद भी एक ऐसा ही तथ्यपूर्ण आदर्श है जिसमे पूर्ण समाज की कल्पना आज के मानव के लिए अनुकरणीय है।

अराजकतावाद की आलोचना (Criticism of anarchism)—आलोचको के अनुसार उपरोक्त मूल्यवान विचारो के होते हुए भी अराजकतावादी सिद्धान्त मे ऐसे अनेको तन्तु हैं, जिन पर आपत्ति की जा सकती है।

१ अराजकतावादी समाज एक कल्पना है (Anarchist society is an Utopia)—कुछ आलोचकों का मत है कि बाह्य दृष्टि से अराजकतावादी दर्शन आकर्षक होते हुए भी व्यावहारिक (Practical) नहीं है। यथार्थ में एक ऐसे समाज की कल्पना करना जहां सत्ता तथा बल न हो और ऐच्छिक संघ ही सारे कार्यों को आपस में निपटालें मनुष्य स्वभाव पर आवश्यकता से अधिक भरोसा करना है। यह निश्चय ही एक स्वप्न मात्र है जिसे यदि क्रियात्मक रूप दिया जाय तो एक बहुत भयंकर दुर्घटना हो सकती है। फिर यदि प्रेम के आधार पर एक समाज का निर्माण किया भी जाय, तो यह समाज अधिक दिन टिकने वाला नहीं हो सकता। मनुष्य की दुर्बलताओं पर आवश्यकता से अधिक विश्वास कर यदि राज्य को हटा दिया जाय तो जंगली जानवरों से भरे एक जंगल का सा दृश्य उपस्थित हो सकता है।

२ सभ्य समाज के लिए राज्य एक अनिवार्यता है (State is an indispensable for a civilized society)—अराजकतावादियों की यह धारणा कि राज्य एक अनावश्यक दुर्गुण है और उसके बिना भी समाज के कार्य उसी सुगमता से हो सकते है एक भ्रान्ति है। राज्य के कार्यों की आलोचना करते समय वे उसका एक अतिरंजित चित्र (Exaggerated picture) उपस्थित करते हैं। शायद इस बात को भूल जाते हैं कि मनुष्य सामाजिक तथा परोपकारी होने के साथ साथ पशु तथा अपराधी भी होता है और यह पाशविकता प्रेम से नहीं केवल दण्ड से ही संयमित रखी जा सकती है। यदि आज ही हम राज्य की छत्र छाया को अपने पर से हटादें तो एक बहुत भीषण अव्यवस्था तथा कानूनहीनता फैल जायगी। शक्तिशाली तथा असामाजिक तत्व संगठित होकर सभ्य तथा सुसंस्कृत व्यक्ति का जीवन असम्भव कर दें। अत सभ्य जीवन के अस्तित्व के लिए राज्य एक अनिवार्य संस्था है। (The state in some form whatever may be said in its criticism of its mistakes will be an absolute necessity among civilized men)।

३ – अराजकतावादी समाज मनुष्य के लिए नहीं देवताओं के लिये हो सकता है—जिस सामाजिक प्राणी की बात अराजकतावाद करता है। वह संसार का प्राणी नहीं हो सकता। मनुष्य स्वभाव से ही अपूर्ण है और उसको पूर्ण बनाने के लिए राज्य का उदय हुआ है। अत उसको आरम्भ से ही पूर्ण मानकर चलना मानव मनोविज्ञान का अज्ञान दिखलाना है। पूर्णता मनुष्य का गुण नहीं, देवताओं का गुण हो सकता है, अत आलोचक मानते हैं कि अराजकतावाद कहीं पर एक व्यावहारिक दर्शन बन सकता है तो वह केवल स्वर्ग में ही बन सकता है इस पृथ्वी पर नहीं।

४ अराजकतावादी घूमकर उसी बिन्दु पर पहुंच जाते हैं जहां से चले थे (Anarchists argue in a cyclic fashion)—अराजकतावाद जैसा कि पहले कहा गया है कि राज्य विरोधी नहीं बल्कि सत्ता विरोधी है। एक ओर अराजकतावादी कहते हैं कि व्यक्ति पर किसी भी प्रकार का कोई अंकुश नहीं होना चाहिए किन्तु दूसरी ओर वे समाज की व्यवस्था का कार्य कुछ ऐसे संघों को सौंपना चाहते हैं, जो वर्तमान राज्य;

द्वारा किये जाने वाले कार्यों को सम्पन्न करेंगे। ये संघ भी आखिर आज्ञा उल्लंघन पर कुछ न कुछ दण्ड तो देंगे ही। फिर यह कभी भी सम्भव नहीं है कि इन संस्थाओं में सब कार्य एकमत होकर किया जाय। बहुमत अल्पमत पर अपने निर्णय थोपेगा और इस प्रकार सत्ता का उपयोग करेगा। इस प्रकार सत्ता तथा बल का अभाव जिसकी अराजकतावादी कल्पना करते हैं, संघों में संगठित समाज में सम्भव नहीं हो सकता। बर्ट्रेण्ड रसल (Bertrand Russell) के शब्दों में "अराजकतावादियों के इच्छानुकूल यदि सरकार बल का प्रयोग नहीं करेगी तो बहुसंख्यक, अल्पसंख्यकों के विरुद्ध संगठित होकर बल का प्रयोग करेंगे। अन्तर केवल इतना होगा कि राज्य,तथा सेना स्थाई विभाग न होकर अस्थाई बन जायेंगे" (*If as anarchists desire there were no use of force by Government—the majority will bend themselves together use force against the minority The only difference would be that their army or their police force would be adhoc instead of being permanent or professional*)।

५ अराजकतावादियों का इतिहास का अध्ययन अशुद्ध है (*The Study of history by anarchists is wrong*)—प्रसिद्ध आलोचक सीले (Seeley) के मतानुसार "मानवता के इतिहास में जो कुछ भी महान तथा सराहनीय वस्तु आज तक हुई है। वह शासित समाज में ही हो सकी है।" (Whatever in human history is great and admirable has been found in governed Communities)। अराजकतावादी स्वतन्त्रता का अशुद्ध अर्थ लगाते हैं। यथार्थ में उपभोग योग्य (Enjoyable) स्वतन्त्रता नियन्त्रण के साथ सम्भव है। उनकी मान्यता है कि यदि राज्य का आज ही अन्त कर दिया जाय तो वह किसी स्वाभाविक संघ के रूप में अपना कार्य फिर आरम्भ कर देगा और शताब्दियों के विकास के बाद फिर इसी रूप में प्रकट हो जायगा। तात्पर्य यह कि राज्य का उन्मूलन असम्भव है।

६ राज्य नैतिक गुणों का नाशक नहीं (*State does not kill moral values*)—अराजकतावादियों का राज्य पर यह आरोप कि वह नैतिक गुण का हनन कर उस पतन की ओर ले जाता है, निरर्थक है। बल के प्रयोग से नैतिकता का नाश नहीं होता, बल्कि वह विकसित और वर्द्धित होती है। ग्रीक लोगों का मत था कि राज्य एक नैतिक प्राणी है और राज्य में रहने पर ही व्यक्ति नैतिक रह सकता है अन्यथा नहीं।

७ अराजकतावादियों का उद्देश्य स्पष्ट नहीं है (*Anarchist aim is not clear*)—राज्य के नष्ट होने के पश्चात् समाज में किस प्रकार की व्यवस्था होगी। ऐच्छिक संघों को संगठित करने वाली कौन-सी सत्ता होगी? यदि इन संघों में झगड़ा हो गया तो इसको निपटारा कैसे होगा? तथा किसी सदस्य ने यदि संघ के आदेश मानने से इन्कार कर दिया तो क्या होगा आदि कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिन्हें अराजकतावादी निरुत्तर छोड़ जाता है। उनका भावी समाज का चित्र आकर्षक होते हुए भी स्पष्ट नहीं है और यही कारण है कि यह एक काल्पनिक अथवा अव्यावहारिक दर्शन माना जाता है।

८ स्वतन्त्रता का अर्थ ठीक नहीं (The view of liberty is incorrect)—बल तथा नियन्त्रणों के अभाव को अराजकतावादी स्वतन्त्रता मानते हैं। ऐसी स्वतन्त्रता उच्छृङ्खलता है जो किसी भी सभ्य समाज में सहन नहीं की जा सकती।

६ अराजकतावाद आवश्यकता से अधिक आशावादी है (Anarchism is over optimistic)—आलोचक लोग संकेत करते हैं कि अराजकतावाद व्यक्ति के स्वभाव का एक अशुद्ध रूप लेकर आगे बढ़ता है। वह यह भूल जाता है कि मनुष्य स्वभाव से चालाक तथा स्वार्थी होता है। मनुष्य को केवल सद्भाव तथा सद्गुणों की प्रतिमा मानना मनोविज्ञान से अपरिचित होना ही नहीं है, वरन् आवश्यकता से अधिक आशावादी बनना है। प्रत्येक वस्तु को ठीक तरह समझने के लिए हमें उसके दोनों पक्ष देखने चाहिए, किन्तु अराजकतावादी काले पक्ष को बिलकुल भूल जाते हैं। उन्हें यह याद रखना चाहिए कि एक प्रेम सूत्र में बँध कर भी एक परिवार में नित्यप्रति झगड़े कलह तथा अशान्ति देखने में आती है।

इस प्रकार अराजकतावाद आलोचकों के हाथों में पड़कर आज के समाजवादी युग में एक मृत सिद्धान्त हो गया है। इसे आज के जटिल समाज व सभ्यता के विकास के लिए स्वीकृत नहीं किया जा सकता। किन्तु इतना होते हुए भी जहाँ तक सिद्धान्तों का प्रश्न है अराजकतावाद एक बहुत ही तथ्यपूर्ण तथा ठोस विचार धारा है। राज्य में रहते हुए तथा उसके आशीर्वादों का उपभोग करते हुए भी हम यह नहीं भूल सकते कि हमारी पूर्णता इसी में है कि हम इसके बिना अपने को सुखी तथा शान्त रख सकें। फिर फारियर (Fourier) की इस उपमा में भी कम आकर्षण नहीं है कि "कुछ कंकड़ लो उन्हें एक घड़े में बन्द करो और फिर उन्हें हिला दो, वे अपने आपको इस कलात्मक ढङ्ग से व्यवस्थित कर लेंगे कि तुम किसी भी कुशल व्यक्ति को यह कार्य सौंप कर उन्हें इस सुन्दरता से नहीं जमा सकोगे" (Take some pebbles Put them into a jar and shake them and they will arrange themselves in such a mosaic that you could never get by entrusting to any one of the work of arranging them harmoniously)। किन्तु यह स्मरण रहे कि मनुष्य और पत्थर के कणों में दिन-रात का अंतर है। प्राकृतिक निर्जीव वस्तुओं के नियम केवल कुछ समानता के आधार पर ही सजीव तथा चेतनापूर्ण मानव-समाज पर लागू नहीं हुआ करते। पर यह सब होते हुए भी "अराजकतावाद हमारी नागरिकता को एक चुनौती है जिसे हमें बहुत गम्भीरता के साथ स्वीकार करना चाहिए और राजनीतिक संस्थाओं में विश्वास करने वाले को उचित है कि वे उन्हें अधिक लोकप्रिय तथा विश्वास के योग्य बनाने का प्रयत्न करें" (Anarchism confronts our sense of citizenship with a challenge which we should do well to take seriously and the believer in Political institution should seek to make them more worthy of popularity and allegiance)।

बहुलवाद
(Pluralism)

राज्य के चार आवश्यक तत्वों में राज्यसत्ता (Sovereignty) सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। यह एक सर्वसामर्थ्यशाली शक्ति (Omnipotent power) है जिसको अपने में धारण करने के कारण राज्य अन्य संस्थाओं तथा संघों से महत्तर माना जाता है। राज्य का यही प्रभुत्व सम्पन्नता का गुण (Sovereign character) उसे आन्तरिक तथा बाह्य क्षेत्रों में सर्व शक्तिमान तथा निरंकुश बनाता है। बोदां (Bodin) हाब्स (Hobbes) आदि के राजनैतिक विचारों में राज्य की इसी सर्वशक्तिमानता का प्रतिपादन किया गया है और जॉन आस्टिन (J Austin) नामक एक विचारक के अनुसार तो यह एक ऐसी निश्चित एवं अनियन्त्रित सत्ता है जिसके आदेश ही राज्य के कानून होते हैं। राज्य की यही सर्वशक्तिमानता का युग हीगल आदि के आदर्शवाद में अपनी सीमायें लाँघ गया, जिसके फलस्वरूप वर्तमान युग में उसके विरुद्ध एक प्रतिक्रिया (Reaction) हुई और उसी प्रतिक्रिया का अभिव्यक्तिकरण है बहुलवाद, जो ऐतिहासिक दृष्टि से प्राचीन होते हुए भी प्रधानतः वर्तमान युग के विचारकों द्वारा राज्यसत्ता के एकात्मक एवं अनियन्त्रित स्वरूप पर करारा आघात है।

बहुलवादियों (Pluralists) का मत है कि राज्य व्यक्तियों का समुदाय न होकर कुछ संघों तथा संस्थाओं का संघ (An association of Associations) है राज्य के अन्तर्गत पाये जाने वाले अनेकों संघ जैसे चर्च, ट्रेड यूनियन, क्लबों आदि की भाँति राज्य भी एक संस्था है और अन्य संघों की भाँति व्यक्ति की सेवा करती है। अतः बहुलवादी मानते हैं कि राज्यसत्ता का समान वितरण हो जाना चाहिए तथा राज्य के अन्तर्गत कार्य करने वाले संघों को समुचित स्थान व महत्व मिलना चाहिए। बहुलवादी राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक आदि सभी क्षेत्रों में संघों द्वारा व्यक्ति के हित के लिए किये जाने वाले कार्यों की सराहना करते हैं और उनकी मान्यता है कि राज्य अथवा व्यक्ति दोनों की अपेक्षा एक संघ व्यक्ति के हित का सच्चा प्रतिनिधित्व कर सकता है और उसकी रक्षा भी अधिक बल के साथ कर सकता है। बहुलवाद के अनुसार आज के युग की असली समस्या व्यक्ति तथा राज्य के मध्य का झगड़ा नहीं है बल्कि राज्य और समुदाय के मध्य का झगड़ा है और इसीलिये बार्कर (Barker) के शब्दों में "हम आज 'राज्य बनाम व्यक्ति' न लिखकर समुदाय विरुद्ध राज्य लिखते हैं।" (No longer we do write man versus the State we write Group versus the State)

। बहुलवाद का इतिहास (History of pluralism)—ग्रीक तथा रोमन लोग राज्य की सर्वसामर्थ्यशीलता (Omnipotence) में विश्वास करते थे अतः एक खण्डित अथवा विभाजित राजसत्ता (Divisible sovereignty) जैसी वस्तु उनकी कल्पना से भी परे थी। ग्रीक लोगों के लिए राज्य एकमात्र नैतिक संस्था थी अतः उसके अतिरिक्त अन्य कोई संस्था राजसत्ता की माग नहीं कर सकती थी। रोमन लोग साम्राज्यवादी (Imperialistic) होने के कारण अनियन्त्रित एवं सार्वभौमिक (Universal) राजसत्ता में विश्वास करते थे। किन्तु मध्य युग (Mediaeval age) में आकर राज्य का महत्व कम हो जाता है और धार्मिक प्रभाव के बढ़ने के कारण राज्य सत्ता में चर्च भी अपना एक भाग मांगने लगता है। चर्च के अतिरिक्त मध्ययुग में कुछ ऐसे स्वाधीन गिल्ड अथवा समुदाय भी थे जो राज्यकीय हस्तक्षेप से स्वतन्त्र थे तथा व्यक्ति एवं छोटी संस्थाओं के मध्य के झगड़ों का निपटारा किया करते थे। यद्यपि ये समुदाय पूर्णत स्वतन्त्र नहीं थे किन्तु स्थूल रूप से मध्ययुगीन इस गिल्ड व्यवस्था को हम आज के बहुलवादी समाज की कल्पना से मिलती जुलती मान सकते हैं। इस समय का राज्य सर्वशक्तिमान नहीं था, किन्तु बहुत शीघ्र ही सत्रहवीं तथा अठारहवीं शताब्दियों के आरम्भ में धार्मिक सत्ता के ह्रास तथा राज्य सत्ता के विकास के साथ-साथ इस गिल्ड व्यवस्था का अन्त हो गया और सारे यूरोप में सर्वशक्तिशाली एवं निरंकुश शासन व्यवस्था ने अपनी जड़े स्थिर करली। अब से पूर्व की इन तीन शताब्दियों का इतिहास उच्छृङ्खल एवं अनियन्त्रित राजतन्त्र (Despotic and absolute monarchy) का इतिहास है। राजसत्ता का यह एकात्मक रूप (Monastic conception) अत्यन्त भयंकर एवं त्रुटिपूर्ण था जो प्रजातन्त्र के साथ मेल नहीं खा सकता था। फलतः राजनैतिक चेतना व प्रजातन्त्र के विकास के साथ एक नूतन विचारधारा का जन्म हुआ जिसने राजसत्ता के आस्टिनीयन रूप (Austinian view) के विरुद्ध एक खुले विद्रोह का सूत्रपात किया।

बहुलवाद का जन्म क्यों हुआ (Why pluralism came into existence)—बहुलवाद द्वारा राजसत्ता के अनियन्त्रित रूप को चुनौती दिए जाने के अनेकों सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक कारण थे। यथार्थ में आधुनिक युग की परिस्थितियाँ कुछ इतनी भिन्न हो गई थी कि राजसत्ता को एक अमर्यादित एवं बन्धनहीन सत्ता के रूप में स्वीकार करना युग की आवश्यकताओं के अनुरूप न था। अतः वह एक मृत तथा अव्यावहारिक सिद्धान्त बन गया। वर्तमान युग में बहुलवाद को जन्म देने वाले कुछ कारण निम्नलिखित हैं —

१ हीगेलियन राजसत्ता (Hegelian conception of sovereignty)—जर्मन आदर्शवादी हीगल राज्य को एक दैवी अवतार (Divine embodiment) मानता है। राष्ट्रवादी होने के कारण वह राज्य की असीम सत्ता का पुजारी है और उसे वैधानिक तथा नैतिक दृष्टि से निस्सीम (Unlimited) मानता है। हीगलवादी इस धारणा के वि

राज्य सब प्रकार के बन्धन एवं चुनौतियों से परे (Unchallengable-and-infallable) है। उन्नीसवीं शताब्दी के यूरोपीय राज्यों को परम उच्छृंखल तथा निरंकुश बना दिया था, जिसके कारण वे व्यक्ति तथा वैयक्तिक स्वतन्त्रता की कुछ भी परवाह नहीं करते थे। राज्य की इस सर्वाधिकारवादी सत्ता (Totalitarian power) के विरुद्ध विद्रोह होना स्वाभाविक था और बहुलवाद उसी विद्रोह की एक चिनगारी है।

२ प्रजातन्त्र की असफलता (Failure of democracy)—श्री H G Wells के शब्दों में "आज के युग में प्रजातन्त्र एक मरणासन्न शव की भाँति है।" (Democracy is a decaying corpse) वर्तमान युग में जहाँ जहाँ भी इसका प्रयोग किया गया वहाँ वहाँ ही इसे आशातीत असफलता मिली है और यह बात सर्वमान्य हो चुकी है कि प्रजातन्त्रात्मक शासन व्यवस्था में प्रादेशिक प्रतिनिधित्व, पूर्णतः असन्तोषजनक तथा एक बाह्य आवरण मात्र है। प्रादेशिक प्रतिनिधित्व (Territorial Representation) द्वारा अल्पसंख्यकों को उचित प्रतिनिधित्व नहीं हो पाता। इसी प्रकार एक व्यक्ति लोकप्रिय होने पर भी किन्हीं भौगोलिक सीमाओं में रहने वाले विभिन्न रुचि के व्यक्तियों का सच्चा प्रतिनिधि नहीं हो सकता। अतः आज के युग में यह आवश्यकता अनुभव हुई कि प्रादेशिक प्रतिनिधित्व के स्थान पर व्यवसायात्मक प्रतिनिधित्व (Vocational Representation) प्रजातन्त्र के कुछ अवगुणों को मिटाकर उसे सच्चे अर्थों में जनतान्त्रिक बना सकता है। बहुलवाद इसी व्यवसायात्मक प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त को लेकर आधुनिक युग में आगे बढ़ा है।

३, राज्यकीय कार्य बाहुल्य (Overloading of state organisation)—बीसवीं शताब्दी के लगभग सभी राज्य औद्योगिक क्रान्ति के कारण समाजवादी राज्य (Socialist States) बन चुके हैं जिनकी सरकारों को जनकल्याण के लिए अधिकाधिक कार्य करने पड़ते हैं। सभी क्षेत्रों में हस्तक्षेप करने के कारण इस युग में राज्य के कार्य इतने बढ़ चुके हैं, कि कोई भी राज्य उन्हें स्वच्छता तथा सुयोग्यता से सम्पन्न नहीं कर सकता। सर्वत्र कार्य कुशलता (Efficiency) का अभाव है और वार्ड (Ward) के शब्दों में ऐसा प्रतीत होता है "जैसे केन्द्र को पक्षाघात हो गया हो और शेष बिन्दुओं पर रक्तहीनता दिखाई देती हो।" There is apoplexy at the centre and anaemia at the extremities) । राज्य का इसी कार्य भार से मुक्त करने के लिये बहुलवाद का जन्म हुआ जो एक विकेन्द्रीकृत राज्य (Decentralised State) का समर्थन करता है।

४ मध्ययुगीन गिल्ड व्यवस्था का पुनरुत्थान (Revival of mediaeval Guild System)—आधुनिक युग के कुछ प्रसिद्ध विचारक गर्के (Gierke), मेटलैण्ड (Maitland) आदि ने अपनी प्रसिद्ध रचनाओं द्वारा मध्ययुगीन गिल्ड व्यवस्था का सुन्दर चित्र उपस्थित किया है और उसके आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि बहुलवाद एक व्यावहारिक विचारधारा (Practical creed) है जिसकी स्वीकृति मध्ययुगीन गिल्ड व्यवस्था का पुनरुत्थान मात्र है। डा० फिग्स (Figgs) सरीखे

(Laski) बाकर (Barker) आदि कुछ अन्य विचारकों ने भी समूह के महत्व पर प्रकाश डालते हुए इस मध्ययुगीन गिल्ड व्यवस्था को आज के समाज के लिए परम उपयोगी एवं आवश्यक माना है।

५ श्रमिक वर्ग (Labour Class)—उन्नीसवीं शताब्दी की सबसे महत्वपूर्ण घटना श्रमिक वर्ग का प्रादुर्भाव (Emergence) है। इस वर्ग के जन्म से आज के औद्योगिक समाज में अनेक समूह उत्पन्न हो गये हैं जो श्रमिकों के हितों की रक्षा के लिए पूँजीपतियों से संघर्ष करते हैं। औद्योगिक समाज (Industrial Society) की जटिलता के कारण इन संघों का महत्व प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है और इसी उपेक्षित तथ्य (Overlooked fact) पर बहुलवाद बल देता है।

६ अन्तर्राष्ट्रीयतावादियों की आलोचना (Criticism of Internationalists) अन्तर्राष्ट्रीयतावादियों का मत है कि निरंकुश एवं निस्सीम राजसत्ता का सिद्धान्त अंतर्राष्ट्रीयता के साथ मेल नहीं खाता क्योंकि प्रत्येक राजसत्ता पर अन्तर्राष्ट्रीय नैतिकता का बंधन होता है। अंतर्राष्ट्रीयतावादियों की इस आलोचना ने असीम राजसत्ता का खण्डन कर बहुलवाद की उन्नति में सहयोग दिया है।

बहुलवादी सिद्धान्त
(Statement of the theory of Pluralism)

१ राजसत्ता नियन्त्रित होनी चाहिए (State Sovereignty must be limited)—बहुलवाद राजसत्ता की असीमता पर अनेकों बंधन लगाना चाहता है। बहुलवादी सिद्धान्त के अनुकूल कोई भी सत्ता यदि स्थाई तथा व्यावहारिक बनना चाहती है तो उसे सीमित होना चाहिए। राज्य व्यक्ति के हित साधन की एक कल्याणकारी संस्था है, अतः वह जनमत अन्तर्राष्ट्रीयता तथा अन्य संघों की सत्ता से कभी भी उच्च एवं महान् नहीं हो सकती जो सदा राज्य की भांति ही बल्कि कभी-कभी उससे भी अधिक सावधानी से व्यक्ति के हितों को देखते रहते हैं। यथार्थ में आज की राजसत्ता तथा समाज का ढांचा कभी भी एकात्मक अथवा केन्द्रीकृत (Centralized) नहीं हो सकता। प्रो० लास्की के शब्दों में "यदि सामाजिक संगठन को पूर्ण बनना है तो उसे संघात्मक होना चाहिए।" (The social organisation, if it wants to be adequate must be federal in character) यथार्थ में राजसत्ता की निस्सीमता के दिन अब समाप्त हो चुके। उसके एकाधिकार को समाज में चुनौती देने वाली बहुत सी संस्थायें हैं, जो प्रभुसत्ता (Sovereignty) की प्रतिस्पर्धा में (Rivalry) किसी भी दृष्टि से कम महत्वपूर्ण नहीं है। सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न राज्य का चित्र आज पुराना हो चुका है और लिण्डसे (Lindsay) के शब्दों में "यदि हम वास्तविकता की ओर देखें तो सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न राज्य (Sovereign state) का सिद्धान्त आज पूर्णतः खण्डित दिखाई देता है। (If we look at the facts, it is clear enough that the the theory of sovereign state has borken down अतः" राजनीति शास्त्र के

के लिए यह परमोपयोगी होगा यदि निस्सीम राजसत्ता के सिद्धान्त को सदैव के लिए त्याग दिया जाय।" (It will be of lasting benefit to political science, if the whole concept of sovereignty ■ surrendered —Laski)

२ प्रत्येक संघ का अपना व्यक्तित्व होता है (Every association has a distinct personality)—व्यक्तिवाद यह मानता है कि राज्य अनेक संघों में से एक संघ मात्र है और जिस प्रकार राज्य का अपना व्यक्तित्व होता है उसी प्रकार प्रत्येक संघ किसी एक निश्चित उद्देश्य को सामने रखकर बनाया जाता है और एक उद्देश्य एवं समान हितों के व्यक्ति ही उसके सदस्य होते हैं अतः उसका अपना व्यक्तित्व है, जो राज्य तथा अन्य संस्थाओं के व्यक्तित्व से भिन्न है। उसकी अपनी इच्छा है, अपनी चेतना है जो कि राज्य तथा उसके सदस्यों से सर्वथा स्वतन्त्र है। बहुलवादी मानते हैं कि संघ राज्य के आश्रय में नहीं जीते किन्तु यदि राज्य न भी हो तो भी उनके कार्य क्षेत्र तथा महत्व में किसी प्रकार का अन्तर नहीं आता। कोल (Cole) के शब्दों में "इन सब संघों के सामूहिक कार्यकलाप, राज्य के कार्यों से कहीं अधिक हैं" (The corporate action of these associations exceeds that of the State) और इन्हीं की सदस्यता से व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व की बहुमुखी प्रगति (Many sided progress) करने का अवसर मिलता है। अपने कार्यों में ये सब संघ एक दूसरे के पूरक (Supplementary) है और व्यक्ति का विकास के लिये सुविधायें प्रदान करते है। उदाहरण के लिए एक व्यक्ति राज्य में रहने से सब कुछ नहीं बन जाता, उसे पूर्णता पाने के लिए चर्च, क्रिकेट क्लब, ट्रेड यूनियन, बार, स्कूल, कालेज, परिवार जाति आदि कितने ही सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक संस्थाओं का सदस्य बनना पड़ता है। राज्य के लिए जो बात यूनानियों ने मानी है वे सारी की सारी बातें बहुलवादी संघ के विषय में भी सत्य मानते हैं और उनका मत है कि संघ राज्य की भांति स्वाभाविक एवं आवश्यक दोनों (Natural and necessary) है। अतः वे संघों को राज्य के साथ समानता के आधार पर रखते है और उन्हें वैधानिक तथा अन्य सब प्रकार के अधिकार भी देना चाहते है।

३ बहुलवाद राज्य विरोधी नहीं है (Pluralism is not antistate)—राज्य की प्रभुसत्ता का तीव्र खण्डन करते हुये भी बहुलवादी विचारक राज्य का नाश नहीं चाहते। ये राजसत्ता की निस्सीमता के विरोधी हैं न कि राज्य के। उनके अनुसार अपनी सर्वशक्तिमान राजसत्ता का वितरण हो जाने के पश्चात् भी राज्य को जीवित रहना चाहिए। एक बहुलवादी समाज में राज्य का महत्व उतना ही होगा जितना कि अन्य संघ तथा संस्थाओं का। राज्य भी एक संघ होगा, जिसका काम अन्य संघों के मध्य होने वाले झगड़ों को सुलझाना होगा। अन्य संघों के मध्य में मध्यस्थ (Mediator) का काम करने पर भी राज्य को उनका स्वामी या उनसे उच्चतर नहीं माना जायगा वरन् उसका स्थान समानों में प्रथम (Primus interpares or first among equals) का होगा। अतः बहुलवाद अराजकतावादी नहीं है।

४ बहुलवादी राज्य और समाज मे अन्तर करते हैं (Distinguish between state and society)—बहुलवादी राज्य और समाज को दो भिन्न भिन्न इकाइयाँ मानते हैं। उनकी दृष्टि मे समाज एक व्यापक शब्द है, जिसके अन्तर्गत हम समस्त संघों तथा राज्य को भी ले सकते हैं किन्तु राज्य एक साधारण संघ है जो इस नाते विशाल समाज का एक अङ्ग कहा जा सकता है। बहुलवादी इस विचार का तीव्र खण्डन करते हैं कि 'राज्य के विरुद्ध, राज्य से परे तथा राज्य से ऊपर कुछ भी नहीं हो सकता' (Nothing above State, Nothing beyond it and nothing beside it)। उनके मतानुसार राज्य के कुछ पृथक निश्चित उद्देश्य नहीं हो सकते। सारे संघ अपनी स्वेच्छा से सहयोग देकर व्यक्ति के विकास तथा समाज की पूर्णता मे योग देते हैं। अतः "राज्य और समाज समवर्ती तथा सहगामी नहीं हो सकते। राज्य तो कुछ निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए समाज के अन्तर्गत कार्य करने वाली एक निश्चित संस्था है।" (State is not coeval or coextensive with Society but built within it as a determinate order for the attainment of specific ends —MacIver)

५ बहुलवाद मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी मानता है (Regards man as a Social being)—बहुलवादी दार्शनिकों की यह मान्यता है कि समाज मनुष्य के लिए आवश्यक है तथा व्यक्ति के अधिकार उसके सामाजिक जीवन से ही उद्‌गमित होते हैं। व्यक्ति समाज का एक अभिन्न अङ्ग है और व्यक्तियों के पारस्परिक सहयोग द्वारा ही संघ को अपने कार्य क्षेत्र मे सफलता प्राप्त होती है। संघ मानव जीवन को अधिक सामाजिक बनाने मे सहायता करते हैं और इस प्रकार सारे अधिकारों को उत्पन्न करने वाले हैं। राज्य इन्हीं अधिकारों का एक रक्षक मात्र है जन्मदाता नहीं।

६ बहुलवाद एक विकेन्द्रीकृत समाज की स्थापना चाहता है (Pluralism likes to establish a decentralized Society)—संघों के व्यक्तित्व में विश्वास करने के कारण बहुलवादी विचारक समाज के एक ऐसे संघात्मक रूप की कल्पना करते हैं, जिसमें सत्ता का विकेन्द्रीकरण (Decentralisation) हो। लास्की के शब्दों में "सत्ता संघात्मक होनी चाहिए (Authority should be federal) और उसे व्यावसायिक प्रतिनिधित्व के आधार पर समाज की विभिन्न संस्थाओं के मध्य विभाजित कर वितरित कर देनी चाहिए। यथार्थ में बहुलवाद किसी आदर्शवादी कल्पना में विश्वास नहीं करता और इसीलिए वह साधारण इच्छा निस्सीम राज्य सत्ता तथा विचारपूर्ण तर्कशीलता आदि के मायामय सिद्धान्तों को केवल कल्पनात्मक कह कर अस्वीकार कर देता है।

७ बहुलवाद एक जनतन्त्रात्मक विचारधारा है (Pluralism is democratic movement)—बहुलवाद निस्सीम राजसत्ता का विरोधी होने के कारण एक सर्वाधिकारवादी (Totalitarian) राज्य के स्थान पर एक प्रजातन्त्रात्मक समाज की स्थापना में विश्वास करता है। सभी संघों में सत्ता का समान वितरण चाहना एवं

जनतंत्रात्मक विचारधारा है और बहुलवाद इसका दृढ समर्थक है। राज्य के कार्य क्षेत्र को संघों के कार्यों को नियमित करने तक सीमित करने के कारण हम इसमें कुछ-कुछ व्यक्तिवाद की झलक भी देखते हैं। किन्तु प्रादेशिक प्रतिनिधित्व के दोषपूर्ण होने के कारण यह व्यावसायिक प्रतिनिधित्व में विश्वास करता है।

बहुलवादी विचारक (Pluralist Thinkers)—आधुनिक युग में बहुलवाद के प्रचारक तथा समर्थकों की कमी नहीं है। २० वीं शताब्दी के लगभग सभी राजनैतिक विचारक जैसे प्रो० लास्की (Laski) ई० बार्कर (E Barker), ए० डी० लिण्डसे (A D Lindsay), मिस फालेट (Miss Follett) गर्के (Gierkie), मेटलैंड (Maitland), डा० फिग्स (Dr Figgs), दुर्खीम (Durkinheim) पाल बंकार (Paul Boncour) आदि बहुलवादी दार्शनिक हैं। बहुलवाद के समर्थन में इन सबने अपने भिन्न भिन्न तर्क उपस्थित किये हैं जिनमें निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं।

प्रो० लास्की (Prof Laski)—अपनी अमर रचना (Grammar of Politics) में प्रो० लास्की ने राज्य सत्ता की निस्सीमता पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। वे उसे संघात्मक मानते हैं और आस्टिन के मत का निर्दयतापूर्वक खण्डन करते हुए लिखते हैं कि "असीमित एवं अनुत्तरदायी राज्य का सिद्धान्त मानवता के हितों से मेल नहीं खाता, और जैसे राजाओं के दैवी अधिकार समाप्त हो गये वैसे ही राज्य का प्रभुसत्ता भी समाप्त हो जायेगी। अतः यह राजनीति विज्ञान की बहुत बड़ी सेवा होगी यदि राज्य सत्ता का सारा विचार ही सदैव के लिए छोड़ दिया जाय।" *(Unlimited and irresponsible sovereignty is incompitable with the interests of humanity The sovereignty of the state will pass as the divine right of kings had its days it will be of lasting benefit to political science if the whole concept of sovereignty is abandoned)* । वे ऐसी सर्व प्रभुत्व सम्पन्न राजसत्ता को एक बेकार विचार मानते हैं। उनके मतानुसार संघों का कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है और उनकी सेवायें राज्य से अधिक श्लाघनीय। किन्तु इतना होते हुए भी लास्की राज्य को अन्य संघों के समान नहीं मानते। दोनों में कुछ अन्तर है और सबसे प्रसिद्ध अन्तर यही है कि राज्य की सदस्यता अनिवार्य है जबकि अन्य संघों की ऐच्छिक। इस प्रकार मानव समाज का एक अनिवार्य संघ होने के कारण लास्की राज्य को समाज में सन्तुलन रखने और सहयोग तथा सहायता देने का कार्य सौंपते हैं।

ई० बार्कर (E Barker)—बार्कर एक कट्टर बहुलवादी नहीं हैं। वे संघों के वास्तविक व्यक्तित्व की धारणा को अस्वीकार करते हैं। उनका मत है कि समाज में राज्य की उत्पत्ति से पहले संघों का अस्तित्व था और आज के समाज में उनका एक संस्थानिक स्वरूप (Corporate character) और वक्तव्य है। उनका कथन है कि "राज्य को जीवन की एक सामान्य और व्यापक व्यवस्था के रूप में संघों के अपने साथ होने वाले सम्बन्धों, संघों के पारस्परिक सम्बन्धों तथा संघों एवं उनके सदस्यों के

सम्बन्धों को संतुलित रखना आवश्यक है। (The state has a general and embracing scheme of life, must necessarily adjust the relations of the associations to itself, to other associations and to their own members) क्योंकि राज्य ऐसा नहीं करेगा तो समाज का सतुलन बिगड़ जायगा और व्यक्ति सघो के निरंकुशता के शिकार बन जायेंगे। अतः बार्कर समाज पर भी राज्य की सत्ता को स्वीकार करते हुए उसे कुछ उच्चतर एवं अधिक शक्तिशाली सघ मानते हैं। उनकी परिभाषा के अनुसार 'समाज असम्बन्धित व्यक्तियों का समुदाय न होकर, कुछ ऐसे व्यक्तियों का समुदाय है जो पहिले से ही कुछ सघो की आधीनता में सगठित हैं। प्रत्येक सघ का अपना एक सामान्य जीवन है जो कि महत्तर एवं विशालतर उद्देश्य की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करता है।" Society is no longer a sand heap of individuals, all equal and unrelated though leading a common life but an association of individuals already united in various groups each with its common life in a further and higher group for a more embracing purpose)

गर्के तथा मेटलैंड (Gierke and Maitland)—इन दोनों विचारकों का विश्वास है कि सघो की अपनी स्वतन्त्र इच्छा व चेतना (Consciousness) होती है जो उनके सदस्यों की इच्छा अथवा चेतना से सर्वथा भिन्न है। वे मानते हैं कि अपने इसी पृथक तथा स्वतन्त्र व्यक्तित्व के कारण सस्थाओं का देश के कानून आदि के निर्माण में एक बहुत महत्वपूर्ण भाग होता है। अपने इस तर्क के आधार पर वे राज्य को ही एक मात्र कानून निर्मात्री सस्था नहीं मानते। किन्तु राज्य की सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता (Absolute sovereignty) को अस्वीकार करते हुए भी वे राज्य को एक स्थाई सस्था होने के कारण कानूनी दृष्टि से एक अधिक महत्वपूर्ण स्थान देते हैं। लास्की की भांति इनका भी मत है कि राज्य को अन्य सघो के मध्य सन्तुलन स्थापित करने का कार्य करना चाहिए। सघो के व्यक्तित्व, महत्व तथा स्वाधीनता आदि के समर्थकों में सर्व प्रथम होने के कारण ये दोनों विचारक बहुलवाद के जन्मदाताओं में से हैं।

डिग्वे और क्रैबे (Duguit and Krabbe)—ये दोनों क्रमशः फ्रैंच तथा डच विचारक थे। फ्रांस की उन्नीसवीं शताब्दी की अव्यवस्थित राजनीति तथा सिन्डीकलिज्म आदि क्रान्तियों ने डिग्वे के राज सत्ता सम्बन्धी विचारों को प्रभावित किया और बहुत शीघ्र ही वह इस निष्कर्ष पर पहुंच गया कि 'राज सत्ता का विचार एक अर्थहीन तथा निस्सार कल्पना है।" (The concept of sovereignty is a fiction, without value and without reality) वह एक व्यावहारिक दार्शनिक (Practical philosopher) था और इसीलिए उसका मत है कि "सब प्रभुत्व सम्पन्न राज्य या तो मर चुका है अथवा मरणासन्न है।' (Sovereign state is dead or is on the point of dying)। दृष्टि में 'राज सत्ता का विचार एक अति, प्राचीन

रहस्यात्मक झमेला है, जिसकी उत्पत्ति मिथ्या है, जो इतिहास द्वारा असत्य सिद्ध किया जा चुका है तथा जो सब प्रकार से देखे जाने पर एक अर्थहीन, निरर्थक तथा भयङ्कर कल्पना है (Sovereignty) is an antiquated mystical and theological idea, false in its origin, further falsified by history and all things considered, useless, barren and dangerous) वह राज्य के व्यक्तित्व को एक वास्तविकता नहीं मानता और उसकी सत्ता पर कितने ही कानूनी बंधन लगाता है। वह प्रादेशिक विकेन्द्रीकरण (Territorial decentralization) तथा व्यावसायिक संघात्मकता (Professional federalism) में विश्वास करता है। क्रैबे कानून के विषय में डिग्वि से कुछ भिन्न विचार रखता है। उसकी मान्यता है कि "राज्य कानूनों का निर्माता है और कानून ही वास्तव में प्रभु सत्ताधारी है।" (State is the creator of law and law alone is sovereign)। राजसत्ता के निस्सीम एवं सर्व शक्तिशाली रूप का विरोधी होने के कारण वह यह चाहता है कि "राजसत्ता जैसा विचार राजनीति शास्त्र से बिलकुल निकाल दिया जाना चाहिए।" (The whole notion of sovereignty should be expunged from political theory)

जी० डी० एच० कोल (G D H Cole)—कोल उत्पादनकर्ता तथा उपभोक्ताओं के संघों की मिली जुली सत्ता का समर्थक है। उसका मत है कि उत्पादनकर्ता (Producer) तथा उपभोक्ता (Consumers) अपनी-अपनी धारा सभायें चुनें और उनके द्वारा पास किए जाने वाले कानूनों का एक निष्पक्ष न्यायपालिका निरीक्षण करे। दोनों धारा सभाओं के आपसी झगड़े एक संयुक्त कमेटी द्वारा सुलझाए जायें और इस कमेटी के आधीन पुलिस आदि संस्थाएं रहें जिससे यह आवश्यकतानुसार बल का प्रयोग भी कर सके। अपने राजनीतिक जीवन के आरम्भ में कोल उग्र क्रान्तिकारी नहीं था और इसीलिए राजसत्ता के विषय में भी उसके विचार उदार थे, किन्तु अपने प्रौढ़ दर्शन में वह राजसत्ता का विरोधी दिखाई देता है और उसे अन्य संघों की सत्ता के समान ही मानता है।

डा० लिंडसे (Dr Lindsay)—आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के सुमान्य प्रोफेसर डा० लिंडसे का मत है कि "राज्य, समाज में पाए जाने वाले अनेक संस्थानिक व्यक्तित्व एवं इच्छायुक्त समाज सेवी संघों के समान एक संघ है, और उसका उन संस्थाओं पर तभी नियन्त्रण हो सकता है जितने नियन्त्रण रखने का अधिकार उसे उसके नागरिक देने को तैयार हों।" (The state is one of the associations, which possess a corporate personality and will of their own and are occupied with the performance of various public services The state can have control over these associations within it only if and so far as the citizens are prepared to give it such power) राज्य की अनिवार्य सदस्यता तथा सार्वभौमिकता (Comprehensiveness)

को स्वीकार करते हुए भी लिन्डसे इसे राजसत्ता की निस्सीमता के सिद्धान्त की स्वीकृति के लिए उपयुक्त तर्क नहीं मानता। उनका यह अन्तिम निर्णय है कि "यदि तथ्यों की ओर देखा जाय तो यह स्पष्ट है कि सर्वप्रभुत्व सम्पन्न राज्य का सिद्धान्त खंडित हो चुका है।" (If we look at the facts, it is clear that the theory of sovereign state has broken down)

मैकाइवर (MacIver)—अपनी रचना "आधुनिक राज्य" (Modern state) में मैकाइवर ने बहुलवाद का समर्थन किया। उनका कथन है कि 'अपने कुछ अद्वितीय कर्तव्यों के होते हुए भी समाज के अन्य अनेक संघों में से राज्य भी एक संघ है जिसकी सीमायें अधिकार तथा उत्तरदायित्व सभी निश्चित हैं।" (State is one of the associations among many within the Community, although it exercises functions of unique character It has definite limits definite powers and definite responsibilities) । उनके मतानुसार, राज्य संघों का निर्माता नहीं है बल्कि संघ भी राज्य की भाँति समाज की उसी भूमि की उपज है।" (As native to the soil of the Society as the State itself) हमारे हजारों सांस्कृतिक, आर्थिक आदि संघों के आंशिक स्वार्थ भी सार्वजनिक स्वार्थ के एक अङ्ग हैं। अतः राज्य का कर्तव्य केवल इतना है कि वह "सामाजिक सम्बन्धों की समूची व्यवस्था में एकता स्थापित करे। (The function of the State is to give a form of unity to the whole system of social relationship)

इसी प्रकार डर्कहीम, पाल बान्कर, (P Boncour) फिग्स आदि कुछ अन्य विचारकों ने भी बहुलवाद का पक्ष लिया है। इन सब लेखकों ने एक ही उद्देश्य का विभिन्न तर्कों के आधार पर बड़े सुन्दर ढङ्ग से प्रतिपादन किया है।

बहुलवाद का मूल्यांकन (Evaluation of pluralist Thought)—राजसत्ता के अनियन्त्रित स्वरूप तथा संघों के महत्व का एक अतिरंजित चित्र (Exaggerated picture) उपस्थित करने पर भी बहुलवादी दर्शन में बहुत कुछ सत्यांश छिपा हुआ है। गेटेल (Gettel) के शब्दों में 'बहुलवादी हठवादी विधानवादिता तथा आस्टीनियन राजसत्ता सिद्धान्त के विरुद्ध एक बहुत ही सामयिक प्रतिक्रिया थी।' (A welcome and timely protest against the rigid and dogmatic legalism and the Austenian theory of sovereignty) इसी प्रकार संघ व्यवस्था तथा संघात्मक समाज की आवश्यकता जो कि वर्तमान औद्योगिक युग की आवश्यकतायें थीं उनको समुचित महत्व देने के कारण बहुलवाद एक ऐसी विचारधारा कही जा सकती है जो आज के समाज के लिए पूर्णतः समीचीन (Up to date) है। राज्यत्तीय निरंकुशता के तीव्र खण्डन तथा संघात्मक व्यवस्था का मण्डन करने के कारण बहुलवाद आज की एक बहुत उपयोगी तथा प्रभावपूर्ण (Forceful) आधुनिक विचारधारा मानी जाती है, जिसका प्रभाव किसी एक देश अथवा समाज तक सीमित न होकर विश्वव्यापी (Universal) है। अपनी पुस्तक 'The New State' में मिस फालेट (Miss

Follett) ने बहुलवाद का मूल्यांकन करते हुए उसके निम्नलिखित गुणों अथवा विशेषताओं की ओर संकेत किया है।

१ **बहुलवाद ने राज्य की प्रधानता का एकाधिकार समाप्त कर दिया (Pluralism puts an end of the monopoly of State Supremacy)**—बहुलवाद के उदय से पूर्व राज्य के दैवी अधिकार (*Divine Rights*) अथवा सर्व शक्तिशालिता का सिद्धान्त एक सर्वमान्य तथा अत्यधिक प्रचलित मत था। हीगेलवादी सरकारें इस सिद्धान्त की आड़ में परम निरंकुश तथा अत्याचारी हो गई थीं। इस सिद्धान्त ने सर्वप्रथम राज्य की इस निस्सीमता का खण्डन कर उसे एक साधारण संघ की तुलना में ला खड़ा किया। इसके अनुसार राज्य ही एकमात्र प्रभुत्व सम्पन्न संस्था नहीं रही किन्तु उसे अनेकों में से एक कर दिया गया और उसकी परम शक्तिशालिता तथा निस्सीम सत्ता का एकाधिकार छिन गया। अतः बहुलवाद के प्रचलन से निरंकुश राज्यों की अत्याचारिता समाप्त हो गई और इस प्रकार मिस फालेट के शब्दों में "बहुलवादियों ने वर्तमान राज्य की महत्ता का बुलबुला फोड़ दिया।" (The pluralists pricked the bubble of the present state s right to supremacy)।

२ **बहुलवाद संघात्मक जीवन की विविधता का स्वागत करता है (*Pluralism* welcomes the varieties of group life)**—आधुनिक युग से पूर्व की गत शताब्दियाँ राजतन्त्र की निरंकुशता के युग होने के कारण राज्य की महानता के गीत गाती हैं। राजकीय अत्याचार तथा शोषण के नीचे कराहने वाले उस तत्कालीन समाज में हम एक नीरस एकात्मकता (Dull uniformity) दिखाई देती है। बहुलवाद संघ जीवन की महत्ता तथा उपयोगिता पर प्रकाश डालता हुआ मानता है कि मानव जीवन की बहुमुखी प्रगति तथा विकास केवल एक राज्य में रहने से नहीं बल्कि अनेकों तथा नाना प्रकार के संघों की सदस्यता द्वारा ही सम्भव है। यदि हम निष्पक्षता से देखें तो संघों द्वारा की जाने वाली व्यक्ति की सेवा को उपेक्षणीय नहीं मान सकते। संघ मानव जीवन में विचित्रता लाकर उसकी सम्पन्नता को बढ़ाते हैं। अतः बहुलवाद *उनके महत्व का मूल्यांकन कर इस सत्य बात पर बल देता है।*

३ **बहुलवाद मानता है कि राज्य मनुष्य का सच्चा प्रतिनिधि नहीं है (Pluralism believes that State is not a *true* representative of *people*)**—बहुलवादियों द्वारा संघों के व्यक्तित्व को स्वीकार करने से यह स्वाभाविक परिणाम निकलता है कि वे राज्य को व्यक्ति के हितों का सच्चा प्रतिनिधि नहीं मानते। यथार्थ में यह सच भी है कि बीसवीं शताब्दी के विभिन्न रुचि तथा नाना प्रकार के स्वार्थों वाले मानव का प्रतिनिधित्व कोई भी एक संस्था नहीं कर सकती। राज्य चाहे कितनी ही अनिवार्य संस्था हो, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वह मनुष्य के व्यक्तित्व के सब प्रकार के सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, राजनैतिक आदि पक्षों का ठीक-ठीक प्रतिनिधित्व कर सकती है। सत्य तो यह है कि मनुष्य की विभिन्न रुचि तथा स्वार्थों

को सुरक्षित रखने के लिए उसके जीवन पर अनेक सघों का शासन होना चाहिए जो अपने अपने उद्देश्य के अनुसार उसके व्यक्तित्व तथा हितों की रक्षा करें। अतः आदर्शवादियों की आलोचना करते हुए बहुलवादी यह ठीक कहते हैं कि राज्य मानव व्यक्तित्व के सब पक्षों का सच्चा प्रतिनिधि कभी नहीं हो सकता।

४ बहुलवाद एक समीचीन सिद्धान्त है **(Pluralism is an uptodate theory)**—बहुलवाद के समर्थकों का मत है बहुलवाद एक ऐसी विचारधारा है जो २०वीं शताब्दी के समाज के लिए सर्वथा उपयुक्त तथा समीचीन है। राज्य की एकसत्तात्मकता आज जर्जर हो चुकी, वह आज के जटिल व चेतनामय औद्योगिक समाज पर लागू नहीं हो सकती। आर्थिक दृष्टि से आज का समाज इतना विषम तथा समस्यापूर्ण है कि सारे काम यदि राज्य पर छोड़ दिये जायें तो कुछ भी नहीं हो सकता। इस औद्योगिक समाज को अपने हितों तथा स्वार्थों की रक्षा के लिए सघवादी व्यवस्था का आश्रय लेना ही पड़ेगा। फिर सभ्यता के विकास के साथ साथ मनुष्य का रुचि वैचित्र्य भी बढ़ेगा अतः समाज में जितने अधिक सघ होंगे तथा सत्ता का जितना अधिक विकेन्द्रीकरण होगा समाज उतनी ही शीघ्रता से उन्नति की ओर आगे बढ़ेगा। अतः बहुलवादी यह तर्क पूर्णतः सत्य मालूम पड़ता है कि आज के समाज का कल्याण बहुलवादी व्यवस्था से ही हो सकता है और बहुलवाद एक अत्यन्त व्यावहारिक (Practical) तथा समीचीन (Up to date) सिद्धान्त है।

५ बहुलवाद मनुष्य की आन्तरिक चेतना पर बल देता है **(Pluralism emphasises upon the internal conscience of man)**—बहुलवादी विचारधारा के आगमन से पूर्व समाज का ढांचा एकात्मक था और विशाल जनसमूह पर एक निरकुश सत्ता का शासन होता था। मिस फॉलेट के अनुसार "राज्य का यह रूप एक असगठित झुण्ड का रूप था।" व्यक्तियों में अपने हित पहिचानने की कोई चेतना नहीं थी, जो कि उन्हें एक सूत्र में सगठित करती है। बहुलवाद सघात्मक व्यवस्था का समर्थक होते हुए भी मानता है कि व्यक्ति में अपने हितों को पहिचानने की एक चेतना होती है और इसी कारण राज्य को चाहिए कि सारा उत्तरदायित्व अपने कधों पर न लेकर व्यक्तियों को इच्छानुकूल सघों में सगठित हो जाने दे और इस प्रकार स्वेच्छा से अपने व्यक्तित्व का विकास करने दें। बहुलवादियों की यह मान्यता कुछ कुछ व्यक्तिवादियों से मिलती जुलती है, जो नैतिक दृष्टि से मानते हैं कि व्यक्ति का हित इसी में है कि वह आत्मनिर्भर (Self reliant) बनना सीखे। इस प्रकार मनुष्य की आन्तरिक चेतना में विश्वास करने के कारण बहुलवाद "जनता के असगठित झुण्ड रूपी जीवन की समाप्ति का श्रीगणेश करता है।"

६ बहुलवादी स्थानीय जीवन का पुनर्जीवन चाहते हैं **(Pluralism desires the rejuvenation of local life)**—बहुलवाद केन्द्रीकृत सत्ता (Centralised power) का तीव्रतम विरोधी है। उनके अनुसार विकेन्द्रीकृत सत्ता ही समाज के सदस्यों को आत्मनिर्भर बनने का अवसर देगी। बहुलवादियों की मान्यता है कि एक

स्थान पर केन्द्रीभूत सत्ता व्यवस्था में शिथिलता उत्पन्न करती है तथा राष्ट्र कुशलता को हानि पहुँचाती है। अतः वे चाहते हैं कि समाज में विकेन्द्रीकरण हो तथा स्थानीय जीवन को पुनः सरस तथा सुन्दर बनाया जाय। यथार्थ में यह सच भी है कि स्थानीय जीवन के उत्थान के बिना समाज का वास्तविक उत्थान नहीं होता और बहुलवाद के घोर से घोर आलोचक को भी एक बार यह मानना होगा कि बहुलवादी इस तर्क में पर्याप्त सत्य है।

७ व्यवसायिक प्रतिनिधित्व अधिक लोकतन्त्रात्मक है (Professional representation is more democratic)—बहुलवादी विचारकों का कथन है कि यदि प्रतिनिधित्व कभी वास्तविक तथा सच्चा हो सकता है तो वह तभी जब वह व्यवसाय के आधार पर हो। किन्हीं भौगोलिक सीमाओं में रहने वाला कोई भी व्यक्ति चाहे वह कितना ही लोकप्रिय (Popular) हो अपने निर्वाचन क्षेत्र (Constituency) में सभी लोगों के सब प्रकार के हितों को न पहिचान सकता है और न उनकी रक्षा ही कर सकता है। किन्तु यदि इसके विपरीत, अध्यापक, वकील, डाक्टर, कृषक, व्यापारी मजदूर आदि भिन्न २ व्यवसायों के लोग अपने-अपने प्रतिनिधि चुनें तो वे लोग अपने सहव्यवसायी साथियों (Colleagues) के हितों को अधिक अच्छी तरह से समझकर उनकी रक्षा के लिए लड़ सकते हैं। बहुलवाद ने प्रजातन्त्र के इस ज्वलन्त दुर्गुण के स्थान पर एक अधिक सुगम व सरल मार्ग सुझाया है, जिसके कारण इस सिद्धान्त के प्रचलन को काफी बल मिला है।

बहुलवाद की आलोचना
(Criticism of Pluralism)

१ बहुलवाद का तार्किक परिणाम अराजकतावाद है (The logical conclusion of Pluralism is Anarchism)—बहुलवादी राजसत्ता का विभाजन चाहते हैं और उसका अर्थ है उसका अन्त। अतः बहुलवादी व्यवस्था में राज्य का पद एक सामान्य संघ जैसा होगा, जिसके कारण समाज में व्यवस्था स्थिर करने वाली कोई उच्च संस्था नहीं होगी और सर्वत्र एक अराजकता तथा अव्यवस्था फैल जायगी। इस तर्क के उत्तर में बहुलवादी लोग कहते हैं कि राज्य एक साधारण तथा अनेकों में एक संस्था होते हुए भी अन्य संघों में एक सन्तुलन स्थापित कर समाज में सामञ्जस्य बनाये रखेगी। बहुलवादी यह तर्क मान्य नहीं हो सकता क्योंकि राज्य के सन्तुलन रखने तथा निरीक्षण करने आदि कर्तव्यों से ये निष्कर्ष निकलते हैं कि —

(१) राज्य चाहे तो सार्वजनिक हित के विरुद्ध कार्य करने वाली किसी भी संस्था के अस्तित्व को समाप्त कर दे।

(२) राज्य चाहे तो सार्वजनिक हित में किसी भी संस्था को उसके सदस्यों पर कर (tax) इत्यादि लगाने से मना कर दें।

(३) राज्य यदि उचित समझे तो छोटी संस्थाओं को बड़ी संस्थाओं की प्रतियोगिता में खड़े होने के लिए कुछ प्रोत्साहन दे।

इन सब का यह अर्थ निकलता है कि राज्य का संतुलन बनाये रखने तथा निरीक्षण आदि के कार्य देने का अर्थ उसे फिर से चरम तथा अन्तिम वैधानिक अधिकार सत्ता देना है। अतः जो बहुलवादी राज्य को यह अधिकार देते हैं वे घूम फिर कर फिर उसी स्थान पर पहुंच जाते हैं जहां से वे चले थे, किन्तु यदि वे उसे यह अधिकार नहीं देते हैं तो बहुलवाद का अर्थ अराजकता हो जाता है।

२ **बहुलवादी व्यवस्था में संघों में आपसी झगड़े होंगे। (Groups are bound to clash with one another under Pluralist order)**— बहुलवाद के अनुसार समाज में अनेकों संघ ही एक साथ समानान्तर मार्गों पर चलते हुए अपने-अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कार्य करेंगे, जिसके फलस्वरूप उनके कार्य क्षेत्र एक दूसरे को आच्छादित कर लेंगे (Overlapping of functions)। क्योंकि मनुष्य जीवन को विभिन्न वर्गों में नहीं बांटा जा सकता, इसी कारण से मनुष्य जीवन के भिन्न पृथक पृथक पहलुओं के लिए कौन-कौन संघ कहां तक कार्य करेंगे इसकी कोई निश्चित सीमा नहीं खेंची जा सकती। उदाहरण के लिए मनुष्य के सांस्कृतिक जीवन (Cultural life) की उन्नति के लिए शिक्षा संस्थाओं, मठ मन्दिरों, राज्य, प्रान्तीय विभिन्न संघों आदि को कहां तक कितना कितना कार्य करना चाहिए इसकी कोई विभाजक रेखा (Demarcating line) नहीं है। अतः ऐसी स्थिति में राज्य के अभाव में संघ अपने अपने कार्य क्षेत्र के निर्धारण के लिए झगड़ेंगे, जिनके कारण राज्य की सत्ता पहले से भी अधिक बलशाली हो जायेगी।

३ **बहुलवादी व्यवस्था में राज्य और भी अधिक निरंकुश होगा (State will be more absolute in Pluralistic Society**—आलोचकों का मत है कि बहुलवादी समाज में राज्य की महत्ता अथवा सत्ता किसी भी प्रकार कम नहीं होगी। वे बहुलवादियों पर आरोप लगाते हैं कि उनका दृष्टि आत्मविरोधी (Self Contradictory) है। वे एक ओर राज्य को अनेकों में से एक संघ मानते हैं और फिर थोड़ा सा आगे चल कर उसे संतुलन तथा निरीक्षण (Supervision) आदि के कार्य सौंप कर अन्य संघों से महत्तर मानने लगते हैं। इस प्रकार वे किसी निश्चित निष्कर्ष पर नहीं पहुँचते यथार्थ में देखा जाय तो वे राज्य की असीम सत्ता के विरोधी होते हुए भी उसकी परम शक्तिशालिता को ज्यों की त्यों बनाये रखते हैं। संघों के मध्य संतुलन रखने का कार्य जो बहुलवादी राज्य को सौंपना चाहते हैं एक इतना महत्वपूर्ण कार्य है, जो राज्य को सब संघों से उच्च बनाने के साथ साथ उन पर नियन्त्रण रखने का अधिकार भी देता है और इस कारण प्रो० बार्कर के शब्दों में बहुलवादी समाज में 'यदि संघों की सत्ता बढ़ेगी, तो राज्य को सम्भवतः अपनी हानि में भी अधिक लाभ होगा क्योंकि उसे संतुलन स्थापना की ओर भी अधिक महत्वपूर्ण तथा गम्भीरतर समस्या का सामना करना पड़ेगा।' (If the groups are destined to gain

new ground the State will also gain, perhaps more than it loses because it will be forced to deal with graver and weightier problem of adjustment) जिसके फलस्वरूप बहुलवादी राज्य और भी अधिक शक्तिशाली तथा निस्सीम होगा।

४ बहुलवाद काल्पनिक एकात्मवादी शत्रु पर आक्रमण करता है। *(Puralism assualts an imaginary monastic enemy)*—कुछ आलोचकों का मत है कि जिस निरकुश राजसत्ता पर बहुलवाद आक्रमण करता है वह हीगेल को छोड़ कर राज सत्ता के अन्य किसी समर्थक के विचारों में नहीं पाई जाती। बोदाँ (Bodin), हाब्स (Hobbes), रूसो (Rousseau) आदि सभी विचारक राजसत्ता पर कुछ न कुछ नियन्त्रण मानते हैं और उनमें से किसी का भी यह दावा नहीं कि "राजसत्ता की अवज्ञा करना या उसको चुनौती देना या उसकी आलोचना करना अथवा विरोध करना, अनैतिक अधार्मिक, तर्क हीन असामाजिक अथवा अव्यावहारिक ही है।" *(To criticize or challenge to disobey or resist state authority is not necessarily immoral, unethical, irrational antisocial or impractical)*—Coker—इन सब विचारकों की केवल यही धारणा है कि राज्य का कोई प्रतिद्वन्द्वी (Rival) नहीं होता और वह अपनी निश्चित सीमा में सभी सघों आदि से उच्च होता है। बहुलवादी विचारक भी इस तथ्य को स्वीकार करते हैं अत आलोचकों का मत है कि जिस एकात्मवादी शत्रु पर बहुलवादी आक्रमण करते हैं वह कल्पना की वस्तु है और राजसत्ता के प्रमुख विचारक बोदाँ, हाब्स आदि ने भी उसे पहिले से ही अस्वीकार कर दिया था।

५ राज्य सघों का सघ नहीं हो सकता (State can not be an Association of Associations)—बहुलवाद के कुछ आलोचकों ने डा० लिण्डसे (Dr Lindsay) के इस मत की आलोचना की है कि "राज्य अनिवार्य सस्था तथा सर्वगामी सत्ता के आधार पर ही प्रभुत्व सम्पन्न राज्य नहीं हो सकता। वे मानते हैं कि लिण्डसे का यह मत तर्कपूर्ण नहीं है। मिस फालेट की मान्यता है कि राज्य एक सयुक्तकारी शक्ति (Unifying force) है और अन्य सघ उसकी आधीनता में कार्य करते हैं। अत उसे सघों का सघ कहना सर्वथा अनुचित है। उनके शब्दों में "राज्य को सघों का समवाय नहीं कहा जा सकता क्योंकि कोई भी सघ या सघ समूह व्यक्ति की पूर्णता को नहीं समेट सकता और एक आदर्श राज्य व्यक्ति की पूर्णता की माँग करता है। नागरिकता एक व्यावसायिक सघ की सदस्यता से बड़ी चीज है। राजनीति में हम एक परिपूर्ण मनुष्य की आवश्यकता होती है।—राज्य [illegible] को अपने भीतर सभी स्वार्थों का समावेश करना चाहिए। राज्य को चाहिए कि वह हमारी अनेक निष्ठाओं को एक [illegible] [illegible]। हमारी आत्मा का निवास राज्य में है।" (The State can not be composed of groups, because no group or any number of groups can contain the whole of me and the ideal state

demands the whole of me My citizenship is bigger than any membership in a vocational group We want the whole map in Politics—The true state must gather up every interest within itself It must take our loyalties and find how it can make them one The home of my soul is in the State) इस प्रकार मिस फालेट राज्य को एकता का एक साधन मानती है, जो व्यक्ति के सम्यक व्यक्तित्व का उपयोग करता है। राज्य उसका माध्यम नहीं है बल्कि वह प्रत्यक्ष रूप से अपने सारे काम करता है। Miss Follet जैसी बहुलवादी लेखिका के ये विचार निश्चय ही अपूर्ण हैं।

६ बहुलवादियों का उद्देश्य स्पष्ट नहीं है (Pluralists are not clear regarding their goal)—प्रो० आशीर्वादम् के मतानुसार 'बहुलवादी यह बिलकुल स्पष्ट नहीं कर पाते कि वह क्या चाहते हैं।' विभिन्न बहुलवादी विचारकों ने राज्य के स्थान तथा उद्देश्य के विषय में पृथक पृथक मत दिये हैं। अब प्रश्न यह है यदि बहुलवादी समाज में राज्य एक साधारण संघ बना दिया जाता है तो क्या उसकी कर लगाने की शक्ति तथा अनिवार्य नागरिकता आदि भी समाप्त कर दी जायगी। निस्सन्देह बहुलवादियों से इस विचार पर कोई आपत्ति नहीं कर सकता कि स्थानीय स्वायत्त शासन (Local Self Government) तथा उत्पादन आदि कार्यों में संघों को अधिक से अधिक भाग मिले पर "राजकीय सत्ता के सिद्धान्त को विकृत होने से बचाने के लिए तथा नीति कार्य चयन आदि का अधिक विकेन्द्रित तथा बहुरूपिणी बनाने के प्रस्ताव की स्वीकृति के लिए राजसत्ता के सिद्धान्त का त्याग करना न तो आवश्यक ही है और न उपादेय ही।"—(कोकर)। (It seems neither necessary nor essential to abandon the doctrine of state sovereignty in order either to resist perversions of the doctrine or to promote the adoption of proposals for greater diversification and decentralization in the organisation for the initiation and execution of state policy) । वैयाथ में सच्ची राजसत्ता और व्यवसायवाद में कोई विरोध नहीं है। गटेल के शब्दों में 'जैसे ही राज्य और संघों के बीच के झगड़े तय हो जायेंगे—बस ही बहुलवाद समाप्त हो जायगा।" तात्पर्य यह कि बहुलवादी राज्य के अस्तित्व स्वरूप, कर्तव्य, स्थान आदि के विषय में न एक मत है और न स्पष्ट।

७ बहुलवादी राज्य को एक साधारण संघ मानने की भूल करते हैं (Pluralists wrongly treat state as an ordinary group)—यथार्थ में अपने स्वभाव से ही राज्य साधारण संघों से भिन्न है। वह अन्य संघों से मिलते जुलते होते हुए भी उनमें एक नहीं है। उसका स्थान एक विशिष्ट स्थान है और उसके अभाव में समाज कभी भी भली भांति तथा सुगमता से अपना कार्य नहीं कर सकता। अतः आलोचकों का मत है कि सभी संघ एक सी कोटि के नहीं हो सकते। प्रो० गानर के शब्दों में "नाना वर्गों, संघर्षों तथा संघों को अपनी सीमाओं में सीमित रखने के कारण राज्य एक महत्वपूर्ण सेवा करता है और इस कारण विरोधी स्वार्थों में सामंजस्य स्थापित

करने के कारण उसका कार्य एक निर्णायक अथवा न्यायकर्ता का है।" (State renders import and service in keeping within proper limits the classes and struggles between computing groups and thereby performs the role of referee or an umpire in reconciling their conflicting interests)

८ बहुलवादी राज्य का अन्त नहीं चाहते (Do not want to end state)—चूंकि राज्य के अभाव में संघ अपना कार्य अपने आप सुचारु रूप से नहीं कर सकते और संघों की अराजकता (Anarchy of association) की आशंका रहती है, अतः बहुलवादी राज्य का अस्तित्व स्थिर रखना चाहते हैं। आलोचकों का मत है कि राज्य के अस्तित्व को स्वीकार कर बहुलवादी अपने उद्देश्य का खंडन करते हैं।

९ बहुलवाद देशभक्ति की भावना का विनाशक है (Pluralism is antipatriotic)—संघों तथा राज्य के महत्व को कम करने के कारण बहुलवाद नागरिकों की देशभक्ति की भावना का नष्ट करता है। इस मत अथवा सर्वाधिकारवादी राज्यों के नागरिक प्रायः अधिक देशभक्त होते हैं। अपने क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय होने के कारण भी बहुलवाद राष्ट्रीय भावना के लिए एक घातक विचारधारा है।

१० सारे संघ समान नहीं हो सकते (All Associations are not equal)—राज्य के अन्तर्गत भिन्न भिन्न प्रकार के उद्देश्यों को लेकर कार्य करने वाले संघ महत्व तथा अधिकार और क्षमता में समान नहीं हो सकते। उदाहरण के लिए एक ट्रेड यूनियन तथा ग्राम सभा का कार्य, महत्व, तथा अधिकार सत्ता समान नहीं हो सकती। बहुलवादी इस तथ्य की उपेक्षा करते हैं और सभी संघों को समान अधिकार देना चाहते हैं, जो सर्वथा अनुपयुक्त है।

इस प्रकार आलोचकों की इस तीव्र आलोचना के बीच में भी राज्य का बहुलवादी सिद्धान्त अभी मरा नहीं है और न इसके मरने की कोई आशा ही है। इसके विपरीत संघों के महत्व पर उचित बल देने के कारण यह आज के युग का सर्व सम्मत सिद्धान्त है। उपसंहार के रूप में यहाँ सेबाइन (Sabine) का यह वाक्य उद्धृत किया जा सकता है कि "मैं यथा सम्भव एकात्मवादी बनने का अधिकार सुरक्षित रखता हूँ किन्तु जहाँ आवश्यक हो बहुलवादी बनने को तैयार हूँ। (I reserve the right to be a monist when I can and a pluralist, when I must)

गाँधीवाद
(Gandhism)

किसी विचारक ने सच कहा है कि अपने मूल में मनुष्य तथा मनुष्य जाति की सारी समस्याय नैतिक समस्याय (Moral Problems) हैं। यदि मनुष्य आज सही अर्थों में मनुष्य बन जाय, तथा अपने सारे राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक कार्यों को करते समय अपनी अन्तरात्मा की पुकार को सुनकर कदम उठाय, तो संसार अथवा समाज में दुःख संकट तथा समस्या जैसी कोई चीज ही नही रह सकती। एक स्वस्थ राजनैतिक समाज तथा विवेकशील मनुष्य के प्रत्येक काय के पीछे एक नैतिक बल अथवा प्रेरणा होनी चाहिए क्योंकि जिस क्षण मनुष्य अपनी अन्तरात्मा की सचेतन आवाज को स्वार्थ के वशीभूत होकर कुचल देता है उसी क्षण में उसमें पशुत्व अंगडाई लेने लगता है और किसी भी समस्या के प्रति उसका सम्पूर्ण दृष्टिकोण दूषित हो जाता है। अतः इस प्रकार सामाजिक अथवा समस्या की पृष्ठ भूमि में एक नैतिक समस्या होनी है और जब तक इस नैतिक समस्या का सही व उचित समाधान नही मिलता, तब तक किसी भी सामाजिक रोग का जड से इलाज नही हो सकता। दूसरे शब्दों में राजनीति और नीति के एक ही सिक्के के दो पहलू हैं और यदि एक भाग खोटा है तो दूसरा भाग कभी भी खरा नही हो सकता। राजनीति के सारे दुर्गुण वास्तव में राजनैतिक व्यवस्थाओं से उत्पन्न नहीं हुआ करते, बल्कि उनका स्थान तो मनुष्य का अन्तःकरण है और जब तक यह अन्तःकरण गन्दा है सारी राजनीति आवश्यक रूप से गन्दी रहेगी। महात्मा गाधी का समस्त दर्शन एव वाङ्मय में राजनीति तथा समाज के प्रति उनका नैतिक दृष्टिकोण है।

गाधीवाद के मूल सिद्धान्त (Fundamental principles of Gandhism)—एक निश्चित दर्शन के रूप में आध्यात्मिक एकता (Spiritual unity) का दूसरा नाम गाधीवाद है। गाधीजी अपने समय के ही प्रतिनिधि नही बल्कि भारतीय संत परम्परा के भी सच्चे उत्तराधिकारी थे। यही कारण है कि एक ओर उनके दर्शन में भारतीय अध्यात्मवाद पूर्णतः मूर्तिमान हुआ है तो दूसरी ओर पाश्चात्य दृष्टिकोण की भी कहीं-कहीं हलकी सी झलक देखने को मिलती है। गाधीजी सच्चे अर्थों में एक विशुद्ध भारतीय थे और राजनीति तथा भौतिक समृद्धि का यत्र तत्र उल्लेख करते हुए भी प्रधानतः उनका दर्शन सत्य और अहिंसा के विश्वास पर आधारित है। इन सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तो को ही वे ईश्वर का दूसरा रूप मानते थे और उनका विश्वास

था कि आत्मिक बल तथा नैतिक भावना पर ही यह सारा विश्व ब्रह्माण्ड टिका हुआ है। गांधीजी सत्य और अहिंसा के पुजारी होने के साथ साथ एक घोर आस्तिक भी थे। उनके द्वारा मानवता को दिया गया सन्देश "प्रेम और सद्भावना" केवल दो शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है। दूसरी ओर दलित मानवता के त्राता (Liberator) की उदारता के कारण उनकी दृष्टि में मानव मानव के मूल्य में कोई अन्तर नहीं था। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के साथ साथ अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति, उनकी विचारधारा का मूलमन्त्र थी और केवल सन्मार्गों द्वारा ही एक उचित उद्देश्य की प्राप्ति करना उनका ध्येय व पुनीत आदर्श था। वे एक व्यावहारिक आदर्शवादी (Practical idealist) थे अथवा यों कहिये कि उनका जीवन एक तपोनिष्ठ साधक अथवा कर्मयोगी का जीवन था जिसमें किये गये व्यावहारिक अनुभव ही उनकी शिक्षाओं तथा उपदेशों के विषय हैं। उनके सिद्धान्त केवल सिद्धान्तों अथवा आदर्शों के लिए नहीं हैं बल्कि भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का सक्रिय नेतृत्व करने के कारण हम उनके सिद्धान्तों को उनके व्यावहारिक जीवन में ही खोजना चाहिए। उनके भाषण, लेख तथा पुस्तकें आदि व्यक्तिगत अनुभवों के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हैं। उन्होंने अपनी तथा राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान उसी समय तथा उसी रूप में किया है जिस रूप में वे उनके सामने आती थीं। यद्यपि सामाजिक प्रगति का विधान बताते हुए वे व्यक्ति से आरम्भ करते हैं किन्तु वे कोई एक विशुद्ध दार्शनिक नहीं थे। स्वयं उन्होंने कहा है 'मैं दूसरों को अपना जीवन दर्शन समझाने में सर्वथा अयोग्य हूँ। मैं तो केवल उस दर्शन का जिसमें विश्वास रखता हूँ अभ्यास में लाने की योग्यता मात्र रखता हूँ।' (I have not the qualifications for teaching my philosophy of life. I have bare qualifications for practising the philosophy I belive)।

प्राचीन भारतीय धर्म ग्रन्थ (Religious books of ancient India)—गांधी जी यद्यपि संस्कृत के विद्वान् नही थे, किन्तु अपने देश की प्राचीन संस्कृति से अनुराग होने के कारण, उन्हे हमारे धर्म ग्रन्थो का अच्छा ज्ञान था। पातजलि का 'योगसूत्र' उन्होने सन् १९०३ मे ही जोहासबर्ग जेल मे पढ डाला था। इसके अतिरिक्त रामायण और महाभारत जैसे लोकप्रिय महाकाव्यो पर भी उनकी अटूट आस्था थी। उपनिषदो का भी उन्होने अध्ययन किया था और इस सब विस्तृत अध्ययन का प्रभाव उनके 'अहिंसा सिद्धान्त पर भली भाति देखा जा सकता है। हमारे प्राचीन धर्म ग्रन्थो मे आये हुए ये उपदेश कि "सोऽहम्" तथा 'तत्त्वमसि" मनुष्य मात्र के प्रति ही नही बल्कि समस्त जीव मात्र के प्रति प्रेम, सहानुभूति व अहिंसा मय दृष्टिकोण रखने की शिक्षा देते है। योगसूत्र के पाच सूत्रो मे अहिंसा पहला सूत्र है। कहते हैं कि रामायण की रचना ही महर्षि बाल्मीकि के एक आर्त क्रौंच के प्रति अहिंसा व दया जाग्रत होने पर हुई थी तथा महाभारत का सारा शान्तिपर्व तथा वनपर्व इसी अहिंसा का उपदेश देता है। गांधीवादी विचारधारा भी इसी से अपनी मूल प्रेरणा ग्रहण करती है, और धर्म ग्रन्थो का यह व्यापक प्रभाव उसे पूर्णत आच्छादित किये है।

गीता—धर्म ग्रन्थो के साथ साथ ही, किन्तु उनसे पृथक गीता का यहा उल्लेख करना अनुचित न होगा। गांधीजी इस ग्रन्थ रत्न का नित्यप्रति पाठ किया करते थे और यदि यह कहा जाय कि गीता उनके जीवन की आध्यात्मिक प्रसंग पुस्तक (Spiritual reference Book) थी तो कोई अत्युक्ति नही होगी। समस्त धार्मिक तथा दार्शनिक पुस्तको मे वे इसीसे सबसे अधिक प्रभावित हुए थे और इसी मे आये हुए सत्य, अहिंसा, इन्द्रिय निग्रह, कर्मयोग निष्काम कर्म आदि उनके व्यावहारिक जीवन के आदर्श तथा अंग थे। गीता का यह अमर व अमूल्य सदेश उनके दर्शन की पक्ति-पक्ति मे प्रतिध्वनित हो रहा है।

कुरान—गांधीजी मे धार्मिक कट्टरपन नही था। अपने व्यक्तिगत जीवन मे विशुद्ध हिन्दू होते हुए भी वे राजनीति को धर्म से अलग मानते थे और कुरान तथा अन्य मुस्लिम पुस्तको का यथोचित सम्मान भी करते थे। उन्होंने इनका गहरा अध्ययन किया था और उनकी यह दृढ धारणा थी कि हिन्दू, जैन, बौद्ध आदि धर्मों की भांति ही मुस्लिम धर्म भी प्रेम, सत्य व भाईचारे के सिद्धान्तो पर आधारित है। इस प्रकार गांधीजी ने अपने अहिंसा सिद्धान्त की जड़ मुस्लिम धर्म मे भी पाई और कुरान उनकी दृष्टि मे सदैव एक महत्वपूर्ण व समादर रचना रही।

चीनी कन्फूशियनवाद और जैन तथा बौद्ध धर्म—चीनी कन्फूशियनवाद तथा तविज्म (Taoism) भारतवर्ष के जैन तथा बौद्ध धर्मो से बहुत कुछ मिलते जुलते है। इन दोनो की भांति ये दोनो भी अहिंसावादी सिद्धान्तो पर आधारित हैं। चीन की परम्परायें सुदीर्घ काल से अहिंसात्मक रही है तथा वहाँ पर भी अहिंसात्मक व असहयोगवादी क्रांति तथा के अनेकों उदाहरण मिलते है। जुडाज्मि (Judaism) का यह

सिद्धात है कि "यदि तुम्हारा शत्रु भूखा है तो उसे खाने को रोटी दो। यदि वह प्यासा है तो उसे पीने को पानी दो। यदि तुम्हारा शत्रु असफल होता है तो हँसो नही, और यदि वह ठोकर खाकर गिरता है तो तुम्हारे हृदय को प्रसन्न नहीं होना चाहिए।" कुछ लोगों का विश्वास है, ये अहिंसा तथा प्रेम आदि की शिक्षा देने वाले विचार ही गांधीवाद के प्रमुख प्रेरणा स्रोत हैं।

बाइबिल—गीता की भांति गांधीजी की दूसरी परम प्रिय पुस्तक बाइबिल थी। जैसस क्राइस्ट के वे अनन्य भक्त थे और उनकी शिक्षाओं का उन्होंने जीवन भर पालन किया। बाइबिल के अध्ययन द्वारा गांधीजी को अपने जीवन में एक नवीन प्रेरणा मिली और कहते है कि उसके (Sermon on the mount) नामक अध्याय को पढ कर तो उनकी आत्मा एक दम जाग सी उठी और उन्हें जीवन के उन शाश्वत मूल्यों (Constant values of life) का ज्ञान हो गया, जिनके आधार पर उन्होंने अपने सत्याग्रह और अहिंसा सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। इसी 'सरमन' में उन्हें गीता के निष्काम कर्म और दर्शन का पुन आभास मिला और उनकी यह धारणा दृढ बन गई कि बाइबिल मे आया हुआ (Kingdom of God) यदि इस दुनिया मे स्थापित हो सकता है तो केवल सत्य, अहिंसा, प्रेम तथा नैतिक बल द्वारा हृदय परिवर्तन से ही हो सकता है। प्राचीन धर्म ग्रन्थो की भांति बाइबिल ने भी उन्हे विश्व बन्धुत्व व दैवी परिवार (Divine family) को साकार बनाने की चेतना प्रदान की।

क्वेकर्स (Quakers)—गांधीजी की विचारधारा पर पड़ने वाले प्रभाव की चर्चा करते हुए हम क्वेकर्स के सिद्धान्तो का यहाँ उल्लेख किये बिना नही रह सकते। क्वेकर मत अथवा समाज की स्थापना का श्रेय जार्ज फाक्स, बर्कले तथा पेन (Penn) आदि कुछ विचारकों को है जिन्होंने "क्वेकर शान्तिवाद" (Quaker Pacifism) का नारा बुलन्द किया था। इन लोगो का मत था कि मनुष्य के सारे कार्य उसके अन्तःकरण की चेतना द्वारा प्रभावित होने चाहिए। अपने व्यावहारिक जीवन में गांधीजी की भी यही मान्यता थी।

रस्किन (Ruskin)—अंग्रेजी साहित्य के अध्ययन मे गांधीजी, जिस महान् साहित्यकार से सबसे अधिक प्रभावित हुए थे वे थे जान रस्किन। इनकी अमर व अमूल्य रचनायें 'Unto this last" और "Crown of Wild Olives" उनके परम प्रिय ग्रन्थ थे। Unto this last मे रस्किन ने इस बात का प्रतिपादन किया है कि समाज के प्रत्येक सदस्य को समाज की सामूहिक पूंजी पर समान नैतिक अधिकार है और पूंजीपति का यह नैतिक कर्त्तव्य है कि वह आर्थिक मजदूरी का वितरण करते समय नैतिक दृष्टि से विचार करे। इसी नैतिक सिद्धान्त तथा इसके द्वारा सामूहिक हित (Collective good) की प्राप्ति के लिए व्यक्तिगत हित पर बल देना, इस पुस्तक में रस्किन का यह उद्देश्य है। गांधीजी इसे पढ कर इस विचार से इतने अधिक अभिभूत

हुए कि उन्होंने इसे सिद्धान्त रूप में ही स्वीकार नहीं किया, बल्कि सर्वोदय समाज की स्थापना द्वारा उन्होंने इसे एक व्यावहारिक वस्तु बनाने के लिए भी अधिक परिश्रम किया। इसके अतिरिक्त रस्किन की आत्मा की महानता में विश्वास (Faith in the Supremacy of the Spirit) तथा मनुष्य स्वभाव को पवित्र, उच्च व उदात्त मानना आदि बातें भी अपनी मान्यताओं के अनुकूल लगीं। चारित्रिक उच्चता व सामाजिक हित को राजनैतिक स्वतन्त्रता से अधिक महत्वपूर्ण मानने में भी वे रस्किन के अनुयायी हैं। राजनीति के प्रति आध्यात्मिक दृष्टिकोण रखना उन्होंने इसी महान साहित्यकार से लिया है और इस कारण हम कह सकते हैं कि रस्किन गांधीजी के आध्यात्मिक पूर्वजों (Spiritual anscestors) में से थे।

टालस्टाय (L Tolstoy)—रस्किन के समान ही गांधीजी पर अपना अवर्णनीय प्रभाव डालने वाले सुप्रसिद्ध रूसी दार्शनिक अराजकतावादी टालस्टाय हैं, जिन्हें गांधीजी अपना गुरु माना करते थे। टालस्टाय परम अहिंसावादी थे और क्राइस्ट की शिक्षाओं का सार बतलाते हुए, उन्होंने दुखी मानवता के लिए एक ही मार्ग बतलाया है और वह है प्रेम का। उनका यह विश्वास था कि एक व्यक्ति का किसी दूसरे पर अपने विचारों का थोपना मानसिक हिंसा (Mental Violence) है। मनुष्य का नैतिक उद्धार उनके दर्शन का केन्द्र बिन्दु है और प्रेम, असहयोग तथा अहिंसा को ही वे एक मात्र, सर्वशक्तिशाली तथा अप्रतिहत अस्त्र मानते हैं। उनके इन विचारों ने गांधीजी को अत्यन्त प्रभावित किया था और ऐसी कितनी ही अन्य समानतायें इन दोनों के विचारों में ढूंढी जा सकती हैं।

इन उपरोक्त प्रभावों के अतिरिक्त अन्य कितने ही शान्तिवादी (Pacifist) विचारकों जैसे विचमोन (Wichmaun), रोलण्ड होल्स्ट (Roland Holst), ए० हक्सले (A Huxley) तथा गेराल्ड हर्ड (Gerald Heard) आदि के विचारों तथा गांधीजी की मान्यताओं में पर्याप्त साम्य है। ये सभी लोग साधन तथा साध्य (Means and Ends) दोनों की पवित्रता में विश्वास करते हैं और ऐसा मानते हैं कि यदि किसी उद्देश्य को प्राप्त करने के साधन भ्रष्ट हैं तो वह पवित्र से पवित्र उद्देश्य भी अपनी पवित्रता से गिर जायगा। इस प्रकार गांधीय विचारधारा को प्रभावित करने वाले यदि हम सारे विचारों को देखें तो हमें विदित होगा कि गांधीवाद, कोई नई या अद्भुत विचारधारा नहीं है बल्कि जैसा कि श्री किशोरीलाल का कथन है "वह एक ऐसा दर्पण है, जिसमें विश्व के सारे कोनों के सन्तों की शिक्षायें आकर सम्मिलित हो गई हैं और जिनकी उन्होंने अपनी व्याख्या दी है।—वास्तव में वह शाश्वत सत्य की पुनर्व्याख्या के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है—उन्होंने अपनी प्रेरणा विभिन्न बुद्धि कृपा से ली है और उसके आधार पर एक नूतन तथा अद्भुत का सृजन किया है।" (Gandhiji's philosophy is a synthesis of all the teaching of sages from every corner of the globe to which he applied his own interpretation In fact it is nothing but a reinterpretation of the

abiding and permanent truth He drew his inspiration from different wells of thought and wisdom and built up quite a new and unique philosophy —Bisaria)

गांधीवाद क्या है (What is Gandhism)

वैसे तो गांधीवाद क्या है, इस प्रश्न का कोई निश्चित उत्तर नहीं दिया जा सकता। सरल, सीधे तथा मोटे-मोटे सिद्धान्तों में विश्वास रखते हुए भी, इसकी कोई निश्चित परिभाषा आज तक नहीं बन सकी है तथा गांधीजी पर आज तक जो साहित्य लिखा गया है वह इसे और भी अधिक जटिल बना देता है। वर्तमान-युग में चारों ओर गांधीजी की दुहाई दी जाती है तथा स्थान स्थान पर उनके शब्दों तथा विचारों को उद्धृत किया जाता है किन्तु वास्तव में बहुत कम लोग ऐसे हैं, जो उनके सिद्धान्तों का सही अर्थ समझ पाये हैं तथा उन्हें प्रयोग में लाने का प्रयत्न करते हैं इसका कारण यही है कि उनका दर्शन सरल होते हुए भी व्यापक (Comprehensive) तथा स्पष्ट (Vivid) होते हुए भी बहुमार्गी (Versatile) व विभिन्नतामय (Varied) है जिसे किसी एक राजनैतिक दर्शन के रूप में प्रस्तुत करना बड़ा कठिन है। फिर भी गांधीजी के राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा नैतिक आदर्शों की विवेचना सरलता से सम्भव है और इन्हीं को सामूहिक रूप से हम गांधीवाद कह सकते हैं।

१ गांधीवाद अनेकों विचारों का मिश्रण है (*Gandhism is a Synthesis of Several Thoughts*)—गांधीजी अपने जीवन में कभी किसी एक मत अथवा सम्प्रदाय के कट्टर अनुयायी नहीं रहे। उन्हें जो बात सत्य तथा अपनी आत्मा के अनुकूल लगती थी उसे अपनाने में वे कभी नहीं हिचकते थे, यही कारण है कि वे सभी धर्मों, वादों तथा विचारों की जो अच्छी-अच्छी बातें हैं उन्हें मानते थे और समाजवादी, उदारतावादी (Liberal), साम्यवादी अथवा अराजकतावादी किसी भी एक से सम्बन्धित नहीं किये जा सकते। अपने व्यक्तिगत जीवन में एक ओर जब कि वे घोर आस्तिक तथा परम्परावादी होने के कारण दकियानूसी (Conservative) कहे जा सकते हैं तो दूसरी ओर सार्वजनिक सभाओं में भाषण करते हुए उनसे अधिक उदारतावादी (Liberal) का उदाहरण हमें नहीं मिलता। इसी प्रकार यद्यपि उत्पादन के साधनों के राष्ट्रीयकरण के विरोधी होने के कारण उन्हें समाजवादी नहीं कहा जा सकता है किन्तु यदि समाजवाद की आधारशिला यह है कि अपनी वास्तविक आवश्यकताओं से अधिक उपभोग करने वाला गरीबों का शोषक है तो गांधीजी से बड़ा कोई समाजवादी नहीं हो सकता। मार्क्स की बहुत सी मान्यताओं को मानते हुए भी वे मार्क्सवादी नहीं थे। वर्ग युद्ध का सिद्धान्त, इतिहास की आर्थिक व्याख्या तथा हिंसात्मक क्रान्ति उन्हें किसी भी कीमत पर मान्य नहीं थी। किन्तु अपने व्यावहारिक जीवन में सबको अपनी योग्यता से आवश्यकतानुसार वितरण पर आधार वर्गहीन समाज की स्थापना करने वालों में उनका नाम सर्व प्रथम लिया जाना चाहिए। इसी तरह यदि अराजकता का अर्थ एक विकेन्द्रित समाज व्यवस्था (Decentralized

Social System) व भाई चारे तथा प्रेम में संयुक्त स्वाधीन सामाजिक इकाइयों की कल्पना है तो हमें उन्हें एक पक्का अराजकतावादी कहते हुए नहीं हिचकना चाहिए, यद्यपि अपने व्यावहारिक जीवन में वे राज्य के परम भक्त तथा कानून के निष्ठावान आज्ञापालक थे। अतः हम कह सकते हैं कि गांधीवाद कोई एक निश्चित वाद अथवा विचार धारा नहीं है, क्योंकि इसके प्रणेता स्वयं गांधीजी किसी एक विचार अथवा मत के अवलम्बी नहीं थे। प्रत्येक बात को उसके गुणों की श्रेष्ठता के आधार पर स्वीकार करने के कारण अनुदारतावाद (Conservatism), उदारतावाद (Libralism) समाजवाद (Socialism), साम्यवाद (Communism) अराजकतावाद तथा राष्ट्रीयता वाद सभी आकर इसमें सम्मिलित दिखाई देते हैं।

२. गांधीवाद नैतिक पवित्रता पर बल देता है (Gandhism stresses the moral purity of the Individual)—अपने विशुद्ध अर्थों में गांधीवाद राजनैतिक विचारधारा होने की अपेक्षा एक नैतिक जीवन दर्शन (Ethical philosophy of life) अधिक है प्रत्येक कार्य को करते समय गांधीजी अपने अन्तःकरण से अवश्य पूछा करते थे। और अन्तरात्मा का अनुमोदन मिलने पर ही उसके लिए कदम उठाते थे। उनका विचार था कि मनुष्य की सारी राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक समस्याएँ, यदि मूल रूप में समझी जायें तो नैतिक समस्यायें हैं। जब तक व्यक्ति चरित्रहीन, दम्भी तथा स्वार्थी है तब तक कोई भी विचार धारा अथवा वाद सत्पथ नहीं दिखला सकता। अतः गांधीजी की विचार धारा मनुष्य के पवित्र आचरण व हृदय की शुद्धता पर बहुत अधिक बल देती है अथवा दूसरे शब्दों में हम यों कह सकते हैं कि राजनैतिक व्यवस्था तथा समस्याओं को एक नये नैतिक दृष्टिकोण से देखना ही, गांधीवाद का दृढ़ आधार मिला है।

३. गांधीवाद साधन और साध्य दोनों की श्रेष्ठता चाहता है (Gandhism believes in the holiness of ends as well as means)—गांधीजी का दर्शन चूँकि एक नैतिक दर्शन है अतः वह साधन और साध्य दोनों की पवित्रता का उपदेश देता है। गांधीजी कहा करते थे कि साधन और साध्य (Means and ends) एक दूसरे से चोली दामन की तरह सम्बद्ध हैं और एक की अपवित्रता दूसरे को भी भ्रष्ट कर देती है। अतः यदि आपका साध्य उत्तम है तो उसे प्राप्त करने के साधन भी उतने ही उत्तम ढूँढो अन्यथा बुरे साधनों द्वारा प्राप्त हुए उसके अवगुण उसकी उत्तमता को क्षीण कर देंगे। साधन (Means) की पवित्रता पर बल देते हुए गांधीजी ने यहाँ तक कहा है कि यदि आपको अपने पवित्र साध्य के लिए उतने ही पवित्र साधन नहीं मिलते तो उस साध्य को भी छोड़ दो (Forgo thy holy end if thy means are unholy) गांधीजी ने स्वयं अपने जीवन भर इस स्वर्ण सिद्धान्त का पालन किया। उनके सामने देश की स्वतन्त्रता प्राप्ति का पुनीत ध्येय था, किन्तु उस पवित्र उद्देश्य को पाने के लिए उन्होंने कभी क्रान्तिकारी (Revolutionary) उग्र हिंसात्मक साधनों का प्रयोग नहीं किया। उनके जीवन में कई बार ऐसे अवसर आये हैं जबकि

abiding and permanent truth He drew his inspiration from different wells of thought and wisdom and built up quite a new and unique philosophy —Bisaria)

गांधीवाद क्या है (What is Gandhism)

वैसे तो गांधीवाद क्या है, इस प्रश्न का कोई निश्चित उत्तर नहीं दिया जा सकता। सरल, सीधे तथा मोटे मोटे सिद्धान्तों में विश्वास रखते हुए भी, इसकी कोई निश्चित परिभाषा आज तक नहीं बन सकी है तथा गांधीजी पर आज तक जो साहित्य लिखा गया है वह इसे और भी अधिक जटिल बना देता है। वर्तमान युग में चारों ओर गांधीजी की दुहाई दी जाती है तथा स्थान स्थान पर उनके शब्दों तथा विचारों को उद्धृत किया जाता है किन्तु वास्तव में बहुत कम लोग ऐसे हैं, जो उनके सिद्धान्तों का सही अर्थ समझ पाये है तथा उन्हें प्रयोग में लाने का प्रयत्न करते हैं इसका कारण यही है कि उनका दर्शन सरल होते हुए भी व्यापक (Comprehensive) तथा स्पष्ट (Vivid) होते हुए भी बहुमार्गी (Versatile) व विभिन्नतामय (Varied) है जिसे किसी एक राजनैतिक दर्शन के रूप में प्रस्तुत करना बड़ा कठिन है। फिर भी गांधीजी के राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा नैतिक आदर्शों की विवेचना सरलता से सम्भव है और इन्हीं को सामूहिक रूप से हम गांधीवाद कह सकते हैं।

१ **गांधीवाद अनेकों विचारों का मिश्रण है (*Gandhism is a Synthesis of Several Thoughts*)**—गांधीजी अपने जीवन में कभी किसी एक मत अथवा सम्प्रदाय के कट्टर अनुयायी नहीं रहे। उन्हें जो बात सत्य तथा अपनी आत्मा के अनुकूल लगती थी उसे अपनाने मे वे कभी नहीं हिचकते थे, यही कारण है कि वे सभी धर्मों, वादों तथा विचारों की जो अच्छी-अच्छी बातें हैं उन्हें मानते थे और समाजवादी उदारतावादी (Liberal), साम्यवादी अथवा अराजकतावादी किसी भी एक से सम्बोधित नहीं किये जा सकते। अपने व्यक्तिगत जीवन में एक ओर जब कि वे घोर आस्तिक तथा परम्परावादी होने के कारण दकियानूसी (Conservative) कहे जा सकते हैं तो दूसरी ओर सार्वजनिक सभाओं में भाषण करते हुए उनसे अधिक उदारतावादी (Liberal) का उदाहरण हमें नहीं मिलता। इसी प्रकार यद्यपि उत्पादन के साधनों के राष्ट्रीयकरण के विरोधी होने के कारण उन्हें समाजवादी नहीं कहा जा सकता है किन्तु यदि समाजवाद की आधारशिला यह है कि अपनी वास्तविक आवश्यकताओं से अधिक उपभोग करने वाला गरीबों का शोषक है तो गांधीजी से बड़ा कोई समाजवादी नहीं हो सकता। मार्क्स की बहुत सी मान्यताओं को मानते हुए भी वे मार्क्सवादी नहीं थे। वर्ग युद्ध का सिद्धान्त, इतिहास की आर्थिक व्याख्या तथा हिंसात्मक क्रान्ति उन्हें किसी भी कीमत पर मान्य नहीं थी। किन्तु अपने व्यवहारिक जीवन में हरएक को अपनी योग्यता से आवश्यकतानुसार वितरण पर आधारित वर्गहीन समाज की स्थापना करने वालों में उनका नाम सबसे प्रथम लिया जाना चाहिए। इसी तरह यदि अराजकता का अर्थ एक विकेन्द्रित समाज व्यवस्था (Decentralized

Socrtl System) व भाई चारे तथा प्रेम मे संयुक्त स्वाधीन सामाजिक इकाइयों की कल्पना है तो हमें उन्हे एक पक्का अराजकतावादी कहते हुए नही हिचकना चाहिए, यद्यपि अपने व्यावहारिक जीवन मे वे राज्य के परम भक्त तथा कानून के निष्ठावान आज्ञापालक थे। अत हम कह सकते है कि गांधीवाद कोई एक निश्चित वाद अथवा विचार वर्ग नही है, क्योंकि इसके प्रणेता स्वय गांधीजी किसी एक विचार अथवा मत के अवलम्बी नही थे। प्रत्येक बात को उसके गुणों की श्रेष्ठता के आधार पर स्वीकार करने के कारण अनुदारतावाद (Conservatism) उदारतावाद (Libralism), समाजवाद (Socialism), साम्यवाद (Communism), अराजकतावाद तथा राष्ट्रीयतावाद सभी और इसमे सम्मिलित दिखाई देते हैं।

२. गांधीवाद नैतिक पवित्रता पर बल देता है (Gandhism stresses the moral purity of the Individual)—अपने विशुद्ध अर्थो मे गांधीवाद राजनैतिक विचारवर्ग होने की अपेक्षा एक नैतिक जीवन दर्शन (Ethical philosophy of life) अधिक है प्रत्यक कार्य को करते समय गांधीजी अपने अन्त करण से अवश्य पूछा करते थे। और अन्तरात्मा का अनुमोदन मिलने पर ही उसके लिए कदम उठाते थे। उनका विचार था कि मनुष्य की सारी राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक समस्याये यदि मूल रूप मे समझी जायें तो नैतिक समस्यायें हैं। जब तक व्यक्ति चरित्रहीन, दम्भी तथा स्वार्थी है तब तक कोई भी विचार धारा अथवा वाद सफल नही दिखला सकता। अत गांधीजी की विचार धारा मनुष्य के पवित्र आचरण व हृदय की शुद्धता पर बहुत अधिक बल देती है अथवा दूसरे शब्दों मे हम यों कह सकते हैं कि राजनैतिक व्यवस्था तथा समस्याओं को एक नये नैतिक दृष्टिकोण से देखना ही, गांधीवाद का दृढ आधार शिला है।

३ गांधीवाद साधन और साध्य दोनो की श्रेष्ठता चाहता है (Gandhism believes in the holiness of ends as well as means)—गांधीजी का दर्शन चूंकि एक नैतिक दर्शन है अत वह साधन और साध्य दोनो की पवित्रता का उपदेश देता है। गांधीजी कहा करते थे कि साधन और साध्य (Means and ends) एक दूसरे से चोली दामन की तरह सम्बद्ध हैं और एक की अपवित्रता दूसरे को भी भ्रष्ट कर देती है। अत यदि आपका साध्य उत्तम है तो उसे प्राप्त करने के साधन भी उतने ही उत्तम ढूंढो अन्यथा बुरे साधनों द्वारा प्राप्त हुए उसके अवगुण उसकी उत्तमता को फीका कर देंगे। साधन (Means) की पवित्रता पर बल देते हुए गांधीजी ने यहां तक कहा है कि यदि आपके अपने पवित्र साध्य के लिए उतने ही पवित्र साधन नही मिलते तो उस साध्य को भी छोड दो (Forgo thy holy end if thy means are unholy) गांधीजी ने स्वय अपने जीवन भर इस स्वर्ण सिद्धान्त का पालन किया। उनके सामने देश की स्वतन्त्रता प्राप्ति का पुनीत ध्येय था, किन्तु इस पवित्र उद्देश्य को पाने के लिए उन्होंने कभी क्रान्तिकारी (Revolutionary) उग्र हिंसात्मक साधनों का प्रयोग नही किया। उनके जीवन में कई बार ऐसे अवसर आये हैं जबकि

अपने अनुयायी द्वारा गलत साधन अपनाए पर ही उन्हें अपने पवित्र उद्देश्य को छोड़ना पड़ा था। गांधीवाद का यही सबसे बड़ा अन्तर उसे मार्क्सवाद से भिन्न करता है। मार्क्स एक वर्गहीन समाज के सर्व प्रशंसित आदर्शों की प्राप्ति के लिये रक्तरंजित क्रान्ति का उपदेश देता है किन्तु गांधीजी मानते हैं कि खून की एक बूंद गिरने ही जिस कीमत पर वह वर्गहीन समाज मिलता है वह बहुत मँहगी है इस कारण साधन और साध्य के बीच बहुत सामञ्जस्य और पवित्रता आनी चाहिये।

अहिंसा महत्वपूर्ण होते हुए भी सत्य की तुलना में गौण (Secondary) है क्योंकि उन्हीं के शब्दों में "अहिंसा रूपी रत्न तो सत्य पर चिन्तन करने तथा खोजने में प्राप्त हुआ है।" (The level of nonviolence was discovered during the search for contemplation of truth)। फिर भी अहिंसा में गांधीजी का दृढ़ विश्वास था और उनकी सम्मति में अहिंसा की निम्नलिखित तीन अवस्थायें हो सकती हैं—

(अ) जाग्रत अहिंसा (Enlightened non violence)—अथवा बहादुर व्यक्तियों की अहिंसा, जो किसी दुःखपूर्ण आवश्यकता से पैदा न हो, बल्कि अन्तरात्मा की पुकार जिसे स्वाभाविक रूप से जन्म दे। ऐसी अहिंसा केवल राजनैतिक क्षेत्र में ही नहीं अपितु जीवन के सभी क्षेत्रों में दृढ़ता के साथ पाली जानी चाहिए और इसी में असम्भव को सम्भव में बदलने की अपार व अमित शक्ति निहित है।

(ब) औचित्य अहिंसा (Reasonable non violence)—इस प्रकार अहिंसा वह है जो जीवन के किसी क्षेत्र में किसी विशेष आवश्यकता के पड़ने पर औचित्यानुसार (According to expendiency) एक नीति रूप में अपनाई जाय। यह अहिंसा दुर्बल व निष्क्रिय (Passive) व्यक्तियों की अहिंसा है जो किसी समस्या के सर पर आ जाने पर धारण करते हैं। यह इसलिए उत्पन्न नहीं होती कि इसको पालन करने वाला अहिंसा में विश्वास रखता है बल्कि इसलिए कि वह अपनी दुर्बलता के कारण हिंसा को नहीं अपना सकता। अतः यह प्रथम प्रकार की अहिंसा जितनी प्रभावशाली नहीं है, फिर भी यदि इसका पालन दृढ़ता से किया जाय तो सफलता निश्चित है।

(स) भीरुओं की अहिंसा (Non violence of the cowards)—कई बार डरपोक तथा कायर लोग भी अहिंसा का दम भरते हैं। गांधीजी ऐसे लोगों की अहिंसा को अहिंसा न मानकर 'निष्क्रिय हिंसा" (Passive violence) मानते हैं। उनका विश्वास था कि "कायरता और अहिंसा, पानी और आग की भाँति एक साथ नहीं रह सकते।' अहिंसा वीरों का धर्म है और अपनी कायरता को अहिंसा की ओट में छुपाना एक निन्दनीय व घृणित कर्म है। गांधीजी कहा करते थे कि अगर हमारे हृदय में हिंसा भरी है तो हिंसक होना इससे अधिक अच्छा है कि हम अपनी नपुंसकता को ढँकने के लिए अहिंसा का आवरण पहनें।" (It is better to be violent if there is violence in our breasts than to put on the cloak of non violence to cover impotence)

गाधी ी अहिंसा के दृढ भक्त व पुजारी ही नही, एक दृढ निष्ठावान् समर्थक भी थे। उनकी यह प्रबल धारणा थी कि हिंसा मे सफलता जैसी चीज नही है, जबकि अहिंसा एक ऐसा अप्रतिहत तथा अपमेय अस्त्र है जो न कभी आज तक खाली गया है न जायगा। यह केवल कुटियो मे रहने वाले दीन दुबल सन्यासियो का ही धर्म नही है, बल्कि एक ऐसा व्यापक सिद्धान्त है जिसे प्रत्येक मानव अपने दैनिक व्यावहारिक जीवन मे सफलता से प्रयोग मे ला सकता है। यह आत्मिक बल का प्रतीक है (Symbol of spiritual force) जिसके विरोध मे भौतिक बल चाहे कुछ समय के लिए विजयी हो जाय किन्तु अन्तत चारो खाने चित्त आकर पडेगा। हिंसा केवल कुछ ही लोगो के लिए सम्भव है और वह भी अस्वाभाविक रूप से जबकि अहिंसा अपने पूर्ण रूप मे समझ मे आये बिना ही प्रत्येक जन साधारण का स्वाभाविक धर्म है क्योंकि "यह हम जैसे जीवो का शाश्वत कानून है।" (It is the eternal law of our species) अहिंसा सिद्धान्त सरल होते हुए भी व्यवहार मे सबसे कठिन व दुस्तर दर्शन है क्योंकि इसका अर्थ केवल हिंसा से दूर रहना ही नही बल्कि जान बूझ कर निष्ठा तथा भक्ति के साथ अहिंसा की नीति का पालन करना है। इस तरह यह नकारात्मक (Negative) ही नही बल्कि एक धनात्मक (Positive) सिद्धान्त है और इसका पालन करना गाधीजी प्रत्येक मानव मात्र का पुनीत व सर्वोच्च कर्तव्य बतलाते हैं।

५ गांधीवाद विकेन्द्रित आर्थिक व्यवस्था चाहता है (Gandhism stands for decentralized economy)—गाधीवाद केवल राजनैतिक विचारधारा ही नही बल्कि समाज के लिए एक आर्थिक व्यवस्था की भी रूप रेखा प्रस्तुत करता है। गाधी ी स्वदेशी व कुटीर व्यवसाय (Cottage Industries) के समर्थक थे और यूरोप के औद्योगिक इतिहास का अध्ययन कर वे इस निर्णय पर पहुचे थ कि भारत जैसे देश म जहा जन सख्या बहुत अधिक बडे-बडे कल कारखानो की स्थापना बेरोजगारी व बेकारी को बढाने के अतिरिक्त और कुछ नही करेगी। बड उद्योगो म पैदा होने वाला उत्पादन दरिद्र कारीगरो का निर्माण कर देगा और मजदूर और मालिक के झगडो से समाज मे अत्यन्त अशान्ति फैल जायगी। देश की कृषि अवनत हो जायगी और कच्चे माल (Raw material) के बिना अन्त मे वे बडे उद्योग भी विनष्ट हो जायेंगे। किन्तु इसका अर्थ यह नही है कि गाधीवाद चर्खा भक्ति या लगोटी लगाने की सीख देने वाली आर्थिक व्यवस्था (Lion cloth economy) है। गाधीवाद औद्योगीकरण का विरोधी होते हुए भी मशीन के प्रयोग की अनुमति केवल वही तक देता है जहा तक कि वह सारे समाज के हित मे बाधक नही है। गाधीजी यह मानते थे कि आज की औद्योगिक व्यवस्था केन्द्रित व्यवस्था (Centralized) है, जिसम पूजी का एकत्रीकरण होता है और पूजीपति पनपते हैं। यह आर्थिक होड सारे देश को खोखला व कगाल बना देती है और अन्त मे समाज एक भयानक विनाश के गढे म जा गिरता है। ऐसी स्थिति से देश को बचाने के लिए गाधीवाद का उपदेश है कि आर्थिक व्यवस्था

विकेन्द्रित हो। समाज छोटी छोटी इकाइयों में बंटा हुआ हो और रोज की आवश्यकता की सारी चीजें स्थानीय कुटीर व्यवसायों से प्राप्त हो जायें। प्राय छोटे धन्धे गांवों में इतनी उन्नत दशा में हों कि प्रत्येक कारीगर व देश के सशक्त नौजवान को काम मिल सके व अपने देश की पूंजी अपने ही परिश्रम से बढ़ा सकें। इस प्रकार गांधीवाद अर्थ व्यवस्था केन्द्रित व औद्योगिक (Centralized and Industrial) व्यवस्था के दुर्गुणों के विरुद्ध चेतावनी देकर एक ऐसी विकेन्द्रित व्यवस्था चाहता है जिसमें कुटीर व ग्राम उद्योग पनपें तथा पूंजीपति लोग नैतिकता का पालन करते हुए अपने को पूंजी का ट्रस्टी मात्र समझें स्वामी नहीं।

६ *गांधीवाद समता तथा स्वतन्त्रता के आधार पर एक सर्वोदय समाज की* **स्थापना चाहता है (Gandhism aims to establish a Sarvodaya Society based on quality, freedom and universal brotherhood)**—गांधीजी ने अपने देश में, जिस राम राज्य की कल्पना की थी, उसका सामाजिक चित्र बिलकुल स्पष्ट है। सामाजिक व्यवस्था के विषय में गांधीजी का विचार था कि प्रत्येक समाज का आधार समता स्वतन्त्रता तथा भ्रातृभाव के सिद्धान्त होने चाहिए। दैनिक पवित्रता तथा आस्तिकता में विश्वास रखने के कारण वे सामाजिक समानता के प्रबलतम समर्थक थे। समाज में ऊंच नीच, छोटा बड़ा, हरिजन अछूत इस प्रकार के भेद भाव उन्हें आत्मिक वेदना देते थे। हरिजन तथा भारतीय नारी समाज की दयनीय व दलित स्थिति वे नहीं देख सके और उन्हें समाज में समानता के पद पर आसीन करने का सारा श्रेय उन्हीं को दिया जाना चाहिए। गांधीजी स्वाधीनता को प्राणी मात्र का स्वाभाविक आवश्यक अधिकार मानते थे और सभी को समान स्वतन्त्रता तथा समान सुविधायें दिलाने के लिए उन्होंने जीवन भर अथक परिश्रम किया।

समाज को गांधीजी एक संयुक्त इकाई मानते थे और प्रेम, भ्रातृ भाव तथा सहानुभूति के बिना, उनकी दृष्टि में प्रत्येक समाज की कल्पना एक विकृत व अपूर्ण समाज की कल्पना थी। सर्वोदय अथवा सब की सामूहिक तथा व्यक्तिगत उन्नति व प्रगति उनकी विचारधारा का केन्द्र बिन्दु थी और जाति, रंग, वर्ण, लिंग तथा धर्म आदि के सारे विभेदों से ऊपर उठकर एक सार्वदेशिक व सार्वकालिक समाज, उनकी कल्पना में सदैव झूला करता था।

७ *गांधीवाद सत्याग्रह का सिद्धान्त (Gandhism is a philosophy of* **Non violence)**—सत्याग्रह शब्द का अर्थ है सत्य की खोज तथा प्राप्ति के लिए आग्रह अथवा हठ करना। जैसा कि पहिले लिखा जा चुका है गांधीजी का सारा दर्शन सत्य तथा अहिंसा की ही एक विस्तृत व्याख्या मात्र है अतः सत्याग्रह उनके दर्शन का एक आवश्यक अङ्ग है। गांधीजी की अहिंसा है अर्थ का सत्य तथा प्रेम और प्रेम का अर्थ है बुराई का प्रतिकार (Resistance of evil)। अतः गांधीजी

मानते थे कि यदि एक बार सत्य का बोध हो जाय तो उसे प्राप्त करने के लिए दृढ़ता के साथ जुट जाना चाहिए। उनके मतानुसार अहिंसात्मक साधनों द्वारा सच्चे उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए निरन्तर व अथक रूप में लगे रहना का नाम ही सत्याग्रह है। एक स्थान पर इसकी परिभाषा देते हुए वे लिखते हैं कि, 'अपने विरोधियों को दुखी बनाने के बदले अपने स्वयं पर दुख डालकर सत्य की विजय प्राप्त करना सत्याग्रह है।" (Satyagrah is a vindication of truth not by the infliction of sufferings on the opponents, but one's own self) सभी प्रकार की सामाजिक तथा राजनैतिक क्रान्तियों को समाज में सफल बनाने के लिए गांधीजी का उपदेश है कि क्रान्तिकारियों को चाहिए कि वे स्वयं को कष्ट में डाल दें और उनके दुखी होने का परिणाम यह होगा कि कठोर से कठोर व्यक्ति के हृदय में भी उसकी नैतिक प्रतिक्रिया (Moral reaction) होगी और उसके द्वारा उसका हृदय परिवर्तन सम्भव हो सकेगा। इस प्रकार गांधियन सत्याग्रह एक शक्तिशाली शस्त्र है जो शत्रु का संहार नहीं करता बल्कि उसे पथभ्रष्ट समझ कर अपने गलत रास्ते से सही रास्ते पर लाता है। गांधीजी इस शस्त्र का प्रयोग सभी प्रकार के अन्यायों तथा अनाचारों के विरुद्ध करने का आदेश देते हैं। किन्तु यह स्मरण रहे कि यह एक ऐसा शस्त्र है जिसे प्रयुक्त करने के लिए बड़े धैर्य साहस तथा वीरता की आवश्यकता है। श्री महादेव देसाई के शब्दों में, "एक सत्याग्रही को बड़ी प्रसन्नता के साथ बलिदान करने की आवश्यकता है क्योंकि उसके हँसते हँसते प्रसन्नता के साथ त्याग करते रहने से ही उसके बलिदान वरदान बन सकते हैं।" सत्याग्रह की शक्ति एक आन्तरिक शक्ति है, जिसका प्रयोग दुनियाँ के सब मामों में समान रूप से किया जा सकता है। गांधीजी कहा करते थे कि एक सत्याग्रही बनने से पहले अपने उद्देश्य तथा उनके लिए सर्वस्व तक की बाजी लगा देने की भावना व क्षमता प्रत्येक सत्याग्रही में होनी अनिवार्य है।

५—८ गांधीवाद दार्शनिक अराजकतावाद का समर्थक (Gandhism supports Philosophical anarchism)—टालस्टाय के विचारों की एक प्रतिच्छाया गांधीजी के राजनैतिक विचारों पर भी स्पष्ट है। सैद्धान्तिक दृष्टि से गांधीजी के मतानुसार राज्य एक आवश्यक दुर्गुण (Unnecessary evil) है जो मनुष्य के जीवन में नैतिक मूल्यों पर आघात करता है। वे राज्य को अनावश्यक ही नहीं बरन् आर्थिक ऐतिहासिक तथा नैतिक तथा सभी दृष्टियों से निरर्थक व निस्सार भी सिद्ध करते हैं। राजनीतिक चश्मे से देखने के कारण गांधीजी चाहते थे कि मनुष्य के सारे कार्य स्वतः एवं स्वेच्छा से किये जाने चाहिए, किन्तु राज्य एक ऐसी संस्था है, जो मनुष्य के नित्यप्रति के जीवन में उस पर बल का प्रयोग कर दबाव डालती है। अतः इसकी जड़ें हिंसा में गड़ी हुई हैं जिसके कारण यह बेचारे गरीबों का शोषण करती है और अपने नागरिकों की नैतिकता का हनन करती है। उनके अपने शब्दों में 'राज्य एक केन्द्रित तथा व्यवस्थित रूप से हिंसा का प्रतिनिधि है। व्यक्ति एक सचेतन आत्मवान

प्राणी है, किन्तु राज्य एक आत्माहीन यन्त्र है, जो कि हिंसा से पृथक नहीं किया जा सकता, क्योंकि इसकी उत्पत्ति हुई है।" (State represents violence in a concentrated and organised form The individual has a soul, but as the State is a soulless machine it can never be weaned from Violence to which its very existence)— राज्य के खतरों की चर्चा करते हुए वे आगे लिखते हैं, मैं राज्य की बढ़ती हुई शक्तियों को बड़े भय तथा शंका के साथ देखता हूँ। व्यक्ति के व्यक्तित्व का विनाश कर यह मनुष्य जाति को सबसे अधिक हानि पहुंचाती है क्योंकि हम ऐसे कितने ही उदाहरणों को जानते हैं, जहां मनुष्य ट्रस्टी के रूप में काम कर चुका है किन्तु कहीं भी कोई राज्य दरिद्रों के कल्याण के लिए नहीं रहा।'

समाज के विषय में भी गांधीजी का दृष्टिकोण बड़ा व्यापक था। उनके समाज का चित्र राज्यहीन (Stateless) अथवा अराजकतावादी समाज का चित्र है।" इस समाज में प्रत्येक व्यक्ति अपना शासक स्वयं है और वह अपना शासन इस प्रकार से करता है कि वह अपने पड़ोसी के मार्ग में बाधा सिद्ध न हो। एक आदर्श राज्य में राजनैतिक शक्ति जैसी कोई चीज नहीं होगी, क्योंकि उसमें राज्य ही नहीं रहेगा।' गांधीजी समाज में एक आदर्श प्रजातन्त्रात्मक व्यवस्था की स्थापना चाहते थे और सत्याग्रही आत्मनिर्भर (Self sufficient) छोटे छोटे ग्रामों का एक संघ आज के समाज में उनकी दृष्टि में एक परम उपयोगी व्यवस्था है। इन स्वाधीन, तथा स्वावलम्बी ग्रामों में वे पारस्परिक सहयोग की भावना चाहते हैं जिसमें आत्मनिर्भरता (Self Sufficiency) रहते हुए भी अन्तर निर्भरता की भावना लुप्त न हो जाय और, प्रेम तथा सहानुभूति के धागों में बँधा हुआ समाज का संघात्मक रूप एक पारिवारिक इकाई का सा अनुभव करे।

(९) गांधीवाद और बहुलवाद में कुछ समानता है (Gandhism has much in common with Pluralism)—राजनीति शास्त्र में जिस प्रकार बहुलवाद राजसत्ता की निरंकुशता के विरुद्ध आवाज उठा कर उसे अनेकों संघों में विभाजित करना चाहता है, इसी प्रकार गांधीवादी दर्शन की यह मान्यता है कि राज्य सर्वसत्ता नहीं होना चाहिए। बहुलवादियों की भांति गांधीजी राजसत्ता को सीमित, मर्यादित तथा नियन्त्रित मानते हैं। उनका विचार था कि राज्य के हाथों में जो सत्ता है, वह उसकी नहीं, बल्कि जनता द्वारा उसको सौंपी गई है। किन्तु चूंकि आज के युग में कितने ही संघ व संस्थायें मनुष्य की भलाई का काम करती हैं अतः यह सत्ता इन संघों में बाँट दी जानी चाहिए और समाज में संघों का अस्तित्व, 'स्वाधीन संस्थाओं' (Autonomous groups) जैसा होना चाहिए।

(१०) गांधीवाद राज्य को एक साधन मानता है साध्य नहीं (State according to Gandhism is a means not an end)—गांधीवादी दर्शन का केन्द्र बिन्दु व्यक्ति है और उसके अनुसार राज्य, मनुष्य जीवन के हर क्षेत्र में उसका उन्नत

बनाने वाले साधनों में से एक है।" (State is one of the means of enabling people to better their condition in every department of life) गांधीजी राज्य को जन कल्याण का एक साधन मात्र मानते थे, जिसका उद्देश्य सारे व्यक्तियों का (अधिकतम व्यक्तियों का नहीं) अधिकतम हित प्राप्त करना है। वे राज्य अथवा राज्य के कार्यों में कोई रहस्यात्मक पवित्रता (Mysterious Sanctity) नहीं देखते बल्कि उनका विश्वास था कि राज्य मानवीय दुर्बलताओं की उपज है जिसका अपनी सत्ता के दुरुपयोग किये जाने पर विरोध किया जाना चाहिए इस प्रकार गांधीवाद राज्य को कोई महानता अथवा पृथक व्यक्तित्व (Personality) नहीं देता, बल्कि नागरिकों के सामूहिक हित का लक्ष्य लेकर चलने वाला एक साधन मात्र मानता है।

(११) गांधीवाद राज्य को कम से कम कार्य सौंपना चाहता है (Gandhism wishes to reduce the functions of the State to the minimum)—गांधी जी मनुष्य के स्वावलम्बी जीवन के समर्थक थे। व चाहते थे कि राज्य अपने कार्य कम से कम क्षेत्रों तक सीमित करले। राज्य के कार्य क्षेत्र का विस्तार उनकी दृष्टि में मनुष्य के स्वावलम्बन को कमजोर कर से पराश्रित बनाना सिखलाता है। अतः वे इसके घोर विरोधी थे। इसके विपरीत उनका मत था कि राज्य के अधिकतर कार्य राज्य से छीनकर ऐच्छिक सभा को सौंप दिये जाय क्योंकि उनके शब्दों में "अपनी सरकार का अर्थ, चाहे वह स्वदेशी हो अथवा विदेशी सरकारी नियन्त्रण से स्वाधीन होने का सतत प्रयास हुआ करता है। स्वराज्य सरकार की ओर भी यदि लोग नित्य प्रति की घटनाओं के परिचालन के लिए दखते रहे तो बडी शोचपूर्ण स्थिति होगी।" (Self government means continuous effort to be independent of government control whether it is foreign or whether it is national Swaraj Government will be a sorry affair if people look up to it for the regulation of every detail of life) थारो (Thoreau) की भांति उनका भी दृढ़ विश्वास यही था कि 'सरकार सर्वोत्तम है जो सबसे कम शासन किया करती है।' (That Government is the best which governs the least) व्यक्तिवादी राज्य की यह कल्पना उनकी विचारधारा का प्रमुख स्रोत है। राज्य के अनुचित व अनावश्यक हस्तक्षेप को वह अप्रजातन्त्रात्मक मानते है। उनका कथन है कि एक राष्ट्र जो बिना राज्यकीय हस्तक्षेप के अपने कार्य सुगमता, तथा प्रभावशाली ढंग से करता है, वास्तव में सच्चे रूप में प्रजातन्त्रात्मक है। जहाँ ऐसी अवस्था नहीं है वहा शासन प्रणाली केवल नाम मात्र के लिए प्रजातन्त्रीय है।" (A nation that runs its affairs smoothly and effectively without much state interference is truly democratic Where such condition is absent the form of government is democratic only in name)

(१२) गांधीवादी राज्य अहिंसात्मक राज्य होगा (Gandhism envisages a non violent State)—गांधी जी राज्य को कम से कम कार्य तो देना ही चाहते हैं, किन्तु जो कुछ भी कार्य वे राज्य को सौंपना चाहते हैं, उनके विषय में भी उनका मत है कि राज्य कम से कम हिंसात्मक साधनों का प्रयोग करे। भौतिक बल के वे सदैव विरोधी थे और इसलिए चाहते थे कि 'राज्य, जन साधारण के उच्चतम कल्याण पर आधारित नैतिक बल द्वारा शासन करे" (State must rule through its moral authority based upon the greatest good will of the people) व्यक्तियों की भांति राज्य भी अहिंसात्मक हो, और गांधीजी का विश्वास था कि पुलिस, न्यायालय आदि विभाग भौतिक शक्ति को त्याग कर नैतिक शक्ति का उपयोग करें तो अहिंसात्मक राज्य में, अपराध व उपद्रवों की संख्या स्वत ही कम हो जायगी। किन्तु इस का अर्थ यह नहीं है कि उस राज्य में एक भी चोर, डाकू अथवा कोई असामाजिक तत्व नहीं रहेगा और जो होंगे उन्हें मिटाने के लिए राज्य हिंसा अथवा दण्ड धारण नहीं करेगा। ये असामाजिक तत्व हमेशा से रहते आये हैं और रहेंगे तथा इनको कुचलना प्रत्येक राज्य का कर्त्तव्य है। गांधीजी के स्वयं के शब्दों में, 'एक राज्य क्योंकि वह सब व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करता है कभी भी पूर्णत अहिंसात्मक होने में सफल नहीं हो सकता। कोई भी सरकार सार्वजनिक शांति को भंग करने वाले सैनिक संघों का अस्तित्व सहन नहीं कर सकता" (A government cannot succeed in becoming entirely non violent because it represents all the people . No government can allow private military organisations to function without endangering public peace) अत एक पूर्णत अहिंसात्मक राज्य अव्यावहारिक (Impracticable) है और स्वर्ण युग तक पहुँचने के पहले एक अहिंसात्मक समाज की स्थापना आवश्यक है। किन्तु स्मरण रहे यह आदर्श अहिंसात्मक समाज एक दिशा मात्र है ध्येय नहीं।

गांधीवाद अन्तर्राष्ट्रीयवाद का समर्थक है (Gandhism stands for internationalism)—यद्यपि महात्माजी भारतवर्ष के एक राष्ट्रीय नेता थे, राजनीति के प्रति उनका दृष्टिकोण परम व्यापक तथा उदार था। उनकी राष्ट्रीयता एक विशुद्ध देशभक्ति की राष्ट्रीयता थी, जो अन्तर्राष्ट्रीयता की विरोधी नहीं बल्कि उसके विकास में सहायिका है। एक उग्र, साम्राज्यवादी तथा विनाशकारी संकीर्ण राष्ट्रीयता को वे निन्दनीय मानते थे। वे एक मानवतावादी (Humanitarian) थे, तथा विश्व बंधुत्व (Universal brotherhood) उनका आदर्श था। राष्ट्रीयता के विषय में अपने विचारों को स्पष्ट समझाते हुए वे एक स्थान पर लिखते हैं "एक व्यक्ति का राष्ट्रीयतावादी हुए बिना अन्तर्राष्ट्रीयतावादी होना असम्भव है। राष्ट्रीयवाद कोई बुराई नहीं बुराई तो संकीर्णता स्वार्थ तथा एकाकीपन की भावनायें हैं, जिनसे आज के राष्ट्र ग्रस्त दिखाई देते हैं। मेरा राष्ट्रीयवाद के विषय में विचार यह है कि मेरा देश मानव जाति के जीवन के लिए मर सके।" गांधीजी स्वावलम्बी व स्वाधीन इकाइयों में समर्थक होते

हुए भी अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे अन्तरनिर्भता (Interdependence) को परम आवश्यक मानते थे और चाहते थे कि ससार के राष्ट्र आत्मनिर्भरता की आत्मघातक नीति को छोडकर अंतरनिर्भरता रखते हुए एक विश्व सघ की स्थापना करे। अहिंसा का मूल मित्रता है और इसी कारण कोई भी अहिंसात्मक राज्य अंतर्राष्ट्रीय मित्रता, सहयोग व शान्ति का विरोधी नही हो सकता।

फिर भी यदि किसी अहिंसात्मक राष्ट्र पर बाह्य आक्रमण (Internal aggression) हो जाय, तो गांधीजी उसके लिए दो मार्ग बतलाते हैं, जो कि उनके अहिंसा सिद्धान्त के अनुरूप है। एक तो यह कि यदि आक्रमणकारी शत्रु देश पर आक्रमण कर दे तो उसके साथ प्रत्येक कार्य मे असहयोग (Non cooperation) शुरू कर दिया जाय और पराधीनता की अपेक्षा मर जाना उचित समझा जाय। दूसरा मार्ग यह है कि शत्रु का अहिंसात्मक उपायो द्वारा प्रतिकार (Non violent resistance) किया जाय। इन दोनो ही उपायो को भारतवर्ष को स्वतन्त्र करवाने के लिए महात्माजी ने अपनाया था।

गांधीजी के कुछ स्फुट विचार
(Some Stray thoughts of Gandhiji)

व्यक्तिगत सम्पत्ति (Private Property)—गांधीजी व्यक्तिगत सम्पत्ति का अन्त चाहते थे किन्तु व्यक्ति को अपनी सम्पत्ति से वंचित करने के लिए वे कोई मार्क्सवादी प्रोलिटेरियन क्रान्ति नही चाहते सत्य तथा अहिंसा द्वारा हृदय परिवर्तन उनका प्रमुख अस्त्र है, जिससे कि पूंजीपति जीवित रहते हुए मारे जा सकते है। गांधीजी मानते थे कि सम्पत्ति कभी किसी व्यक्ति की नही, बल्कि सामूहिक समाज की हुआ करती है। अत पूंजीपतियों को चाहिए कि वे अपने को सम्पत्ति का स्वामी न समझ कर ट्रस्टी मात्र समझे। उनके लिए उचित है कि वे अपने अन्त करण की पवित्र आवाज को सुनते हुए अपनी सम्पत्ति का उपयोग अपने स्वार्थ के लिये नही, बल्कि सार्वजनिक हित के लिए करें। इस प्रकार गांधीजी व्यवस्था को बदलने से पहले दृष्टिकोण बदलना चाहते है। एक व्यावहारिक विचारक की भांति वे कहते है कि "मेरा आदर्श सम्पत्ति का समान वितरण है किन्तु जब तक मैं यह देखता हूँ कि यह सम्भव नही है, मैं यथासम्भव समान विभाजन के लिए प्रयत्नशील हूँ" (My ideal of property is equal distribution but so long as I can see it is not to be realised, I work for equitable distribution)।

देश भक्त (Patriotism)—अपने देश के प्रति श्रद्धा रखना गांधीजी प्रत्येक नागरिक का एक आवश्यक धर्म मानते थे। किन्तु उनकी यह देशभक्ति अथवा राष्ट्र प्रेम कभी संकीर्ण राष्ट्रीयता नही कहा जा सकता। अपने देशवासियो की सेवा करना वे अपना कर्तव्य समझते थे, किन्तु यह पहला और अंतिम कर्तव्य नही था। इसके साथ-साथ वे मानवता के उच्चतर हितो को कभी नही भूलते थे। एक वाक्य मे

उनकी देशभक्ति का स्वरूप इस प्रकार था "मैं भारतवर्ष का उत्थान इसलिए चाहता हूँ कि इससे सारे संसार का भला हो सके। मैं नहीं चाहता कि मेरा देश अन्य राष्ट्रों के भग्नावशेषों पर प्रगति के चरण धरे।"

दण्ड (Punishment)—दण्ड का उद्देश्य गांधीजी के मत में अपराधी का नैतिक सुधार करना है। जेलों के विषय में वे कहा करते थे कि समाज द्वारा बदला लेने की कालकोठरियाँ न होकर स्कूल, अस्पताल व सुधार-केन्द्रों का एक मिला-जुला रूप होना चाहिए। जेलों में अपराधियों की कमियों को सुधारा जाय तथा उन्हें फिर से अहिंसामय जीवन में पग धरने की शिक्षा दी जाय। वाहन-चालन प्रशिक्षण का कार्य कर तथा बंदियों के मनोवैज्ञानिक अध्ययन द्वारा उन्हें सुविधायें आदि प्रदान कर उनके आचरण का सुधारा जाय। सन् १९२२ में जेल-सुधारों के विषय में गांधीजी ने एक योजना प्रस्तुत की थी, जिसके अनुसार सारी जेलों को उद्योग केन्द्रों में बदलने की सिफारिश की थी।

पुलिस (Police)—गांधीजी के मत से पुलिस एक अनावश्यक तथा बेकार संस्था है किन्तु फिर भी वर्तमान स्थिति में उसे पूर्णतः समाप्त नहीं किया जा सकता। अतः उसमें सुधार की परम आवश्यकता है। गांधीजी कहा करते थे कि "मेरे विचारों की पुलिस आज की पुलिस से बिल्कुल भिन्न होगी। वह जनता की स्वामी न होकर सेवक होगी। उसमें उच्च पद उनको ही मिलेंगे जो अहिंसा में दृढ़ आस्था रखने वाले होंगे। लोग उनकी हर सहायता करेंगे और आपसी सहयोग द्वारा नित्य प्रति कम होती हुई अशान्ति को वे लोग शान्त करेंगे। उनके पास कुछ हथियार हो सकते हैं, किन्तु वे कभी ही शायद उनका प्रयोग करेंगे। वास्तव में पुलिस वाले सुधारक होंगे और उनका काम केवल डाकुओं और लुटेरों से लड़ना मात्र रह जायगा।"

अधिकार और कर्त्तव्य (Rights and Duties)—गांधीजी अधिकार और कर्त्तव्य दोनों को समान महत्वपूर्ण मानते थे और अधिकारों को पाने तथा कर्त्तव्यों के पालन करने पर बराबर बल देते थे। अधिकारों को वे व्यक्ति के विकास के लिए अनिवार्य मानते थे। कांग्रेस के कराची अधिवेशन में उन्होंने समानता, स्वतन्त्रता तथा अभिव्यक्ति की स्वाधीनता आदि अधिकारों के विषय में एक प्रस्ताव भी रखा था और उन्हीं के पद चिह्नों पर चलने वाले राष्ट्रीय नेताओं ने इन सब अधिकारों को मूल अधिकारों के रूप में संवैधानिक उपचारों (Right to Constitutional remedies) के साथ हमें प्रदान किया है। गांधीजी धार्मिक स्वतन्त्रता तथा सांस्कृतिक विभिन्नता के भी पक्षपाती थे और इन मामलों में स्वाधीनता को वे एक मूल अधिकार मानते थे। यद्यपि गांधीजी ने मानव अधिकारों की सूची नहीं गिनाई किन्तु वे अपने अधिकारों के स्वरूप व सीमाओं को परिस्थिति के अनुसार बदलने को तैयार रहते थे। अधिकार से अधिक वे कर्त्तव्य के पालन को आवश्यक व लाभदायक मानते थे, अधिकार और कर्त्तव्य उनकी दृष्टि में एक ही वस्तु के दो पहलू थे और बिना उचित कर्त्तव्य पालन

के अधिकारो को वे निरर्थक, निस्सार व मूल्यहीन बतलाया करते थे। व मानते थे कि कर्त्तव्य के बिना अधिकार का अस्तित्व ही नही है और यदि वह किसी तरह पा भी लिया गया तो शीघ्र ही विलुप्त हो जायगा। उनके शब्दो मे, "मेरे अधिकार का स्रोत कर्त्तव्य है। यदि हम कर्त्तव्यो का पालन करें तो हमें अधिकारों को ढूंढ़ना नहीं पडेगा। किन्तु यदि अपने कर्त्तव्यो का पालन किये बिना हम अधिकारो के पीछे दौडते है तो वे हम से अर्थहीन इच्छा की भाति दूर भागेंगे।"

न्याय (Justice)—गाँधीजी आजकल के महँगे न्याय के सबसे बडे विरोधी थे। व चाहते थे कि मुकदमे न्यायालय म न आकर आपस मे समझौते के द्वारा ही सुलझा लिए जायें, जिससे न्याय सस्ता मिल सके। इसके लिए उन्होने पचायत-व्यवस्था का सुझाव दिया है, जिसम स्थानीय पचो का निर्णय अन्तिम होना चाहिए। अनेको न्यायालयो के बीच म होने से उनकी दृष्टि म न्याय के उपलब्ध होने म बाधा आती है। कानूनो को वे बहुत सरल बनाना चाहते थे और उनकी इच्छा थी कि वकील लोग अगर रहे तो उनकी फीस राज्य द्वारा निश्चित व नियमित कर दी जानी चाहिए, जिससे वे गरीबो की अज्ञानता व अशिक्षा से अनुचित लाभ न उठा सके। इस प्रकार उनके मत मे राज्य को न्याय वितरण का कार्य कम से कम करना चाहिए।

कर (Taxes)—गाधीजी राज्य के परम भक्त थे, यद्यपि वे उसे हिंसा पर आधारित मानते थे। वे चाहते थे कि राज्य को उसकी सेवाओ के बदले कर (Tax) दिया जाना चाहिए किन्तु यह कर पैसो अथवा रुपयो के रूप में न होकर परिश्रम (Labour) के रूप मे होना चाहिए। ऐसा होने से उस कर का उपयोग किसी एक के फायदे के लिए न होकर सार्वजनिक कल्याण के लिए हो सकेगा। उन्हीं के शब्दों मे, 'परिश्रम के रूप मे कर देना एक राष्ट्र मे चेतना का सचार करता है। जहां लोग समाज की सेवा के लिए स्वेच्छा से श्रम करते हों, वहाँ द्रव्य का विनिमय (Exchange of money) अनावश्यक है।"

मानव प्रकृति (Man's Nature)—गाधीजी का दर्शन नैतिक दर्शन है और उसका आधार उनका यह विचार है कि मनुष्य यद्यपि जन्म से पशु-प्रवृत्तियाँ लेकर पैदा होता है किन्तु उसकी ये वृत्तियां सुसस्कृत होकर उन्नत बनाई जा सकती हैं। वे यह मानते हैं कि आदमी कभी भी पूर्ण देवता नही हुआ करता किन्तु सभी म अच्छाइयां और बुराइयां का मिश्रण होता है। एक अच्छे और बुरे आदमी म यदि कोई अन्तर है तो यही कि एक मे कुछ अच्छे गुण ज्यादा हैं तो दूसरे मे कुछ कम। डारविन की भाँति तो नही किन्तु गाँधीजी यह मानते अवश्य थे कि मनुष्य के पूर्वज पशु थे। उन्ही के शब्दो मे, "सम्भवत हम सब मूलरूप म पशु थे। मेरा यह विश्वास है कि हम विकासवाद की धीमी प्रक्रिया द्वारा ही पशु से मनुष्य बन हैं। गाधीजी यह कहा करते थे कि, "ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं है शायद देवता भी नहीं, जिसम स्वभाव म त्रुटियाँ न हो, किन्तु वे देवता इसीलिए हैं कि अपनी त्रुटियो से परिचित है

और उनका सुधारने के लिए सदैव तैयार रहते हैं।" किन्तु मनुष्य की इस मौलिक पाशविकता को मानते हुए भी गांधीजी की यह धारणा थी कि प्रत्येक मनुष्य में अपने को उन्नति की ओर ले जाने की एक आन्तरिक चेतना होती है, जो उसके सारे जीवन में क्रान्ति उत्पन्न करती है। 'हम सब पाशविक शक्ति लेकर पैदा होते हैं किन्तु हमारा जन्म इसलिए हुआ है कि हम अपने अन्दर निवास करने वाले ईश्वर को पहिचानें' —महात्माजी।

प्रतिनिधित्व (Representation)—महात्माजी प्रतिनिधित्व तथा चुनाव आदि प्रणालियों के विरोधी नहीं थे। उनका मत था कि 'स्वराज्य का अर्थ एक ऐसा राज्य है जो उस जनता की सहमति से चले जो प्रौढ़ व्यक्तियों में बहुमत है चाहे वह पुरुष हो या स्त्री देश में पैदा हुए हों या रहने वाले हों तथा जो अपने शारीरिक श्रम से राज्य की सेवा करते हों और जिन्होंने मतदाताओं के रूप में अपने नाम रजिस्टर करवाने का कष्ट किया हो।" सन् १९३१ तथा १९४२ में पंचायतों के चुनावों के लिए गांधीजी ने अप्रत्यक्ष चुनाव प्रणाली (Indirect election) का समर्थन किया था। वे सत्ता के विकेन्द्रीकरण (Decentralization) के पक्ष में थे और प्रत्यक्ष चुनाव की प्रणाली इस दृष्टि से उन्हें गावों के लिए अधिक उपयुक्त व लाभदायक प्रतीत हुई। चुनाव लड़ने वालों के विषय में भी उनकी योग्यता की एकमात्र कसौटी गांधीजी निस्वार्थ सेवा तथा त्याग की भावना को मानते थे। वे चाहते थे कि केवल वे ही लोग राजनैतिक सेवा के लिए आगे आयें जिनमें देश सेवा तथा देशोद्धार की भावनायें हों तथा जो उसके लिए बलिदान करने को प्रस्तुत हों। मतदाता कौन व्यक्ति होने चाहिए इस विषय में भी उनका निम्नलिखित उद्धरण उल्लेखनीय है, 'मतदाता की योग्यता अथवा अर्हता (Qualification) के लिये न पद होना चाहिए और न सम्पत्ति, केवल शारीरिक श्रम ही उसके लिए सबसे उपयुक्त योग्यता है।"

बहुमत का राज्य (Rule by Majority)—गांधीजी प्रजातन्त्र में विश्वास रखने के कारण बहुमत का राज्य चाहते थे किन्तु इसका यह अर्थ करना कि वे अल्पसंख्यकों की बिलकुल उपेक्षा करना चाहते थे, अर्थ का अनर्थ करना होगा। एक स्थान पर इस विषय में अपने विचारों को अभिव्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा है कि "विस्तृत विवरणों (Details) में एक व्यक्ति को स्वीकार करना एक दासता (Slavery) होगी। बहुमत के शासन का यह मतलब नहीं है कि एक व्यक्ति की राय भी यदि सबल है तो कुचली जाय बल्कि उसका भार बहुमत की राय से अधिक महत्वपूर्ण समझा जाना चाहिए। यही मेरी वास्तविक प्रजातन्त्र की कल्पना है।"

गांधीवाद की उत्तर सहित आलोचना (Criticism with reply)—जहाँ तक सिद्धान्तों का प्रश्न है सम्भवतः ही कोई ऐसा आलोचक होगा जो गांधीवादी विचारों को दोषपूर्ण सिद्ध कर सके, किन्तु गांधीवादी दर्शन की आलोचना का आरम्भ यहीं से होता है जहाँ लोग उसकी अति आदर्शवादिता की खिल्ली उड़ाते हैं तथा व्यावहारिक दृष्टि से एक असम्भव व अप्राप्य (Unrealisable) वस्तु मात्र बताते हैं।

(१) कुछ लोगों का वहमा है कि गांधीवाद में कोई मौलिकता नहीं (Devoid of originality)। यह कहीं की ईंट तथा कहीं के रोड़ों से बना हुआ एक भानुमती का कुनबा है जिसमें समाजवाद, उदारतावाद, अराजकतावाद आदि न जाने कितने विचार अव्यवस्थित रूप से मिले हुए हैं। गांधीवाद की यह आलोचना निस्सार है। मौलिकता सदैव नवीनता मे ही नहीं हुआ करती, किन्तु यदि पुरानी से पुरानी बात को भी नवीन ढंग से कही जाय, तो वह मौलिक है। इस दृष्टि से गांधीवाद एक मौलिक दर्शन है जिसमें सब विचारों की अच्छाइयाँ संग्रहीत करके सुव्यवस्थित ढङ्ग से प्रस्तुत की गई हैं।

(२) दूसरे प्रकार के कुछ आलोचक गांधीजी पर पूँजीवाद का समर्थक होने का आरोप लगाते हैं। वे उनके विचारों मे भी इसी पूँजीवादी दुर्गन्ध को सूँघते हैं। किन्तु गांधीजी की ईमानदारी पर इस प्रकार सन्देह करना, उनके साथ अन्याय करना है। केवल एक सिपाही से मित्रता होने का अर्थ यह तो नहीं होता कि हम किसी व्यक्ति के शान्तिवादी होने में सन्देह करें। इसी प्रकार पूंजीपतियों की मित्रता से गांधीजी को पूंजीवादी बतलाना उपहासास्पद है। सच तो यह है कि गांधीजी बुराई (evil i e capitalist) के दुश्मन थे, बुराई करने वाले (evil doer i e capitalist) के नहीं।

(३) कुछ क्रांतिकारी गांधीजी के अहिंसात्मक सत्याग्रहों की भी हंसी उड़ाते हैं। उनका कहना है कि सत्याग्रह से सारा देश भी मिलकर शताब्दियों में इतनी सफलता नहीं पा सकता, जितनी कुछ क्रान्तिकारी कुछ घंटों में ही पा सकते हैं। यह आलोचना स्वयं ही खोखली है और यह भूल जाती है कि अहिंसा एक अप्रतिहत अस्त्र है और उसकी हार में भी एक जीत छिपी है जो मनुष्य को नैतिक पवित्रता की ओर ले जाती है।

(४) कुछ अन्य आलोचकों के मतानुसार गांधीवाद गुलाम भारत को स्वतन्त्रता दिलाने का एक प्रादेश व सामयिक हथियार था, पर अब स्वतन्त्रता के पश्चात् जब कि संसार में अस्त्र शस्त्रों की एक दौड़ लग रही है गांधीवादी अहिंसा अनुपयुक्त व हानिकारक है। इस आलोचना के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि आज की परिस्थितियों में जब कि विश्व घृणा तथा अविश्वास के बादल छा रहे हैं, गांधीवाद ही एक मात्र ऐसी विचारधारा है जो प्रेम, सदभावना, सहानुभूति तथा विश्व बन्धुत्व के उपदेशों द्वारा संसार में शान्ति स्थापित रख सकती है और सबसे अधिक समीचीन (Upto date) है।

(५) कुछ लोग यह भी भविष्यवाणी करते हैं कि गांधीवाद सफल नहीं हो सकता क्योंकि मनुष्य मूलतः एक पशु है और वह स्वार्थ और भय की भाषाओं के अतिरिक्त प्रेम तथा सहानुभूति आदि की अन्य भाषायें न जानता है और न सीख सकता है। मनुष्य स्वभाव का यह चित्र आवश्यकता से अधिक निराशावादी (Pessimistic) है और इस आधार पर गांधीवाद की आलोचना करना निरी बकवास के अतिरिक्त कुछ भी नहीं।

इस प्रकार गांधीवाद, इन सब आलोचनाओं के होते हुए भी आज विश्व की एक बहुत प्रभावपूर्ण तथा महत्वपूर्ण विचारधारा बन चुकी है। क्या समाज, क्या अर्थ व्यवस्था तथा क्या राजनीति सभी में भारतवर्ष ही नहीं वरन् सारा संसार आज महात्माजी के सिद्धान्तों से प्रेरणा ले रहा है और यह मानता है कि सत्य, अहिंसा, तथा प्रेम के बिना विश्व के सामने एक ही मार्ग है और वह है सामूहिक विध्वंस। यद्यपि अभी अपने शैशव में होने के कारण गांधीवाद एक निश्चित सुगठित दर्शन के रूप में हमारे सामने नहीं आया है, किन्तु राजनीति का नैतिक दृष्टि से देखना (Moralisation of Politics) इसकी राजनीति शास्त्र को सबसे बड़ी देन है जिसके कारण वह महात्माजी का चिर ऋणी रहेगा।

सर्वोदय
(Sarvodaya)

"इस छोटी-सी जिन्दगी मे हम कसौटी पर हैं। इस ससार म जो कुछ थोडे दिन हमे रहना है, उनमे सब की सेवा तथा सब का प्रेम हासिल करना चाहिए। जिन्होने इस दुनियाँ मे आकर पैसा कमाया, लेकिन प्रेम गँवाया, उन्होने कुछ भी नही कमाया। जिन्होने ज्ञान हासिल किया मगर सब का प्रेम हासिल नही किया उन्होने कुछ भी हासिल नही किया। जिन्होंने शक्ति सम्पादन की, पर सब का प्रेम सम्पादन नही किया, उन्होने कुछ भी सम्पादन नही किया। इसलिए भाइयो सब से प्रेम करो और सब का प्रेम हासिल करो, यही सर्वोदय समाज का सदेश है।'

—सन्त विनोबा

गाधीवाद और सर्वोदय म कुछ अन्तर है। यद्यपि सर्वोदय का मूलाधार *गाँधीवाद अथवा वे,ही सत्य, प्रेम और अहिंसा के सिद्धान्त हैं, जिनके लिए गाधीजी* ने जीवन-भर-कराल साधना की थी। गांधीवाद एक जीवन दर्शन है, जिसको व्यावहारिक रूप मे बदल लेने पर जिस समाज का निर्माण होगा वह सर्वोदय समाज होगा। भारतवर्ष मे, राष्ट्रीय नेता अथवा राष्ट्रपिता होते हुए भी महात्मा गाँधी के राजनैतिक तथा सामाजिक आदर्श इतने महान, विशाल तथा उदात्त है, कि उनको समूचे विश्व समाज पर बिना किसी देश काल की मर्यादा के समान रूप से लागू किया जा सकता है। इस कारण सर्वोदय समाज की कल्पना एक इतनी व्यापक कल्पना है, जो सार्वदेशिक, सार्वकालिक तथा सार्वभौमिक कही जा सकती है। महात्माजी के पश्चात् उनके आध्यात्मिक उत्तराधिकारी सन्त विनोबा, आज कल इस सर्वोदय क्रान्ति के प्रमुख कार्यकर्त्ताओ मे से है, जिनके भूदान, सम्पत्तिदान, जीवनदान, बुद्धिदान, श्रमदान आदि आन्दोलनो ने भारत की सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक व्यवस्थाओ को मूल रूप से बदल कर हमारे देश मे सर्वोदय समाज की स्थापना के लिए बहुत कुछ किया है और अभी कर रहे हैं।

सर्वोदय क्या है (What is Sarvodaya)—इस बात को आधुनिक युग म लगभग सभी विचारक तथा दार्शनिक एकमत होकर स्वीकार करते हैं कि वास्तव मे *समाज व्यवस्था वही सर्वोत्तम है जिसमे किसी एक वर्ग अथवा व्यक्ति अथवा एक भाग* का हित न होकर सारे समाज के सब लोगो का कल्याण हो। मनुष्यता का यह तकाजा है कि मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण पशुता है तथा एक घोर अमानवीयता है जो

मनुष्य जैसे विवेकशील प्राणी तथा विधाता की सर्वोत्तम रचना के सुन्दर नाम को कलङ्कित करता है। अत सर्वोदय समाज के निर्माता चाहते हैं कि समाज ऐसा हो जिसमे मजदूर का मालिक द्वारा, किसान का जमीदार द्वारा, गरीब का अमीर द्वारा तथा शासित का शासक द्वारा कभी किसी प्रकार का शोषण न किया जाय तथा इन दोनो वर्गों के बीच समाज म किस प्रकार का भेदभाव, द्वेष, ईर्ष्या तथा विषमता न रह। सर्वोदय, समाज को, एक परिवार का विस्तृत रूप मानता है और चाहता है कि समाज के सारे सदस्यों म परस्पर म इतना अधिक, प्रेम, सौहार्द सहानुभूति तथा भाई चारे की भावनायें हो कि प्रत्येक व्यक्ति सामूहिक हित म ही अपना हित देखे और और इसे सार्वजनिक कल्याण के साथ मिलाकर उसकी प्राप्ति करे। अहिंसा गाधीवाद का मूल मन्त्र होने के कारण सर्वोदय समाज का भी आधार स्तम्भ है।' गाधीजी की कल्पना म सर्वोदय समाज म कभी कोई दीवार नही हो सकती और उनका विश्वास था कि धर्म, रग, जाति, वर्ग तथा लिङ्ग (Religion, colour, caste, class and sex) आदि के आधार पर जब तक समाज मे भेदभाव रहेगे तब तक सर्वोदय केवल एक कल्पना मात्र रहेगी। यह समाज मनुष्य को अपने क्षुद्र व तुच्छ स्वार्थो से ऊपर उठने का उपदेश देता है। सर्वोदय का सिद्धान्त एक बहुत उच्च लक्ष्य की ओर सकेत करता है और बतलाता है कि समूची मानवता अथवा मानव समाज के कल्याण के लिए हम परिवार स्वजन, ग्राम, नगर, जाति, सम्प्रदाय धर्म तथा राष्ट्र आदि के हित की सकीर्ण भावनाओ से ऊपर उठना होगा। सुप्रसिद्ध गाधीवादी श्री भगवानदास केला सर्वोदय के इस महान् एव व्यापक सन्देश का निम्नलिखित व्यावहारिक अर्थ करते हैं। उनके अनुसार सर्वोदय का व्यावहारिक अर्थ है —(१) पारिवारिक मोह का त्याग (२) जाति वर्ण तथा रङ्ग की भावना से ऊँचा उठना। (३) साम्प्रदायिक विचारो से ऊँचा उठना। (४) प्रादेशिकता या प्रान्तीयता का निवारण। (५) सकुचित राष्ट्रीयता का परित्याग। (६) विश्व बन्धुत्व की भावना को अपनाना।'

सर्वोदय का इतिहास (History of Sarvodaya)—सर्वोदय न तो कोई नया शब्द है और न सर्वोदय की भावना ही कोई नई भावना है। ससार के प्राचीन मनीषी, विचारक तथा साहित्यकार ससार की सभी सभ्य भाषाओं म सभ्यता के प्रारम्भ स ही प्रेम, अहिंसा, शान्ति तथा विश्व बन्धुत्व का पावन सदेश देते आये हैं। हमारे भारत के ऋषियों ने आज से हजारों वर्ष पूर्व ही यह घोषित किया था कि—

सर्वे भवन्तु सुखिन, सर्वे सन्तु निरामया
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित् दुखमाप् भवत्"

अर्थात् ससार के सारे लोग सुखी हो। सब निष्कपट निर्लोभ तथा निस्स्वार्थ हो। सब लोग दूसरो को सज्जन समझे तथा किसी को कभी भी किसी प्रकार का दुख न हो। इसी प्रकार से अपने पराये की भावनाओं को भी हमारे पूर्वजों ने घृणा की दृष्टि स देखा है और इस प्रकार की सकीर्ण मनोवृत्ति रखने वालो को ब"

कठोर शब्दों में भर्त्सना की है। ये लोग सारे समाज को एक संयुक्त परिवार मानते थे और सारे प्राणी मात्र पर दया तथा करुणा करने का मंगलमय उपदेश उनकी अमृतमयी वाणी से निःसृत हुआ था। ग्रीक देश के कुछ स्टोइक आदि विचारक भी इसी प्रकार के विश्ववादी (Cosmopolitan) थे जिन्होंने प्राणी मात्र में भ्रातृभावना के संचार का सदुपदेश दिया है। इसी प्रकार के विचार आदि काल से सभी देशों के साहित्य में समय समय पर प्रकट हुए हैं। अतः हम यह कहते हैं कि महात्माजी तथा विनोबाजी की यह सर्वोदय विचारधारा कोई नवीन वस्तु नहीं, बल्कि एक अति प्राचीन विचार की हमारी सांस्कृतिक परम्पराओं के अनुकूल आधुनिक व्याख्या मात्र है।

[illegible] **आधुनिक सर्वोदय विचारधारा और अन्टु दिस लास्ट (Modern Sarvodaya Thought and Unto This Last)**—सर्वोदय की आधुनिक विचारधारा का रेखा चित्र खींचने वाले हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी हैं। अपने सर्वोदय कार्यक्रम की रूपरेखा प्रस्तुत करते समय वे अंग्रेजी के एक प्रमुख साहित्यकार जान रस्किन की अमर रचना "Unto This Last" से बहुत अधिक प्रभावित हुए थे। सच पूछा जाय तो इस रचना ने गांधीजी के जीवन तथा विचारों को इतना अधिक अभिभूत किया कि सन् १९०४ में उन्होंने सब प्रथम इसका गुजराती में अनुवाद किया और तभी से सर्वोदय क्रान्ति हमारे देश में एक निश्चित रूप तथा दिशा में विकसित होने लगी। इस पुस्तक के नाम के लिए गांधीजी ने जो "सर्वोदय" शब्द का चुनाव किया वह भी बिल्कुल उपयुक्त था, क्योंकि इस पुस्तक में जिस समाज व्यवस्था का चित्र है, वह इस शब्द के अर्थ मात्र से ही स्पष्ट हो जाता है अर्थात् "सब का उदय"।

"अनटु दिस लास्ट" की कहानी इस प्रकार है कि एक व्यक्ति अपने अंगूर के बाग में कुछ मजदूरों को एक-एक पेनी प्रतिदिन की मजदूरी पर नौकर रखता है। दोपहर में जब वह मजदूर अड्डे पर जाता है तो कुछ बेकार मजदूरों को वहाँ खड़ा हुआ देखकर उन्हें भी उचित मजदूरी का आश्वासन देकर अपने बाग में भेज देता है। तीसरे पहर जब उसे कुछ खाली मजदूर अड्डे पर फिर खड़े हुए मिलते हैं तो वह उन्हें भी अपने बाग में काम के लिए ले जाता है। शाम को भी जब वह अड्डे पर देखता है तो कुछ कामहीन मजदूरों को वहाँ खड़ा पाता है और उन सब को भी अपने यहाँ ले जाकर, बिना इस बात का ध्यान रखे हुए कि किसने कितनी देर काम किया है, वह सब को एक-एक पेनी मजदूरी देता है, जो कि सुबह से शाम तक काम करने वाले मजदूरों से तय की गई थी। इस पर पहले आने वाले मजदूर इसका विरोध करते हैं और ज्यादा मजदूरी मांगते हैं क्योंकि उन्होंने दोपहर तथा शाम को आने वाले मजदूरों से ज्यादा काम किया है। इस पर वह मालिक उन्हें समझाता है कि उनसे सुबह से शाम तक की मजदूरी एक पेनी तय हुई थी अब यह उसकी मर्जी है कि वह बाद में आने वाले को उनके बराबर दे या उनसे कम। अपनी सम्पत्ति का वह स्वयं मालिक है और उसे जैसे चाहे खर्च करे। अतः यदि वह किसी को उसकी असली मेहनत

मे बदले मे उससे कुछ ज्यादा देता है तो इससे किसी को कोई नुकसान नही होता अत उन्हे जिन्हे नियमानुसार निश्चित मजदूरी मिली है, किसी प्रकार का दुख नही होना चाहिए।

सारी कहानी का सार यह है कि मजदूरी का निर्धारण (Fixation) तथा वितरण, काम करने के घण्टो के आधार पर न होकर इस विचार द्वारा होना चाहिए कि प्रत्येक मजदूर को समान मजदूरी पाने का अधिकार है। सारी पुस्तक मे रस्किन को एक यही विचार उद्वेलित किये है कि यदि शाम तक अड्डे पर खडे रहने वाले मजदूर को काम नही मिला, तो इसमे उस मजदूर का क्या दोष ? वह तो बेचारा सुबह से शाम तक की अपनी मेहनत समाज को भेंट चढाने के लिए तैयार था। इसमे कसूर तो उस समाज-व्यवस्था का है, जिसने उसकी मजदूरी का फायदा नही उठाया। दिन भर ठाली खडे रहने का अर्थ यह नही है कि वह दिन भर आराम करता या काम करना नही चाहता था। अत विद्वान लेखक इस निर्णय पर पहुचता है कि मजदूरी बाँटते समय एक मालिक को घण्टो पर ध्यान न देकर इस आखिरी आदमी से सबको बराबर मजदूरी बाटनी चाहिए। यह कथा सर्वोदय भावना का मूल आधार है। यह सिद्ध करती है कि एक मालिक को अपनी सम्पत्ति को यथा इच्छा खर्च करने का अधिकार है किन्तु उसे चाहिए कि वह सामाजिक व्यवस्था द्वारा उत्पन्न बुराइयों के कारण, गरीब या शोषित वर्ग को उनकी सजा न दे।

गाधीजी और सर्वोदय (Gandhiji and Sarvodaya) अपनी आत्मकथा में सर्वोदय सिद्धान्त तथा रस्किन के (Unto This Last) की चर्चा करते हुए पूज्य बापू लिखते हैं कि, 'मेरा यह विश्वास है कि जो चीज मेरे अन्तरतम मे बसी हुई थी, उसका स्पष्ट प्रतिबिम्ब मैने रस्किन के इस ग्रन्थ रत्न मे देखा और इस कारण उसने मुझ पर अपना साम्राज्य जमा लिया और अपने विचारो के अनुसार मुझसे आचरण करवाया। सर्वोदय के सिद्धान्त को मै इस प्रकार समझता हूँ।

(१) सब के भले मे अपना भला है।

(२) वकील और नाई दोनो के काम की कीमत एकसी होनी चाहिए।

(३) आजीविका का हक दोनो का एकसा है।

(४) सादा मजदूर का और किसान का जीवन ही सच्चा जीवन है।

'पहली बात मै जानता था। दूसरी का मुझे आभास हुआ करता था। पर तीसरी तो मेरे विचार क्षेत्र मे आई तक नही थी। पहली बात मे पिछली दोनो बात समाविष्ट हैं, यह बात सर्वोदय से मुझे सूर्य प्रकाश की तरह स्पष्ट दिखाई देने लगी। सुबह होते ही मै उसके अनुसार अपने जीवन को बनाने की चिन्ता में लगा।''

सर्वोदय ही क्यों ? (Why Sarvodaya)—यह प्रश्न स्वाभाविक है कि जब राजनीति शास्त्र मे इतने अधिक वादो की भरमार है तो फिर सर्वोदय जैसी एक नवीन व्यवस्था की कल्पना करने की आवश्यकता क्यो आ पडी है ? मानववाद तथा उपयोगितावाद (Utilitarianism) जैसे दो बडे दर्शन जो सार्वजनिक कल्याण की

अपना अंतिम उद्देश्य बना कर चलते हैं, उनकी तुलना में सर्वोदय व्यवस्था में ही ऐसी क्या विशेषता है जो उन दो को वर्तमान समाज के लिए अनुपयुक्त तथा सर्वोदय को ही एक मात्र उपयुक्त तथा उपयोगी व्यवस्था प्रमाणित करती है।

१. मार्क्सवादी वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त दूषित है—सर्वोदय तथा मार्क्सवाद में यह मूल तथा मौलिक अन्तर है कि जब कि मार्क्स समाज को द्वेष, स्वार्थ, तथा संघर्ष की भावनाओं के आधार पर विभिन्न वर्गों में विभाजित मानता है जो इतिहास के आदि काल से परस्पर में संघर्ष करते रहे हैं, तो सर्वोदय यह पहले से ही मान कर चलता है कि ऐसा कोई भी वर्गभेद समाज तथा सामाजिक जीवन में अस्वाभाविक (Unnatural) है क्योंकि प्रकृति से मनुष्य में प्रेम और सहयोग की भावनायें अधिक हैं। मार्क्सवादी वर्ग सिद्धान्त मनुष्य को एक पूर्णतः भौतिकवादी प्राणी मान कर चलता है और उसके सारे आत्मिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों का अस्वीकार करता है, जो सर्वथा असत्य है। मनुष्य में हिंसा की वृत्ति हो सकती है किन्तु यह नियम नहीं केवल एक अपवाद (Exception) है और उसी को एक ध्रुव सत्य मान लेना इतिहास से आँखें मींचना है। यदि मनुष्य प्रेम, दया, सहानुभूति तथा करुणा से बिलकुल रहित होकर पूर्णतः स्वार्थी, झगड़ालू तथा ईर्षालु होता, तो आज के समाज में दिखाई देने वाले पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय संगठन सर्वथा असम्भव होते। अतः हम इसे अस्वीकार नहीं कर सकते कि जहाँ मार्क्स जैसा ठोस विचारक एक भारी भूल कर गया है वहाँ सर्वोदय एक अत्यन्त ध्रुव तथा सर्वप्रमाणित सत्य को लेकर चलता है।

२. अधिकतम व्यक्तियों के अधिकतम हित की उपयोगितावादी बात भी ठीक नहीं—उपयोगितावादी यह दृष्टिकोण कि सरकार का उद्देश्य अधिक से अधिक व्यक्तियों का अधिक से अधिक हित करना है अथवा वह समाज जिसमें अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम हित उपलब्ध हो वह एक पूर्ण समाज है, सर्वथा दूषित है। बाहरी रूप से यह सिद्धान्त चाहे कितना ही आकर्षक क्यों न लगे, किन्तु गहराई से सोचने पर इसका अर्थ केवल किसी एक वर्ग अथवा समूह का भला मात्र रह जाता है। यह मत केवल बहुमत के कल्याण की बातें करता है और उन योग्य तथा विद्वान व्यक्तियों को सर्वथा भूल जाता है जो समाज में सदैव अल्पमत (Minority) में होते हुए भी, उसके अविभाज्य अंग होते हैं। अपने सर्वोदय आदर्श सार्वजनिक कल्याण के सर्वोदय आदर्श की चर्चा करते हुए महात्मा गाँधी ने उपयोगितावाद के विषय में लिखा है, "मैं ज्यादा से ज्यादा संख्या के ज्यादा से ज्यादा भले के सिद्धान्त को नहीं मानता। उसे नग्न रूप में देखें तो उसका अर्थ यह हो जाता है कि ५१ फी सदी के मान लिए गये हितों की खातिर ४९ फी सदी के हितों का बलिदान कर दिया जाना उचित है। सिद्धान्त निर्दय है और इससे मानव समाज की बहुत हानि हुई है।" इसके विपरीत सर्वोदय सबके हित तथा कल्याण का आदर्श मानकर चलता है अतः वह इससे अधिक पुष्ट तथा सबल सिद्धान्त है।

१ सर्वोदय का आदर्श (Ideal of Sarvodaya) नैतिक पवित्रता—सर्वोदय का सिद्धान्त केवल एक भौतिक समाज का दर्शन ही नहीं है, बल्कि यह एक नैतिक विचारधारा है जो आत्मा के पतन का भौतिक लाभ (Material gains) की तुलना में बहुत ही तुच्छ व मूल्यहीन मानती है। सर्वोदय सिद्धान्त इस विचार का एक ध्रुव सत्य मानता है कि एक के हित से दूसरे का भी कोई अहित नहीं हो सकता बल्कि सबका हित होगा। सर्वोदयवादियों के अनुसार यदि एक मिल मालिक मजदूर को कम वेतन देता है तो इसका अर्थ यह नहीं कि मालिक को लाभ तथा मजदूर का कोई हानि हुई। भौतिक अथवा आर्थिक रूप में चाहे ऐसा लगता हो, किन्तु यदि नैतिक (moral) दृष्टि से देखा जाय तो उस मालिक को एक बहुत बड़ी नैतिक हानि हुई है जो इन कुछ चन्द चाँदी के टुकड़ों से कहीं अधिक कीमती व मूल्यवान है।।

२ समाज एक इकाई (Society A Unity)—सर्वोदय समाज की कल्पना एक इकाई की कल्पना है। संत विनोबा के अनुसार "हमें चाहिए कि हम समाज को एक शरीर के रूप में देखें।" समूचे समाज का व्यक्तित्व एक है और जिस प्रकार शरीर के एक अंग हाथ, कान, नाक आदि का कष्ट देकर यदि हम अन्य अंगों को आराम पहुँचाने की सोचें तो यह बहुत बड़ी मूर्खता होगी, ठीक इसी प्रकार समाज का एक अंग कुचलने पर पीड़ा की कराहट सारे समाज को भासित होगी। इसके विपरीत यदि आँखों की रोशनी की वृद्धि के लिए हम घी खाते हैं तो उसकी पुष्टता केवल आँखों को ही नहीं, वरन् हाथ, पैर, स्कंध तथा मस्तिष्क सबको मिलेगी। अतः यह स्वयं सिद्ध है कि समाज के एक व्यक्ति का हित सार्वजनिक हित है क्योंकि मानव शरीर की रचना में केवल हाड़ मांस ही नहीं वरन् मन और हृदय भी है।

३ भेदहीन समाज (Society having no difference)—सर्वोदय समाज की एक सबसे बड़ा विशेषता यह भी है कि वह वर्गहीन ही नहीं बल्कि भेदहीन भी है। सर्वोदय के प्रवर्तक मनुष्य मनुष्य में किसी भी आधार पर कोई भेद नहीं करते। उनके अनुसार समस्त वसुधा पर रहने वाली सारी मानवता एक जगन्नियन्ता का विशाल परिवार है। मनुष्य मनुष्य का मूल्य बराबर है और इसीलिए हम सब एक हैं और एक दूसरे के हैं। शत्रु मित्र, पवित्र अपवित्र, छूत अछूत, गोरा काला, स्त्री पुरुष आदि सारे विभेद कृत्रिम (Artificial) हैं और इन ध्वस्त दीवारों की मरम्मत करना, एक नैतिक अनाचार (moral degeneration) है।

४ साधन शुद्धि की आवश्यकता (Necessity of the purity of means)—गाँधीजी का यह दृढ़ विश्वास था कि एक पवित्र उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उसके साधन भी इतने ही पवित्र होने चाहिए। वे मानते थे कि साधन की अपवित्रता, लक्ष्य की पावनता को भी भ्रष्ट कर देती है और इसीलिए उन्होंने अपने अनेकों पवित्र लक्ष्यों को कई बार छोड़ भी दिया था क्योंकि उनको प्राप्त करने, के साधन हिंसात्मक तथा जंगली हो गये थे। नैतिकता गाँधीवाद का मूलमंत्र है और इसीलिए सर्वोदय समाज

की स्थापना जसे पवित्र लक्ष्य की प्राप्ति के लिए गांधीजी चाहते थे कि अहिंसा, प्रेम, सत्य, सद्बुद्धि आदि पवित्र नैतिक बल के साधनों का ही प्रयोग किया जाय। यहां पर सर्वोदय और साम्यवाद मे एक बुनियादी अन्तर है। मार्क्स वर्गहीन समाज की स्थापना के लिए प्रोलिटेरियट को पूंजीपति के विनाश के लिए एक क्रूर व हिंसक रक्तरंजित क्रान्ति का उपदेश देता है, किन्तु गांधीजी कहा करते थे – "यह लोग कहते हैं कि साधन तो आखिर साधन ही हैं। मैं कहता हूं साधन ही सब कुछ है। जैसा साधन होगा साध्य भी वैसा ही हो जायगा। ईश्वर ने हमें साधन पर नियन्त्रण रखने की शक्ति दी है और वह भी बहुत सीमित – साध्य पर बिलकुल नहीं। साधन पर जितना अमल होगा साध्य की प्राप्ति उसी अनुपात में होगी।"

सर्वोदय के आधार
(Grounds of Sarvodaya)

(१) अहिंसा (Nonviolence)—सर्वोदय समाज अगर एक सत्य अथवा वास्तविकता बन सकता है तो उसका मूल आधार सिवा अहिंसा के और कुछ भी नहीं हो सकता। सभ्यता का विकास साक्षी है कि मनुष्य पहले जंगली तथा असभ्य था और कुनबे, कबीले, ग्राम, नगर, राज्य तथा राष्ट्र आदि का निर्माण कर वह हिंसा को त्याग कर अहिंसात्मक ढंग से मिलजुल कर रहने की कला सीख रहा है। लड़ाई, झगड़े तथा ईर्ष्या के आधार पर कभी समाज का निर्माण नहीं हो सकता, अतः सर्वोदय समाज जो कि विश्व बन्धुत्व का आदर्श सामने लेकर चलता है, अहिंसा की मूल भित्ति पर ही आधारित है।

(२) विकेन्द्रीकरण (Decentralization)—यद्यपि सर्वोदय मार्क्सवाद की भांति पूंजीवाद की एक दम बल पूर्वक समाप्ति नहीं चाहता किन्तु सिद्धान्त रूप में उसका उद्देश्य एक विकेन्द्रीकृत समाज की स्थापना करना है। सर्वोदय के संस्थापक यह नहीं चाहते कि केन्द्रित उत्पादन (Centralized production) हो जिसमें कुछ आदमी ही यन्त्रों की सहायता से इतना अधिक पैदा करलें कि उसके उपभोग के लिए उसे बाहर भेजना पड़े। दूसरे शब्दों मे सर्वोदय समाज में उत्पादक (Producer) और उपभोक्ता (Consumer) के बीच मे कोई खाई नहीं होगी जो जिस वस्तु को पैदा करेगा वह ही उसका उपभोग भी। गांधीजी का विश्वास था कि जिस चीज को पैदा करने मे हमें अपना श्रम नहीं खर्च करना पड़ता तथा जिसके पैदा करने वालों के जीवन का हमें ज्ञान नहीं है, उसके उपभोग में भी हमें आनन्द नहीं मिल सकता। केन्द्रित उत्पादन से समाज में प्रेमपूर्ण सहयोग नहीं रहता अतः सर्वोदय एक विकेन्द्रित प्रणाली का समर्थन करता है।

(३) ग्राम स्वावलम्बन (Village Self Sufficiency)—सर्वोदय के पारस्परिक प्रेम तथा सहयोग का यह अर्थ कदापि नहीं है कि हम बात-बात में परावलम्बी बन जायें। सच्चे अर्थों मे इसका मतलब यह है कि सारे समाज में गांव अथवा प्रादेशिक इकाइयों के रूप में इस प्रकार की व्यवस्था हो कि ग्रामीणों की

समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति उनके गाव म ही हो जाय और उन्हें उनके लिए यथा सम्भव दूर दूर के आदमियो का आश्रय न लेना पड़े। किन्तु इस ग्राम स्वावलम्बन का अर्थ कभी दूसरो का शोषण नही होना चाहिए क्योंकि गांधीवाद जिस प्रकार दूसरों द्वारा शोषण नही पसन्द करता है इसी प्रकार दूसरो का शोषण करने का भी विरोधी है। स्वयं बापू ने भी एक स्थान पर लिखा है, 'गावो म फिर से जान तभी आ सकती है जब वहा की लूट खसोट रुक जाय। हमे इस बात की सबसे ज्यादा कोशिश करनी चाहिए कि गाँव हर बात म स्वावलम्बी और पूर्ण हो जाये, सिर्फ अपनी जरूरत पूरी करने जितनी ही चीज तैयार करें। (हरिजन सवक—29 8 1936)

(४) ग्राम उद्योग तथा कुटीर व्यवसाय (Cottage and Rural industries) आज इस मशीन और औद्योगिक युग म भी सर्वोदय कुटीर व्यवसाय व ग्राम उद्योगो को प्रोत्साहन देने की बातें करता है, यह बात बहुत लोगो को अखरती है। किन्तु यदि ध्यान से देखा जाय तो आज के युग की जितनी भी समस्याये तथा उलझन हैं उन सब का सर्वोत्तम समाधान इन दो शब्दो म मिल सकता है। सर्वोदय का यह आशय कदापि नही है कि कुटीर उद्योगो का पनपाने के लिए यन्त्रो की समाप्ति कर दी जाय। यह कोई यन्त्र विरोधी विचारधारा नही है जैसा कि कुछ आलोचको का मिथ्या भ्रम है कि यह रेलयुग मे बैलगाडी म यात्रा करने की कहती है। सत्य यह है कि सर्वोदय मशीन का स्वागत करता है किन्तु यह नही चाहता कि उसका प्रयोग इतना व्यापक हो कि सर्वत्र बेकारी फैल जाय और उसके कारण एक वर्ग दूसरे वर्ग का शोषण करने लगे। स्वयं महात्माजी ने कहा था—" मै ऐसी मशीन का स्वागत करूगा जो झोपडा म रहने वाले करोडो मनुष्यो के बोझ का हल्का करती है। किन्तु करोडो सजीव मनुष्यो के मुकाबले जो भारत के सात लाख गाँवो में हैं, निर्जीव मशीन को स्थान नही दिया जा सकता।' इसीलिए सर्वोदय ग्राम मे उजडे तथा ध्वस्त स्थिति मे पडे हजारो लाखो बेकार करघा, धान कूटने, आटा पीसने, गुड बनाने, तेल पेरने आदि के व्यवसायो को पुनर्जीवित करना चाहता है। वह विशाल कल कारखानो के इस युग म तकली तथा चर्खे की बात इसलिए करता है कि लाखो की सख्या में अस्त व्यस्त फँसे हुए ग्रामो के करोडो निधन और बेकार लोगो का पेट भरने मे मशीन सर्वथा असमर्थ है। पूज्य विनोबा जी के शब्दो म "जिस दिन भी भारत की करोडो की सख्या मे ग्रामवासिनी जनता का चर्खे के अतिरिक्त पेट पालने का अन्य कोई साधन आविष्कृत हो जायगा, उसी दिन मैं अपने चर्खे को जलाकर एक दिन का भोजन पकाकर खाऊ गा।" श्रीमन्नारायण अग्रवाल के भाषण से—'दूसरे कुटीर व्यवसाय तथा उनसे बनी हुई चीज बहुत सस्ती व सादी होती है जिनके कारण ग्राम्य जीवन को शहरी जीवन के विषैले प्रभाव से अछूता रखा जा सकता है।

५ आर्थिक समानता (Economic equality)—सर्वोदय समाज म आर्थिक समानता लाने का अपना आदर्श रखता है। किन्तु इस समानता का अर्थ यह है कि सब की एक निश्चित निर्धारित आमदनी हो। समानता एक आपेक्षिक शब्द (Relative

tem) है और इसका मतलब यह नहीं है कि प्रत्येक को इतना धन मिले कि उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। अब प्रश्न यह है कि आवश्यकतायें कितनी होनी चाहिए इसका निर्णय कौन करे। सर्वोदयवादी यह मानते हैं कि मनुष्य की खाने पीने और रहने की मूल आवश्यकताओं के अतिरिक्त जो भी आवश्यकतायें हैं वे आवश्यकतायें नहीं बल्कि इच्छायें हैं और वे कृत्रिम आवश्यकतायें (Artificial wants) तथा परिग्रह की भावना ही विषमता को उत्पन्न करती है। अत समाज मे आर्थिक समानता की स्थापना के लिए इन पर नियन्त्रण होना परम आवश्यक है।

६ ट्रस्टीशिप (Trusteeship)—सर्वोदय मनुष्य को सच्चा और सादा जीवन बिताने का उपदेश देता है। आर्थिक समानता के लिए यह यह आवश्यक समझता है कि मनुष्य अपने अधिकार में केवल इतनी ही सम्पत्ति रखे जितनी आवश्यक है। जरूरत से ज्यादा चीजें रखने का मतलब समाज के अन्य सदस्यों को उससे वंचित करना है अत प्रत्येक व्यक्ति अपनी सम्पत्ति का अपने को स्वामी न समझ कर एक ट्रस्टी (Trustee) समझे और सार्वजनिक हित को ध्यान में रखते हुए ही उसका उपभोग करे। स्वर्गीय बापू के शब्दों में—'आज के धनवानों को यह मार्ग के और स्वेच्छा से धन के ट्रस्टी बन जाने के, दो रास्ता में से एक को चुन लेना होगा। उन्हें अपनी मिल्कियत की रक्षा का हक होगा। उन्हें यह भी हक होगा कि अपने स्वार्थ के लिए नही बल्कि मुल्क के भले के लिए दूसरो का शोषण न करके वे धन को बढ़ाने मे अपनी बुद्धि का उपयोग करें।' इस प्रकार ट्रस्टीशिप की पद्धति एक अहिंसात्मक क्रान्ति द्वारा आर्थिक समानता लायेगी और दया तथा प्रेम के आधार पर गरीबों को ऊँचा लाने के लिए अमीर लोग त्याग करेंगे। यही 'हृदय परिवर्तन' गांधीवाद तथा सर्वोदय दोनो का मूल मन्त्र है।

७ अपरिग्रह (Spirit of Sacrifice)—भारतीय परम्पराओ के अनुकूल सर्वोदय की भावना एक नैतिक भावना है जो मनुष्य को अपनी धार्मिक तथा सामाजिक उन्नति करने के लिए त्याग तथा तपस्या का जीवन बिताने का उपदेश देती है। जीवन के प्रति सर्वोदय का दृष्टिकोण यह है कि मनुष्य को अपने मन मे सांसारिक भौतिक सुखो के प्रति अनासक्ति की भावना जाग्रत करनी चाहिए। उसे चाहिए कि वह आसक्ति, अनुराग अथवा संग्रह की लालसा न रखे, बल्कि केवल उतने से ही सुखी तथा सन्तुष्ट रहे जो जीवन मात्र के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

- राष्ट्रीयता, अन्तर्राष्ट्रीयता और सर्वोदय (Nationalism, Internationalism and Sarvodaya)—सर्वोदय के मूल सिद्धान्त सत्य, अहिंसा तथा चारित्रिक उच्चता है और व्यक्तिगत जीवन की भाँति राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओ के लिए भी वह सत्य तथा अहिंसा के उपयोग का ही आदेश देता है। राजनीति मे भी सत्य, अहिंसा तथा सादगी का यह उपदेश सर्वोदय का अपना विशिष्ट दृष्टिकोण है जो राजनीति शास्त्र के इतिहास मे एक बहुत गम्भीर क्रान्ति कहा जा सकता है। अब तक लोग राजनीति को धूर्त, मक्कार तथा दुष्टो का व्यापार समझते आये हैं, किन्तु सर्वोदय

प्रवर्तक बापूजी के शब्दों में "धर्म विहीन राजनीति कोई चीज नहीं है तथा नीति शून्य राजनीति सर्वथा त्याज्य है।" महात्माजी के इसी आदर्श को मानते हुए सर्वोदय वादी चाहते हैं कि शत्रु को भी मित्र समझा जाय तथा अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं का सुलझाने में भी भौतिक बल की अपेक्षा नैतिक बल का ही प्रयोग किया जाय जो उससे किसी भी दृष्टि से कम शक्तिशाली नहीं है। अपने नेतृत्व में भारत का अहिंसक स्वतन्त्रता संग्राम लड़ कर गांधीजी ने यह सिद्ध कर दिया कि नैतिक बल शारीरिक बल से कहीं अधिक बलवान है और उसके द्वारा विजय पाने पर शत्रु से भी मित्रता बनी रह सकती है।

सर्वोदय की व्यावहारिकता में कठिनाई (Difficulties in the Practical working of Sarvodaya)—यह एक बड़ी आश्चर्यजनक तथा दुःखपूर्ण बात है कि आज के युग के लगभग सभी राजनीतिज्ञों तथा विचारकों का निर्विरोध समर्थन पाते हुए भी सर्वोदय समाज आज तक एक व्यावहारिक यथार्थता (Practical reality) नहीं बन सका। आज चिन्तनीय यही है कि सैद्धान्तिक रूप से सर्वमान्य होते हुए भी हम इतने कायर क्यों बने हुए हैं कि उसे व्यावहारिक रूप देने का साहस नहीं करते। इस प्रसंग में सर्वोदय सम्मेलन के पांचवें अधिवेशन (मार्च १९५३) के आचार्य विनोबा के ये शब्द उल्लेखनीय हैं — "दुनियां का कोई भी मसला हिंसा से हल नहीं हो सकता। फिर भी सेना को सुदृढ़ बनाने की जिम्मेदारी हमें सब को महसूस होती है। यह विचित्र परिस्थिति है। हृदय एक ओर है और व्यवहार दूसरी ओर। हम चाहते तो यही हैं कि हम सारी दुनियां को प्यार से व अहिंसा से जीतें—किन्तु फिर भी हम सेना को हटा नहीं सकते क्योंकि जिस जनता के हम प्रतिनिधि हैं उसमें इतनी हिम्मत और बुद्धि नहीं—हृदय कहता है कि ग्रामोद्योग और छोटे-छोटे घरेलू उद्योग चलायें पर दूसरी ओर बुद्धि कहती है कि युद्ध यन्त्रों को मजबूत बनाने के लिए ये छोटे-छोटे ग्रामोद्योग सफल नहीं हो सकते—अहिंसा पर विश्वास रखते हुए भी हम शस्त्रबल और सैन्यबल का आधार नहीं छोड़ते यह स्थिति दाम्भिकतापूर्ण भले ही न हो पर दयनीय अवश्य है।"

इस व्यावहारिक कठिनाई को जीतने के लिए भी हमें सर्वोदय का मार्ग ही अपनाना होगा। हिंसा और दण्ड शक्ति से भिन्न एक प्रबल लोक शक्ति का निर्माण ही इस कठिनाई को हटा सकता है। अतः जनता का कर्त्तव्य है कि वह जनमत द्वारा एक ऐसी परिस्थिति का निर्माण करे, जिसमें सरकार को दण्डशक्ति के उपयोग की आवश्यकता ही न पड़े और स्वतः एक सर्वोदय समाज का निर्माण सम्भव हो सके।

भारत में सर्वोदय (Sarvodaya in India)—वैसे तो सर्वोदय एक सार्वदेशिक समाज है, जो किसी भौगोलिक सीमाओं में नहीं बांधा जा सकता किन्तु क्योंकि इस विचारधारा का जन्म विशेषतः भारत में ही हुआ है अतः भारत ही एक ऐसा देश है जिसने महात्माजी के पद चिह्नों पर चलते हुए सर्वोदय के अधिकांश सिद्धान्त अहिंसा अपरिग्रह आदि को कार्य रूप में परिणित करने के बहुत कुछ प्रयास किये हैं।

महात्माजी जीवन भर सर्वोदय के मार्ग पर चले तथा अपने आश्रम के निस्स्वार्थ कार्यकर्ताओं को भी उन्होंने सर्वोदय का ग्यारह व्रत का आजीवन उपदेश दिया। सन् १९३० में जब वे यरवदा जेल में थे तब उन्होंने सर्वोदय के ११ व्रतों की गणना इस प्रकार की थी, जो उनके मुख्य छत्र भी कहे जा सकते हैं।

सर्वोदय के व्रत (Principles of Sarvodaya)—(१) सत्य, (२) अहिंसा, (३) ब्रह्मचर्य, (४) अस्वाद, (५) अस्तेय, (६) अपरिग्रह, (७) अभय, (८) अस्पृश्यता निवारण, (९) शारीरिक श्रम, (१०) सर्वधर्म समभाव और (११) स्वदेशी।

इन ग्यारह व्रतों की यहाँ व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं। इनका अर्थ तथा उपयोगिता स्वयं सिद्ध है। बिना इन सिद्धान्तों का अनुसरण किये समाज में सुख, शान्ति तथा समृद्धि का आवास नहीं हो सकता। अतः सर्वोदय पथ के पथिकों का कर्तव्य है कि वे इन ग्यारह व्रतों का दृढ़ निश्चय तथा नम्रता से पालन करें।

सेवा संघ और सर्वोदय (Seva Sangh & Sarvodaya) - महात्माजी के निर्वाण के पश्चात् १९४८ में सेवाग्राम (वर्धा) में होने वाले रचनात्मक कार्यकर्ताओं के सम्मेलन से सर्वोदय समाज का जन्म होता है। इस सम्मेलन में यह निश्चय किया था कि गाँधीवादी विचारधारा को मानने वाले व्यक्तियों के एक समाज की स्थापना की जाय और उसका नाम सर्व सेवा संघ रखा जाय। इसी अवसर पर सर्वोदय समाज के उद्देश्यों की घोषणा भी की गई जो इस प्रकार है, सर्वोदय समाज का उद्देश्य सत्य और अहिंसा पर एक ऐसा समाज बनाने की कोशिश करना है, जिसमें जात पात न हो, जिसमें किसी का शोषण करने का मौका न मिले और जिसमें समूह और व्यक्ति दोनों को पूरा-पूरा विकास करने का अवसर मिले।" जो व्यक्ति इस सर्वोदय के इस उद्देश्य से सहमत हो वह अपना नाम मन्त्री, सर्वोदय समाज वर्धा के पास रजिस्टर करा के संघ का सेवक बन सकता है।

सर्वोदय का कार्यक्रम (Function of Sarvodaya)—यों तो सर्वोदय कार्यक्रम इतना व्यापक तथा बहुमुखी है कि उसकी कोई व्याख्या नहीं हो सकती, फिर भी मोटे रूप में सर्वोदय कार्यक्रम का निर्धारण निम्नलिखित रूप में किया गया है —

(१) साम्प्रदायिक एकता, (२) अस्पृश्यता निवारण, (३) जाति भेद निराकरण, (४) नशाबन्दी, (५) खादी और दूसरे ग्राम उद्योग, (६) ग्राम सफाई, (७) नई तालीम, (८) नारी समानाधिकार की प्रतिष्ठा, (९) आरोग्य और स्वच्छता, (१०) देश की भाषाओं का विकास, (११) प्रान्तीय संकीर्णता की समाप्ति, (१२) हिन्दुस्तानी का राष्ट्रभाषा के तौर पर प्रचार, (१३) आर्थिक समानता, (१४) खेती की तरक्की, (१५) मजदूर संगठन, (१६) आदिम जातियों की सेवा, (१७) विद्यार्थी संगठन, (१८) कुष्ठ रोगियों की सेवा, (१९) संकट निवारण और दुखियों की सेवा, (२०) गो सेवा, (२१) प्राकृतिक चिकित्सा, (२२) इसी प्रकार के सार्वजनिक कल्याण के कार्य।

सर्वोदय का प्रचार कार्य (Teaching of Sarvodaya)—अपने इस व्यापक कार्यक्रम को हिन्दुस्तान की झोंपड़ी झोंपड़ी तक पहुँचाने के लिए तथा जन-

साधारण को समझाने के लिए "सर्व सेवा संघ" वर्धा ने निम्नलिखित कार्य सुझाये हैं —

१ सर्वोदय दिवस मनाना (Celebrate Sarvadaya Day)—प्रतिवर्ष ३० जनवरी (महात्मा गांधी निर्वाण दिवस) अपने घरों, ग्राम, मुहल्लों आदि की सफाई करके, एक दो घण्टे सामूहिक मौन, कताई तथा सामूहिक प्रार्थना आदि के द्वारा सर्वोदय दिवस मनाया जाय।

सर्वोदय मेला (Sarvodaya Mela)—प्रतिवर्ष १२ फरवरी को जिस दिन गांधीजी का अस्थि विसर्जन संस्कार हुआ, उन ऐसे सभी पवित्र स्थानों में जहाँ अस्थियाँ विसर्जित की गई थी गांधी मेला का आयोजन किया जाय, जिसमें सूताञ्जलि आदि के विक्रय द्वारा श्रमदान आदि पर चलने वाली संस्थाओं की सहायता की जाय तथा गांधीजी के आदर्शों को जनता को समझाया जाय।

३ सर्वोदय पखवारा (Sarvodaya fortnight period)—(३० जनवरी से १२ फरवरी तक) इन पन्द्रह दिनों में सर्वोदय साहित्य का प्रचार किया जाय तथा सभा, प्रवचन, उपदेश आदि के द्वारा जनता को सर्वोदय के उद्देश्यों तथा आदर्शों से अवगत कराया जाय।

४ सर्वोदय सम्मेलन (Sarvodaya Sammelan)—सर्वोदय समाज सेवकों का तीन चार दिन का एक शिविर प्रतिवर्ष लगाया जाय।

५ सर्वोदय मासिक पत्र (Sarvodaya Monthly)—यह पत्र वर्धा से प्रकाशित होता है तथा विनोबाजी व दादा धर्माधिकारी इसके सम्पादक हैं।

भूदान यज्ञ (Bhoodan Yagya)—सर्वोदय समाज की स्थापना के लिए पहला रचनात्मक कदम भूदान के रूप में आचार्य विनोबा ने अप्रेल सन् १९५१ में उठाया। उस समय दक्षिण भारत में तेलंगाना की पैदल यात्रा करते हुए आचार्यजी ने यह अनुभव किया कि समाज के एक बहुत बड़े भाग के पास उत्पादन के साधनों का न होना एक बहुत बड़ा अभाव है और जब तक ये कुछ जमींदार अथवा पूँजीपति लोग सारी भूमि के स्वामी बने रहेंगे तब तक भूखे नंगे तथा बेकार आदमियों से सर्वोदय की बातें करना एक निरी मूर्खता के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता। अतः भूमि के स्वामित्व पर इस असमानता को मिटाने के लिए विनोबाजी ने फिर एक अहिंसात्मक आन्दोलन करने की सोची जो आज एक देशव्यापी भूदान आन्दोलन के रूप में हमारे सामने हैं। गांधीजी के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी होने के कारण विनोबाजी हृदय परिवर्तन में विश्वास करते हैं और उनकी यह दृढ़ धारणा है कि इन बड़े-बड़े जमींदारों को बलपूर्वक खत्म न करके नैतिक बल द्वारा ही ठीक किया जा सकता है। अतः उन्होंने गरीबों तथा भूमिहीनों के लिए उदार रूप में भूमि मांगने का कार्य आरम्भ किया। पहले एक साल तक तो वे अकेले ही इसका प्रचार करते रहे किन्तु इस आन्दोलन की आशातीत सफलता ने शीघ्र ही इसे एक देशव्यापी क्रान्ति बना दिया। सेवापुरी सम्मेलन में

के बाद इस यज्ञ के लिए अधिक उत्साह के साथ कार्य किया जाने लगा तथा स्थान स्थान पर स्वयं सेवकों द्वारा भूमि संग्रह का कार्य शुरू किया गया। विनोबाजी ने बिहार पर सारी शक्ति केंद्रित करदी और उसके द्वारा सारे भारत के सम्मुख एक आदर्श रखने का निश्चय किया। प्रथम दो वर्षों में सारे देश के भूस्वामियों से २५ लाख एकड़ भूमि दानरूप प्राप्त करना उनका लक्ष्य था, जिसमें से ३१ मई सन् १९५४ के आँकड़ों के अनुसार ३३७१०७५ एकड़ भूमि उन्हें भूदान रूप में मिल चुकी है। इसमें से लगभग २१ लाख एकड़ भूमि अकेले बिहार राज्य से मिली है जो इस बात का प्रमाण है कि इस आंदोलन के पीछे कितना बल है और जनसहयोग मिलने पर यह कितनी भारी रक्तहीन सामाजिक क्रांति कर सकता है। प्राप्त भूमि में से अब तक की सूचना के अनुसार ५७३२८ एकड़ भूमि भूमिहीनों को वितरित की जा चुकी है, जिसको प्राप्त करने वाले परिवारों की संख्या १६१३४ है। विनोबाजी का लक्ष्य सन् १९५७ तक सारे देश से ५ करोड़ एकड़ भूमि प्राप्त करना है जिससे प्रत्येक भारतीय किसान परिवार को छः सात एकड़ भूमि मिल सके। आजकल यह यज्ञ बहुत तेजी से चल रहा है और भूदान बिल आदि द्वारा इस आंदोलन को प्रोत्साहित करने के लिए सरकार के इस दिशा में किये गये कार्य भी कम श्लाघनीय नहीं।

भूदान एक अहिंसात्मक सामाजिक क्रांति है, जिसकी पृष्ठ भूमि में विकेन्द्रीकरण और स्वावलम्बन की भावनायें निहित हैं। समाज के भूमिहीन कृषक को यह भूमि ही नहीं देता बल्कि उसको स्वामी के रूप में भी प्रतिष्ठित करता है। यह एक पवित्र यज्ञ है, जो गांधीजी के रामराज्य को स्वप्न से सत्य में बदलने के लिए पहला ठोस कदम भी कहा जा सकता है। यह आंदोलन भारत के लाखों मुरझाये तथा मलिन चेहरों को फिर से मुस्कान प्रदान करता है और सामाजिक जीवन की ऊँच नीच की कृत्रिम प्राचीरों को ढहाकर एक वर्गहीन समाज की स्थापना करता है। निश्चय ही इसके द्वारा उत्पादन के साधनों का सम वितरण हुआ है जिसके बिना सर्वोदय आदर्श से उतर कर यथार्थता नहीं बन सकता।

सम्पत्तिदान (Sampatidan)—भूदान आंदोलन के साथ साथ सम्पत्तिदान आंदोलन भी जुड़ा हुआ है। यह आंदोलन समाज के उन भाइयों से अपील करता है जो एक वर्गहीन समाज की स्थापना के लिए, भूमि न देकर अपनी सम्पत्ति अपने गरीब और कंगाल भाइयों को अपने बराबर लाने के लिए दान रूप में दे सकते हैं। हमारे समाज में ऐसे अनेकों पूँजीपति हैं जो भूमिहीन होते हुए भी करोड़ों की सम्पत्ति के स्वामी बने बैठे हैं। सन्त विनोबा की उनसे अपील है कि वे अपनी आय अथवा सम्पत्ति का एक छोटा-सा भाग इस पवित्र आंदोलन में दान स्वरूप दे दें। इस दान राशि के वे ट्रस्टी अवश्य रहेंगे किन्तु उसका वितरण विनोबाजी द्वारा नियुक्त कोई समिति करेगी। सम्पत्तिदान सर्वोदय क्रांति का एक अङ्ग है अतः इसके साथ एक यह शर्त जुड़ी हुई है। केवल अच्छे साधनों से कमाई हुई सम्पत्ति ही इस सम्पत्तिदान आंदोलन में दान की जा सकती है, पापमय व्यवसाय द्वारा कमाया हुआ धन नहीं।

बहुत घनिष्ट रूप में सम्बद्ध हैं और इनमें जो अन्तर है वह भी बड़ा सूक्ष्म तथा जटिल है। यद्यपि जन साधारण इन तीनों शब्दों को समानार्थक (Synonymous) समझ कर बिना किसी भेदभाव के एक ही अर्थ में प्रयोग करता है किन्तु एक राजनीति के विद्यार्थी के लिए इस अन्तर को जानना परम आवश्यक है।

राष्ट्र क्या है (What is a nation)—अंग्रेजी के 'नेशन' (Nation) शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के 'Natio' शब्द से हुई है जिसका अर्थ है 'जन्म' या जाति (Birth or Race)। इसके आधार पर कुछ लोग राष्ट्र का अर्थ एक निश्चित भौगोलिक सीमा में रहने वाली जाति से करते हैं, किन्तु यह अर्थ सर्वथा अशुद्ध है। अपने सच्चे अर्थों में राष्ट्र शब्द इतना संकीर्ण (Narrow) नहीं है बल्कि इसके द्वारा एक बहुत व्यापक दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति होती है। राष्ट्र शब्द में एक राजनैतिक धारणा (Political Concept) छिपी हुई है और राष्ट्र केवल उसी जाति अथवा भौगोलिक सीमाओं में रहने वाले समूह को कहा जा सकता है जिनको राजनैतिक स्वाधीनता (Political Independence) प्राप्त हो। कोई भी गुलाम देश, अपनी सारी सांस्कृतिक तथा भौगोलिक एकताओं के होते हुए भी, राष्ट्रीयता (Nationality) की भावना रख सकता है, किन्तु राष्ट्र नहीं कहा जा सकता। दूसरे शब्दों में इस इस प्रकार कहा जायगा कि राष्ट्रीयता (Nationality) तथा राजनैतिक स्वाधीनता दोनों के मिलने पर राष्ट्र का निर्माण होता है। उदाहरण के लिए सन् १९४७ तक हमारे देश में राष्ट्रीयता की भावना थी, किन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् ही हमें यह सौभाग्य मिला है कि हम अपने आप को राजनीति शास्त्र की परिभाषा के अनुसार राष्ट्र कह सकें। ब्राईस (Bryce) आदि कुछ लेखकों का यह भी मत है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति से पहले भी यदि राजनैतिक प्रभुत्व (Political Sovereignty) की भावना किसी देश की जनता में विद्यमान है तो उसे भी राष्ट्र कहा जा सकता है। उनकी परिभाषा के अनुसार "राष्ट्र एक ऐसी राष्ट्रीयताधारी राजनैतिक जाति अथवा व्यवस्था का नाम है, जो स्वाधीन हो अथवा स्वाधीन होने की प्रबल इच्छा रखती हो।" (A Nation is a nationality which has organised itself into a political body either independent or desiring to be independent) राजनैतिक प्रभुत्व के अतिरिक्त सांस्कृतिक, तथा सामाजिक एकता भी एक राष्ट्र के लिए बहुत जरूरी है।' राष्ट्र के सारे सदस्यों में यह भावना होनी चाहिए कि वे एक ही सरकार के अधीन रहेंगे। राष्ट्र एक सामूहिक, दृढ़ संगठन का नाम है अतः उसके सदस्यों को समान भाषा, धर्म, संस्कृति आदि के बन्धनों से बँधा हुआ होना भी उतना ही आवश्यक है जितना कि पारस्परिक सहयोग से मिल जुल कर रहने की भावना। श्री जे० एस० मिल (J S Mill) के कथनानुसार "एक राष्ट्र मनुष्य जाति का एक ऐसा भाग है जो अन्य लोगों की तुलना में एक दूसरे से समान सहानुभूतियों के धागे से संयुक्त हो तथा जिनमें एक ही समान सरकार के अधीन रहने की प्रबल इच्छा हो।" (A Nation is a portion of mankind united by common sympathies with each other rather than other

people with a desire to be under the same government) । इसी प्रकार प्रो० बर्गेस ने भी 'भौगोलिक एकता वाली किसी भूमि में निवास करने वाला सांस्कृतिक दृष्टि से एकता प्राप्त जनसमूह को" एक राष्ट्र बतलाया है। इन परिभाषाओं के आधार पर हम ब्रिटेन का उदाहरण ले सकते हैं। यद्यपि ब्रिटिश द्वीप समूह में, अंग्रेज, स्काट, आयरिश तथा वेल्स चार भिन्न-भिन्न जातियों के लोग रहते हैं, किन्तु सांस्कृतिक, भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक तथा भाषा आदि की दृष्टि से इन चारों राष्ट्रीयताओं में एक आन्तरिक एकता है। ये सब साथ में मिलकर एक ही सरकार के आधीन रहना चाहते हैं तथा राजनैतिक दृष्टि से भी इन्हें स्वाधीनता प्राप्त है। अतः चार विभिन्न राष्ट्रीयताओं का एक समूह होते हुए भी ब्रिटेन एक राष्ट्र कहा जाता है।

राष्ट्रीयता (Nationality)—'राष्ट्रीयता' एक भावना का नाम है। यह भावना आन्तरिक आत्मा में उत्पन्न होती है जिसके कारण कोई भी व्यक्ति या समुदाय एक दूसरे का अनुभव कर पारस्परिक एकता (Oneness) की अनुभूति को विकसित करता है। राजनीति के एक प्रसिद्ध विद्वान् के शब्दों में "राष्ट्रीयता वस्तुतः एक मनोवैज्ञानिक अवस्था अथवा मानसिक प्रवृत्ति या एक भावना मात्र है' (Nationality is a psychological disposition a condition of mind or a sentiment) जो किसी समुदाय के लोगों में सांस्कृतिक, भौगोलिक तथा भाषा आदि के पारस्परिक सम्बन्धों के कारण उत्पन्न होती है। प्रायः उन सभी समुदायों में जिनके सदस्यों का इतिहास, धर्म, जाति, भाषा, रीति रिवाज तथा आर्थिक स्वार्थ समान होते हैं, एकता की भावना अपने आप जाग्रत हो जाती है और ये लोग उन लोगों की तुलना में जिनका खान-पान, भाषा तथा संस्कृति भिन्न होती है, उनसे अधिक अपने समान धर्म, जाति, भाषा तथा एक सा इतिहास रखने वाले लोगों को स्वाभाविक रूप से ही अधिक प्रेम करने लगते हैं। उदाहरण के लिए यदि भारतवर्ष की संस्कृति में पले, हिन्दी भाषा भाषी किसी व्यक्ति की तुलना में पाश्चात्य संस्कृति में पला कोई अंग्रेजी भाषी विदेशी खड़ा किया जाय, तो हम निश्चय ही भारतीय व्यक्ति को अधिक प्रेम करेंगे तथा उसके साथ अधिकाधिक आत्मीयता व निकटता का अनुभव करेंगे। यही भावना हमारी राष्ट्रीयता की भावना है जिसके कारण यदि टैगोर और बरनार्ड शा में से हम से किसी एक को चुनने को कहा जाय तो हमारी श्रद्धा सहसा ही स्वाभाविक रूप से [illegible] टैगोर के प्रति अधिक शीघ्रता से आकर्षित होगी। इस प्रकार राष्ट्रीयता एक राजनैतिक वस्तु न होकर, अराजनैतिक (Non Political) वस्तु हुई, जिसका सम्बन्ध राजनीति की अपेक्षा संस्कृति से अधिक है। राष्ट्रीयता की भावना को राज्य से पृथक् बतलाते हुए हेज (Hayes) लिखते हैं कि "राज्य वस्तुतः एक राजनैतिक वस्तु है जबकि राष्ट्रीयता मूलतः सांस्कृतिक है और संयोगवश राजनैतिक।" (State is essentially political Nationality is primarily cultural and only accidentally political)। आधुनिक विचारक राष्ट्रीयता की परिभाषा करते हुए उसे जातीय, सांस्कृतिक तथा धार्मिक एकता की भावना से भी कुछ अधिक मानने लगे हैं।

उनका मत है कि यह एकता राष्ट्रीयता के विकास को पैदा करने में एक बहुत बड़ा तत्व है, किन्तु इस एकता को ही हम राष्ट्रीयता नहीं कह सकते। वर्तमान समय में राष्ट्रीयता से हम एक आध्यात्मिक भावना (Spiritual sentiment) का अर्थ लेते हैं, जो कि किसी भू भाग के नागरिकों के जीवन तथा आदर्शों से सम्बन्ध रखती है तथा सम्पूर्ण समाज का आर्थिक कल्याण चाहती है। जिमर्न (Zimmern) के शब्दों में इस प्रकार 'राष्ट्रीयता एक मानसिक स्थिति है, और अनुभूति, विचार तथा जीवन की एक ऐसी प्रणाली है जो ऐतिहासिक विकास के कारण उत्पन्न हुई है" (Nationality is a condition of mind, a way of living, feeling and thinking which is a product of historical development) इसी अर्थ को दूसरे शब्दों में व्यक्त करते हुए जे० एच० रोज (J H Rose) का कथन है कि "राष्ट्रीयता दिलों की एक ऐसी एकता है जो एक बार बनकर कभी नहीं टूटती।" (Nationalism is a Union of hearts, once made never unmade)।

राष्ट्रीयता के तत्व (Factors of Nationality)—एक जाति के लोगों में राष्ट्रीयता की भावना को उत्पन्न करने के लिए, जिन जिन अवस्थाओं अथवा परिस्थितियों की आवश्यकता होती है, उनकी गणना करना कठिन है। राष्ट्रीयता के इन तत्वों को राजनीति शास्त्र के विद्वानों ने अनेकों प्रकार से वर्णित किया है और यह माना है कि इन तत्वों के अभाव में राष्ट्रीयता का अस्तित्व सर्वथा असम्भव है। इन विभिन्न तत्वों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण कौनसा है? यद्यपि इसका निर्णय करना कठिन है, किन्तु इतना निश्चित अवश्य है कि इन सब के सामूहिक प्रभाव से ही राष्ट्रीयता की पुष्टि होती है और देश तथा काल के अनुसार इन तत्वों का महत्व भी घटता बढ़ता रहता है।

१ भौगोलिक एकता (Geographical Unity)—किसी देश की प्राकृतिक सीमाओं में निवास करना राष्ट्रीयता की भावना को जाग्रत करने वाला सबसे प्रमुख तत्व माना जाता है। जन्मभूमि अथवा स्वदेश एक इतना शक्तिशाली बन्धन है, कि उसका ममत्व विरक्त से विरक्त पुरुष भी नहीं त्याग सकता। उसके साथ मनुष्य का एक भावनात्मक प्रेम होता है और उसमें रहने तथा पाये जाने वाले प्रत्येक पदार्थ व पुरुष के प्रति, उससे हजारों मील दूर रहने वाले व्यक्तियों की अपेक्षा उसे अधिक आकर्षण का अनुभव होता है। यह आकर्षण तथा प्रेम स्वाभाविक है तथा ध्यान से देखे जाने पर इसके कारण भी बिलकुल स्पष्ट हैं —

(1) निश्चित भौगोलिक सीमाओं में रहने के कारण देश के सभी लोगों पर उस देश की जलवायु का प्रभाव पड़ता है और उनके शरीर की बनावट, आकृति, स्वभाव तथा रंग आदि प्रायः एक से पाये जाते हैं। उन लोगों की सारी शारीरिक, मानसिक तथा मनोवैज्ञानिक विशेषतायें एक-सी मिलेंगी, जिसके कारण उनमें परस्पर सहयोग, सहानुभूति तथा एक दूसरे को समझने की भावना भी अधिक देखने को मिलेगी। उदाहरण के लिए चीन के लोग चपटे चहरे वाले, ईरान के लोग लम्बे,

अफ्रीका के हब्शी तथा ब्रिटेन के कुछ-कुछ लाल रंग के होते हैं। यह विशेषता उनके सारे समुदाय को एक दूसरे के अधिक निकट ले आती है।

(ii) दूसरे मनुष्य की सहानुभूतियाँ सीमित हैं तथा वर्तमान समय में राष्ट्रीय जन्मभूमि ही एक वह उपयुक्त भौगोलिक इकाई है, जिसमें मनुष्य की परमार्थिक भावनायें (Altruistic feelings) और प्रेरणायें सक्रिय रूप से सफल बनाई जा सकती हैं। पहले मनुष्य अपने गाँव अथवा शहर को प्रेम करता था और सारे संसार के निवासियों को प्रेम करना आज भी उसके लिए कठिन है। वर्तमान स्थिति में केवल इतना ही सम्भव है कि वह अपने भौगोलिक देश के सब लोगों को प्रेम करे और यही स्वाभाविक व सरल भी है।

(iii) तीसरे भौगोलिक एकता द्वारा राष्ट्रीयता के विकास का एक सबसे बड़ा कारण यह भी है अपने निवास स्थान का प्रेम रखना मनुष्य का ही नहीं बल्कि पशुओं तक का स्वभाव है। अपने घर अथवा जन्म स्थान से पृथक् होने पर आदमी ऐसा अनुभव करता है, जैसे उसे किसी महान् सङ्कट में डाल दिया गया है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण उन लोगों के जीवन से देखा जा सकता है, जिन्हें देश निष्कासन की (Exile) की सजा मिली हो। इटालियन राष्ट्रीयता के प्रबल प्रचारक मज्जिनी (Mazzini) के शब्दों में 'हमारा देश हमारा घर है जो हमें ईश्वर द्वारा प्राप्त हुआ है—उसमें ऐसे अनेक परिवार हैं, जिनके साथ हम अधिक तत्परता से सहानुभूति रखते हैं, जिन्हें हम औरों की अपेक्षा अधिक शीघ्रता से समझ सकते हैं तथा जिनके साथ हम एक निश्चित स्थान पर एकत्रित होते हैं और एक्सी प्रकृति के कारण विशेष कोटि के काम भी करने के लिए अधिक उपयुक्त हैं।"

इस प्रकार उपरोक्त कारणों से स्पष्ट है कि निश्चित भौगोलिक सीमा में रहने वाले व्यक्तियों में एक आंतरिक तथा बाह्य एकता मिलेगी, जो उन्हें अनजाने ही एक धागे में पिरो देगी कि वे अपने को एक परिवार के सदस्य की भाँति अनुभव करेंगे। श्री रतस्वामी के ये शब्द कितने सार्थक हैं "राजनीति हमें विभक्त करती है। धर्म हमारे बीच में दीवारें खड़ी करता है। संस्कृति हमें एक दूसरे से पृथक् करती है, किन्तु हमारा देश तथा देश की धरती का प्यार हम एक सूत्र में बाँधता है।" (Politics divides us, Religion divides us, Culture divides us But the land and the love of the land unites us), यही राष्ट्रीयता की पहली सीढ़ी है। आज के लगभग सभी राष्ट्र भौगोलिक इकाइयाँ हैं, किन्तु फिर भी यह अनिवार्य नहीं कि भौगोलिक एकता के बिना राष्ट्रीयता की उत्पत्ति न हो सके। ग्रीक लोग प्राचीन नगर राज्यों में बिखरे हुए थे किन्तु फिर भी उनमें राष्ट्रीयता थी। अभी पैलेस्टाइन के मिलन से पूर्व यहूदी (Jews) लोगों का कोई अपना स्वदेश नहीं था किन्तु राष्ट्रीयता की भावना उनमें चिरकाल से थी जो यह प्रमाणित करता है कि भौगोलिक एकता के बिना भी राष्ट्रीयता का विकास सम्भव है।

उनका मत है कि यह एकता राष्ट्रीयता के विकास को पैदा करने में एक बहुत बड़ा तत्व है, किन्तु इस एकता को ही हम राष्ट्रीयता नहीं कह सकते। वर्तमान समय में राष्ट्रीयता से हम एक आध्यात्मिक भावना (Spiritual sentiment) का अर्थ लेते हैं, जो कि किसी भू भाग के नागरिकों के जीवन तथा आदर्शों से सम्बन्ध रखती है तथा समूचे समाज का आर्थिक कल्याण चाहती है। जिमन (Zimmern) के शब्दों में इस प्रकार "राष्ट्रीयता एक मानसिक स्थिति है, और अनुभूति, विचार तथा जीवन की एक ऐसी प्रणाली है जो ऐतिहासिक विकास के कारण उत्पन्न हुई है" (Nationality is a condition of mind, a way of living feeling and thinking, which is a product of historical development) इसी अर्थ को दूसरे शब्दों में व्यक्त करते हुए जे० एच० रोज (J H Rose) का कथन है कि "राष्ट्रीयता दिलों की एक ऐसी एकता है जो एक बार बनकर कभी नहीं टूटती।" (Nationalism is a Union of hearts, once made never unmade)।

राष्ट्रीयता के तत्व (Factors of Nationality)—एक जाति के लोगों में राष्ट्रीयता की भावना को उत्पन्न करने के लिए, जिन जिन अवस्थाओं अथवा परिस्थितियों की आवश्यकता होती है, उनकी गणना करना कठिन है। राष्ट्रीयता के इन तत्वों का राजनीति शास्त्र के विद्वानों ने अनेकों प्रकार से वर्णित किया है और यह माना है कि इन तत्वों के अभाव में राष्ट्रीयता का अस्तित्व सर्वथा असम्भव है। इन विभिन्न तत्वों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण कौनसा है ? यद्यपि इसका निर्णय करना कठिन है, किन्तु इतना निश्चित अवश्य है कि इन सब के सामूहिक प्रभाव से ही राष्ट्रीयता की पुष्टि होती है और देश तथा काल के अनुसार इन तत्वों का महत्व भी घटता बढ़ता रहता है।

१ भौगोलिक एकता (Geographical Unity)—किसी देश की प्राकृतिक सीमाओं में निवास करना राष्ट्रीयता की भावना को जाग्रत करने वाला सबसे प्रमुख तत्व माना जाता है। जन्मभूमि अथवा स्वदेश एक इतना शक्तिशाली बन्धन है, कि उसको ममत्व विरक्त से विरक्त पुरुष भी नहीं त्याग सकता। उसके साथ मनुष्य का एक भावनात्मक प्रेम होता है और उसमें रहने तथा पाये जाने वाले प्रत्येक पदार्थ व पुरुष के प्रति, उससे हजारों मील दूर रहने वाले व्यक्तियों की अपेक्षा उसे अधिक आकर्षण का अनुभव होता है। यह आकर्षण तथा प्रेम स्वाभाविक है तथा ध्यान से देखे जाने पर इसके कारण भी बिलकुल स्पष्ट हैं —

(i) निश्चित भौगोलिक सीमाओं में रहने के कारण देश के सभी लोगों पर उस देश की जलवायु का प्रभाव पड़ता है और उनके शरीर की बनावट, आकृति, स्वभाव तथा रंग आदि प्राय एक से पाये जाते हैं। उन लोगों की सारी शारीरिक, मानसिक तथा मनोवैज्ञानिक विशेषतायें एक-सी मिलेंगी, जिसके कारण उनमें परस्पर सहयोग, सहानुभूति तथा एक दूसरे को समझने की भावना भी अधिक देखने को मिलगी। उदाहरण के लिए चीन में लोग चपटे चहरे वाले, ईरान के लोग लम्बे,

अफ्रीका के हब्शी तथा ब्रिटेन में कुछ कुछ लाल रंग के होते हैं। यह विशेषता उनके सारे समुदाय को एक दूसरे के अधिक निकट ले आती है।

(ii) दूसरे मनुष्य की महानुभूतियाँ सीमित हैं तथा वर्तमान समय में राष्ट्रीय जन्मभूमि ही एक वह उपयुक्त भौगोलिक इकाई है, जिसमें मनुष्य की परमार्थिक भावनायें (Altruistic feelings) और प्रेरणायें सक्रिय रूप से सफल बनाई जा सकती हैं। पहले मनुष्य अपने गाँव अथवा शहर को प्रेम करता था और सारे संसार के निवासियों को प्रेम करना आज भी उसके लिए कठिन है। वर्तमान स्थिति में केवल इतना ही सम्भव है कि वह अपने भौगोलिक देश के सब लोगों को प्रेम करे और यही स्वाभाविक व सरल भी है।

(iii) तीसरे भौगोलिक एकता द्वारा राष्ट्रीयता के विकास का एक सबसे बड़ा कारण यह भी है अपने निवास स्थान को प्रेम करना मनुष्य का ही नहीं बल्कि पशुओं तक का स्वभाव है। अपने घर अथवा जन्म स्थान से पृथक होने पर आदमी ऐसा अनुभव करता है, जैसे उसे किसी महान् सङ्कट में डाल दिया गया है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण उन लोगों के जीवन से देखा जा सकता है, जिन्हें देश निष्कासन की (Exile) की सजा मिली हो। इटालियन राष्ट्रीयता के प्रबल प्रचारक मैज्जिनी (Mazzini) के शब्दों में 'हमारा देश हमारा घर है, जो हमें ईश्वर द्वारा प्राप्त हुआ है—उसमें एसे अनेकों परिवार हैं, जिनके साथ हम अधिक तत्परता से सहानुभूति रखते हैं, जिन्हें हम औरों की अपेक्षा अधिक शीघ्रता से समझ सकते हैं तथा जिनके साथ हम एक निश्चित स्थान पर एकत्रित होते हैं और एक सी प्रकृति के कारण विशेष कोटि के कार्य भी करने के लिए अधिक उपयुक्त हैं।"

इस प्रकार उपरोक्त कारणों से स्पष्ट है कि निश्चित भौगोलिक सीमा में रहने वाले व्यक्तियों में एक आन्तरिक तथा बाह्य एकता मिलेगी जो उन्हें अनजाने ही एक धागे में पिरो देगी कि वे अपने को एक परिवार के सदस्य की भांति अनुभव करेंगे। श्री रंगस्वामी के ये शब्द कितने सार्थक हैं 'राजनीति हमें विभक्त करती है। धर्म हमारे बीच में दीवारें खड़ी करता है। संस्कृति हमें एक दूसरे से पृथक करती है, किन्तु हमारा देश तथा देश की धरती का प्यार हमें एक सूत्र में बाँधता है।" (Politics divides us Religion divides us Culture divides us But the land and the love of the land unites us), यही राष्ट्रीयता की पहली सीढ़ी है। आज के लगभग सभी राष्ट्र भौगोलिक इकाइयाँ हैं, किन्तु फिर भी यह अनिवार्य नहीं कि भौगोलिक एकता के बिना राष्ट्रीयता की उत्पत्ति न हो सके। ग्रीक लोग प्राचीन नगर राज्यों में बिखरे हुए थे किन्तु फिर भी उनमें राष्ट्रीयता थी। अभी पैलेस्टाइन के मिलने से पूर्व यहूदी (Jews) लोगों का कोई अपना स्वदेश नहीं था किन्तु राष्ट्रीयता की भावना उनमें चिरकाल से थी जो यह प्रमाणित करता है कि भौगोलिक एकता के बिना भी राष्ट्रीयता का विकास सम्भव है।

उनका मत है कि यह एकता राष्ट्रीयता के विकास को पैदा करने में एक बहुत बड़ा तत्व है, किन्तु इस एकता को ही हम राष्ट्रीयता नहीं कह सकते। वर्तमान समय में राष्ट्रीयता से हम एक आध्यात्मिक भावना (Spiritual sentiment) का अर्थ लेते हैं, जो कि किसी भू भाग के नागरिकों के जीवन तथा आदर्शों से सम्बन्ध रखती है तथा सम्पूर्ण समाज का धार्मिक कल्याण चाहती है। जिमन (Zimmern) के शब्दों में इस प्रकार "राष्ट्रीयता एक मानसिक स्थिति है, और अनुभूति विचार तथा जीवन की एक ऐसी प्रणाली है जो ऐतिहासिक विकास के कारण उत्पन्न हुई है" (Nationality is a condition of mind, a way of living feeling and thinking which is a product of historical development) इसी अर्थ को दूसरे शब्दों में व्यक्त करते हुए जे० एच० रोज (J H Rose) का कथन है कि "राष्ट्रीयता दिलों की एक ऐसी एकता है जो एक बार बनकर कभी नहीं टूटती।" (Nationalism is a Union of hearts, once made never unmade)।

राष्ट्रीयता के तत्व (Factors of Nationality)—एक जाति के लोगों में राष्ट्रीयता की भावना को उत्पन्न करने के लिए, भिन्न-भिन्न अवस्थाओं अथवा परिस्थितियों की आवश्यकता होती है, उनकी गणना करना कठिन है। राष्ट्रीयता के इन तत्वों का राजनीति शास्त्र के विद्वानों ने अनेक प्रकार से वर्णित किया है और यह माना है कि इन तत्वों के अभाव में राष्ट्रीयता का अस्तित्व सर्वथा असम्भव है। इन विभिन्न तत्वों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण कौनसा है? यद्यपि इसका निर्णय करना कठिन है, किन्तु इतना निश्चित अवश्य है कि इन सब के सामूहिक प्रभाव से ही राष्ट्रीयता की पुष्टि होती है और देश तथा काल के अनुसार इन तत्वों का महत्व भी घटता बढ़ता रहता है।

१ भौगोलिक एकता (Geographical Unity)—किसी देश की प्राकृतिक सीमाओं में निवास करना राष्ट्रीयता की भावना को जाग्रत करने वाला सबसे प्रमुख तत्व माना जाता है। जन्मभूमि अथवा स्वदेश एक इतना शक्तिशाली बन्धन है, कि उसका ममत्व विरक्त से विरक्त पुरुष भी नहीं त्याग सकता। उसके साथ मनुष्य का एक भावनात्मक प्रेम होता है और उसमें रहने तथा पाये जाने वाले प्रत्येक पदार्थ व पुरुष के प्रति, उससे हजारों मील दूर रहने वाले व्यक्तियों की अपेक्षा उसे अधिक आकर्षण का अनुभव होता है। यह आकर्षण तथा प्रेम स्वाभाविक है तथा ध्यान से देखे जाने पर इसके कारण भी बिलकुल स्पष्ट हैं —

(i) निश्चित भौगोलिक सीमाओं में रहने के कारण देश के सभी लोगों पर उस देश की जलवायु का प्रभाव पड़ता है और उनके शरीर की बनावट, आकृति स्वभाव तथा रंग आदि प्रायः एक से पाये जाते हैं। उन लोगों की सारी शारीरिक, मानसिक तथा मनोवैज्ञानिक विशेषतायें एक-सी मिलेंगी, जिसके कारण उनमें परस्पर सहयोग, सहानुभूति तथा एक दूसरे को समझने की भावना भी अधिक देखने को मिलेगी। उदाहरण के लिए चीन के नाटे चपटे चेहरे वाले, ईरान के लोग लम्बे,

इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। हिटलर ने जर्मन अथवा सेमेटिक जाति की महानता तथा उच्चता का नारा लगाकर जर्मन राष्ट्रीयता का दुरुपयोग किया और विश्व युद्ध जैसी विनाशकारी स्थिति पैदा कर दी। जातीयता की ओट में ही मुसोलिनी ने निर्दोष ईथोपिया को धर दबाया, जो यह सिद्ध करता है कि जातीयता को राष्ट्रीयता के साथ मिलाने से राष्ट्रीयता की भावना दूषित व अशुद्ध बन जाती है। वस्तुतः जातीयतावाद (Racialism) राष्ट्रीयतावाद (Nationalism) का बिलकुल उल्टा है। शुद्ध राष्ट्रीयता यह मान कर चलती है कि विभिन्न प्रकार की जातियों के समूह मिल जुल कर सहयोग से रह सकते हैं।

भाषा की एकता (Unity of Language)—जातीय एकता से भी अधिक भाषा सम्बन्धी एकता राष्ट्रीयता के विकास में अधिक महत्वपूर्ण है। भाषा की एकता से प्रायः विचारों की एकता आती है और एक से विचार रखने वाले व्यक्ति अधिक मित्रता तथा सहयोग से रह सकते हैं। भाषा राष्ट्रीय जीवन का एक बहुत महत्वपूर्ण तत्व है और प्रत्येक राष्ट्र में एक राष्ट्रीयता की भावना को जाग्रत रखने के लिए एक राष्ट्रभाषा का प्रचार तथा स्वीकृति होना बहुत जरूरी है। भाषा मनुष्य के सांस्कृतिक जीवन पर प्रभाव डालती है और एक समान राष्ट्रभाषा के होने के कारण एक साहित्य, एक बौद्धिक प्रेरणा, कहानी तथा लोकगीतों के रूप में एक समान विरासत प्रत्येक आने वाली पीढ़ियों पर अपनी छाप इस दृढ़ता के साथ अङ्कित करती है कि वे एक राष्ट्रीय दृष्टिकोण को स्वाभाविक रूप से अपना लेती है (Common language means also a common literature, a common inspiration of great ideas a common heritage of songs and folk tales embodying and impressing upon each successive generation the national point of view—R. Muir) समान भाषा द्वारा उनकी ऐतिहासिक परम्पराओं तथा नैतिक स्तर की उत्पत्ति होती है जो अन्तत एकता में राष्ट्रीय मनोविज्ञान (National Psychology) को जन्म देती है। इस प्रकार राष्ट्रीय एकता के लिए आवश्यक सांस्कृतिक तथा सामाजिक एकता में भाषा का योगदान भुलाया नहीं जा सकता। वर्तमान पोलैण्ड तथा युगोस्लेविया आदि देश इसके जीते जागते उदाहरण हैं। भारतवर्ष में भी अपनी राष्ट्रीयता को पुष्ट व मजबूत बनाने के लिए हमने हिंदी को राष्ट्र भाषा के रूप में स्वीकार किया है क्योंकि यदि ऐसा न किया जाता तो अंग्रेजी भाषा द्वारा हमारे विशाल देश में जो एकता की भावना आई है वह प्रान्तीय भाषाओं के बलवती बनने पर छिन्न भिन्न हो जाती और हमारी राष्ट्रीयता को एक गहरा धक्का लगता। इसके विपरीत कुछ लोग यह भी मानते हैं कि एक राष्ट्र में राष्ट्रीयता को जाग्रत रखने के लिए एक भाषा सहायक होते हुए भी अनिवार्य नहीं। अनेक भाषाभाषी देशों तथा जनसमुदायों में भी राष्ट्रीयता का अस्तित्व सम्भव है। उदाहरण के लिए स्विटजरलैण्ड एक ऐसा देश है, जहाँ की जनता फ्रेंच, इटालियन, तथा जर्मन तीन भाषायें बोलती है, किन्तु फिर स्विस लोगों की राष्ट्रीयता, किसी प्रकार से दुर्बल हो, यह कहना एक बहुत बड़ी भूल

जातीय एकता (Racial Unity) — समान जातीयता का होना भी राष्ट्रीयता
ाकाम म एक बहुत सहायक वस्तु है। जिस समुदाय अथवा जन समूह का उद्गम
igin) एव समान स्रोत (Source) से हुआ हो वे स्वाभाविक रूप से अपने को
(Unit) अनुभव करेंगे। समान जातीयता के इस तत्व को प्रो० जिमन बहुत
स्थान देते है। उनकी दृष्टि म यह तत्व राष्ट्रीय एकता को दृढ बनाये रखन
सबसे मजबूत धागा है। इसका कारण बतलाते हुए वे लिखत हैं कि "मनुष्य
कपडे बदल सकता है, अपनी भाषा बदल सकता है, अपना स्वदेश बदल सकता
या यहा तक कि अपनी पत्निया भी बदल सकता है, किन्तु वह अपने माता पिता
पूवजो को नही बदल सकता है।" यह कारण ही समान जातीयता का जन्म
है, जिसके कारण अन्तत राष्ट्रीयता की भावना की वृद्धि होती। किन्तु इसका
यह नही है कि समान जातीयता के बिना राष्ट्रीयता का जन्म ही नही हो
। यदि दुनिया की जातिया को ध्यान से देखा जाय तो हमे विदित होगा कि
ससार म एक भी ऐसी, जाति नही है जो पूणत विशुद्ध (Pure) होने का दावा
सके। सभ्यता तथा मनुष्यता के अनादि तथा शाश्वत प्रवाह परिस्थितिया के
न ये जातिया एक दूसरे म इतनी घुल मिल गई हैं कि पिल्सबरी (Pilsbury)
शब्दो मे "सामान्यत राष्ट्रीयता के निर्धारण मे जाति अब कोई महत्व नही
। किसी भी राष्ट्र मे अब कोई शुद्ध जाति नहीं है। मनुष्य आज कल सब कही
कर है। (In the determination of national lines, in general rice
s more important There is no pure race in any nation Man is
y where a mongrel) इटली का प्रसिद्ध तानाशाह मुसोलिनी कहा करता था कि
त केवल एक भावना है वास्तविकता नही और कोई भी बात मुझे कभी भी यह
ास नही दिला सकती कि जीवणास्त्र (Biologically) की दृष्टि से आज विशुद्ध
यो का अस्तित्व सम्भव है। सच तो यह है कि आज के लगभग सभी राष्ट्र अनको
या के सम्मिश्रण हैं और अनेक जातीयता के रहते हुए भी उनमे राष्ट्रीयता की
ा किसी भाति भी कम नही दिखाई दती। उदाहरण के लिए अमेरिका एक राष्ट्र
न्तु अमरिकन लोगो का यदि उद्गम (origin) देखा जाय तो ब्रिटिश, फ्रेंच,
स्पेनिश, नीग्रो आदि कितनी ही जातियो ने लोग उसम रहते हैं और अपने को
कन राष्ट्र का नागरिक बतलाते है। हमार देश के भी जातीयता की दृष्टि से।
मुसलमान, पारसी, ईसाई आदि अनेक जातियाँ (Race) हैं, किन्तु जाति विभेद
त हुए भी उनम राष्ट्रीय एकता है। अत निष्कप यह निकला कि जातीय एकता
ाय एकता के लिए लाभदायक होते भी आवश्यक नहीं है। बल्कि शुद्ध राष्ट्रीयता
तो जातीयता की भावना से बिलकुल दूर रहना चाहिए। इतिहास प्रमाणित
है कि जातीयता की भावना का राष्ट्रीयता के साथ मिलकर एक वय करने से
ज्यवाद पनपता है और एक जाति अथवा राष्ट्र अपन को दूसरों से उच्च कह
र राष्ट्रों का हडपना चाहता है। हिटलर का जमनी और मुसोलिनी की इटली

इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। हिटलर ने जर्मन अथवा सेमेटिक जाति की महानता तथा उच्चता का नारा लगाकर जर्मन राष्ट्रीयता का दुरुपयोग किया और विश्व युद्ध जैसी विनाशकारी स्थिति पैदा कर दी। जातीयता की ओट में ही मुसोलिनी ने निर्दोष इथोपिया को धर दबाया, जो यह सिद्ध करता है कि जातीयता का राष्ट्रीयता के साथ मिलाने से राष्ट्रीयता की भावना दूषित व अशुद्ध बन जाती है। वस्तुतः जातीयता-वाद (Racialism) राष्ट्रीयतावाद (Nationalism) का बिलकुल उल्टा है। शुद्ध राष्ट्रीयता यह मान कर चलती है कि विभिन्न प्रकार की जातियों के समूह मिल जुल कर सहयोग से रह सकते हैं।

भाषा की एकता (Unity of Language)—जातीय एकता से भी अधिक भाषा सम्बन्धी एकता राष्ट्रीयता के विकास में अधिक महत्वपूर्ण है। भाषा की एकता से प्रायः विचारों की एकता आती है, और एक से विचार रखने वाले व्यक्ति अधिक मित्रता तथा सहयोग से रह सकते हैं। भाषा राष्ट्रीय जीवन का एक बहुत महत्वपूर्ण अंग है और प्रत्येक राष्ट्र में एक राष्ट्रीयता की भावना को जाग्रत रखने के लिए एक राष्ट्रभाषा का प्रचार तथा स्वीकृति होना बहुत जरूरी है। भाषा मनुष्य के सांस्कृतिक जीवन पर प्रभाव डालती है और एक समान राष्ट्रभाषा के होने के कारण एक साहित्य, एक बौद्धिक प्रेरणा, कहानी तथा लोकगीतों के रूप में एक समान विरासत प्रत्येक आने वाली पीढ़ियों पर अपनी छाप छोड़ देती है साथ अङ्कित करती है कि वे एक राष्ट्रीय दृष्टिकोण को स्वाभाविक रूप से अपना लेती हैं (Common language means also a common literature, a common inspiration of great ideas a common heritage of songs and folk tales embodying and impressing upon each successive generation the national point of view—R. Muir) समान भाषा द्वारा उनकी ऐतिहासिक परम्पराओं तथा नैतिक स्तर की उत्पत्ति होती है जो अन्ततः एक से राष्ट्रीय मनोविज्ञान (National Psychology) को जन्म देती है। इस प्रकार राष्ट्रीय एकता के लिए आवश्यक सांस्कृतिक तथा सामाजिक एकता में भाषा का योगदान भुलाया नहीं जा सकता। वर्तमान पोलैण्ड तथा युगोस्लेविया आदि देश इसके जीते जागते उदाहरण हैं। भारतवर्ष में भी अपनी राष्ट्रीयता को पुष्ट व मजबूत बनाने के लिए हमने हिंदी को राष्ट्र भाषा के रूप में स्वीकार किया है, क्योंकि यदि ऐसा न किया जाता तो अंग्रेजी भाषा द्वारा हमारे विशाल देश में जो एकता की भावना आई है वह प्रांतीय भाषाओं के बलवती बनने पर छिन्न भिन्न हो जाती और हमारी राष्ट्रीयता को एक गहरा धक्का लगता। इसके विपरीत कुछ लोग यह भी मानते हैं कि एक राष्ट्र में राष्ट्रीयता को जाग्रत रखने के लिए एक भाषा सहायक होते हुए भी अनिवार्य नहीं। अनेकों भाषाभाषी देशों तथा जनसमुदायों में भी राष्ट्रीयता का अस्तित्व सम्भव है। उदाहरण के लिए स्विटजरलैंड एक ऐसा देश है, जहां की जनता फ्रेंच, इटालियन, तथा जर्मन तीन भाषायें बोलती है, किन्तु फिर स्विस लोगों की राष्ट्रीयता, किसी प्रकार से दुर्बल हो, यह कहना एक बहुत बड़ी भूल

जापान तथा आस्ट्रेलिया की राष्ट्रीयताओं का यदि हम सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन करें तो उनकी पृष्ठभूमि में यही समान आर्थिक हित मिलेगा जिसके कारण वे प्रवासियों (Immigrants) को अपने देश में आने की आज्ञा नहीं देते। लंका में बसे हुए प्रवासी भारतीयों को, राज्यहीन (Stateless) घोषित करना अथवा पुनः घोषित भारत भेजने के प्रश्न में भी यही, आर्थिक हित की भावना प्रमुख है, क्योंकि लंका सरकार को यह डर है कि उनके राष्ट्रीय नागरिकों के हित संकट में पड़ जायेंगे। इन सबके होते हुए भी यह कहना बिल्कुल गलत होगा कि आर्थिक हितों की समानता के बिना राष्ट्रीयता का जन्म नहीं हो सकता। फ्रांस एक राष्ट्र है, किन्तु फिर भी वहां के एक मजदूर तथा एक अंगूर की बेल लगाने वाले दो आदमियों के आर्थिक हित समान नहीं हैं। सच तो यह है कि देश की केवल आर्थिक नीति ही विभिन्न वर्गों में बटे हुए समाज को एकता में नहीं बांधती। यदि ऐसा होता तो आज संसार में केवल दो ही राष्ट्र होते एक पूँजीवादी राष्ट्र तथा दूसरा श्रमिक राष्ट्र। फिर विश्वयुद्ध आदि के अवसर पर देखा गया है कि राष्ट्रीयता की भावना आर्थिक हितों से बहुत आगे निकल जाती है और प्रायः परस्पर में विरोधी आर्थिक हित रखने वाले राष्ट्र भी आपस में मेल कर लेते हैं। इसी कारण से राष्ट्रीयता के सारे तत्वों में इस सबसे कम महत्वपूर्ण तत्व मानते हैं। रेनन (Renan) के शब्दों में, "आर्थिक हितों की समानता अधिक से अधिक एक आगम संघ का निर्माण करती है एक राष्ट्र का नहीं।" (The community of economic interest, at the most makes s customs Union and not a nation)

६ सामान्य संस्कृति तथा परम्परायें (Common culture and traditions) —सामान्य संस्कृति तथा परम्परायें भी राष्ट्रीयता को जाग्रत करने तथा दृढ़ बनाये रखने में बहुत महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। सांस्कृतिक एकता से तात्पर्य यह है कि उस समुदाय के लोगों की मान्यतायें, विश्वास तथा परम्परायें एक सी हों और वे एक एक-से आदर्श तथा विचारों में आस्था रखें। यही सांस्कृतिक एकता, भाषा, साहित्य, कला तथा जीवन के मूल्यों (Values of life) में एकता उत्पन्न करती है, जिसके कारण वह सारा समुदाय एक संयुक्त बंधन में बँधी एकता ही नहीं वरन् साम्य (Identity) का अनुभव करता है। इस सांस्कृतिक चेतना के बिना किसी भी प्रकार की राजनैतिक चेतना असम्भव है। यदि हम डच, स्विस तथा आयरिश आदि राष्ट्रों का अध्ययन करें तो स्पष्ट हो जायगा कि उन लोगों में जो राष्ट्रीयता है उसका एकमात्र कारण सामान्य सांस्कृतिक परम्परायें तथा एक से रीति रिवाज हैं जो अनेकों धर्म, भाषायें तथा जाति आदि में विभक्त समाजों को भी एक राष्ट्रीयता में पिरोये हुए हैं। अतः जे० एस० मिल (J S Mill) के शब्दों में 'सामान्य संस्कृति, परम्परायें तथा इतिहास ही राष्ट्रीयता का एकमात्र आवश्यक तथा अनिवार्य तत्व है। सामान्य परम्पराओं तथा एक निश्चित मस्तिष्क व चरित्र में प्रतिच्छायित होने वाली एक निश्चित संस्कृति के बिना राष्ट्रीयता की भावना का अस्तित्व सम्भव नहीं है।" (The common

होगी। अमेरिका के जन साधारण की भाषा यद्यपि अंग्रेजी है किन्तु उनकी राष्ट्रीयता अंग्रेजों से भिन्न अमेरिकन है। अतः हम रेमजे म्यूर (R. Muir) के शब्दों में यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं। यद्यपि भाषा सम्बन्धी एकता एक राष्ट्र के निर्माण में एक बहुत बड़ा शक्तिशाली तत्व है किन्तु राष्ट्रीयता के विकास के लिए न यह अवश्यंभावी है और न इस उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त ही।" (Though Unity of language is of a great potency as a nation building force, but it is neither indispensable to the growth of nationality nor sufficient of itself to create it)

धार्मिक एकता (Unity of Religion)—समान धर्म को मानना भी प्रायः एकता को उत्पन्न करता है। पुराने जमाने में तो धर्म राजनीति तथा समाज की पृष्ठभूमि में छिपी हुई एक प्रबल शक्ति रही है, और हम ऐतिहासिक सत्य को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता कि सभ्यता के आरम्भिक दिनों में धर्म ही एक वह केन्द्र था, जिस पर सारी जातीय व्यवस्था आधारित थी। उदाहरण के लिए यदि हम यहूदियों (Jews) की राष्ट्रीयता की भावना लें तो हमें ज्ञात होगा कि उसके पीछे सदैव उनका धर्म रहा है और एक धर्मावलम्बी होने के कारण ही अभी कुछ साल पूर्व पलेस्टाइन के न मिलने तक, दुनिया में विभिन्न भागों में बिखरे हुए होते हुए भी उनकी राष्ट्रीयता नष्ट नहीं हुई। टीक ऐसी ही वैसी ही बात स्काट, जापानीज तथा आयरिश राष्ट्रों के विषय में भी सत्य है।

किन्तु आज धर्म के दिन लद चुके। आज वह राजनीति से संन्यास ले चुका है और समाज से भी विरक्त हो, किसी एकान्त कोने में छिप जाना चाहता है। वर्तमान युग में राष्ट्रीयता धर्म से कोई प्रेरणा नहीं लेती और वह अनेकों धर्म के होते हुए भी बड़ी सुगमता से विकसित होती है। यदि सत्य कहा जाय तो हेज (Hayes) के शब्दों में "अधिकांश रूप में आधुनिक राष्ट्रीयता धार्मिक विश्वास या धर्मों की एकरूपता पर जोर दिये बिना ही फलफूल रही है।" आज के राज्य लगभग सभी धर्म निरपेक्षवादी (Secular) राज्य हैं जो धार्मिक सहिष्णुता (Religious tolerance) का प्रचार करते हैं और मानते हैं कि धर्मों की विभिन्नता राष्ट्रीय जीवन में कोई हस्तक्षेप नहीं करती।" उदाहरण के लिए हम हमारे ही देश को लें। हिन्दू, मुस्लिम, सिख, जैन, ईसाई आदि अनेकों धर्मों को मानने वाले लोगों के होते हुए भी हमारी भारतीय राष्ट्रीयता भली भांति सुरक्षित है। इसी प्रकार अमेरिकन राष्ट्रीय जीवन में भी धर्म जैसी कोई चीज बाधक रूप में नहीं दिखाई देती। अतः हम कह सकते हैं कि धार्मिक एकता आज राष्ट्रीय एकता का कोई आवश्यक तत्व नहीं।

५. समान आर्थिक हित (Common Economic Interests)—धर्म तथा भाषा की भांति ही समान आर्थिक हित भी, प्रत्येक समाज अथवा समुदाय को एक सूत्र में पिरो कर सगठित रूप में रखता है। आर्थिक हितों की समानता एक से व्यवसाय तथा एक से दृष्टिकोण को जन्म देती है जो राष्ट्रीयता के प्रमुख तत्व हैं।

जापान तथा आस्ट्रेलिया की राष्ट्रीयताओं का यदि हम सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन करें तो उनकी पृष्ठभूमि में यही समान आर्थिक हित मिलेगा जिसके कारण व प्रवासियों (Immigrants) को अपने देश में आने की आज्ञा नहीं देते। लंका में बसे हुए प्रवासी भारतीयों को, राज्यहीन (Stateless) घोषित करना अथवा पुन वापिस भारत भेजने के प्रश्न में भी यही, आर्थिक हित की भावना प्रमुख है, क्योंकि लंका सरकार को यह डर है कि उनके राष्ट्रीय नागरिकों के हित संकट में पड़ जायेंगे। इन सबके होते हुए भी यह कहना बिलकुल गलत होगा कि आर्थिक हितों की समानता के बिना राष्ट्रीयता का जन्म नहीं हो सकता। फ्रांस एक राष्ट्र है, किन्तु फिर भी वहाँ के एक मजदूर तथा एक अंगूर की बेल लगाने वाले दो आदमियों के आर्थिक हित समान नहीं हैं। सच तो यह है कि देश की केवल आर्थिक नीति ही विभिन्न वर्गों में बँटे हुए समाज को एकता में नहीं बाँधती। यदि ऐसा होता तो आज संसार में केवल दो ही राष्ट्र होते एक पूँजीवादी राष्ट्र तथा दूसरा श्रमिक राष्ट्र। फिर विश्वयुद्ध आदि के अवसर पर देखा गया है कि राष्ट्रीयता की भावना आर्थिक हितों से बहुत आगे निकल जाती है और प्राय परस्पर में विरोधी आर्थिक हित रखने वाले राष्ट्र भी आपस में मेल कर लेते हैं। इसी कारण से राष्ट्रीयता के सारे तत्वों में इसे सबसे कम महत्वपूर्ण तत्व मानते हैं। रेनन (Renan) के शब्दों में, 'आर्थिक हितों की समानता अधिक से अधिक एक आगम संघ का निर्माण करती है एक राष्ट्र का नहीं।" (The community of economic interest at the most makes a customs Union and not a nation)

६ सामान्य संस्कृति तथा परम्परायें (Common culture and traditions)—सामान्य संस्कृति तथा परम्परायें भी राष्ट्रीयता को जाग्रत करने तथा दृढ़ बनाये रखने में बहुत महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। सांस्कृतिक एकता से तात्पर्य यह है कि उस समुदाय के लोगों की मान्यतायें, विश्वास तथा परम्परायें एक सी हों और वे एक एक-से आदर्श तथा विचारों में आस्था रखें। यही सांस्कृतिक एकता, भाषा, साहित्य, कला तथा जीवन के मूल्यों (Values of life) में एकता उत्पन्न करती है, जिसके कारण यह सारा समुदाय एक संयुक्त सूत्र में बँधी एकता ही नहीं वरन् साम्य (Identity) का अनुभव करता है। इस सांस्कृतिक चेतना के बिना किसी भी प्रकार की राजनैतिक चेतना असम्भव है। यदि हम डच, स्विस तथा आयरिश आदि राष्ट्रों का अध्ययन करें तो स्पष्ट हो जायगा कि इन लोगों में जो राष्ट्रीयता है उसका एकमात्र कारण सामान्य सांस्कृतिक परम्परायें तथा एक से रीति रिवाज हैं जो अनेक धर्म, भाषायें तथा जाति आदि में विभक्त समाजों को भी एक राष्ट्रीयता में पिरोये हुए हैं। अत जे० एस० मिल (J S Mill) के शब्दों में 'सामान्य संस्कृति, परम्परायें तथा इतिहास ही राष्ट्रीयता का एकमात्र आवश्यक तथा अनिवार्य तत्व है। सामान्य परम्पराओं तथा एक निश्चित मस्तिष्क व चरित्र में प्रतिच्छायित होने वाली एक निश्चित संस्कृति के बिना राष्ट्रीयता की भावना का अस्तित्व सम्भव नहीं है।" (The common

भारतीयता की भावना भर दी। उदाहरणों की कमी नहीं है जो यह प्रमाणित करते हैं कि सामान्य संकट आने पर जनता अपने तुच्छ भेद भाव भूलकर उनसे ऊपर उठती है और समान शत्रु से लोहा लेने के लिए एक संयुक्त मोर्चा तैयार करती है जो जनता में एक राष्ट्रीयता के भाव को पुष्ट करता है।

८ सुव्यवस्थित सरकार व राजनैतिक प्रभुता (Well organised Government and Political Sovereignty)—किसी भी देश में एक सुव्यवस्थित तथा दृढ़ सरकार का होना भी राष्ट्रीयता के लिए एक शक्तिशाली तत्व सिद्ध हुआ है। यद्यपि रैमजे म्यूर (R Muir) के ये शब्द बिल्कुल ठीक हैं कि "शासन की एकता मात्र ही चाहे वह कितनी ही सुन्दर क्यों न हो स्वत राष्ट्रीयता की उत्पत्ति नहीं कर सकती (Mere unity of government however admirably welded will never of itself produce nationhood) किन्तु फिर भी एक दृढ़ शासन के अनुपालन से नागरिकों में एकता की भावना बढ़ती है जैसा कि हिटलर ने जर्मनी तथा मुसोलिनी की इटली में देखने को मिलता है।

लोकप्रिय इच्छा (Popular will)—राष्ट्रीयता का अंतिम किन्तु परम महत्वपूर्ण एक तत्व यह भी है कि समाज में एक राष्ट्र बनने तथा कहलवाने की लोकप्रिय इच्छा हो। किसी देश में राष्ट्रीयता तब बढ़ेगी जब वहाँ के नागरिक अपने को उस राष्ट्र का नागरिक समझने में गौरव का अनुभव करेंगे। डा० अम्बेडकर के शब्दों में भारतीय राष्ट्रीयता के विकास का प्रमुख कारण यही है कि भारतवर्ष के रहने वाले हिन्दू मुसलमान सिख तथा सभी अपने को भारतीय राष्ट्र के सदस्य रहने में गर्व का अनुभव करते हैं। उनके शब्दों में 'राष्ट्रीयता एकता की एक सामूहिक भावना है, जो कि लोगों को यह अनुभव कराती है कि वे एक दूसरे के निकट के सम्बन्धी (Kith & Kin) हैं। प्रो० टायनबी के मतानुसार भी राष्ट्रीयता के जागरण तथा विकास के लिए 'एक राष्ट्र बनने की प्रबल इच्छा" (The will to be a nation) परम आवश्यक है।

राष्ट्रीयतावाद क्या है (What is nationalism)—'राष्ट्रीयतावाद' एक बड़ा अनिश्चित शब्द है। सामान्यत इसका अर्थ राष्ट्रीय स्वाभिमान, शक्ति तथा प्रतिष्ठा से लिया जाता है। यह एक तत्व नहीं बल्कि अनेकों तत्वों का सम्मिश्रण है। इसकी परिभाषा देते हुए प्रो० हेज (Haze) लिखते हैं कि "यह राष्ट्रीयता राष्ट्रीय राज्य तथा राष्ट्रीय देशभक्ति का एक अद्भुत समन्वय है।" (It is a complex of nationality, nation State and national patriotism)। इसे एक मनोवैज्ञानिक भावना (Psychological sentiment) भी कहा जा सकता है जो एक जाति अथवा समुदाय के लोगों को अपने अधिकारों के प्रति सजग रहना सिखलाती है तथा किसी विदेशी अथवा वाह्य आक्रमण के विरुद्ध अपने अधिकारों तथा स्वतन्त्रता का सुरक्षित करने के लिए नागरिकों का आह्वान करती है। राष्ट्रीयतावाद का उद्गम (Origin) राष्ट्रीयता की भावना से हुआ है और एक राष्ट्रीय समुदाय (National group)

culture, traditions and history constitute the only essential and *indispensable element of nationality Without common traditions and* a distinctive culture represented in distinctive mind and character the sentiment of nationality can not come into existence) मनुष्य की छोटी छोटी आदतें तथा विश्वास अपनी जड़े बड़ी गहरी रखते हैं औ नहीं मरते। ये छोटी छोटी बातें ही, जिन्हें हम महत्वहीन राष्ट्रीयता को सुदृढ बनाती हैं। श्री जोमफ तो यहाँ तक लिखते -
पीने की आदत' जैसी तुच्छ चीजों ने अंग्रेजी राष्ट्रीयता का इ
दिया है। प्रत्येक देश का अपने अतीत (Past) पर उचित विश्वास तथा भविष्य पर प्रसन्न आशा रखना उस देशवासियों और सजीव बनाता है, क्योंकि "वीरता के काम, धैर्य पूर्वक तत्व हैं जिनमें स्वस्थ राष्ट्रीयता की भावना का पोषण होता है
किन्तु यह सब होते हुए भी सामान्य सांस्कृतिक ५८
प्रतिष्ठा पर बढ़ना तथ्यों (Facts) की अतिरंजना ("
अपने मूल रूप में राष्ट्रीयता केवल एक भावना (S
रूप में एक सामूहिक चेतना (Corporate conscio
राष्ट्रीयता और संस्कृति का सम्बन्ध देखने हुए हमें
दिशाओं को देखना चाहिए जिन पर कि एक 'राष्ट्रीय
रहती है। उदाहरण के लिए भारत में मुस्लिम संस्कृति
मिलकर भारत में उसका रूप उस मुस्लिम संस्कृति स
स्तान मिश्र तथा टर्की आदि मुस्लिम राष्ट्रों में पाई
जैसे महाकवियों ने उर्दू में इसी देश के गीत गाये हैं।
केवल एक संस्कृति का बना हुआ नहीं होता और रा
उसे अपनी राष्ट्रीय संस्कृति (National culture) का

७ सामान्य कष्ट (Common Suffering)

तथा आपदाओं के आने पर भी एक बिखरे हुए तथा
की भावना सहसा प्रज्वलित हो उठती है। इतिहास
उदाहरण हैं कि जब कभी राष्ट्रीय अत्याचारों का
अपने आप अंगड़ाइयां लेकर उठती है। फ्रांस की राज्य
tion) के पहले जनता अन्याय व अत्याचारों की भट्टी में
कष्ट की पीड़ा ने उन्हें भाई चारे (Fraternity) का पाठ
आततायियों से मुक्त करने के लिए फ्रांसीसियों की राष्ट्रीयता एक
पड़ी। मुगों के अत्याचार व नैपोलियन के युद्धों ने
उकसाया तथा सदियों से ब्रिटिश राज्य के चक्र में पीसी गई
ने ही कन्या कुमारी से लेकर काश्मीर तक फैली हुई इस

भारतीयता की भावना भर दी। उदाहरणों की कमी नहीं हैं जो यह प्रमाणित करते हैं कि सामान्य संकट आने पर जनता अपने तुच्छ भेद को भूलकर उनसे ऊपर उठती है और समान शत्रु से लोहा लेने के लिए एक संयुक्त मोर्चा तैयार करती है जो अन्तत उसमे एक राष्ट्रीयता के भाव को पुष्ट करता है।

८ सुव्यवस्थित सरकार व राजनैतिक प्रभुता (Well organised Government and Political Sovereignty)—किसी भी देश मे एक सुव्यवस्थित तथा दृढ सरकार का होना भी राष्ट्रीयता के लिए एक शक्तिशाली तत्व सिद्ध हुआ है। यद्यपि रमजे म्यूर (R Muir) के ये शब्द बिल्कुल ठीक है कि 'शासन की एकता मात्र ही चाहे यह कितनी ही सुन्दर क्यो न हो स्वत राष्ट्रीयता की उत्पत्ति नही कर सकती (Mere unity of government however admiarbly welded will never of itself produce nationhood) किन्तु फिर भी एक दृढ शासन के आज्ञा पालन से नागरिको मे एकता की भावना बढती है जैसा कि हिटलर के जर्मनी तथा मुसोलिनी की इटली मे देखने को मिलता है।

लोकप्रिय इच्छा (Popular will)—राष्ट्रीयता का अन्तिम किन्तु परम महत्वपूर्ण एक तत्व यह भी हैं कि समाज मे एक राष्ट्र बनने तथा कहलवाने की लोकप्रिय इच्छा हो। किसी देश मे राष्ट्रीयता तब बढेगी जब वहाँ के नागरिक अपने को उस राष्ट्र का नागरिक समझने मे गौरव का अनुभव करेंगे। डा० अम्बेडकर के शब्दो मे भारतीय राष्ट्रीयता के विकास का प्रमुख कारण यही है कि भारतवर्ष के रहने वाले हिन्दू मुसलमान सिख तथा सभी अपने को भारतीय राष्ट्र के सदस्य कहने मे गर्व का अनुभव करते हैं। उनके शब्दो मे "राष्ट्रीयता एकता की एक सामूहिक भावना है, जो कि लोगो को यह अनुभव कराती है कि वे एक दूसरे के निकट के सम्बन्धी (Kith & Kin) है। प्रो० टायनबी के मतानुसार भी राष्ट्रीयता के जागरण तथा विकास के लिए "एक राष्ट्र बनने की प्रबल इच्छा" (The will to be a nation) परम आवश्यक है।

राष्ट्रीयतावाद क्या है (What is nationalism)—'राष्ट्रीयतावाद' एक बड़ा अनिश्चित शब्द है। सामान्यत इसका अर्थ राष्ट्रीय स्वाभिमान, शक्ति तथा प्रतिष्ठा से लिया जाता है। यह एक तत्व नही बल्कि अनेको तत्वो का सम्मिश्रण है। इसकी परिभाषा देते हुए प्रो० हेज (Haze) लिखते है कि "यह राष्ट्रीयता राष्ट्रीय राज्य तथा राष्ट्रीय देशभक्ति का एक अद्भुत समन्वय है।" (It is a complex of nationality, nation State and national patriotism)। इसे एक मनोवैज्ञानिक भावना (Psychological sentiment) भी कहा जा सकता है जो एक जाति अथवा समुदाय के लोगो को अपने अधिकारो के प्रति सजग रहना सिखलाती है तथा किसी विदेशी अथवा बाह्य आक्रमण के विरुद्ध अपने अधिकारो तथा स्वतन्त्रता को सुरक्षित करने के लिए नागरिको का आह्वान करती है। राष्ट्रीयतावाद का उद्गम (Origin) राष्ट्रीयता की भावना से हुआ है और एक राष्ट्रीय समुदाय (National group)

culture, traditions and history constitute the only essential and indispensable element of nationality Without common traditions and a distinctive culture represented in distinctive mind and character the sentiment of nationality can not come into existence) मनुष्य की छोटी छोटी आदत तथा विश्वास अपनी जड़ें बड़ी गहरी रखते है और आसानी से नहीं मरते। ये छोटी छोटी बात ही, जिन्हें हम महत्वहीन समझते हैं, हमारी राष्ट्रीयता को सुदृढ बनाती हैं। श्री जोसफ तो यहाँ तक लिखते हैं कि हमारी "चाय पीने की आदत" जैसी तुच्छ चीजों ने अंग्रेजी राष्ट्रीयता को दृढ बनाने मे पर्याप्त योग दिया है। प्रत्येक देश का अपने अतीत (Past) पर उचित गर्व, वर्तमान पर स्वस्थ विश्वास तथा भविष्य पर प्रसन्न आशा रखना उस देशवासियों की राष्ट्रीयता को सबल और सजीव बनाता है, क्योंकि "वीरता के साथ धैर्य पूर्वक झेल गये कष्ट ही वे सुन्दर तन्तु हैं जिनसे स्वस्थ राष्ट्रीयता की भावना का पोषण होता है।" (Ramsay Muir) किन्तु यह सब होते हुए भी सामान्य सांस्कृतिक परम्पराओं में ही राष्ट्रीयता की प्रतिष्ठा कर बैठना तथ्यों (Facts) की अतिरंजना (Exaggeration) करना होगा। अपने मूल रूप में राष्ट्रीयता केवल एक भावना (Sentiment) मात्र ही तो है जो कि हम में एक सामूहिक चेतना (Corporate consciousness) उत्पन्न करती है। अतः राष्ट्रीयता और संस्कृति का सम्बन्ध देखते हुए हमें संस्कृति की मूलभूत आधार शिलाओं को देखना चाहिए जिन पर कि एक राष्ट्रीय जीवन की नींव आधारित रहती है। उदाहरण के लिए भारत में मुस्लिम संस्कृति आई किन्तु हिन्दू संस्कृति से मिलकर भारत में उसका रूप उस मुस्लिम संस्कृति से आज बिलकुल भिन्न है जो ईरान मिश्र तथा टर्की आदि मुस्लिम राष्ट्रों में पाई जाती है। इकबाल और गालिब जैसे महाकवियों ने उर्दू में इसी देश के गीत गाये हैं। अतः यह स्पष्ट है कि एक राष्ट्र केवल एक संस्कृति का बना हुआ नहीं होता और राष्ट्रीयता को दृढ रखने के लिए उसे अपनी राष्ट्रीय संस्कृति (National culture) का विकास करना होता है।

७ सामान्य कष्ट (Common Sufferings)—कभी-कभी सामान्य कष्टों तथा आपदाओं के आने पर भी एक बिखरे हुए तथा अव्यवस्थित राष्ट्र में राष्ट्रीय एकता की भावना सहसा प्रज्वलित हो उठती है। इतिहास में इस सत्य के एक नहीं अनेक उदाहरण हैं कि जब कभी राष्ट्रीय अत्याचारों का दमन चक्र बढ़ता है तो राष्ट्रीयता अपने आप अंगडाइयाँ लेकर उठती है। फ्रांस की राज्य क्रान्ति (French Revolution) के पहले जनता अन्याय व अत्याचारों की भट्टी में जल रही थी। इसी सामान्य कष्ट की पीडा ने उन्हें भाई चारे (Fraternity) का पाठ पढ़ाया और सारे फ्रांस को आततायियों से मुक्त करने के लिए फ्रांसीसियों की राष्ट्रीयता एक नदी की तरह उमड़ पड़ी। मूरों के अत्याचार व नेपोलियन के युद्धों ने स्पेनवासियों की राष्ट्रीयता को चमकाया तथा सदियों से ब्रिटिश राज्य के चक्र में पीसी गई भारतीय जनता की कराहट ने ही कन्या कुमारी से लेकर काश्मीर तक फैली हुई इस विशाल जनराशि में एक

भारतीयता की भावना भर दी। उदाहरणों की कमी नहीं है जो यह प्रमाणित करते हैं कि सामान्य संकट आने पर जनता अपने तुच्छ भेद को भूलकर उनसे ऊपर उठती है और समान शत्रु से लोहा लेने के लिए एक संयुक्त मोर्चा तैयार करती है जो अन्तत उनमें एक राष्ट्रीयता के भाव को पुष्ट करता है।

८ सुव्यवस्थित सरकार व राजनीतिक प्रभुता (Well organised Government and Political Sovereignty)—किसी भी देश में एक सुव्यवस्थित तथा दृढ सरकार का होना भी राष्ट्रीयता के लिए एक शक्तिशाली तत्व सिद्ध हुआ है। यद्यपि रैमजे म्यूर (R Muir) के ये शब्द बिलकुल ठीक है कि "शासन की एकता मात्र ही चाहे वह कितनी ही सुन्दर क्यों न हो स्वत राष्ट्रीयता की उत्पत्ति नहीं कर सकती (Mere unity of government however admiarbly welded will never of itself produce nationhood) किन्तु फिर भी एक दृढ शासन के आज्ञा पालन से नागरिकों में एकता की भावना बढती है जैसा कि हिटलर के जर्मनी तथा मुसोलिनी की इटली में देखने को मिलता है।

लोकप्रिय इच्छा (Popular will)—राष्ट्रीयता का अन्तिम किन्तु परम महत्वपूर्ण एक तत्व यह भी है कि समाज में एक राष्ट्र बनने तथा कहलवाने की लोकप्रिय इच्छा हो। किसी देश में राष्ट्रीयता तब बढेगी जब वहा के नागरिक अपने को उस राष्ट्र का नागरिक समझने में गौरव का अनुभव करेंगे। डा० अम्बेडकर के शब्दों में भारतीय राष्ट्रीयता के विकास का प्रमुख कारण यही है कि भारतवर्ष के रहने वाले हिन्दू मुसलमान सिख तथा सभी अपने को भारतीय राष्ट्र के सदस्य कहने में गर्व का अनुभव करते हैं। उनके शब्दों में "राष्ट्रीयता एकता की एक सामूहिक भावना है, जो कि लोगों को यह अनुभव कराती है कि वे एक दूसरे के निकट के सम्बन्धी (Kith & Kin) है। प्रो० टायनबी के मतानुसार भी राष्ट्रीयता के जागरण तथा विकास के लिए 'एक राष्ट्र बनने की प्रबल इच्छा" (The will to be a nation) परम आवश्यक है।

राष्ट्रीयतावाद क्या है (What is nationalism)—राष्ट्रीयतावाद' एक बडा अनिश्चित शब्द है। सामान्यत इसका अर्थ राष्ट्रीय स्वाभिमान, शक्ति तथा प्रतिष्ठा से लिया जाता है। यह एक तत्व नहीं बल्कि अनेकों तत्वों का सम्मिश्रण है। इसकी परिभाषा देते हुए प्रो० हेज (Haze) लिखते है कि 'यह राष्ट्रीयता राष्ट्रीय राज्य तथा राष्ट्रीय देशभक्ति का एक अद्भुत समन्वय है।" (It is a complex of nationality, nation State and national patriotism)। इसे एक मनोवैज्ञानिक भावना (Psychological sentiment) भी कहा जा सकता है जो एक जाति अथवा समुदाय के लोगो को अपने अधिकारो के प्रति सजग रहना सिखलाती है तथा किसी विदेशी अथवा बाह्य आक्रमण के विरुद्ध अपने अधिकारों तथा स्वतन्त्रता को सुरक्षित करने के लिए नागरिकों का आह्वान करती है। राष्ट्रीयतावाद का उद्गम (Origin) राष्ट्रीयता की भावना से हुआ है और एक राष्ट्रीय समुदाय (National group),

के साथ प्रेम हो जाने से इसका विकास होता है। इस प्रकार अपने सच्चे अर्थों में राष्ट्रीयतावाद केवल एक कोरी राजनैतिक वस्तु नहीं है, यद्यपि राजनैतिक आकांक्षायें (Aspirations) इसको विकसित करती हैं और सांस्कृतिक तथा आर्थिक वाञ्छायें इसका पोषण है। राष्ट्रीयतावाद एक राष्ट्रीय समुदाय की पूजा करना है और उसी की प्रशंसा में वह उसके गुणों के सामने अन्य सब को तुच्छ व महत्वहीन मानता है।

राष्ट्रीयतावाद की विशेषतायें
(Characteristics of Nationalism)

राष्ट्रीयतावाद की प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित हैं —

१ यह 'एक राष्ट्र एक राज्य' के सिद्धान्त में विश्वास करता है। (*It enunciates the principle of 'one nation one State'*) — राष्ट्रीयतावाद यह मानता कि एक देश में स्वतन्त्र संस्थाओं का विकास तभी हो सकता है जब कि उस एक राज्य में रहने वाले सारे व्यक्तियों की एक ही राष्ट्रीयता हो। इसके विपरीत यदि किसी राज्य में अनेक तथा विभिन्न राष्ट्रीयताधारी नागरिक होंगे तो उस देश की राजनीति आन्तरिक कलह, अशान्ति तथा लड़ाई झगड़ा से भरपूर होगी। जे० एस० मिल (J S Mill) के शब्दों में राष्ट्रीयतावाद की दृढ़ धारणा है कि 'सरकार की सीमायें राष्ट्रीयताओं की सीमाओं के साथ मिला दी जानी चाहिए।" (The boundaries of the government should coincide with these of nationalities)। ऐसा करने से एक संयुक्त जनमत (United public opinion) बन सकेगा, जो कि प्रजातन्त्र की सफलता के लिए अनिवार्य है। दूसरे शब्दों में राष्ट्रीयतावाद राष्ट्रीय राज्यों (Nation State) के सिद्धान्त का समर्थक है।

२ राष्ट्रीयतावाद प्रजातन्त्र का समर्थन करता है (*Nationalism is a plea for democracy*)—विशुद्ध राष्ट्रीयवाद प्रत्येक देश के नागरिकों में चेतना का संचार कर उन्हें अपने कर्त्तव्यों तथा अधिकारों के प्रति जागरूक बनाता है। राष्ट्रीय जागरण द्वारा यह जन साधारण को अन्यायी तथा अत्याचारी सरकार के विरुद्ध लड़ने का उपदेश देता है और अपनी जन्मसिद्ध स्वाधीनता तथा अधिकारों की माँग करना सिखलाता है। इसका परिणाम यह होता है कि जहाँ कहीं भी राजतन्त्र (Monarchy) अथवा निरंकुश सरकारें होती हैं, वहाँ ही राष्ट्रीयता की भावना उनसे लोहा लेकर उन्हें प्रजातन्त्र की स्थापना के लिए मजबूर कर देती है। आज से कुछ शताब्दी पूर्व ब्रिटेन में निरंकुश राजतन्त्र (Absolute monarchy) था किन्तु राष्ट्रीयता की लहर के साथ-साथ वहाँ पर प्रजातन्त्र का विकास हुआ। इसी प्रकार भारतवर्ष की राष्ट्रीय भावना ने ही हमारी निरंकुश अंग्रेजी सरकार को प्रजातन्त्रात्मक प्रणाली स्वीकार करने तथा देश को स्वाधीनता देने के लिए विवश कर दिया।

३ राष्ट्रीयतावाद के दो रूप हो सकते हैं (*Nationalism may assume two forms*)—किसी राष्ट्र में राष्ट्रीयता की भावना किस सीमा तक है यह बात

इस प्रश्न का निर्णय कर सकती है कि अमुक राष्ट्रीयता शुद्ध अथवा विकृत है। सच्ची राष्ट्रीयता का शुद्ध रूप यही है कि वह शान्त, उदार, रचनात्मक तथा सहनशील हो (Peaceful, liberal, constructive and tolerant)। इस प्रकार की राष्ट्रीयता अन्तर्राष्ट्रीयता की विरोधी नहीं है बल्कि उसके विकास में बहुत अधिक सहायक है। भारतीय, स्विस तथा स्वीडिस राष्ट्रीयतायें इसके उदाहरण हैं जो पारस्परिक सहयोग, सहायता, न्याय तथा शान्ति के आदर्शों में विश्वास करती हैं। अपना विकृत (Perverted) रूप धारण करने पर यही राष्ट्रीयतावाद संकीर्ण, साम्राज्यवादी, सैनिकीय, उग्र तथा आक्रमणकारी बन जाता है। (Narrow, Imperialstic, militant and aggressive)। ब्रिटिश, अमरिकन, जर्मन तथा इटालियन राष्ट्रीयतायें इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं। इन देशों में राष्ट्रीयता की भावना अपने उग्ररूप में इस सीमा को पहुँच चुकी थी तथा अब भी पहुँची हुई है कि वे अपने स्वार्थों के सामने न्याय तथा शान्ति की परवाह नहीं करते। यही स्वार्थी अति राष्ट्रीयता (Excessive nationalism) आज के विश्व में अन्तर्राष्ट्रीय तनाव तथा विश्व युद्ध का भय उत्पन्न किये हुए हैं।

४ राष्ट्रीयतावाद आत्मनिर्णय का एक उपयोगी सिद्धान्त है (Nationalism is a useful principle of self determination)—राष्ट्रीयवादिता का सिद्धान्त यह मानता है कि प्रत्येक भौगोलिक इकाई में रहने वाले सभी लोग एक राष्ट्रीयता को मानने वाले हों तथा उन सब को यह निर्णय करने का अधिकार हो कि उन्हें किस सरकार के आधीन किस राज्य में रहना है। अपना देश तथा अपनी सरकार चुनने का अधिकार आत्मनिर्णय करने का अधिकार है जो आज के अन्तर्राष्ट्रीयता के युग में भी बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है। सैद्धान्तिक दृष्टि से आत्मनिर्णय (Self determination) का अर्थ इस प्रकार है—

१ हर राष्ट्र को यह अधिकार तथा सुविधा होनी चाहिए कि वह अपनी इच्छा के अनुकूल अपने को विकसित करे।

२ हर एक राष्ट्र को राजनैतिक स्वाधीनता प्राप्त कर एक स्वतन्त्र राष्ट्र कहे जाने का हक होना चाहिए।

३ जनता को यह अधिकार होना चाहिए कि वह अपनी सरकार स्वयं चुने तथा अपनी राजनैतिक संस्थाओं को जैसा चाहे विकसित करे।

५ राष्ट्रीयतावाद एक मानसिक स्थिति तथा व्यावहारिक प्रणाली है (Nationalism is an attitude of mind and a mode of behaviour)—राष्ट्रीयतावाद एक भावात्मक (Abstract) वस्तु है। यह मनुष्य के लिए स्वाभाविक है तथा उसकी प्रवृत्ति में रमा हुआ है। मूलतः इसके दो आधार हैं एक सामाजिकता की भावना (Gregariousness) तथा दूसरे अलग रहने की इच्छा (Exclusiveness) जो परस्पर में विरोधी होते हुए भी इसके विकास में सहायक होते हैं। यह एक ऐसी मानवीय दुर्बलता है जो उनके हृदय को हिला डालती है और, नेताओं, द्वारा, राष्ट्र

गीता तथा राष्ट्रीय ध्वजा (National Flags) को देख कर बरबस ही उमड़ पड़ता है।

राष्ट्रीयतावाद से लाभ
(Blessings of Nationalism)

राष्ट्रीयतावाद का यदि शुद्ध और सही अर्थों में समझा जाय और राष्ट्रीयता की भावना को सीमित बना कर रखा जाय, तो उसमें कोई सन्देह नहीं कि राष्ट्रीयतावाद एक बहुत बड़ा वरदान है और आज के विश्व की लगभग सारी समस्याएं स्वतः सुलझ सकती हैं। सैद्धान्तिक दृष्टि से राष्ट्रीयतावाद एक ऐसी वस्तु है, जिसे कट्टर से कट्टर अन्तर्राष्ट्रीयतावादी भी अस्वीकार नहीं कर सकता। भूतकाल में अपने सच्चे अर्थों में समझे जाने पर इससे अनेकों लाभ हुए हैं जिनकी गणना नीचे की जाती है —

१ राष्ट्रीयतावाद से देशभक्ति की भावना बढ़ती है (Nationalism stimulates patriotism)—राष्ट्रीयता की भावना सदैव किसी रूप विशेष में सम्बन्धित हुआ करती है। सामान्य परम्पराओं में पले हुए तथा अपने को राष्ट्र का सदस्य बतलाने वाले लोगों के लिए यह स्वाभाविक है कि वे अपने स्वदेश को भी प्रेम करें। प्रायः यह देखा गया है कि एक व्यक्ति जितना अधिक पक्का राष्ट्रीय होगा उतनी ही अधिक राष्ट्रीयता की भावना भी उसमें मिलेगी। राष्ट्रीयता की भावना के विकास के साथ साथ देशभक्ति की भावना स्वतः विकसित होती है। यह हिटलर के जर्मनी की राष्ट्रीयता ही थी जिसने देश के नाम पर लाखों की संख्या में जर्मन लोगों को सर्वस्व बलिदान करने के लिए तैयार कर दिया था।

२ राष्ट्रीयतावाद एक संयोजक तत्व है (Nationalism is a unifying factor)—जिस देश में राष्ट्रीयता की भावना जागृत रहती है, वह देश कभी आपसी वर्गों, धर्म तथा सम्प्रदायों में नहीं बंटा रह सकता। राष्ट्रीयता किसी भी देश को एक इकाई के रूप में संयुक्त रखने वाला एक प्रबल तत्व है और इस एक भावना के बलवती होने पर अन्य धर्म, जाति तथा संस्कृति सम्बन्धी सारे मतभेद अपने आप महत्वहीन हो जाते हैं। राष्ट्र शब्द एकता का प्रतीक (Symbol) है और इसके नाम पर व्यक्ति अपने सारे बाह्य भेदों को भूल जाता है।

३ राष्ट्रीयतावाद उदारतावाद को जन्म देता है (Nationalism leads to liberalism)—राष्ट्रीयतावाद का एक सबसे बड़ा लाभ यह भी है कि व्यावहारिक राजनैतिक जीवन में इसका अन्तिम परिणाम तानाशाही का समाप्त कर प्रजातन्त्र की स्थापना करना है। राष्ट्रीयतावाद अपने सच्चे रूप में "आत्म निर्णय (Self determination) की एक पुकार है जो यह स्वीकार करती है कि जनता को अपने शासक चुनने का अधिकार होना चाहिए। अतः दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि जिस देश में राष्ट्रीयता की भावना प्रबल होगी वहां की जनता कभी विदेशी राज्य अथवा निरंकुश व गैर जिम्मेदार शासन को सहन नहीं करेगी और उसका अन्तिम

परिणाम उदारतावाद को जन्म देगा। ब्रिटेन, अमेरिका, स्विटजरलैंड आदि राष्ट्रीय देशों की प्रजातन्त्रात्मक सरकारें इसका उदाहरण है।

४—राष्ट्रीयतावाद राज्यों को स्थाई बनाता है (Nationalism provides a stable basis for States)—आज तक के इतिहास में पाये जाने वाले धर्म, जाति, भाषा तथा संस्कृति आदि सारे आधारों में से एक भी आधार इतना दृढ़ अथवा उपयुक्त नहीं है कि उस पर राज्यों का निर्माण किया जा सके। उदाहरण के लिए यदि भाषा या धर्म के आधार पर प्रान्त अथवा राज्य बनाये जायें तो उनमें कभी सुख और शान्ति नहीं रह सकती। आपसी झगड़ों के कारण उनकी सीमायें नित्य प्रति बदलती रहेंगी। इसके विपरीत राष्ट्रीयता एक ऐसा सबल आधार है जो राज्य के निर्माण के लिए एक ठोस सहारा प्रदान करता है और उसके आधार पर निर्मित राज्य अधिक स्थाई व मजबूत होते हैं। बालकान देश (Balkan Countries) इसके जीते जागते उदाहरण हैं। *बालकान के इस प्रदेश का मानचित्र पिछले दो सौ वर्षों में बीसों बार बदला होगा,* किन्तु भौगोलिक, जातीयता व भाषा आदि के आधार पर *किये गये विभाजन स्थाई नहीं रह सके। अन्त में राष्ट्रीय चेतना के आधार पर* किया गया आधुनिक विभाजन अधिक स्थाई व दृढ़ दिखाई देता है। बर्गेस के शब्दों में "राष्ट्रीय-राज्य राजसत्ता और स्वाधीनता के सम्बन्ध की समस्या का समाधान उपस्थित करता है इस कारण यह परम शक्तिशाली राजनैतिक संस्था होने के साथ साथ सबसे अधिक स्वतन्त्र भी है।"

५—राष्ट्रीयतावाद राष्ट्रीय चरित्र की विभिन्नताओं की रक्षा (Nationalism preserves the diversities of national character)—मनुष्यता के विकास तथा सभ्यता की प्रगति के लिए जितनी एकता तथा समरूपता आवश्यक है उतनी ही विभिन्नता भी। एक बाग का सौन्दर्य इसी में है कि उसमें नाना प्रकार के पेड़ तथा फूलों की बहुतायत हो, इसी प्रकार एक राष्ट्र की वास्तविक शोभा तथा उन्नति इसी में है कि उसमें व्यक्तियों को अपनी प्रतिभा तथा रुचि अनुकूल स्वतन्त्रता से विकसित होने दिया जाय। ये राष्ट्रीय चरित्र की विशेषतायें ही कुल मिलाकर विश्व की प्रगति में अपना योगदान देती हैं, जिसके कारण इन्हें सुरक्षित रखना परम आवश्यक है। राष्ट्रीयतावाद विभिन्न राष्ट्रों की इन्हीं विशेषताओं को जीवित रखने में परम है अतः यह एक बहुत लाभदायक वस्तु है।

६—राष्ट्रीयतावाद से ही शुद्ध अन्तर्राष्ट्रीयतावाद का विकास हो सकता है (Nationalism alone can lead to internationalism)—कुछ लोगों का कहना कि राष्ट्रीयतावाद अन्तर्राष्ट्रीयतावाद की पहली सीढ़ी है। इसके सम्बन्ध में यह तर्क दिया जाता है कि जिस प्रकार जब तक एक व्यक्ति अपने घर वालों को प्रेम नहीं करता तब तक वह अपने पड़ोसियों को प्रेम नहीं करता इसी प्रकार संसार के सारे राष्ट्रों से प्रेम करने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति पहले अपने राष्ट्र को प्रेम करना सीखे। उनका कहना है जब अपना परिवार को चाहेंगे का अर्थ यह नहीं

है कि हम अन्य परिवारों को घृणा करते हैं। इसी प्रकार राष्ट्रीय प्रेम का अर्थ भी यह कदापि नहीं हो सकता कि अन्य राष्ट्रों को घृणा की दृष्टि देखें। बल्कि गहराई से देखा जाय तो विशुद्ध राष्ट्रीयता हमें अपने दृष्टिकोण का क्रमिक रूप से विस्तृत करना सिखाती है और सच्चे अर्थों में शुद्ध अन्तर्राष्ट्रीयतावाद का आधार है।

राष्ट्रीयतावाद के दोष
(Evils of Nationalism)

अंग्रेजी में एक कहावत है कि प्रत्येक गुलाब में काँटे होते हैं (Every rose has its thorn) संसार की अच्छी से अच्छी वस्तु भी अवगुणों से अछूती नहीं है। इस दृष्टि से उपरोक्त सारे गुण के होते हुए भी यदि हम राष्ट्रीयतावाद के अवगुणों की एक सूची तैयार करने लगें तो उनकी संख्या गुणों से कहीं अधिक होगी। यद्यपि जहाँ तक सिद्धान्त का प्रश्न है, राष्ट्रीयतावाद का कटु से कटु आलोचक भी इसे स्वीकार नहीं कर सकता कि यह एक उत्तम वस्तु है किन्तु स्वभाव से ही भावात्मक (Sentimental by nature) होने कारण राष्ट्रीयतावाद में एक उत्तेजनात्मक गुण है, जो उसमें निम्नलिखित अवगुण उत्पन्न कर देता है —

१ *राष्ट्रीयतावाद प्रायः शोषण तथा स्वार्थ साधन की ओर ले जाता है* **(Nationalism is often organised for selfish ends and exploitation)**—राष्ट्रीयता की भावना प्रायः बहुत शीघ्र ही उत्तेजित हो जाया करती है, जिसके फलस्वरूप असहिष्णुता (Intolerance) तथा एकाधिकार (Exclusiveness) की भावनायें पनपती हैं। अपनी सीमायें अतिक्रान्त कर जाने पर यही अति राष्ट्रीयता विश्वशान्ति तथा सद्भावना के मार्ग का सबसे बड़ा रोड़ा है। यह विदेशियों के प्रति घृणा की भावना को जन्म देती है और उनके साथ सहयोग से मिल जुलकर कार्य करने में बहुत अधिक बाधा पहुँचाती है। यह एक दूसरे की संस्कृति को समझने नहीं देती और राष्ट्रों के बीच की खाई को पाटने के बदले और भी गहरी बनाती है। इसीलिए श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर ने इसकी बड़ी भर्त्सना करते हुए इसे "एक समूची जाति का व्यवस्थित स्वार्थ (An organised self interest of the whole people बतलाया है। उन्हीं के शब्दों में यह "आत्मपूजा स्वार्थी उद्देश्यों की संगठित शक्ति के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। हेज (Hayes) के कथनानुसार भी "राष्ट्रीयतावाद जाति या राष्ट्र के सम्बन्ध में अभिमान और शेखी की एक मानसिक वृत्ति है जिसमें अन्य राष्ट्रों के प्रति तुच्छता और विद्वेष के भाव रहते हैं।" (It is a proud and boastful habit of mind about one's own nation accompanied by a supercilious or hostile attitude towards other nations)।

२ राष्ट्रीयतावाद घृणित जातीय अभिमान व शत्रुता की ओर ले जाता है **(Nationalism leads to hateful racial pride and hostility)**—राष्ट्रीयतावाद का यह स्वाभाविक दुर्गुण है कि यह अपनी प्रशंसा तथा उच्चता सिद्ध करने के लिए

अन्य राष्ट्रों को तुच्छ व हीन सिद्ध करना चाहता है, जिसका परिणाम यह होता है कि विभिन्न राष्ट्रों में पारस्परिक ईर्ष्या, तनाव, होड़ तथा प्रतियोगिता की भावनायें बढ़ती हैं। यह आपसी तनाव ही अन्ततः एक ऐसे शत्रुतापूर्ण वातावरण (Hostile atmosphere) को पैदा कर देता है, जिसके कारण साधारण से बहाने के मिलते ही विश्वयुद्ध जैसा भयानक विस्फोट हो पड़ता है। राजनीति शास्त्र के कुछ विद्वान् इसे भेड़िये की सी राष्ट्रीयता (Wolf pack nationalism) बतलाते हैं।

३ एक राष्ट्र एक राज्य का सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीयतावाद के प्रतिकूल है (One nation one state principle runs against Internationalism)—जैसा कि ऊपर बतलाया गया है कि राष्ट्रीयतावाद एक राष्ट्र एक राज्य के सिद्धान्त को मानता है। बरनार्ड जौसफ (Bernard Joseph) के मतानुसार "यह एक भयावह सिद्धान्त है और विश्व के विकास में एक प्रधान बाधा है।" (It is a dangerous principle and constitutes a chief obstacle to world progress) कुछ अन्य लेखकों की सम्मति में भी राष्ट्रीयतावादी यह सिद्धान्त बहुत संकीर्ण है तथा अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण व विश्वबन्धुत्व की भावना को विकसित होने से रोकता है। इस सिद्धान्त द्वारा एक विश्व सरकार (One world government) जैसी कल्पना कभी साकार नहीं हो सकती। आज के राष्ट्रीय राज्य, जो प्रोफ० जोड के शब्दों में अगर शीघ्र ही विश्व-राज्य में विलीन नहीं किये गये तो आपस में एक दूसरे को पीस डालेंगे। अन्ततः आज के विश्व के सामने एक ही मार्ग है और वह यह कि वह राष्ट्रीयतावाद की संकीर्णता को छोड़कर अन्तर्राष्ट्रीयतावाद को स्वीकार करे।

४. राष्ट्रीयतावाद युद्ध को जन्म देता है (Nationalism provokes war)—राष्ट्रीयतावाद राष्ट्रीय हितों की रक्षा के नाम पर नागरिकों में उत्तेजना भरता है और एक ऐसे वातावरण की सृष्टि करता है जिसमें प्रत्येक क्षण एक भीषण व भयानक युद्ध की सम्भावना सदैव बनी रहती है। यह सैनिकवाद (Militarism) का सहचर है और नाज़ी जर्मनी व फासिस्ट इटली इस बात के ज्वलन्त उदाहरण हैं कि अन्ततोगत्वा राष्ट्रीयतावाद की चरम परिणति विश्वयुद्ध में हुआ करती है।

५. राष्ट्रीयतावाद का परिणाम साम्राज्यवाद है (Nationalism results in Imperialism)—राष्ट्रीयतावाद अपनी सीमायें लांघने पर अपने नागरिकों को बहुत स्वार्थी व अन्धा देशभक्त बना देता है। उनमें अपने को उच्च समझने की झूठी भावना आ जाती है और देशप्रेम इस सीमा को पहुंच जाता है कि 'मेरा देश सही हो या गलत' (My country right or wrong) सदैव मेरे लिए है। इसका परिणाम यह होता है कि वे अपने तुच्छ स्वार्थों के लिए दूसरे का शोषण (Exploitation) करने लगते हैं। सन् १८८० से लेकर १९१४ तक का यूरोप इसका सबसे बड़ा उदाहरण है। फ्रांस की राज्यक्रान्ति (French Revolution) से जागी हुई राष्ट्रीयतावाद इस प्रकार सारे यूरोप में तीव्रता के साथ फूटी कि सारे राष्ट्र उपनिवेश बनाने

(Colonization) के लिए दौड़ने लगे। अफ्रीका तथा एशिया जो कम विकसित महाद्वीप थे उनकी क्रीडा भूमि बन और वहाँ व्यापार तथा अपनी सभ्यता के प्रसार के बहाने से उन्होंने विशाल साम्राज्य स्थापित किये और इन दरिद्र उपनिवेशों (Colonies) को भूख और अकाल की सीमा पर ला दिया। यह राष्ट्रीयतावाद का ही दुष्परिणाम है कि एक राष्ट्र अपने बने हुए माल को बेचने के लिए बाजार ढूँढते ढूँढते, दूसरे औद्योगिक राष्ट्रों से टकराता है और उसकी आर्थिक राष्ट्रीयता से विश्वयुद्ध जैसी भयानक चीज संघटित हो जाती है।

राष्ट्रीयतावाद अन्तरनिर्भरता के स्थान पर आत्मनिर्भरता सिखलाता है *(Nationalism teaches self sufficiency in place of interdependence)*— राष्ट्रीयता की भावना अपने नग्न रूप में एकाकीपन (Exclusiveness) की भावना है। यह सिखलाती है कि एक राष्ट्र को अपनी आवश्यकता की चीजें अपने यहाँ ही उत्पन्न करनी चाहिए और विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करना चाहिये। यह आत्म निर्भरता की शिक्षा नागरिकों के दृष्टिकोण को संकुचित (Narrow) बनाती है और वे इस बात को भूल जाते है कि सारा विश्व एक है। पहले ऐसा होता था कि कनाडा में गेहूँ फालतू होने के कारण जला दिया जाया करता था जबकि दूसरे पड़ौसी राष्ट्र में लोग अकाल से तड़प तड़प कर प्राण देते रहते थे। यह आत्मनिर्भरता मूर्खता है और एक स्वस्थ विश्व का निर्माण करने के लिए हम परस्पर में अन्तरनिर्भरता (Interdependence) अपनानी चाहिए क्योंकि 'सामूहिक उत्तरदायित्व तथा सामूहिक सफलताओं का नाम ही असली सभ्यता है।"

इस प्रकार यह निष्कर्ष निकलता है कि राष्ट्रीयतावाद एक ऐसी वस्तु है जिसमें सभ्यता तथा संसार की अभिवृद्धि तथा विनाश दोनों के बीज विद्यमान हैं। यह बड़ा शक्तिशाली हथियार है जिसका उपयोग बड़ी सावधानी से किया जाना चाहिये। अपने विशुद्ध रूप में रहने पर इसने भूतकाल में मानवता का बहुत अधिक कल्याण किया है और आज भी स्वस्थ अन्तर्राष्ट्रीयता की दृढ़ आधार शिला बिना राष्ट्रीयता वाद के और कुछ नहीं हो सकती। यह भय व घृणा, कायरता, ईर्ष्या, प्रतिशोध आदि दुर्गुणों को स्वयं नष्ट कर देती है। किन्तु अपना विकृत रूप धारण करने पर इससे होने वाले अहित की कल्पना करते ही रोमांच खड़े होते है। इसी विकृत राष्ट्रीयता को ही ग्रिलपाजर (Grillparzar) मनुष्यता से पशुता की ओर जाने का मार्ग बतलाते हैं। लार्ड एक्टन (Lord Action) ने इसे ही 'समाजवाद के सिद्धान्त से भी अधिक अर्थहीन और अपराधमूलक' माना है (It is more absurd and more criminal than the theory of Socialism) अतः सच्चा राष्ट्रीयतावाद वही है जो "जीओ और जीने दो' (Live and let live) के सिद्धान्त में विश्वास करता है। आज के प्रगतिशील विश्व में राष्ट्रीयता की दीवारें कुछ खण्डहर तथा कृत्रिम (Artifical) सी दिखाई देती हैं और लोगों का यह विश्वास बढ़ता जा रहा है कि 'एक

अन्तर्राष्ट्रीयतावादी विश्व में ही सारे राष्ट्र सबसे उत्तम ढङ्ग से रह सकेंगे।" (जैंसफ)। अत यदि हमने अपने राष्ट्रीयतावाद को शीघ्र ही अन्तराष्ट्रीयतावाद मे विलीन नहीं किया तो "अन्तत राष्ट्रीय राज्य के सिद्धान्त की वही गति होगी जो हनरी अष्टम तथा लूथर के राष्ट्रीय चर्च सिद्धान्त की हुई थी।" (In the long run the theory of national state will go the way of Henry VIII and Luther s theory of national Church —Zimmern)।

साम्राज्यवाद

(Imperialism)

साम्राज्यवाद राजनीति शास्त्र का एक घिनौना शब्द है। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में साम्राज्यवाद से तात्पर्य प्राय उस विस्तारवादी प्रवृत्ति से लिया जाता है जिसके द्वारा एक राष्ट्र अपने आपको दूसरों की कीमत पर पनपाना और बढ़ाना चाहता है। प्राय साम्राज्यवाद आर्थिक शोषण और शक्तिशाली राष्ट्रों द्वारा दुर्बल राष्ट्रों पर प्रभुत्व स्थापित करने की प्रवृत्ति का द्योतक माना जाता है। समाज विज्ञान के विश्वकोष (Encyclopaedia of Social Sciences) में साम्राज्यवाद का अर्थ इस प्रकार दिया गया है—'साम्राज्यवाद एक ऐसी नीति है जिसका उद्देश्य एक साम्राज्य उत्पन्न एवं संगठित करना तथा उसे स्थापित रखना है, अर्थात् एकल तथा केन्द्रीकृत इच्छा के अधीन न्यूनाधिक विभिन्न जातीय इकाइयों को संगठित किया हुआ एक बड़ा विस्तृत राज्य।" (पृष्ठ ६०५) प्रस्तुत परिभाषा द्वारा साम्राज्यवाद में तीन विशिष्ट लक्षण होते हैं—प्रथम एक विस्तृत राज्य, दूसरे जातीय विभिन्नता, और तीसरे शासन की केन्द्रीयता। सदियों तक संसार पर शासन करने वाले ब्रिटिश साम्राज्य में प्रथम को छोड़कर अन्य दोनों लक्षण स्पष्टत देखे जा सकते हैं। प्रसिद्ध लेखक सी० डी० बर्न्स की मान्यता है कि "साम्राज्यवाद भिन्न भिन्न प्रदेशों व जातियों पर एक ही प्रकार की शासन प्रणाली तथा विविध विधान स्थापित करने की प्रणाली का ही दूसरा नाम है" (Imperialism is a name given to a single system of Law and Government in many different lands and races)। वे इसे बढ़ती हुई अन्तर्राष्ट्रीयता और पीछे छोड़ी हुई प्रान्तीय राष्ट्रीयता के बीच का स्तर मानते हैं। साम्राज्यवाद के परम्परागत स्वरूप में यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि सबल जातियाँ, निर्बल जातियों की पिछड़ी हुई स्थिति से लाभ उठाती है और युद्ध के समय उनमें अपनी इच्छानुसार धन जन की सहायता लेती है। साम्राज्यवाद इस दृष्टि से एक दूषित संगठन है जो विजयी जातियों ने इतिहास के पटल पर विजित जातियों के शोषण के लिये स्थापित किया है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के विख्यात लेखक स्यूमा (Schuman) ने इसे पश्चिमी राष्ट्रीय राज्यों द्वारा संसार की अश्वेत जातियों पर सैनिक बल की सहायता से अपनी शक्ति का आरोपण बतलाया है (Imperialism is the imposition by force and violence of alien rule upon subject people despite all moralizing and pretentions to the contrary)। इस तरह साम्राज्यवाद

जनसाधारण के हित तथा स्वतन्त्रता के लिये न होकर उन्हें एक जाति विशेष के स्वार्थ और लाभ की दृष्टि से शोषित करने वाली व्यवस्था का नाम है।

दुनिया के साम्राज्यवादी देश अपनी साम्राज्य लिप्सा को अपनी मनगढ़न्त तर्कों द्वारा उचित तथा न्यायपूर्ण बतलाते आये हैं। यूरोप के अधिकतर ईसाई राष्ट्र जब सबसे पहले पूर्व के भागों में व्यापार करने के लिये आये तो उन्हें इसकी प्रमुख प्रेरणा धर्म से मिली। बाईबिल हाथ में लेकर वे निकले और ज्यों ज्यों उनका व्यापार बढ़ता गया उनका झण्डा उनके व्यापार के पीछे-पीछे चलता रहा (Flag follows the trade)। श्वेत जातियों के विशेष उत्तरदायित्व का एक नया नारा उन्होंने लगाया और श्वेत जातियों पर विधाता द्वारा दिये गये बोझे (White men's burden) का नाम लेकर वे अश्वेत और पिछड़ी हुई जातियों का कल्याण करने निकले। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उन्होंने पिछड़े देशवासियों एवं जातियों को अपने सम्पर्क द्वारा सुसस्कृत किया, आगे बढ़ना सिखलाया, किन्तु इतिहास साक्षी है कि इन गौराग व्यक्तियों के बोझे ने काली मानवता की इस प्रकार कब्र खोद दी है कि बीसवीं शताब्दी में इस साम्राज्यवाद के जूए को उठा फेंकने के बाद भी एशिया और अफ्रीका के राष्ट्र सही प्रकार से सास नहीं ले पा रहे हैं। साम्राज्यवादियों का यह कथन कि "साम्राज्य एक प्रन्यास शक्ति है" (Empire is a power in trust) अथवा बड़े-बड़े साम्राज्यों की प्रतिमा सोने के पत्र के समान है जिसमें छोटे राष्ट्र नाभान्वित होते हैं केवल खोखले तर्क हैं जिनके द्वारा किसी भी प्रकार के साम्राज्यवाद को उचित ठहराना आज सम्भव नहीं।

साम्राज्यवाद का इतिहास शायद उतना ही पुराना है जितना कि मानवता का इतिहास। आज से लगभग ५० हजार वर्ष पूर्व भारतवर्ष में आर्य साम्राज्य था। मिस्र, मैसापोटेमिया और चीन में प्राचीन काल में कितने ही बड़े साम्राज्य स्थापित हुए। बबीलोनियम तथा असीरियन साम्राज्यों का जिक्र इतिहास के विद्यार्थी सदैव से पढ़ते आये हैं। ईसा से ४ शताब्दी पूर्व सिकन्दर महान ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी जिसमें यूनान, पश्चिम एशिया सीरिया, मेसोपोटमिया, अफगानिस्तान, फारस तथा तुर्किस्तान आदि देश थे। इसी प्रकार ईसा से ३०० वर्ष पूर्व इटली में सैनिक शक्ति के आधार पर रोम का विशाल साम्राज्य पनपा जो ६०० वर्षों से भी अधिक यूरोप के बहुत बड़े भू-भाग पर अपना आधिपत्य कायम रख सका। ईसाई धर्म की आड़ में रोम के इस पवित्र साम्राज्य ने कितने ही अन्याय और अत्याचार किये जो अन्तत उसके पतन के कारण बने। पन्द्रहवीं शताब्दी में जब रोम का यह साम्राज्य अवनति की ओर जा चुका था यूरोप में राष्ट्रीय राज्य अँगड़ाईयाँ लेने लगे। पुर्तगाल के नाविक इसी समय दुनिया की खोज में निकले और अफ्रीका, ब्राजील आदि में पोर्चगी शासन की स्थापना हुई। इसी क्षेत्र में स्पेन ने मेक्सिको पीरू, निदरलैंड आदि देशों को अपने साम्राज्य में सम्मिलित किया और वह संसार का विशालतम शासन

साम्राज्यवाद
(Imperialism)

साम्राज्यवाद राजनीति शास्त्र का एक घिनौना शब्द है। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में साम्राज्यवाद से तात्पर्य प्रायः उस विस्तारवादी प्रवृत्ति से लिया जाता है जिसके द्वारा एक राष्ट्र अपने आपको दूसरों की कीमत पर पनपाना और बढ़ाना चाहता है। प्रायः साम्राज्यवाद आर्थिक शोषण और शक्तिशाली राष्ट्रों द्वारा दुर्बल राष्ट्रों पर प्रभुत्व स्थापित करने की प्रवृत्ति का द्योतक माना जाता है। समाज विज्ञान के विश्वकोष (Encyclopaedia of Social Sciences) में साम्राज्यवाद का अर्थ इस प्रकार दिया गया है—"साम्राज्यवाद एक ऐसी नीति है जिसका उद्देश्य एक साम्राज्य उत्पन्न एवं संगठित करना तथा उसे स्थापित रखना है अर्थात् एकत्र तथा केन्द्रीकृत इच्छा के अधीन न्यूनाधिक विभिन्न जातीय इकाइयों को संगठित किया हुआ एक बड़ा विस्तृत राज्य।" (पृष्ठ ६०५) प्रस्तुत परिभाषा द्वारा साम्राज्यवाद में तीन विशिष्ट लक्षण होते हैं—प्रथम एक विस्तृत राज्य, दूसरे जातीय विभिन्नता, और तीसरे शासन की केन्द्रीयता। सदियों तक संसार पर शासन करने वाले ब्रिटिश साम्राज्य में प्रथम को छोड़कर अन्य दोनों लक्षण स्पष्टतः देखे जा सकते हैं। प्रसिद्ध लेखक सी० डी० बर्न्स की मान्यता है कि "साम्राज्यवाद भिन्न-भिन्न प्रदेशों व जातियों पर एक ही प्रकार का शासन-प्रणाली तथा विविध विधान स्थापित करने की प्रणाली का ही दूसरा नाम है" (Imperialism is a name given to a single system of Law and Government in many different lands and races)। वे इसे बढ़ती हुई अन्तर्राष्ट्रीयता और पीछे छोड़ी हुई प्रान्तीय राष्ट्रीयता के बीच का स्तर मानते हैं। साम्राज्यवाद के परम्परागत स्वरूप में यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि सबल जातियाँ, निर्बल जातियों की पिछड़ी हुई स्थिति से लाभ उठाती हैं और युद्ध के समय उनसे अपनी इच्छानुसार धन-जन की सहायता लेती हैं। साम्राज्यवाद इस दृष्टि से एक दूषित संगठन है जो विजयी जातियों ने इतिहास के पटल पर विजित जातियों के शोषण के लिए स्थापित किया है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के विख्यात लेखक श्यूमा (Schuman) ने इसे पश्चिमी राष्ट्रीय राज्यों द्वारा संसार की अश्वेत जातियों पर सैनिक बल की सहायता से अपनी शक्ति का आरोपण बतलाया है (Imperialism is the imposition by force and violence of alien rule upon subject people despite all moralizing and pretentions to the contrary)। इस तरह साम्राज्यवाद

जनसाधारण के हित तथा स्वतन्त्रता के लिये न होकर उस एक जाति विशेष के स्वार्थ और लाभ की दृष्टि से पोषित करने वाली व्यवस्था का नाम है।

दुनिया के साम्राज्यवादी देश अपनी साम्राज्य लिप्सा को अपनी मनगढ़न्त तर्कों द्वारा उचित तथा न्यायपूर्ण बतलाते आये हैं। यूरोप के अधिकतर ईसाई राष्ट्र जब सबसे पहले पूर्व के भागों में व्यापार करने के लिये आये तो उन्हें इसकी प्रमुख प्रेरणा धर्म से मिली। बाईबिल हाथ में लेकर वे निकले और ज्यों ज्यों उनका व्यापार बढ़ता गया उनका झण्डा उनके व्यापार के पीछे पीछे चलता रहा (Flag follows the trade)। श्वेत जातियों के विशेष उत्तरदायित्व का एक नया नारा उन्होंने लगाया और श्वेत जातियों पर विधाता द्वारा दिये गये बोझे (White men's burden) का नाम लेकर वे अश्वेत और पिछड़ी हुई जातियों का कल्याण करने निकले। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उन्होंने पिछड़े देशवासियों एवं जातियों को अपने सम्पर्क द्वारा सुसंस्कृत किया, आगे बढ़ना सिखलाया, किन्तु इतिहास साक्षी है कि इन गौरांग व्यक्तियों ने बोझे ने काली मानवता की इस प्रकार कब्र खोद दी है कि बीसवीं शताब्दी में इस साम्राज्यवाद के जूए को उठा फेंकने के बाद भी एशिया और अफ्रीका के राष्ट्र सही प्रकार से सांस नहीं ले पा रहे हैं। साम्राज्यवादियों का यह कथन कि "साम्राज्य एक न्यास शक्ति है" (Empire is a power in trust) अथवा बड़े-बड़े साम्राज्यों की प्रतिमा सोने के पत्र के समान है जिसमें छोटे राष्ट्र लाभान्वित होते हैं" केवल खोखले तर्क हैं जिनके द्वारा किसी भी प्रकार के साम्राज्यवाद को उचित ठहराना आज सम्भव नहीं।

साम्राज्यवाद का इतिहास शायद उतना ही पुराना है जितना कि मानवता का इतिहास। आज से लगभग ५० हजार वर्ष पूर्व भारतवर्ष में आर्य साम्राज्य था। मिश्र, मैसोपोटेमिया और चीन में प्राचीन काल में कितने ही बड़े साम्राज्य स्थापित हुए। बबीलोनियन तथा असीरियन साम्राज्यों का जिक्र इतिहास के विद्यार्थी सदैव से पढ़ते आये हैं। ईसा से ४ शताब्दी पूर्व सिकन्दर महान ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी जिसमें यूनान, पश्चिम एशिया, सीरिया, मेसोपोटेमिया, अफगानिस्तान, फारस तथा तुर्किस्तान आदि देश थे। इसी प्रकार ईसा से ३०० वर्ष पूर्व इटली में सैनिक शक्ति के आधार पर रोम का विशाल साम्राज्य पनपा जो ६०० वर्षों से भी अधिक यूरोप के बहुत बड़े भू-भाग पर अपना आधिपत्य कायम रख सकी। ईसाई धर्म की आड़ में रोम के इस पवित्र साम्राज्य ने कितने ही अन्याय और जो अत्याचार उसके पतन के कारण बने। पन्द्रहवीं शताब्दी में जब रोम अवनति की ओर जा चुका था यूरोप में राष्ट्रीय राज्य अंगड़ाइयाँ लेने लगे थे नाविक इसी समय दुनिया की खोज में निकले और अफ्रीका ब्राजील पोचगी शासन की स्थापना हुई। इसी बीच में स्पेन ने मैक्सिको, पीरू, दशों को अपने साम्राज्य में सम्मिलित किया और वह संसार का

माना जाने लगा। १७वीं शताब्दी के आरम्भ मे हालैण्ड वालो ने अफ्रीका तथा दक्षिण समुद्र के द्वीप समूहो म अपना साम्राज्य फैलाया। लगभग इसी समय अंग्रेज और फ्रांसीसी भी बाहर निकले और भारतवर्ष, कनाडा तथा उत्तरी अमरीका उनके साम्राज्य के अंग बने। कितने ही साम्राज्यवादी युद्धो के पश्चात् ब्रिटेन की नौ सेना ने ससार के एक विशाल भूभाग पर अपना एक स्थायी प्रभुत्व कायम किया और प्रथम विश्वयुद्ध तक स्थिति यह थी कि यूरोप के प्रमुख राष्ट्र किसी न किसी पिछडे हुये भूभाग को हडप कर ससार के शक्तिशाली साम्राज्यवादी शक्ति माने जाते थे। २०वीं शताब्दी म और विशेषकर दो विश्व युद्धो ने ससार की पिछडी हुई जातियो म राष्ट्रीयता का सचार किया है जिसके फलस्वरूप सन् १९१८ के बाद से ससार के तीन महा साम्राज्य धीरे धीरे छिन्न-भिन्न होने लगे। ब्रिटेन, फ्रान्स, और हौलण्ड की तीनो साम्राज्यवादी शक्तियो को अफ्रीका और एशिया की उगती हुई राष्ट्रीयता से चुनौती मिली जिसके परिणामस्वरूप वह ब्रिटेन जिसका दुनिया के ¼ भाग और ¼ जनसख्या पर स्वामित्व था आज ससार की तीसरी शक्ति मे स्थान रखता है।

साम्राज्यवाद क्यो ?

साम्राज्यवाद का जन्म इतिहास मे अनेको कारणो से हुआ है। यद्यपि ये कारण बहुत कुछ सीमा तक आज भी जीवित हैं किन्तु २० वीं शताब्दी के कुछ औद्योगिक और वैज्ञानिक तत्वो ने उनके प्रभाव को महत्वहीन बना दिया है। साम्राज्यवाद के जन्म और विकास म सहायक होने वाले कुछ प्रमुख तत्व इस प्रकार हैं —

(१) **अधिकार लिप्सा (Lust for power)** —अपने अधिकार क्षेत्र को फैलाना मानव की एक स्वाभाविक भूख है। पशु जगत की यह भूख जो मानव समाज म भी स्पष्ट दिखाई देती है बडी-बडी जातियो और समुदायो मे भी उसी प्रकार से उत्प्रेरक रूप म देखी जाती है। जिस तरह मनुष्य अन्य व्यक्तियो को अपने आधीन करके खुश होता है इसी प्रकार से एक समुदाय अथवा एक जाति दूसरे समुदाय और जाति को अपनी आधीनता मे देखकर एक जातीय सुख अनुभव करती है जो व्यक्ति के अहम् (Ego) का ही व्यापक रूप है। नाजीवाद और फासीवाद इसी प्रकार की साम्राज्य वादिता के प्रतीक हैं।

(२) **जनसख्या के लिये बाह्य द्वार (Outlet for surplus population)** — १७वीं और १८वीं शताब्दी मे ससार के बहुत से देश दुनिया के अन्य देशो को इसलिये भी अधीन रखना चाहते थे कि वे अपनी अतृप्त सख्या को वहाँ पर बसा सकें और इस तरह जनसख्या के कारण अपने गिरते हुये जीवन स्तर को रोक सकें। जापान द्वारा कोरिया, फारमूसा और मचूरिया म किये गये आक्रमण तथा इटली द्वारा लीबिया, सुमालीलैण्ड और इथोपिया मे की गई साम्राज्यवादी गतिविधियाँ इसी प्रकार के साम्राज्यवाद की प्रतीक हैं।

(३) आर्थिक उन्नति और कच्चे माल की खोज (Economic progress and hunt for raw materials) —साम्राज्यवाद की जड़ में प्रायः आर्थिक कारण भी रहे हैं। सभी साम्राज्यवादी शक्तियां अपने अधीन उपनिवेशों से कच्चे माल की माग करती रही हैं जिससे उनके औद्योगिक विकास को सहायता मिल सके। यद्यपि अपनी पुस्तक, 'साम्राज्यवाद और विश्व राजनीति' (Imperialism and World Politics) में विद्वान लेखक पार्कर मून (Parker Moon), इस तर्क का खण्डन करते हैं किन्तु सभी साम्राज्यवादी शक्तियों का और ब्रिटेन का इतिहास साक्षी है कि साम्राज्यवादी उपनिवेशों से कच्चा माल सस्ते दामों में लाकर अपने देश की औद्योगिक क्रान्ति की बढ़ती हुई आवश्यकता को पूरा किया है। उनकी मशीनें खाली न रहें इसलिये वे उपनिवेश ढूंढने निकले।

(४) तैयार माल के लिए बाजार (Market for finished goods) —जिस तरह कच्चा माल ढूंढने के लिये उपनिवेश ढूंढे गये इसी तरह बना बनाया माल मँहगी कीमत पर बेचने के लिये साम्राज्य की आवश्यकता महसूस की गई। Joseph Chamberlain (जोसफ चैम्बरलेन) नामक ब्रिटेन के साम्राज्यवादी प्रधानमंत्री ने कहा था कि "साम्राज्य एक व्यापार है" (The Empire is a commerce)। तैयार माल को अपने देश में बेचना अधिक समय तक सम्भव नहीं था इसलिये औद्योगिक देश अपने माल को बेचने के लिये व्यापार की तलाश में उपनिवेशों की ओर गये।

(५) विदेशी पूंजी नियोजन और सस्ती मजदूरी (Investment of Capital abroad and Cheap labour) —यूरोप के औद्योगिक राष्ट्र जो सबसे पहले उपनिवेशों की खोज में लगे उनके प्रेरणा स्रोतों में एक स्रोत यह भी था कि उन देशों के पूंजीपति बड़ी स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी पूंजी उपनिवेशों में नियोजित कर सकते थे। वहां पर उनके लिये साम्राज्यवादी सरकार सब प्रकार की सुविधा जुटा सकती थी और इसके बदले में मजदूरों के लिये जो मजदूरी उन्हें देनी पड़ती थी वह अत्यन्त ही सस्ती और सरलता से उपलब्ध हो जाती थी। सत्रहवी और अठारहवी शताब्दी में जबकि समाजवाद का जन्म नहीं हुआ था इस प्रकार के विचार अत्यन्त महत्व रखते थे और इसी कारण पश्चिम की शक्तियां पूर्व में आकर साम्राज्य फैलाने निकलीं।

(६) साम्राज्यवाद से साम्राज्यवाद (Imperialism breeds Imperialism) — १८ वी और १९ वी शताब्दी में जब योरोप के कुछ देश साम्राज्यवादी बने तो उन्हें अपने साम्राज्य और साम्राज्यवादी हितों की रक्षा के लिय और भी अधिक साम्राज्यवादी बनना पड़ा। उदाहरण के लिये ब्रिटेन को स्वेज नहर और मिश्र में साम्राज्य कायम करना था, इसलिये आवश्यक था कि वे भारतवर्ष पर और पूर्व में अपना साम्राज्य स्थापित रखना चाहते थे। १९वीं शताब्दी में संसार के महत्वपूर्ण स्थलों को अपने कब्जे में करने की एक दौड़ सी दिखाई देती है और अनेक बार साम्राज्य सिर्फ इसलिये स्थापित किये गये कि वे सैनिक और भौगोलिक दृष्टि से अनिवार्य थे।

(७) धार्मिक प्रेरणा (Religious Spur) – सबसे पहले अपने दल और सम्प्रदायों को दूर छोड़कर संसार के सुदूर भागों में जान माने व्यक्ति ईसाई मिशनरी अथवा धर्म प्रचारक थे। धर्म की प्रेरणा ने इन मिशनरियों को संसार के भिन्न भिन्न भागों में भेजा जहां पर बाइबिल और ईसाईयत का प्रचार करते हुये कितनी ही बार इन लोगों का प्राण तक गवाना पड़ा जिसके फलस्वरूप धार्मिक दंगे हुये और साम्राज्यवादी देशों ने धार्मिक हितों की रक्षा के नाम पर अपने राजनैतिक हितों को फैलाया।

(८) सैद्धान्तिक मतभेद (Ideological conflict) —आधुनिक युग में साम्राज्यवाद के विस्तार का सबसे प्रमुख कारण जनतन्त्रवादी और साम्यवादी देशों में पाया जाने वाला सैद्धान्तिक मतभेद है। प्राचीन साम्राज्यवाद की तरह आज का साम्राज्यवाद केवल भौगोलिक और आर्थिक न होकर सैद्धान्तिक अधिक है। संसार के दोनों गुट अपनी जीवन प्रणाली को फैलाने के लिये संसार में अधिकतम व्यक्तियों को जनतन्त्रवादी अथवा साम्यवादी बनाना चाहते हैं और एक विचार विशेष को अन्य लोगों तक पहुंचाने के कारण दोनों एक दूसरे को साम्राज्यवादी कहते हैं। वर्तमान साम्राज्यवाद जिसकी जड़ में वर्तमान शीतयुद्ध है। शोषण का एक नया रूप प्रस्तुत करता है जहाँ पर पहले की भांति उपनिवेश आर्थिक दृष्टि से शोषित न होकर प्रत्युत विदेशी सहायता के रूप में साम्राज्यवादी शक्तियों से संरक्षण प्राप्त करते हैं।

साम्राज्यवाद के स्वरूप—

वर्तमान युग में साम्राज्यवाद का स्वरूप बदल रहा है। घोर से घोर साम्राज्यवादी भी उसके स्वरूप को स्वस्थ बनाने के लिये एक उदार दृष्टिकोण के समर्थक हैं और चाहते हैं कि दुनिया के जिन भूभागों में अभी भी चेतना विकसित न हो सकी है उन्हें धीरे धीरे अपने पैरों पर खड़े होने का अवसर दिया जाय जिससे वे अन्ततः साम्राज्यवाद के बोझे से मुक्ति पा सकें। आधुनिक युग में साम्राज्यवाद के कुछ स्वरूप इस प्रकार दिखाई देते हैं—

(१) रक्षित राज्य क्षेत्र (Protectorate) —इस प्रथा के अनुसार अधीन देश के वैदेशिक तथा रक्षा विभाग साम्राज्यवादी देश के आधीन रहते हैं। तथा आन्तरिक विभागों में अन्य विभाग पर भी उनका नियन्त्रण रहता है। सन् १९२८ से पहले मिश्र, ब्रिटेन का रक्षित राज्य क्षेत्र था। इसी प्रकार क्यूबा और हेटी अमरिका के अधिरक्षित राज्य थे।

(२) पट्टेदारी राज्य (Lease Hold)—इस प्रथा के अनुसार प्रभुताशील देश आधीन देशों को अपने राज्य का कुछ भाग एक निश्चित दीर्घकाल के लिए पट्टे पर सौंपने के लिए बाध्य करते थे। प्रायः यह अवधि एक वर्ष की हुआ करती थी और पट्टेदारी के समय में पट्टे पर लिया हुआ राज्यक्षेत्र प्रभुताशील देश का उपनिवेश बना रहता था। सन् १८९८ में चीन ने रूस को मचूरिया के बन्दरगाहों को २५ वर्ष के लिए पट्टे पर दिया था। चीन के पोर्ट आर्थर और डेरियन बन्दरगाहों पर जापान का पट्टे-

दारी अधिकार था । इसी प्रकार के अन्य उदाहरण ब्रिटेन के विहाइवी (Wei Hai Wei) और अमेरिका के पनामा नहर के अधिकारों में देखे जा सकते हैं ।

(३) प्रभाव क्षेत्र (Sphere of Influence)—यह एक ऐसी प्रथा थी जिसके अनुसार साम्राज्यवादी देश किसी देश में व्यापारिक सुविधायें प्राप्त करके धीरे धीरे कालान्तर में उस पर अपना पूरा प्रभाव स्थापित कर लिया करते थे । व्यापारिक संधियों के बहाने धीरे धीरे अनुचित सुविधाओं द्वारा यह प्रभाव राजनैतिक क्षेत्र में साम्राज्यवाद को जन्म देता रहा । अफ्रीका एशिया तथा प्रशान्त महासागर के द्वीप समूहों में यूरोप की शक्तियों ने १६वीं शताब्दी में अपने प्रभाव क्षेत्र स्थापित किये थे ।

(४) बहुराजकता (Condominium)—इस प्रथा के अनुसार एक निश्चित भूमि पर दो या दो से अधिक देशों का अधिकार रहता है । प्रायः बहुराजकता उस समय स्थापित की जाती है जबकि उसके बिना दो शक्तिशाली राष्ट्र आपस में युद्ध करने की स्थिति में आ जाते हैं । इतिहास में इस तरह के उदाहरण अनेकों हैं जबकि दो साम्राज्यवादी शक्तियाँ मिलजुलकर एक उपनिवेश को चलाने के लिये मजबूर हुईं । उदाहरण के लिये फ्रांस, स्पेन और ब्रिटेन का टंजियर पर तथा ब्रिटेन और मिस्र का नील नदी पर संयुक्त अधिकार इस दृष्टि से उल्लेखनीय है ।

(५) आर्थिक नियन्त्रण—इस प्रथा के अनुसार एक अथवा अनेक शक्तिशाली तथा धनी राज्य किसी निर्धन अथवा दुर्बल राज्य की आर्थिक सहायता देकर उस पर अपना स्वामित्व स्थापित करते हैं । आर्थिक नियन्त्रण की इस स्थिति में शक्तिशाली देश दुर्बल देशों के आर्थिक साधन व्यापारिक विनिमय बैंक आदि को नियन्त्रण में लेते हैं । उदाहरण के तौर पर संयुक्त राष्ट्र अमरिका का करेबियन तथा मध्य अमेरिकन देशों में स्थापित आर्थिक नियन्त्रण इसी श्रेणी में आता है ।

(६) आयात निर्यात कर नियन्त्रण—यह एक ऐसी प्रथा है जिसके द्वारा साम्राज्यवादी देश अपने अविकसित उपनिवेशों में अपनी व्यापारिक वस्तुओं का ढेर लगा देते हैं और उनको वहाँ, उन देशों में बनी हुई सस्ती वस्तुओं से भी अधिक सस्ती बेचते हैं । जिसका परिणाम यह निकलता है कि वहाँ के उद्योग धन्धे नष्ट हो जाते हैं । चीन, फारस, भारत, मोरक्को, टर्की आदि के देशों में पश्चिमी राष्ट्रों ने इस प्रकार के नियन्त्रण लगाये थे जिसके फलस्वरूप उनका अपना विदेशी व्यापार मनमाने ढंग से उन्नति कर सका ।

(७) बहिर्देशीयता (Extra Territoriality)—इस प्रथा में शक्तिशाली साम्राज्यवादी देश अपने उपनिवेशों में रहने वाले अपने नागरिकों के हितों की रक्षा के लिये कुछ न्यायालयों की स्थापना करते हैं जिससे उपनिवेशों के कानून मातृदेशीय नागरिकों पर लागू न हो सकें । साम्राज्यवादी शक्तियाँ यह तर्क देती हैं कि अविकसित राष्ट्रों के विधि विधान चूँकि न्यायपूर्ण नहीं है इसलिए वहाँ पर रहने वाले नागरिकों को बहिर्देशीय सुविधा मिले । संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का जापान पर १८६४ तक ऐसा

ही नियंत्रण था। रूस को भी सन् १८७४ तक चीन में इसी प्रकार के बाह्यदेशीय अधिकार प्राप्त थे। यह न्याय सम्बन्धी अधिकार राजदूता के माध्यम से लागू होता है।

(८) अनियमित नियन्त्रण (Informal Control)—श्री आर० ए० व्यअल का मत है कि अनियमित नियन्त्रण की परम्परा उन साम्राज्यवादी देशों में स्पष्टतः देखी जा सकती है जो कि उपनिवेशों में शासन सँभालने के पहिले कितनी ही प्रकार के विधान विरुद्ध और अनुचित हस्तक्षेप स्वीकार करवाते थे। संयुक्त राज्य अमेरिका ने अपनी नौ सेना द्वारा निकारागुआ, डोमनिगो तथा अन्य करेबियन स्थित द्वीपों में इस प्रकार की शर्तें बलपूर्वक मनवाकर अपना प्रभुत्व स्थापित किया था। ब्रिटेन ने बलपूर्वक अपने वैदेशिक अर्थ में भी मेसोपोटामिया फारस और मिश्र में नियुक्त किये थे।

(९) मुक्ति द्वार नीति (Open door policy)—इस नीति से तात्पर्य यह है कि अनेकों बार शक्तिशाली देश मिलकर दुर्बल राष्ट्रों को बाध्य करके अपने हितों की पूर्ति के लिये उनसे ऐसी सन्धियाँ कर लेते हैं जिसके द्वारा सब व्यापारिक देशों को बराबर अधिकार प्राप्त होते हैं। जो विदेशी शक्तियाँ व्यापार करना चाहती हैं उनके लिये दुर्बल राष्ट्र का दरवाजा सदैव खुला रहता है और उसे समान सुविधाएँ जुटानी पड़ती हैं। इंगलैंड और अमेरिका ने चीन में इसके द्वारा अनेकों व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त की थी।

(१०) नियोजित प्रदेश (Mandated Territory)—प्रथम विश्व युद्ध के बाद १९१९ की वरसाई की शान्ति सभा में विजेता राष्ट्रों ने यह निर्णय किया था कि हारे हुए राष्ट्रों के पास जो अनुन्नत उपनिवेश हैं उनका शासन प्रबन्ध विजेता राष्ट्रों को एक ट्रस्ट के रूप में सौंप दिया जाय। जिन देशों को यह शासन सौंपा जायगा वह अपने-अपने नियोजित प्रदेश में सुशासन के लिये उत्तरदायी होंगे और धीरे धीरे चेष्टा करेंगे कि वे अपने नियोजित प्रदेशों को इस सीमा तक ले आयें कि वे अपने पैरों पर खड़े हो सकें। इस तरह राष्ट्र संघ (League of Nations) के तत्वावधान में एक मन्डेट कमीशन (Mandate Commission) नियुक्त हुआ जो कि इन प्रदेशों की शासन व्यवस्था का निर्देशन और नियन्त्रण का कार्य करता था। विकास की अवस्था के अनुसार ये प्रदेश तीन प्रकार के थे। ए०, बी० और सी०। दूसरे विश्व युद्ध तक इन सभी प्रदेशों में साम्राज्यवादी प्रदेशों और राष्ट्रवादी तत्वों के बीच निरन्तर संघर्ष रहे।

क्या साम्राज्यवाद उचित है?—विख्यात लेखक जोसन, टाकविल तथा अलैक्जेन्डर हैमिल्टन आदि का मत है कि साम्राज्यवाद एक लोकहित का साधन है। साम्राज्यवाद की परम्परा से शक्तिशाली एवं दुर्बल उन्नत तथा अनुन्नत सभी राष्ट्रों को लाभ हुआ है। "साम्राज्यवादियों के समान विचार करना सीखो इस तत्व ने पिछड़ी हुई मानवता को आगे बढ़ने की प्रेरणा दी है। सर जोसन के मतानुसार साम्राज्यवाद साम्राज्यवादी शक्तियों से अधिक उपनिवेशों के हित में रहा है। उन्होंने साम्राज्यवाद द्वारा कुछ लाभ इस प्रकार बतलाये हैं।

(१) साम्राज्यवादी देश अपने उपनिवेशों से शुल्क कर और भेंट (Tribute) आदि लेते आये है। यह भेंट धन अथवा सैनिक सहायता के रूप में भी दी जाती थी जिससे साम्राज्यवादी शक्तियां सबल बनी।

(२) साम्राज्यवादी देश अपने उपनिवेशों से सनिक सम्बन्धी और विशेष कर नौ सेना सम्बन्धी सहायता लिया करते थे जिसके फलस्वरूप उन्हें अपने विशाल साम्राज्य की सुरक्षा के लिए भी बहुत अधिक सनिक नहीं रखने पड़ते थे। उदाहरणार्थ जिब्राल्टर, माल्टा आदि के द्वीपों में अपने सनिक केन्द्र स्थापित कर, इङ्गलैंड ने महायुद्धों को जीतने में बड़ी सफलता प्राप्त की।

(३) व्यापारिक क्षेत्र में तो साम्राज्यवादी शक्तियों को अपने उपनिवेशों से बहुत कुछ लाभ तथा विकास की प्रेरणा मिली। उन देशों के व्यापारी साहस के साथ आगे आये और उपनिवेशों में मिलने वाले संरक्षण द्वारा उन्होंने बहुत शीघ्र ही अपने स्वदेश के व्यापारिक विकास को तीव्रता से सहयोग दिया। १७ वीं शताब्दी में भारत में व्यापार का एकाधिकार पाने वाली East India Company (ईस्ट इण्डिया कम्पनी), इसका प्रमुख उदाहरण है।

(४) साम्राज्यवाद से शासक देश अपनी जनसंख्या की समस्या को भी सरलता से सुलझा सके है जो लोग स्वदेश में नहीं खप सके उन्हें उपनिवेशों में ऊँचे ऊँचे पदों पर नियुक्त कर भेज देना साम्राज्यवाद के इतिहास की एक सामान्य घटना है। मातृ देश से बाहर आने वाले कितने ही स्वदेशी उपनिवेशों में उच्च पदों पर कार्य करते थे जिनसे साम्राज्यवाद के हितों की रक्षा भी होती थी।

(५) उपनिवेशों को भी साम्राज्यवादियों के सम्पर्क में आने से कुछ निश्चित लाभ हुए जिनके परिणाम, उनमें से अनेकों आज स्वतन्त्रता पा लेने के बाद भी उपभोग कर रहे हैं। उपनिवेशों को सबसे बड़ा लाभ साम्राज्यवाद से मिलने वाली सुरक्षा कहा जा सकता है। इंगलैंड, फ्रांस जैसे शक्तिशाली देशों की छत्रछाया में रहते हुए उपनिवेशों की ओर अन्य किसी शक्ति को सरलता से आँख उठाना सम्भव नहीं था और इस तरह अनेकों दुर्बल राष्ट्र भी एक लम्बे समय तक साम्राज्यवादी शक्ति के संरक्षण में सुरक्षित रहे।

(६) साम्राज्यवाद के आधीन देश समय-समय पर उनसे यथोचित आर्थिक सहायता भी पाते रहे है। यूरोप की सभी साम्राज्यवादी शक्तियों में ब्रिटेन अपनी उदारतावाद के लिये प्रसिद्ध है। अविकसित राष्ट्रों में ब्रिटेन ने अपने शासनकाल में कितनी ही आर्थिक सहायता सम्बन्धी बिल पास किये थे। कनाडा में नहरें बनाने के लिये तथा भारतवर्ष में शिक्षा की और उद्योग धन्धों की उन्नति के लिये पर्याप्त आर्थिक सहायता दी थी। इतना ही नहीं कुछ साम्राज्यवादी देशों की सहायता से अफ्रीका के बहुत से अविकसित प्रदेशों का सर्वाङ्गीण विकास भी हुआ है।

(७) व्यापार के क्षेत्र में भी अधीन देश प्रभुताशील राष्ट्रों के सम्पर्क में बहुत कुछ सीखते और पाते हैं।

साम्राज्यवाद से हानियाँ —

लाभ की तुलना मे साम्राज्यवाद से हानियाँ ही अधिक हैं। साम्राज्यवादी देश, जिन्होंने अपने साम्राज्य के स्वार्थ साधना के लिए फैलाया वे भी कालान्तर मे इस प्रक्रिया के स्वयं शिकार बने और इस तरह साम्राज्यवाद मे होने वाली हानियाँ केवल अधीन देशो को ही न होकर प्रभुताशील देशो का भी भुगतनी पड़ी।

प्रभुताशील देशो को हानियाँ —

(१) इन देशो को अपने उपनिवेशो मे शान्ति व्यवस्था कायम करने के लिये काफी मात्रा मे धन खर्च करना पड़ा।

(२) कितनी ही बार अपने व्यापार सम्बन्धी हितो की रक्षा के लिए ऐसी कितनी ही कठिनाइयाँ साम्राज्यवादियों के मार्ग मे आई जिसने उनकी अर्थ व्यवस्था पर भी प्रभाव डाला।

(३) उपनिवेशो को लेकर कितने ही बडे बडे युद्ध हुये जिन पर साम्राज्यवादी शक्तियो को अपना धन और जन खर्च करना पड़ा और सभी दृष्टियो से हानिया भुगतनी पड़ी।

(४) साम्राज्यवाद ने मातदेश म एक शासकीय सरक्षण पद्धति (System of Official Patronage) को जन्म दिया जिससे उन देशो की राजनैतिक नैतिकता का स्तर नीचे गिरा।

साम्राज्यवाद से उपनिवेशों को होने वाली हानिया —

सर जॉर्ज ने इन हानियो के विषय म निम्नलिखित बातो का उल्लेख किया है —

(१) साम्राज्यवादी राज्य अधिकतर स्वार्थ साधन और स्वहित पूर्ति म लीन रहते हैं जिसके फलस्वरूप उपनिवेश की जनता के हितो की अवहेलना होती है।

(२) प्रत्येक साम्राज्यवादी राष्ट्र अपनी सस्कृति को अपने उपनिवेशो मे रहने वाले नागरिको पर भाषा, धर्म, रहन-सहन के तरीके आदि के रूप मे थोपना चाहता है, जिससे उन देशो की सस्कृति पतन की ओर जाने लगती है।

(३) साम्राज्यवादी राष्ट्र अपने अधीन राष्ट्र के चरित्र को जान बूझ कर गिराने की चेष्टा करते हैं जिससे उनमे चेतना का सचार न हो सके और भविष्य म वहा की उपनिवेशवादी राष्ट्रीयता शासक शक्ति से सम्बन्ध तोड़ने की मांग न करे।

(४) शिक्षा के क्षेत्र म भी साम्राज्यवादी ताकत अपने अधीन देशो का आगे बढ़ने से रोकने का हर सम्भव प्रयास करती हैं उनकी चेष्टा यही रहती है कि उपनिवेशो के लोग अपना शैक्षणिक विकास न करें चूंकि उसका तार्किक परिणाम स्वतन्त्रता की माग होना है।

(५) साम्राज्यवादी देश अपने आधीन उपनिवेशो का युद्धो के समय अपने स्वार्थ साधन के लिए मनमाने ढग से दुरुपयोग करते हैं। उपनिवेशो की समस्याओं का

महायुद्ध मे भेड बकरियों की तरह झोंक देना उनके लिए एक साधारण बात है और इस तरह अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए उपनिवेशो की जनता की बलि दी जाती है।

(६) प्रशासन के क्षेत्र मे भी साम्राज्यवादी शक्तियाँ उपनिवेशो की जनता को आगे नही आने देना चाहती। बल्कि उनका प्रयास यह रहता है कि प्रशासन में उनके देशवासी ऊँचे अधिकारी रहें और उपनिवेश की जनता साधारण बाबूगीरी की नौकरी से आगे न बढ सके।

इस तरह साम्राज्यवाद मूलरूप से एक ऐसी दोषपूर्ण और स्वार्थी पद्धति है जिसमें शक्तिशाली राष्ट्र दुर्बल राष्ट्रों का शोषण करते है। अपने स्वार्थ साधनों की रक्षा के लिए निरीह और निर्दोष लोगो को एक माध्यम की भांति उपयोग में लाते हैं। बड़े-बड़े सिद्धान्तो और मानवतावादी नारों की आड में ससार की कोटि-कोटि मानवता को जीने के अधिकार से वचित करना चाहते हैं। प्रसिद्ध लेखक सी० डी० बनस के मत मे साम्राज्यवाद का ध्येय प्रतियोगितावाद और शोषण के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नही है। साम्राज्यवाद का जन्म आरम्भ मे सामुद्रिक डकैती और बाह्य वाणिज्य के रूप म हुआ था और यही बात ब्रिटिश साम्राज्य के जन्म की आधार शिला थी। इतिहास बतलाता है कि साम्राज्यवाद लोकहित के लिए स्थापित न होकर केवल स्वार्थ साधना और शोषण के लिए स्थापित हुआ है। श्वेत लोगो (White men s burden) के उत्तरदायित्व की बातें करने वाले पश्चिमी राष्ट्र बाइबिल से अधिक अशिक्षित देशो की जनता को कुछ नहीं पढ़ा सके। वहा की कुरीतियाँ ज्यो की त्यो रही और इसी साम्राज्य लिप्सा की आड मे बडे-बडे विश्व युद्ध तक उन्होंने लडाये। हालण्ड ने डच ईस्ट इण्डीज मे अपनी भाषा, धर्म और सस्कृति का प्रचार किया। काँगो म बेल्जियन्स ने अत्याचार किये। अगोला मे पुर्तगीज ने अपनी बबरता दिखलाई और दक्षिणी अफ्रीका तथा रोडेशिया जसे अफ्रीकी देशो में रगभेद नीति के नाम पर करोडो इन्सानो को मानवता के समुचित अधिकारो से वचित किया। श्वेत लोगो का उत्तरदायित्व काले इन्सानो की कब्र में परिणत होगया (White men s burden became the black men's doom)। दास प्रथा का जन्म हुआ और अफ्रीका और एशिया क विशाल भूभागो म ऐसी अन्यायपूर्ण शासन प्रणाली ने जन्म लिया जिसका मूल आधार ही रग भेद, असमानता और शोषण था। श्री पी०टी० मून का कहना है कि "साम्राज्यवादी शक्तियो ने उपनिवेश सिर्फ इसलिए प्राप्त किये थे कि वे उनके लिये बहुत बडे बाजार थे।" देशवासियो को आपस मे लडाकर फूट डालो नीति के आधार पर यह साम्राज्यवाद पनपा और आज भी यदि विश्व शान्ति का सबसे अधिक भय और चुनौती किसी से है तो केवल साम्राज्यवाद से।

वर्तमान युग म साम्राज्यवाद अपना एक नया रूप लेकर सामने आया है। अपने भौगोलिक स्वरूप को बदल कर उसने एक सैद्धान्तिक रूप धारण कर लिया है। आधुनिक साम्राज्यवादी शक्तियाँ अविकसित राष्ट्रो पर अपने गवनर जनरल भेजकर

अधिकार स्थापित नहीं करना चाहती बल्कि सैद्धान्तिक दृष्टि से अविकसित राष्ट्रों की सरकारों को अपने गुटों में मिलाना चाहती है। यह सैद्धान्तिक साम्राज्यवाद (Ideological Imperialism) जिसके आज की दुनिया में दो कैम्प हैं, वर्तमान युग में एक दूसरे को विस्तारवादी होने के अभियोग से आरोपित करता है। विशेषकर साम्यवादी देश इस दृष्टि से सतर्क हैं और यह प्रयास कर रहे हैं कि संसार के अधिक से अधिक भागों में समाजवादी सरकारें स्थापित हों। कोरिया, वियतनाम, लाओस आदि दक्षिण एशिया के देशों में साम्यवादी साम्राज्यवाद इस रूप में देखा जा सकता है। अभी-अभी हमारे देश की उत्तर पूर्वी हिमालय की सीमाओं पर चीन द्वारा किया गया आक्रमण इसी साम्राज्यवाद का एक चरण है। साम्यवादी चीन यह नहीं चाहता कि एशिया में जनतन्त्रवादी भारत का नेतृत्व स्थापित हो सके। इस दृष्टि से वह जनतन्त्रवादी भारत की प्रतिमा को खंडित करना चाहता है। अपने नक्शों को कई बार बदलकर चीन ने सदियों से चली आ रही मैकमोहन रेखा को अमान्यता करार दी और झूठे दावों के आधार पर बल और आक्रमणों द्वारा नई मनमानी सीमा स्थापित करने का प्रयास किया। साम्राज्यवाद का यह उदाहरण आधुनिक इतिहास में नया और बेमिसाल है। चीनी शासन अपने साम्राज्यवादी हितों को सुरक्षित करने के लिए तिब्बत और सिक्याग के प्रदेशों में पहले ही अपने साम्राज्यवादी इरादे पूरे कर चुका है। भारत की सीमाओं पर होने वाला चीनी आक्रमण इन्हीं साम्राज्यवादी मनसूबों में एक नई कड़ी है जो यह सिद्ध करती है कि साम्राज्यवादी चीन अपनी सैनिक गतिविधियों से एशिया के दुर्बल राष्ट्रों को डराना और धमकाना चाहता है।

साम्यवादी साम्राज्यवाद की गतिविधियों को रोकने के लिये जनतन्त्रवादी देश जो कर रहे हैं उन्हें साम्यवादी भी इसी प्रकार के साम्राज्यवाद की संज्ञा देते हैं। शीत युद्ध की इस पृष्ठभूमि में साम्राज्यवाद का यह नया रूप आज की विश्वशान्ति और अन्तर्राष्ट्रीयतावाद को सबसे बड़ा खतरा है और एक शान्तिपूर्ण विश्व सरकार की कल्पना तब तक दुराशा ही मानी जानी चाहिए जब तक कि इन दोनों साम्राज्यवादी गुटों में आपस में समझौते की कोई सम्भावना नहीं बनती।

अन्तर्राष्ट्रीयतावाद
(Internationalism)

आज का युग अन्तर्राष्ट्रीयतावाद का युग कहा जाता है। सभी लोग यह अनुभव करते तथा आवाज उठाने लगे हैं कि आज की अन्तर्राष्ट्रीय कानूनहीनता (Intenational anarchy) के स्थान पर एक अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था (International order) की स्थापना होनी चाहिए। पहले जिस चीज को लोग एक दूर का अव्यावहारिक आदर्श अथवा कल्पना मात्र समझा करते थे वह आज के वैज्ञानिक युग में सत्य के बहुत समीप दिखाई देती है। वर्तमान यातायात तथा सदेश-वाहन के साधनों के कारण दूरी (Distance) का भेद आज समाप्त हो गया है तथा आर्थिक दृष्टि से भी आज का सारा विश्व एक संयुक्त इकाई (One Unit) है। रेडियो, डाक, तार आदि के साधनों द्वारा हम दूर से दूर विदेशों के भी आज इतने ही समीप हैं, जितने कि अपने दूसरे द्वार पर रहने वाले पड़ोसी के। मडरियागा (Madariaga) के शब्दों मे "समाचार तथा विचार की दृष्टि से आज का विश्व एक बाजार की सी एकता प्राप्त कर चुका है (From the point of view of views and news world has attained the unity of a market place) और सभी दृष्टियों से किसी न किसी रूप मे हम अपने से हजारों लाखों मील दूर रहने वाले अपरिचित लोगों से, जिन्हें हम विदेशी कहते हैं, सम्बद्ध हैं। हम एक दूसरे की सहायता व सहयोग से जीते हैं और परस्पर इतने अधिक अन्तरनिर्भर हैं कि हमारे या उनके जीवन की छोटी छोटी घटनायें भी समुद्री पार जाकर एक दूसरे पर अपना प्रभाव डालती हैं। हमारा प्रत्येक घर आज एक छोटासा अन्तर्राष्ट्रीय संग्रहालय (International museum) है, जिसमे दुनिया के सुदूर कोनों से आई हुई वस्तुएं जैसे, पेन, घड़ी, कपड़े, बिजली का सामान और जाने क्या-क्या चीजें सुसज्जित हैं। यह तथ्य सिद्ध करता है कि प्रगतिशील मानव समाज (Dynamic human society) के लिए राष्ट्रीयता अथवा आत्मनिर्भरता एक बहुत पुरानी बात हो चुकी और इसलिए इस नये अन्तर्राष्ट्रीयता के युग मे हमने अपने राष्ट्रीय राज्यसत्ता के सिद्धान्त को इसमे नहीं मिलाया तो यह सम्भव ही नहीं अवश्यम्भावी है कि हम एक भीषण दुर्घटना के शिकार हो जायेंगे। अत संसार का हित इसी में है कि वह राष्ट्रीय पार्थक्य भावना (National exclusiveness) को छोड़ कर अन्तर्राष्ट्रीय ऐक्य भावना (International inclusiveness) को अपना ले।

अन्तर्राष्ट्रीयतावाद क्या है ? (What is Internationalism)—वैसे अन्तर्राष्ट्रीयतावाद कोई निश्चित विचारधारा नही है और न आज तक ही अन्तर्राष्ट्रीय कानून (Internationl law) का कोई लिखित कानून रूप (Codification) बन सका है। राष्ट्रीयतावाद की भांति अन्तर्राष्ट्रीयतावाद अभी तक केवल भावना मात्र है जो कुछ निश्चित आदर्शों तथा सिद्धान्तो म विश्वास करता है। इसकी कुछ प्रमुख मान्यताये निम्नलिखित हैं —

१ अन्तर्राष्ट्रीयतावाद विश्व युद्ध का विरोधी है (**Internationalism is opposed to world war**)—अन्तर्राष्ट्रीयतावाद चाहता है कि ससार के कोष से विश्व युद्ध जसे घृणित शब्द को सदव के लिए निकाल दिया जाय। आज के वैज्ञानिक युग म जब कि एटम और हाइड्रोजन जसे महाविध्वंसक शस्त्रो ने मनुष्य के हाथो मे इतनी अपार शक्ति दे दी है कि वह सारे विश्व से मानवता तथा सभ्यता जसी चीज को सदैव के लिए दफना सकता है, विश्व युद्ध का अर्थ सामूहिक आत्महत्या (Universal collective suicide) के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।" बीसवी शताब्दी ने यद्यपि अपने पूर्वार्द्ध म ही दो भयानक युद्ध देखे हैं, किन्तु इसम कोई सन्देह नहीं कर सकता अबकी बार का तीसरा विश्व युद्ध ससार को इतना बजर (barren) बना देगा कि उसम मनुष्यता जसे पौधे कभी अकुरित नहीं होंगे और लाखो करोडो वर्षों मे मनुष्य ने जो कुछ प्राप्त किया है वह एक पागल के हाथो सदैव के लिए मिट जायगा। अत विश्व युद्ध की सार्थकता, निरर्थकता तो क्या, कल्पना ही भयङ्कर है और अन्तर्राष्ट्रीयतावाद चाहता है कि यह भयङ्कर सत्य सदैव के लिए कल्पना म भी न रहे।

२ अन्तर्राष्ट्रीयतावाद विश्व शान्ति का समर्थक है (**Internationalism stands for world peace**)—विश्व युद्ध का विरोधी होने का स्वाभाविक परिणाम यह है कि अन्तर्राष्ट्रीयतावाद समस्त ससार के राष्ट्रो के शान्तिपूर्ण ढङ्ग से सहअस्तित्व (Coexistence) बनाये रखने के पक्ष म है। उसकी यह मान्यता है कि ससार म सुख तथा समृद्धि तभी आ सकती है जब शान्ति हो और शान्तिपूर्ण वातावरण म ही सभ्यता का विकास सम्भव है अत अन्तर्राष्ट्रीयतावाद सारे राष्ट्रो तथा ससार के नागरिको को एक विशालतर हित को पाने के लिए अपने तुच्छ व क्षुद्र स्वार्थों से ऊपर उठने का उपदेश देता है, जिससे पारस्परिक कलह व राष्ट्रीय झगडे मिट सकें और विश्व शान्ति सम्भव हो सके।

३ अन्तर्राष्ट्रीयतावाद सहयोग, सद्भावना तथा मैत्री का उपदेश देता है (**Interactionalism preaches co-operation, good will and mutual friendship**)—अन्तर्राष्ट्रीयतावाद एक मानवीय विचारधारा (Humanitarian) है। वह यह मानती है कि जिस प्रकार सभ्यता, समाज तथा स्वय के हित म यह उचित नहीं है कि व्यक्ति एक दूसरे से घृणा करे तथा उसे अपमानित करने की कोशिश करें इसी प्रकार राष्ट्रो म भी परस्पर म घृणा, ईर्ष्या, द्वेष तथा असहयोग की भावनायें विश्व

हित म घातक हैं। राष्ट्रो को चाहिए कि सब कल्याण का विशाल व महान् आदर्श लेकर चले और अपने को विश्व परिवार का एक सदस्य समझते हुए अपने पड़ोसी अन्य राष्ट्रों के साथ प्रेम, सहानुभूति तथा मित्रता का बर्ताव करें। जब तक आपसी अविश्वास तथा भय के स्थान पर राष्ट्रों मे सद्भावना तथा सहयोग की भावना नहीं होगी तब तक एक शान्तिमय वातावरण अथवा जलवायु (Climate for peace) नही बन सकेगा। अत अन्तरराष्ट्रीयतावाद राष्ट्रीय घृणा तथा द्वेष के स्थान पर आपसी सहयोग तथा मैत्री का प्रबल प्रचारक है।

। ४ अन्तर्राष्ट्रीयतावाद एक विश्व सरकार अथवा विश्व परिवार की स्थापना चाहता है (Internationalism wants the establishment of world government or family of nations)—अपने विश्वबन्धुत्व तथा विश्व मैत्री आदि सिद्धान्तो द्वारा संसार से युद्ध को सदैव के लिए मिटाने तथा एक चिरस्थाई विश्व शान्ति स्थापित करने के लिए व्यावहारिक राजनीति (Practical politics) मे अन्तर्राष्ट्रीयतावाद एक विश्व सघ अथवा विश्व परिवार का समर्थन करता है। वह चाहता है कि ससार के सारे स्वतन्त्र राष्ट्र आपस म मिलकर एक ऐसी विश्व सस्था की स्थापना करें, जिसे वे अपनी असीमित राज्य सत्ता का एक भाग स्वेच्छा से सौंप दें। इस प्रकार के सघ की कल्पना एक सघात्मक विश्व सरकार (Federal One World Government) की कल्पना है। जिस प्रकार आज के सघात्मक राज्यो (Federal States) म कुछ विषय केन्द्रीय सरकार के आधीन होते हैं और शेष राज्यो के पास छोड दिये जाते हैं ठीक उसी प्रकार अन्तर्राष्ट्रीयतावाद चाहता है कि एक विश्व सघ सारे ससार की एक केन्द्रीय सरकार की तरह काम करे और वर्तमान राष्ट्रीय सरकारें राज्य सरकारों की तरह कुछ विषयों में विश्व सरकार के आधीन बन जाय। अन्तराष्ट्रीयतावाद का यह आदर्श आज धीरे धीरे सत्य बनता जा रहा है। प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् लीग आफ नेशन्स की स्थापना इस दिशा मे एक बहुत महत्वपूर्ण कदम था और आज सयुक्त राष्ट्र सघ आदि अपनी ब्लाक पोलिटिक्स (Block politics) को छोडकर अधिक निष्पक्षता तथा तत्परता स काय करने लगे तो यह स्वप्न बहुत शीघ्र ही यथार्थता म बदला जा सकता है।

५ अन्तर्राष्ट्रीयतावाद विश्ववाद नहीं है (Internationalism is not Cosmopolitanism)—सैद्धान्तिक दृष्टि से विश्व सरकार की स्थापना चाहते हुए भी अन्तर्राष्ट्रीयतावाद यह नही चाहता कि सारे ससार के मनुष्य जाति एक ही प्रकार के जीवन की अभ्यस्त बनाई जाय। विश्ववादियों की भांति वह यह नही चाहता कि राष्ट्रीय विभिन्नतायें (National diversities) समाप्त कर दी जायें और दुनियां के सब धर्म, संस्कृति, भाषा आदि भेदों को मिटाकर एक ही ढाचे अथवा व्यवस्था का निर्माण किया जाय। वह विभिन्नताओं म एकता रखना चाहता है और इस बात के पक्ष में है कि धर्म, समाज, संस्कृति तथा आर्थिक जीवन आदि सभी क्षेत्रों म राष्ट्र

अपनी विभिन्नताओं को बनाये रखें, किन्तु इन विभिन्नताओं के बीच भी विश्व प्रेम की भावना उनमें इतनी प्रबल हो कि वे एकता का अनुभव करें। दूसरे शब्दों में अन्तर्राष्ट्रीयतावाद विश्व संघवाद (World federalism) का ही दूसरा नाम है जो किसी प्रकार की एकात्मकता (Unitariness) नहीं चाहता।

६ अन्तर्राष्ट्रीयतावाद राष्ट्रीयतावाद का विरोधी नहीं (Internationalism is not opposed to nationalism)—अन्तर्राष्ट्रीयतावाद कोई उग्र विचारधारा नहीं। वह यह मानती है कि विश्व बन्धुत्व (Universal brotherhood) की भावना एक दिन में नहीं आ सकती। उसका विकास धीरे धीरे होता है और इसीलिए परिवार से विश्व परिवार तक पहुँचने के लिए राष्ट्रीयता की भावना का होना परम आवश्यक है। जोसफ (Joseph) के शब्दों में मनुष्य और मनुष्यता का मिलान के लिए राष्ट्रीयता एक बहुत महत्वपूर्ण कडी है, (Nationality is an important link between man and humanity) क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीयतावाद मानववाद (Humanism) का ही दूसरा नाम है अथवा उस तक पहुँचने के लिए राष्ट्रीयतावाद एक पहली व आवश्यक सीढी है। वह अन्तर्राष्ट्रीयता की सहचर है और हममें यह भावना जाग्रत करती है कि "हमारा देश समूचा संसार है। हमारे देशवासी सारे मानव मात्र है। हम अपने राष्ट्र की धरती को उतना ही प्यार करते हैं, जितना दूसरे देशों की धरती को"—(W Garrism)।

अन्तर्राष्ट्रीयतावाद आज के युग में ही क्यों (Why Internationalism in the modern age)—वस्तुत अन्तर्राष्ट्रीयतावाद आज के युग की ही देन है। वैसे तो स्टाइक (Stoics) आदि विचारकों ने भी बहुत पहले विश्वबन्धुत्व आदि की भावनाओं के लिए उपदेश दिया था तथा हमारे महर्षि भी "वसुधैव कुटुम्बकम" का सिद्धान्त मानते आये है, किन्तु एक विश्व सरकार अथवा एक संघात्मक विश्व का चित्र पहली बार ही २० वी शताब्दी में गुनन तथा देखने को आया है। इसके कुछ निश्चित कारण हैं। यदि हम सभ्यता के विकास क्रम (Process of evolution) का ध्यान से अध्ययन करें तो ज्ञात होगा कि मनुष्यता सभ्यता राजनीति तथा अन्य सभी वस्तुयें एक वैज्ञानिक क्रम से आगे बढता हैं और कई क्षेत्रों में इस विकास क्रम में २० वी शताब्दी एक ऐसा युग है जहाँ वे विकास की चरम परिणति (Climax) पर पहुँचे हुए दिखाई देते हैं। १९ वी शताब्दी राजनीति शास्त्र के इतिहास में राष्ट्रीयता का युग माना जाता है। राष्ट्रीयता के बाद २० वी शताब्दी में मनुष्यता को एक कदम आगे रखना था और वह कदम अन्तर्राष्ट्रीयता के अतिरिक्त और कुछ हो नहीं सकता था।

किन्तु सभ्यता के विकास में १८ वीं शताब्दी के पश्चात् यह युग इतनी शीघ्रता से क्या आया, इसके कारण इतिहास में ढूंढे जा सकते हैं और यूरोप के इतिहास में फ्रांस की राज्य क्रान्ति (French Revolution) व शिल्पी क्रान्ति (Industrial Revolution) इसका उपयुक्त उत्तर दे सकते हैं। आज के युग में अन्तर्राष्ट्रीयतावाद के कुछ निम्नलिखित कारण हैं—

१ राष्ट्रीयता (Nationalism)—यह कहना एक विरोधाभास (Paradox) सा लगता है कि राष्ट्रीयतावाद ने अन्तर्राष्ट्रीयतावाद को जन्म दिया। इतिहास की यह शिक्षा है कि विकास क्रम में विचारधारायें प्रतिक्रियाओं (Reactions) के रूप में शुरू होती है। जब १६ वी शताब्दी के राष्ट्रीय राज्य अपने चरम सीमा पर पहुँच गये, तो उनमे दुगुण आने स्वाभाविक थे। उन्होने संसार में कितनी ही समस्यायें पैदा करदी और यहा तक कि विश्वयुद्ध जैसी महा जघन्य घटना उपस्थित कर दी। इस संकीर्ण राष्ट्रीय दृष्टिकोण के खतरो को लोगो ने देखा और यह अनुभव किया कि भविष्य में यदि इस राष्ट्रीयता को अन्तर्राष्ट्रीयता में विलीन नही किया तो यह चिरकाल तक मानवता को सुख और शांति की नींद नही सोने देगी। अत आज के युग में अन्तर्राष्ट्रीयतावाद के सिद्धान्त व व्यवहार (Theory and practice of Internationalism) का जन्म हुआ।

२ औद्योगिक क्रान्ति (Industrial Revolution)—अन्तर्राष्ट्रीयतावाद को आधुनिक युग में सम्मुख लाने वाला दूसरा कारण १६ वी शताब्दी की औद्योगिक क्रांति ने यूरोप की आर्थिक ढाचे में काया पलट उपस्थित की। यूरोपीय देशो में मशीन द्वारा वस्तुएँ बनने पर उत्पादन बढा। जिसे विदेशो में बेचने तथा संसार के विभिन्न कोनो से कच्चा माल लाने के लिए एक आर्थिक एकता (Economic unity) की आवश्यकता महसूस की गई। एक देश की बनी हुई चीजें विदेश में बिकने लगी जिससे कट्टर राष्ट्रीय एकता का भाव धीरे धीरे मरने लगा। इसी आर्थिक एकता ने राजनीति पर भी प्रभाव डाला तथा आर्थिक साम्राज्यवाद ही धीरे धीरे राजनैतिक साम्राज्यवाद में बदलने लगा। व्यापार की वृद्धि के लिए चारो ओर से यह पुकार आने लगी कि राष्ट्रीय सीमायें तोड दी जायें और सारे विश्व को एक इकाई समझा जाय। आर्थिक क्षेत्र से आगे बढकर यही पुकार राजनीति के क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीयतावाद को जन्म देने वाली बनी।

३ वैज्ञानिक आविष्कार (Scientific inventions)—सम्भवत उपरोक्त दोनों कारणो से भी अधिक अन्तर्राष्ट्रीयतावाद को लोकप्रिय बनाने वाले कारणो में वैज्ञानिक आविष्कारो का मूल्य अधिक है। यदि १६ वी शताब्दी में भाप के इंजन, रेलवे, टेलीग्राफ तथा रेडियो आदि के आविष्कार नही हुए होते तो राष्ट्रीयता और औद्योगिक क्रांति के होते हुए भी विश्व सरकार जैसी बात कोई नही कर सकता था। इन आविष्कारो ने दूरी का भेद मिटा दिया और सारे संसार को इतना समीप ला दिया जितना कि पहले ग्राम और नगर थे। इन आविष्कारो ने ही लोगो को यह विश्वास दिलाया कि जिस प्रकार लन्दन की सरकार सारे ब्रिटेन पर शासन कर सकती है इसी प्रकार वाशिंगटन में बैठी हुई विश्व सरकार सारे संसार पर शासन कर सकेगी। रेडियो, समाचार पत्र आदि विचार वाहन के साधनो ने हमें विदेशो की घटनाओं तथा विचारो से अवगत कराया और एक देश की राजनीति में होने वाले परिवर्तन दूसरे देश की राजनीति को भी प्रभावित करने लगे। यातायात के विकसित

साधनों ने सारे संसार के लोगों को एक दूसरे के सम्पर्क में आने तथा समझने का अवसर दिया, जिसके कारण विश्व भ्रातृत्व की भावना बढ़ी तथा आपसी सहयोग के विचार मनुष्य के मस्तिष्क में घर करने लगे। विनाशकारी विध्वंसक शस्त्रों ने भी उसे युद्ध की भयंकरता सिखलाई और वह यह मानने लगा कि सांस्कृतिक आर्थिक तथा राजनैतिक दृष्टि से भिन्न होते हुए भी विश्व एक ही है।

अन्तर्राष्ट्रीयतावाद का विकास (Development of Internationalism)—अन्तर्राष्ट्रीयतावाद अपने आधुनिक रूप में २० वीं शताब्दी की उपज होते हुए भी एक ऐसा शब्द है जिसमें शताब्दियों का इतिहास छिपा है। मध्ययुग में विश्ववाद (Cosmopolitanism) की अभिव्यक्ति सर्व प्रथम ईसाई धर्म की एकता (Unity of Christiandom) के रूप में हुई थी। उस समय का होली रोमन ऐम्पायर तथा चर्च ऐसी संस्थायें थीं, जिनका क्षेत्र भौगोलिक तथा राष्ट्रीय सीमाओं से बहुत आगे बढ़ा हुआ था। धार्मिक क्षेत्र में कैथोलिक चर्च की यह अन्तर्राष्ट्रीयता राजनीति को भी अप्रत्यक्ष रूप से कुछ-कुछ प्रभावित कर सकी। किन्तु १५ वीं शताब्दी के आने से पूर्व ही यह सुदृढ़ ईसाई धर्म की एकता धीरे धीरे शिथिल होने और पुनर्जागरण (Renaissance) तथा प्रोटस्टेंट धार्मिक सुधार (Protestant Reformation) के आते-आते तो धार्मिक एकता के स्थान पर स्वाधीनता की दुन्दुभी बजने लगी। लूथर आदि सुधारकों ने चर्च के सुधारों पर बल दिया, जिसके कारण चर्च की महत्ता ही समाप्त नहीं हुई बल्कि उसके द्वारा उत्पन्न हुई, यूरोपीय एकता (European Unity) भी नष्ट हो गई। इसी समय यूरोप के क्षितिज पर राष्ट्रीयता के बादल घिरने लगे और इन सब कारणों ने मिल कर वर्तमान राष्ट्रीय राज्यों (Nation States) को जन्म दिया। राष्ट्रीयता की इस लहर ने यूरोप के मानचित्र को बदलना शुरू किया और शताब्दियों के आगे बढ़ने के साथ-साथ राष्ट्रीयता की भावना भी इतनी पुष्ट होने लगी, कि १६ वीं शताब्दी में सभ्यता की यह एकता (Unity of Civilization) बिलकुल मृतप्राय सी दिखाई देती है। राष्ट्रीय राज्यों की इस वर्तमान व्यवस्था ने सभ्यता को दो भीषण विश्व युद्ध लड़ने को कहा और आज उसी की प्रतिक्रिया स्वरूप अन्तर्राष्ट्रीयतावाद विश्व इतिहास के पर्दे पर उभरता हुआ दिखाई देता है।

वैसे १६ वीं शताब्दी से बहुत पहले से ही विश्व शान्ति को स्थायी रखने तथा संसार के विभिन्न राष्ट्रों को एक सूत्र में पिरोने के लिए संसार के अनेक विचारक तरह-तरह की कल्पनायें करते आये हैं। इन योजनाओं में एक योजना ड्यूक द सलाय (Duca De Sully) नामक एक महान फ्रांसीसी राजनीतिज्ञ की थी, जो हेनरिक के ग्राण्ड डिजायन (Grand Design) के नाम से विख्यात है। इस योजना में उसने मध्ययुगीन कल्पना को छोड़कर तत्कालीन यूरोपीय राज्यों की स्वायत्तता (Autonomy) को स्वीकार करते हुए एक ईसाई गणतन्त्र (Christian Republic) का चित्र खींचा था। इस योजना में आधार ६ वंशानुगत राजतन्त्र, पाँच निर्वा।

राजतन्त्र (Elected monarchies) तथा ४ गणतन्त्र (Republics) इसमें शामिल होते, तथा रूसी जर्मन सम्राट इसका अध्यक्ष होता। सम्राट की सहायता के लिये एक ६४ व्यक्तियों की समिति की स्थापना की सिफारिश भी इसमें की गई थी। किन्तु अनेकों कारणों वश योजना कागज पर ही रही।

दूसरी महत्वपूर्ण योजना को प्रस्तुत करने वाले अबे दि सेन्ट पियर (Abbe de St Pierse) हैं। उनकी (League of Peace) योजना यूट्रेक्ट सम्मेलन (१७१३ के बाद उपस्थित की गई थी। इसके अनुसार भी एक सम्मिलित यूरोपीय संघ की स्थापना होनी थी, तथा प्रत्येक राष्ट्र को इतने ही अधिकार दिये जाने थे कि वह शेष यूरोप पर हावी न हो सके। इसके अनुसार यूरोप के सदस्य राज्यों के लिए यह शपथ लेना अनिवार्य था कि वे आपसी राष्ट्रों की समानता तथा प्रभुता (Sovereignty) का सम्मान करेंगे। आपसी झगड़ों को मिल-जुल कर सुलझायेंगे और संधि को तोड़ने वाला के विरुद्ध सामूहिक कार्यवाही करेंगे। किन्तु यह योजना भी कार्यान्वित नहीं हो सकी।

पियरे की यही योजना रूसो (Rousseau) की विवेचना का आधार है। रूसो ने भी अपनी न्याय की योजना में एक संघीय यूरोप (Federal Europe) का विधान प्रस्तुत किया है जिसके अन्तर्गत वह चाहता है कि यूरोपीय संघ के सदस्यों की प्रादेशिक अखण्डनीयता (Territorial integrity) तथा तत्कालीन शासन पद्धति (Contemporary Political system) की गारंटी दें। पियरे की भाँति रूसो भी इसी संघ के सदस्यों से यह चाहता है कि आपस में समझौता का आदर करें और इस समझौते को तोड़ने वाले को सामान्य शत्रु घोषित करें। इस संघ प्रतिनिधि सभा को यह तीन चौथाई मत के आधार पर सैनिक कार्यवाही तक करने का अधिकार देता है।

रूसो के पश्चात इङ्गलैंड में प्रथम एक ऐसे विचारक हुए हैं जिनके निबन्धों में सर्व प्रथम 'अन्तर्राष्ट्रीय' (International) शब्द का प्रयोग देखने को मिलता है। उन्होंने युद्ध को एक "भयानक शैतानी" (Mischief on the greatest scale) बतलाया है। उनका विश्वास था कि रक्षात्मक सन्धियाँ (Defensive alliances) सार्वजनिक गारंटियाँ (Collective Guarantee) तथा निशस्त्रीकरण (Disarmament) आदि द्वारा विश्वशान्ति स्थापित रखी जा सकती है तथा उपनिवेशवाद (Colonialism) विश्वयुद्ध को जन्म देने वाले कारणों में प्रमुख है।

१८ वीं शताब्दी के जर्मन दार्शनिक (E Kant) काण्ट का प्रसिद्ध निबन्ध (Towards enternal peace) अन्तर्राष्ट्रीयतावाद के विकास में पुनः उल्लेखनीय है। इस निबन्ध में काण्ट ने अपने सिद्धान्त का "सब राज्यों की स्वाधीनता की प्रतिष्ठा (Maintenance of the independence of all States), तटस्थता के सिद्धान्त की स्वीकृति (Acceptance of the principle of non intervention) स्थायी सेना का क्रमिक उन्मूलन (Gradual abolition of standing armies) इन तीन आदर्शों में

अभिव्यक्त किया है। वह सभी राज्यो मे गणतन्त्रीय विधान तथा विश्व नागरिकता का पक्षपाती है। किन्तु व्यावहारिक राजनीति मे कान्ट की यह योजना भी अधिक लाभदायक सिद्ध नही हुई है।

१६वी शताब्दी मे पहली बार अन्तर्राष्ट्रीयतावाद के सिद्धान्त को कल्पना क्षेत्र से निकाल कर व्यावहारिक राजनीति मे लाने की कोशिश की गई। यह सिद्धान्त जिस पर अभी तक दार्शनिक लोग ही बात करते रहे थे, अब राजनीतिज्ञो को भी प्रभावित करने लगा और सब प्रथम इसे यथार्थता मे बदलने वालो मे नेपोलियन का नाम परम महत्वपूर्ण है। यदि हम लेस्केसेज (Lescases) के उसके उल्लेखो पर विश्वास करे तो उसके शब्द थे कि, 'मेरे पतन तथा मेरी व्यवस्था के नष्ट होने के पश्चात् यदि यूरोप मे कोई सन्तुलन सम्भव हो सकेगा तो केवल यही कि इस महान जाति का एक संयुक्त संघ बने। यह स्पष्ट करते हैं कि राष्ट्रीय आधार पर यूरोप एक नये मान चित्र को बनाने तथा यूरोपीय राज्यो का फ्रांस के नेतृत्व मे एक संघ स्थापित करने के लिये प्रयत्नशील था।

फ्रांस की राज्य क्रांति के पश्चात् यूरोप मे शान्ति रखने तथा भावी युद्धो को टालने के लिये एक यूरोपीय संस्था की आवश्यकता और भी अधिक तीव्रता से अनुभव की जाने लगी। इसके परिणाम स्वरूप सन् १८१५ मे होने वाली वियाना कांग्रेस (Congress of Viena) मे 'होली अलायन्स (Holy alliance) नाम की यूरोपीय नरेशो की एक संस्था की स्थापना हुई, जिन्होने प्रथम बार अन्तर्राष्ट्रीय विचारको के आदर्श को यथार्थ मे बदलने के लिये एक महत्वपूर्ण कदम उठाया। इस अलायन्स (Alliance) का अधिक प्रभावशाली न होने के कारण दूसरा कदम कन्सर्ट आफ यूरोप (Consert of Europe) के नाम से उठाया गया जो दुर्भाग्यवश मैटर्निक (Metternich) के हाथो मे पड़कर अपने इच्छित उद्देश्य मे अधिक सफल नही हो सका। किन्तु इन सबके बावजूद भी अन्तर्राष्ट्रीयतावादी संघ की माँग चलती रही और १६ वी शताब्दी मे होने वाली कितनी ही हेग का फ्रेंसो आदि मे अन्तर्राष्ट्रीय कानून सम्बन्धी कुछ नियम बनाये गये जिनका वर्णन देना यहाँ इस अध्याय मे आवश्यक न होगा।

अन्तर्राष्ट्रीयतावाद की सबसे अधिक प्रगति अथवा यो कहिए कि असली बात २० वी शताब्दी के प्रथम चरण मे हुई है। इसका प्रमुख कारण यह है कि इस समय तक जनमत अन्तर्राष्ट्रीयतावाद के पक्ष मे पर्याप्त रूप से झुक चुका था तथा १६१४ मे शुरू होने वाले विश्वयुद्ध ने सहसा ही एक ऐसी विषम समस्या उपस्थित कर दी कि २० वी शताब्दी की मनुष्य जाति के सामने अन्तर्राष्ट्रीयतावाद के अतिरिक्त और कोई चारा ही नही रहा। प्रथम महायुद्ध के विध्वंस नर संहार ने सदा मस्त राजनीतिज्ञो की आँखें खोल दी और उन्हे यह विश्वास हो गया कि इस विश्व को मनुष्य जाति के लिए सुरक्षित बनाने का केवल एक ही मार्ग है और वह है अन्तर्राष्ट्रीयतावाद अमेरिका के तत्कालीन राष्ट्रपति विल्सन (Wilson) तुरन्त ही "लीग आफ नेशन्स"

के रूप मे अन्तर्राष्ट्रीयतावाद का सन्देश लेकर परिस पहुचे और क्लेमन्सो आदि यूरोपीय राजनीतिज्ञो के विरोध पर भी लीग जैसी अन्तर्राष्ट्रीय सस्था की नीव डाली गई। इस सस्था का एक निश्चित विधान तैयार किया गया और ससार के सभी देशो की सरकारो को स्वेच्छा से इसका सदस्य बनने का निमन्त्रण दिया गया। अपने क्षेत्र तथा सदस्यता की दृष्टि मे लीग अमेरिका जैसे महाराष्ट्र के सदस्य न होने पर भी आज तक के किये प्रयोगो म सबसे अधिक प्रशसनीय व महत्वपूर्ण रचनात्मक कदम था। प्रतिनिधि सभा, कौंसिल, सचिवालय तथा कोर्ट आफ इन्टरनेशनल जस्टिस इस सस्था के विभिन्न अङ्ग थे तथा ससार मे शान्ति स्थापित रखना, आपसी अन्तर्राष्ट्रीय झगडो को सुलझाना व राष्ट्रो मे प्रेम व सदभावना का विकास करना इसके पवित्र उद्देश्य थे। पराजित जर्मनी के छीन गये देश भी मैंडेट सिस्टम (Mandate System) के रूप मे इसके आधीन थे। इस सस्था ने सन् १९१९ से १९३८ तक बडी तत्परता से अनेको अन्तर्राष्ट्रीय झगडो का निर्णय कर व दरिद्रता आदि को मिटाने का कार्य कर विश्व शान्ति का कायम रखने के लिए जो कार्य किया है वह इसकी अनेको त्रुटियो के होते हुए भी परम प्रशसनीय है। किन्तु सन् १९३१ से जर्मनी म हिटलर तथा नाजीवाद के उदय होने से, व सुदूर पूर्व मे जापानी सैनिकवाद के जन्म होने से इसकी प्रगति को एक गहरा धक्का लगा और यही रोग अन्तत इसकी मौत का कारण बना। सन् १९२५ मे इसके लगातार भर्त्सना व निन्दा करते हुए भी चीन की कमजोरी से लाभ उठाकर जापान ने मचूरिया छीन लिया। उसके पश्चात् सम्राट हेलसिलासी के आंसुओ के साथ साथ इसके आंसू बहाते हुए भी मुसोलिनी ने इथोपिया पर कब्जा कर लिया। सन् १९३३ मे हिटलर के जर्मनी ने लीग की सदस्यता से स्तीफा दे दिया और उसके पश्चात् पोलण्ड जेकोस्लोवेकिया आदि देशो पर आक्रमण करते-करते सारे विश्व को द्वितीय विश्व युद्ध की ज्वालाओ मे झोंक दिया। लीग जैसा छोटा बच्चा यह भयानक ददनाक दृश्य नही देख सका और इसी राक्षसी विप्लव ने उसका गला घोटकर सदव के लिए समाप्त कर दिया।

लीग मर गई किन्तु अन्तर्राष्ट्रीयतावाद को उसकी मौत से एक नया जीवन मिला। दूसरे विश्वयुद्ध की विनाशकारी हिंसा व हीरोशिमा की धू धू करके जलती हुई ज्वालाओ ने मनुष्य की जग खाई हुई जड बुद्धि को फिर से जगाया। उसने फिर दृढ सकल्प किया कि वह विश्व युद्ध जसी भयकर भूल को अब दुहराने नहीं देगा। उसका यही विश्वास सर विंसटन और रूजवेल्ट के अटलांटिक चाटर मे व्यक्त हुआ, जिसकी एक प्रमुख धारा के अनुसार वर्तमान सयुक्त राष्ट्रसघ (U N O) का जन्म हुआ। यू० एन० ओ० का विधान कम बना यह एक लम्बी कहानी है।

लीग की भांति सयुक्त राष्ट्र सघ का उद्देश्य भी शान्ति से युद्धों को मिटाना तथा विश्व शान्ति व अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को बनाये रखना है। यह एक अन्तर्राष्ट्रीय सस्था है और केवल अन्तर्राष्ट्रीय विषय ही इसके अधिकार क्षेत्र के अन्तगत आते

हैं। इसका विधान बहुत कुछ लीग के विधान के आधार पर ही है और असेम्बली, सुरक्षा परिषद् अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय, सामाजिक तथा आर्थिक परिषद् संरक्षण परिषद् व सचिवालय इसके अङ्ग हैं। राजनीति के अतिरिक्त अराजनैतिक क्षेत्र में कार्य करने के लिए यू० एन० ओ० अपने बहुत से अवयवों जैसे W H O, I M O, U N N R A, I L O, UNESCO आदि की सहायता से काम करता है। इस क्षेत्र में इसे बहुत अधिक सफलता मिली है। संसार के पिछड़े हुए व दरिद्र राष्ट्रों की आर्थिक व सांस्कृतिक प्रगति करने के लिए यू० एन० ओ० का यह कार्य निश्चय ही अभिनन्दनीय है जो बहुत कुछ अंश तक इसकी राजनैतिक सफलता का भी कारण है।

किन्तु जहाँ तक राजनैतिक समस्याओं का सवाल है, हिन्द चीन फिलिस्तीन आदि की एक दो समस्याओं को छोड़कर एक भी अन्तर्राष्ट्रीय समस्या का हल यह आज ठीक तरह से नहीं निकाल सका। वीटो के अधिकार ने आपसी गुटबाजी के कारण इसके सारे कार्यों का इस प्रकार से विकलाङ्ग बना दिया है, कि यह लगभग एक जड़ संस्था सी प्रतीत होती है। राष्ट्रों का आपसी अविश्वास तथा सर्वोपरि राष्ट्रीयता की भावना आज भी इसकी जड़ें खोखली कर रही हैं और निकट भविष्य में इसका क्या होगा यह भविष्य ही बतलायेगा।

फिर भी यू० एन० ओ० की सफलता के मार्ग की बाधायें इसका मूल्य कम नहीं करतीं। इस महान् संस्था का अस्तित्व ही इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि आज का विश्व इसकी निन्दा करते हुए भी इससे उदासीन नहीं है। कितनी ही अपूर्णताओं के होते हुए भी यह विश्व सरकार की स्थापना में दूसरा महत्वपूर्ण कदम है, जिसने हमारे दृष्टिकोण को अन्तर्राष्ट्रीय बनाकर विश्वयुद्ध को यदि सदैव के लिए मिटाया नहीं तो वर्तमान समय में कुछ समय के लिए स्थगित अवश्य कर दिया है।

अन्तर्राष्ट्रीयतावाद के मार्ग की बाधायें (Obstacles to Internationalism) —आज अन्तर्राष्ट्रीयतावाद सब सम्मत विचारधारा होते हुए भी इतनी शीघ्रता से नहीं पनप रहा है, जितनी शीघ्रता से कि उसे पनपना चाहिए। इसके कारण राजनीति शास्त्र के विद्वानों की दृष्टि में निम्नलिखित हैं।

(१) अति राष्ट्रीयता की उग्र भावना (Militant Nationalism or Zingoism)।
(२) साम्राज्यवाद (Imperialism)।
(३) आपसी अविश्वास (Mutual Distrust)।
(४) सैद्धान्तिक मतभेद या गुटबन्दी (Ideological differences or Politics)
(५) दोषपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय संस्था (Defective international machinery)

उपसहार

यदि हम गम्भीरता से मनन करें तो आज की सारी समस्याओ की तह मे एक ही कठिनाई है और वह है हमारी अपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीयता। जिस दिन विश्व के राजनीतिज्ञ विश्व हित के लिए अपनी राष्ट्रीय दीवारो को एक सामान्य विश्व उद्यान के निर्माण के लिए ढहा देगे उसी दिन यह विश्व एक आकर्षक रगीन क्रीडास्थली बन जायगा। अन्तर्राष्ट्रीयतावाद एक शान्ति मूलक विचार है, जिसका उद्देश्य एक युद्ध रहित विश्व का निर्माण करना ही नही बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग, सद्भावना तथा मैत्री पूर्ण विश्व की नीव डालना है। यह एक विशाल परिवार की उदात्त कल्पना है, जो मानव सभ्यता के विकास के लिए आवश्यक ही नही अवश्य भावी है। समस्याओ से जूझते हुए विश्व के सामने आज दो ही माग हैं एक अन्तर्राष्ट्रीयतावाद तथा दूसरा विश्व युद्ध द्वारा आत्मसहार। एक मानवोचित बुद्धि तथा प्रेम का माग है दूसरा पाशविक व हिंसक राक्षसो का। हमे उचित है कि हम प्रथम को चुनकर अपने तथा आने वाली पीढियो के हित मे अपनी सभ्यता व मनुष्यता को कलकित होने से बचायें।



प्रश्न

(QUESTIONS)

उपयोगितावाद (Utilitarianism)

Q 1 Do you regard the greatest good of the greatest number as the satisfactory principle of state activity ?
क्या आप अधिकतम व्यक्तियो के अधिकतम हित के सिद्धान्त को राज्य के कार्य क्षेत्र का सन्तोषजनक सिद्धान्त मानते है ?

Q 2 Examine the principle of Benthamite hidenomism Can a socialist state come close to it ?
बैन्थम के सुखवादी सिद्धान्त की विवेचना कीजिये । क्या एक समाजवादी राज्य इस सिद्धान्त के समीप आ सकता है ?

Q 3 Distinguish between Mill and Bentham as defenders of individual freedom
मिल और बैन्थम के विचारो की व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की दृष्टि से तुलना कीजिये ।

Q 4 "Utilitarism is a laudable atempt to establish moral and political precepts on the ground of an extensive scientific experimentation Comment
"उपयोगितावाद नैतिक और राजनतिक सिद्धान्तो को एक विशद वैज्ञानिक प्रयोगवाद पर आधारित करने का स्पहणीय प्रयास है ।" व्याख्या कीजिये ।

व्यक्तिवाद (Individualism)

Q 1 'The Key note of individualism is liberty the key note of socialism is equality Comment
"व्यक्तिवाद का आधार बिन्दु स्वतन्त्रता है और समाजवाद का समानता ।" सुस्पष्ट कीजिये ।

Q 2 What is individualism ? Why did it fail to ensure individual happiness and freedom in the 19th century in England ?
व्यक्तिवाद से आप क्या समझते हैं ? वह १९ वी शताब्दी म इङ्गलैंड म व्यक्ति को प्रसन्नता और स्वतन्त्रता दिलाने मे क्यो असमर्थ रहा ?

Q 3 "State is an off spring of evil bearing upon it the mark of its parentage Do you agree ?

"राज्य दुर्गुण की सन्तान है जिस पर उसके पैतृक चिन्ह अभी भी देखे जा सकते हैं।" क्या आप इस मत से सहमत है ?

Q 4 'The state can best further the happiness of the individuals by interfering in their personal life as little as possible Expand and examine this view of J S Mill

"राज्य व्यक्ति की प्रसन्नता को अधिकतम रूप में तभी बढ़ा सकता है जबकि वह उसके व्यक्तिगत जीवन में कम से कम हस्तक्षेप करे।" मिल के इस कथन की सविस्तार विवेचना कीजिये।

समाजवाद (Socialism)

Q 1 "Socialism is essentially an economic theory of the state' Examine this view and its basic principles?

"समाजवाद मूलतः राज्य का आर्थिक सिद्धान्त है" इस कथन को दृष्टि में रखते हुए समाजवाद के मूल सिद्धान्त समझाइये।

Q 2 "Socialism is like a hat that has lost its shape because every body wears it" Examine the various branches of socialism and why do they differ from each other?

"समाजवाद एक ऐसे टोप की तरह है जिसे सभी पहनते हैं और इसीलिए उसका विशिष्ट स्वरूप नहीं है।"

समाजवाद की विभिन्न धाराओं की विवेचना करते हुए उनमें पाये जाने वाले अन्तरों के कारण स्पष्ट कीजिये।।

Q 3 "Socialism is an economic and political theory originated as a protest against the evils of capitalism Explain carefully distinguishing the revolution and evolution schools of socialist thought

"समाजवाद एक ऐसा आर्थिक और राजनैतिक दर्शन है जिसका जन्म पूंजीवाद के विरोध में हुआ है।" व्याख्या सहित समझाते हुए क्रान्तिकारी और विकासवादी समाजवाद की धाराओं में अन्तर बतलाइये।

Q 4 How far is it correct to say that socialism represents essentially the application of the democratic principle to economic life ?

यह कथन कहाँ तक सत्य है कि समाजवाद एक जनतांत्रिक सिद्धान्त का आर्थिक क्षेत्र में एक व्यावहारिक रूप है ?

शिल्पी समाजवाद (Guild Socialism)

Q 1 Guild socialism is a half way house between collectarism and syndicalism Discuss
शिल्पी समाजवाद, समूहवाद और सघवाद की मध्यवर्ती व्यवस्था है' विवचना कीजिये।

Q 2 Discuss the main principles of Guild socialism with special reference to functional democracy
शिल्पी समाजवाद मे मुख्य सिद्धातो की विवेचना करते हुए व्यावसायिक जनतन्त्र के विषय मे विस्तार से समझाइय।

Q 3 'The collectivists and the Fabians looked to the state as the rock of their salvation The Guild socialists realizing that for this ... for most purposes the state was but a broken reed and in the great class struggle on better than an enemy agent looked for deliverance to the trade unions, the organisation of the workers as produces' Discuss
"समूहवादी और फेबियन विचारक राज्य को अपने मोक्ष की आधारशिला मानते हैं, शिल्पी समाजवादियो की मान्यता है कि अधिकतर कार्यों के लिए राज्य एक टूटे हुए यन्त्र के समान रहा है। वग सघर्ष की स्थिति म राज्य को एक शत्रु पक्ष के रूप म देखने वाले शिल्पी समाजवादी अपने मोक्ष के लिए व्यापारिक सघो की ओर देखते हैं, जिनमे मजदूर उत्पादको की हैसियत से सगठित हो सके।" इस कथन की विवेचना कीजिए।

सघवाद (Syndicalism)

Q 1 Syndicalism is anti democratic, anti rational and anti intellectual" Discuss
'सघवाद अजातन्त्रात्मक, अतर्कसगत और अबौद्धिक है।' विवेचना कीजिय।

Q 2 "Syndicalism was not a philosophy but a working class movement Critically examine the view
'सघवाद बौद्धिक दशन न होकर एक श्रमिक आदोलन था।" इस मत का सत्यासत्य निरूपण कीजिये।

समूहवाद (Collectivism)

Q 1 'The collectivists hold the state as highest and the noblest agency of social welfare and that its operation should cover the widest field' Discuss

'समूहवादियो के विचार मे राज्य सामाजिक कल्याण की सर्वोच्च तथा सर्वोत्तम संस्था है और इसका कार्यक्षेत्र अधिक विस्तृत होना चाहिये।' विवेचना कीजिये।

Q 2 Collectivism is another name for democratic Socialism' Comment

'समूहवाद, जनतन्त्रात्मक समाजवाद का दूसरा नाम है।' विस्तार से समझाइये।

Q 3 'The collectivists aim at the establishment of welfare state' Expand the statement

'समूहवादी कल्याण राज्य की स्थापना का आदर्श लेकर चलते हैं।' कथन को सविस्तार समझाइए।

आदर्शवाद (Idealism)

Q 1 Critically examine the basic ideas of the German and English schools of idealism and point out their differences

आदर्शवाद के जर्मन और अंग्रेजी संस्करणों के मूल सिद्धान्तों का उल्लेख करते हुए उनके अन्तर स्पष्ट कीजिये।

Q 2 "Human consciousness postulates liberty liberty involves rights and rights demand the state (Green) Discuss and Comment

"मानव चेतना स्वतन्त्रता चाहती है, स्वतन्त्रता अधिकारों से सम्बद्ध है और अधिकार राज्य की माग करते है।" ग्रीन के इस दृष्टिकोण की युक्तिसम्मत विवेचना कीजिये।

Q 3 "Will not force is the basis of state Comment

'राज्य का आधार शक्ति न होकर इच्छा है।" तर्क प्रस्तुत कीजिये।

Q 4 What is the idealistic theory of rights? Examine it with special reference to Green's view about rights

अधिकारों के विषय में आदर्शवादी सिद्धान्त क्या कहता है? ग्रीन का दृष्टिकोण मुख्य रूप से समझाइये।

Q 5. At the hands of Green idealism became a liberal creed Discuss

'ग्रीन के हाथों आदर्शवादी दर्शन एक उदारतावादी दर्शन बना" व्याख्या कीजिये।

सर्वाधिकारवाद (Totalitarianism)

Q 1 Account for the rise of Totalitarianism in the postwar world ? What should be done to arrest it ?

उत्तर युद्धकाल मे सर्वाधिकारवाद का जन्म क्या हुआ ? इन प्रवृत्तियो को रोकने के लिये क्या किया जाना चाहिये ।

Q 2 "Totalitarianism is a nemisis of correct democracy" Comment

"सर्वाधिकारवाद भ्रष्ट जनतन्त्र के विरुद्ध एक प्रतिशोधात्मक विस्फोट है ।" क्या इस कथन को आप स्वीकार करते हैं ?

Q 3 Comment upon the rise of Totalitarianism in U S S R and China In what way it is different from the Nazy and Fascist brands of totalitarianism ?

रूस और चीन मे पाये जाने वाले सर्वाधिकारवाद की चर्चा करते हुय समझाइय कि वह नाजी और फासी सर्वाधिकारवाद से किस प्रकार भिन्न है ?

Q 4 "Totalitarianism is the biggest menace to human civilisation and liberal ideals" Justify

"आधुनिक युग मे मानव सभ्यता और उदारतावादी सिद्धान्तो को सबसे अधिक भय सर्वाधिकारवाद से है । पुष्टि कीजिये ।

साम्यवाद (Communism)

Q 1 Describe the fundamentals of Marxian political philosophy

साम्यवादी राजदर्शन के मौलिक सिद्धान्तो की विवेचना कीजिये ।

Q 2 Marx is the only writer whose works can be termed scientific" (Joad) Do you agree with this view

"समाजवादी दार्शनिको मे मार्क्स ही एक ऐसा लेखक है जिसका दर्शन वैज्ञानिक कहा जा सकता है (जोड) । क्या आप उक्त मत से सहमत हैं ?

Q 3 Communism is the negation of democracy' Examine this statement

"साम्यवाद जनतन्त्र का निरोध है ।" इस कथन की विवेचना कीजिये ।

Q 4 Discuss Karl Marx s contribution to the theory of Socialism and point out its falacies too

कार्ल मार्क्स का समाजवादी दर्शन को योगदान समझाइय तथा उसकी अपूर्णताएँ भी स्पष्ट कीजिय ।

फासीवाद (Fascism)

Q 1 What do you understand by Fascism ? Critically examine its main features

फासीवाद से क्या अभिप्राय है ? इसके प्रमुख लक्षणों की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये ।

Q 2 '*Fascism is anti thesis of all, that is democratic, liberal and socialistic* Comment

"फासीवाद सभी लोकतन्त्रीय, उदार तथा समाजवादी विचारों का विरोधी है।" अपने विचार प्रस्तुत कीजिए ।

Q 3 Fascism was a war against the individual on all fronts' *Critically examine the statement*

"फासीवाद व्यक्ति के विरोध में चारों ओर से छेड़ा गया एक युद्ध था" कथन की विवेचना कीजिये ।

Q 4 'Nothing against the state, nothing beyond the state; every thing within the state.' (Mussolini) Comment.

"राज्य के विरोध में तथा राज्य के बाहर कुछ भी नहीं है, जो कुछ है वह राज्य के अन्दर है।" (मुसोलिनी) फासीवादी अधिनायकवाद को स्पष्ट समझाइए ।

अराजकतावाद (Anarchism)

Q 1 State the case for and against 'Anarchism'

अराजकतावाद के पक्ष एवं विपक्ष में अपने तर्क प्रस्तुत कीजिये ।

Q 2 Anarchism is not the absence of order, but it is the absence of force Discuss.

अराजकतावाद का अर्थ व्यवस्था का अभाव नहीं बल्कि शक्ति और बल द्वारा स्थापित की गई व्यवस्था का अभाव है । स्पष्टत समझाइये ।

Q 3 'Where communism ends anarchism begins' clearly examine this dictum

'जहाँ पर साम्यवाद है वहाँ से अराजकतावाद का आरम्भ होता है" इस कथन को स्पष्टत समझाइये ।

Q 4 What kind of society is envisaged by the anarchists ? *How does anarchism differ from communism ?*

अराजकतावादी विचारक किस प्रकार के समाज की परिकल्पना करते हैं और वह साम्यवादी समाजवादी समाज से किस तरह भिन्न है ?

बहुलवाद (Pluralism)

Q 1 What do the pluralists say about Austrian theory of sovereignty? Give their main planks of attack

आस्टिन के सम्प्रभुता सिद्धान्त के विषय मे बहुलवादी क्या कहते है ? उनकी आलोचना के मुख्य आधार बतलाइये ।

Q 2 'If we look at the facts the theory of sovereign state has broken down' Justify this view

"यदि हम तथ्यो की ओर देखें तो राज्य का सम्प्रभुता सिद्धान्त खंडित दिखाई देता है ।" इस कथन की पुष्टि कीजिये ।

Q 3 The mistake of the pluralists lies not in supplementing but in supplanting the theory of state Comment

'बहुलवादियो की भूल राजदर्शन की अपूर्णताओं को पूरी करने मे न होकर, एक नया राजदर्शन प्रस्तुत करने मे है ।" विस्तार से समझाइये ।

Q 4 Pluralism attempts an impossible task by standing in midway between Monism and Anarchism' Do you agree?

'अराजकतावाद और एकलवाद के मध्य का मार्ग अपना कर बहुलवाद एक असम्भव प्रयास करता है ।" क्या आप इसे स्वीकार करते है ?

गाँधीवाद (Gandhism)

Q 1 Give a critical exposition of Gandhian concept of an ideal society

गाँधी जी के आदर्श समाज का आलोचनात्मक विवरण प्रस्तुत कीजिये ।

Q 2 Define Gandhi s conception of Ahimsa How did he apply it to political social and economic problems?

अहिंसा के विषय मे गाँधी जी की क्या धारणा थी और उन्होंने राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओ पर इसका किस तरह प्रयोग किया ।

Q 3 Describe essential features of Gandhism How are they related to the existing conceptions of democracy and socialism?

गाँधीवाद के मूल सिद्धान्त स्पष्ट कीजिये और बतलाइए कि उनका वर्तमान जनतन्त्र और समाजवाद से क्या सम्बन्ध है ?

Q 4 "Gandhism is communism minus violence" Discuss

साम्यवाद से यदि हिंसा निकाल दी जाय तो वह गाँधीवाद बन जायगा ।" विवेचना कीजिये ।

Q 5 'I am trying to introduce religion into politics' (Gandhi) Elucidate the statement

"मैं धर्म को राजनीति में लाने का प्रयास कर रहा हूँ" (गाँधी जी)। उक्त कथन की युक्तिसम्मत विवेचना कीजिये।

सर्वोदय (Sarvodaya)

Q 1 Sketch the picture of Sarvodaya Samaj as envisaged by Mahatma Gandhi and Vinoba Bhave

महात्मा गाँधी और विनोबा भावे द्वारा कल्पित सर्वोदय समाज का एक चित्र प्रस्तुत कीजिये।

Q 2 What is the Concrete Plan of Sarvodya movement and what are the main hinderances in its way?

सर्वोदय आन्दोलन की क्रियात्मक योजना क्या है और उसकी पूर्ति के मार्ग में कौन कौन सी मुख्य बाधायें है?

Q 3 Comment upon the various Dan movements and evaluates their impact upon the Indian Society

विभिन्न दान आन्दोलनों की चर्चा करते हुए भारतीय समाज पर इन आन्दोलनों का प्रभाव समझाइए।

Q 4 Sarvodaya represents an over idealistic and over optimistic approch towards men and his social conflicts"
Do you agree?

सर्वोदय मनुष्य और उसके सामाजिक-संघर्षों के प्रति एक अति आशावादी और अति-आदर्शवादी दृष्टिकोण को लेकर चलता है।" क्या आप इस मत के पक्ष में है।

राष्ट्रीयतावाद (Nationalism)

Q 1 Distinguish between nation nationality and nationalism and comment upon the principle of national self determination

राष्ट्र, राष्ट्रीयता और राष्ट्रीयतावाद में अन्तर समझाइए, और 'राष्ट्रीय आत्म-निर्णय' के सिद्धान्त पर प्रकाश डालिये।

Q 2 What factors promotes nationalism? Discuss them in the context of national integration in India

राष्ट्रीयता को प्रेरित करने वाले कौन-कौन से तत्व हैं? भारत में राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या को ध्यान में रखते हुये इन पर प्रकाश डालिये।

Q 3 Distinguish between healthy and perverted nationalism and point out merits and demerits of either
स्वस्थ और विकृत राष्ट्रीयताओं में अन्तर समझाइये और क्रमश उसके हानि और लाभ भी लिखिये।

Q 4 Trace briefly the history of 19th century nationalism in Europe and 20th century nationalism in Africa and Asia
१९ वीं शताब्दी यूरोप और २० वीं शताब्दी अफ्रीका और एशिया की राष्ट्रीय भावनाओं के विकास पर एक संक्षिप्त लेख लिखिये।

साम्राज्यवाद (Imperialism)

Q 1 What do you understand by Imperialism and what are its various forms ?
साम्राज्यवाद से आप क्या समझते हैं ? इसके विभिन्न प्रकार बतलाइए।

Q 2 Trace in brief the history of Imperialism and comment upon the modern ideological imperialism practised by Communist countries
साम्राज्यवाद का संक्षेप में इतिहास लिखते हुए आधुनिक साम्यवादी राष्ट्रों के सैद्धान्तिक साम्राज्यवाद पर प्रकाश डालिये।

Q 3 Is imperialism justified ? Has it benefited the Colonial People ? Illustrate your answer
क्या साम्राज्यवाद लाभदायक है और इससे उपनिवेशों की जनता का कोई हित हुआ है ? सोदाहरण स्पष्ट कीजिये।

Q 4 It has been said that imperialism is the root cause of world wars Do you agree ?
ऐसा कहा जाता है कि साम्राज्यवाद विश्व-युद्धों का मूल कारण है। क्या आप इस कथन से सहमत हैं ?

अन्तर्राष्ट्रीयतावाद (Internationalism)

Q 1 What do you understand by Internationalism and why has it become inevitable in the 20th century ?
अन्तर्राष्ट्रीयतावाद से आप क्या समझते हैं ? वह २०वीं शताब्दी में क्यों अवश्यम्भावी है ?

Q 2 Enumerate in brief the impediments in the development of International out look Suggest ways and means to overcome them ?

अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण के विकास में मुख्य बाधायें कौन-कौन सी हैं और उन्हें मिटाने के लिए क्या-क्या किया जाना चाहिये ?

Q 3 Trace briefly the history of Internationalism with special reference to the league of Nations and U N O

अन्तर्राष्ट्रीयतावाद का इतिहास संक्षेप में समझाते हुए राष्ट्र संघ और संयुक्त राष्ट्र संघ पर प्रकाश डालिये ।

Q 4 World government or world federation is the only alternative in space age. It is to the latter that we should subscribe' Discuss

'अन्तरिक्ष युग में एक विश्व सरकार अथवा एक विश्व संघ ही एक मात्र मार्ग है । हमें उचित है कि विश्व संघ के लिये प्रयास करें ।" इस कथन को विस्तार से समझाइए ।